BC-17

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

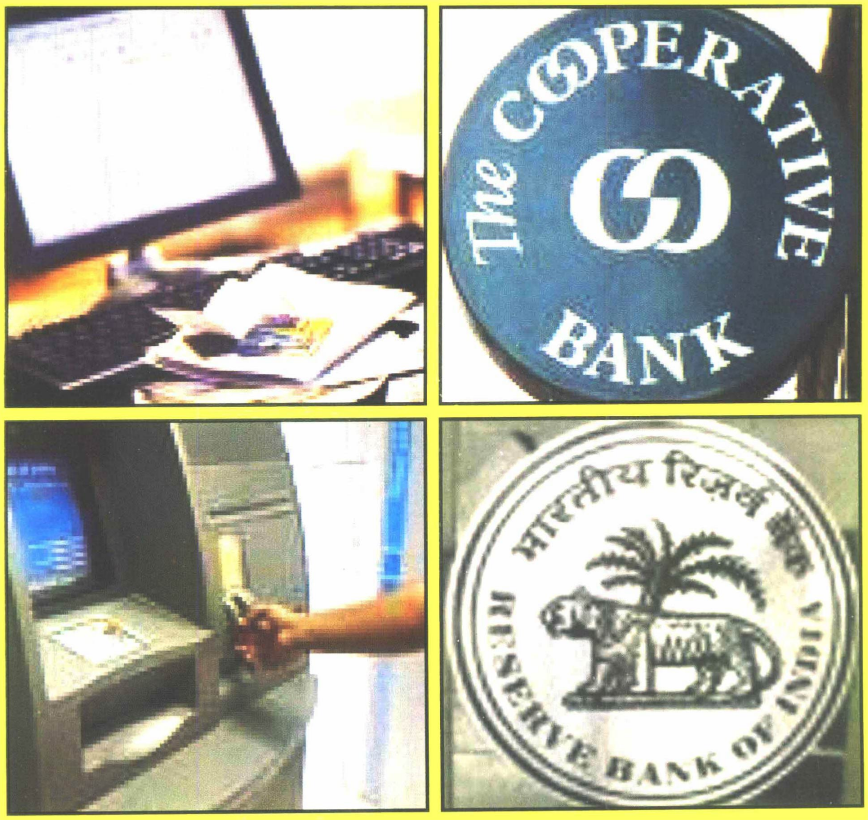

बैंकिंग विधि एवं व्यवहार

BC-17

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

बैंकिंग विधि एवं व्यवहार

(Banking Law and Practice)

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक एवं सदस्य

संयोजक

डॉ. अनुरोध गोधा

सहायक आचार्य, वाणिज्य विभाग

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

प्रो.(डॉ.) नवीन माथुर आचार्य एवं प्रशासनिक सचिव, कुलपति राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	**डॉ. पुखराज दाधीच** वरिष्ठ व्याख्याता राजकीय महाविद्यालय, अजमेर
प्रो.(डॉ.) आर. के. दीक्षित आचार्य एवं अध्यक्ष ई. ए. एफ. एम. विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	**प्रो.(डॉ.) एस. जी. शर्मा** आचार्य एवं अध्यक्ष ए. बी. एस. टी. विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
प्रो.(डॉ.) आई. वी. त्रिवेदी आचार्य, बैंकिंग एण्ड बिजनेस इकॉनोमिक्स एम. एल. सुखा. विश्वविद्यालय, उदयपुर	**डॉ. एस. सी. जोशी** पूर्व उपप्राचार्य राजकीय महाविद्यालय, बांरा

संपादन एवं पाठ्यक्रम-लेखन

सम्पादक

प्रो. (डॉ.) एन. डी. माथुर

आचार्य, ई. ए. एफ. एम. विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

इकाई-लेखक	इकाई संख्या	इकाई-लेखक	इकाई संख्या
• **डॉ. मेघना टंडन** व्याख्याता,सी.ई.एस.बी.एम. विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर	1	• **डॉ. खेम चन्द गुर्जर** व्याख्याता, ई.ए.एफ.एम. विभाग एस.पी.यू(पी.जी.)महाविद्यालय, फालना	8,9
• **डॉ. एल. एन. बल्दुआ** सह आचार्य बैंकिंग व वित्त प्रबंध विभाग राजकीय एस.डी. महाविद्यालय,ब्यावर	2,7	• **डॉ. सत्यनारायन गर्ग** व्याख्याता, ई.ए.एफ.एम. विभाग राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय, कोटा	10,18
• **डॉ. आर. के. गोधा** विभागाध्यक्ष, ई.ए.एफ.एम. विभाग राजकीय महाविद्यालय, अजमेर	3,4	• **डॉ. राकेश दशोरा** व्याख्याता, ई.ए.एफ.एम. विभाग राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर	11,12
• **डॉ. पुखराज दाधीच** वरिष्ठ व्याख्याता, ई.ए.एफ.एम. विभाग राजकीय महाविद्यालय, अजमेर	5,6	• **डॉ. एन. आर. माली** व्याख्याता, ई.ए.एफ.एम. विभाग राजकीय महाविद्यालय, अजमेर	13,14
• **डॉ. विवेक शर्मा** व्याख्याता, ई.ए.एफ.एम. विभाग एस.एस.जे.राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर	17	• **डॉ.(श्रीमती) नीता आनन्द** व्याख्याता, ई.ए.एफ.एम. विभाग एस.एस.जे.राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर	15,16

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. नरेश दाधीच कुलपति वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	प्रो. एम. के. घडोलिया निदेशक संकाय विभाग	योगेन्द्र गोयल प्रभारी पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - नवम्बर 2011 **ISBN No.: 13/978-81-8496-176-8**

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि. कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। व. म. खु. वि. कोटा के लिए कुलसचिव व. म. खु. वि. कोटा(राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

BC -17

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा(राज.)

अनुक्रमणिका

बैंकिंग विधि एवं व्यवहार

इकाई सं.	इकाई का विवरण	पृष्ठ सं.
1.	वाणिज्यिक बैंक- कार्य, प्रकार, महत्व, उपयोगिता एवं साख-निर्माण	7–24
2.	भारतीय बैंकिंग अधिनियम - 1949	25–40
3.	रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम, 1934	41–58
4.	बैंकिंग नियमन (संशोधन) अधिनियम, 1970	59–71
5.	बैंक एवं ग्राहक में संबन्ध	72–85
6.	विभिन्न प्रकार के खाते	86–96
7.	विभिन्न व्यक्तियों के खाते	97–121
8.	भुगतान करने वाला एवं संग्राहक बैंकर- विभिन्न कानूनी प्रावधान,रखी जाने वाली सावधानियाँ, अनादरण, रेखांकन, पृष्ठांकन इत्यादि	122–145
9.	विनिमय साध्य विलेख अधिनियम,1881 - प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय बिल, चैक एवं विनिमय साध्य विलेखों से संबन्धित विभिन्न प्रावधान	146–166
10.	नवोन्मेजी बैंकिंग : ए.टी.एम. बैंकिंग, टेली बैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग, ई.बैंकिंग, विभिन्न नवाचार, बैंकिंग का बदलता परिवेश तथा नये प्राइवेट क्षेत्र के बैंक	167–180
11.	बैंक अग्रिम - विनियोजन के सिद्धान्त, सुरक्षित एवं असुरक्षित अग्रिम	181–190
12.	साख पत्र : अर्थ, परिभाषा, महत्व प्रकार एवं पक्षकार	191–200
13.	सहकारी बैंकिंग	201–228
14.	मर्चेन्ट बैंकिंग	229–239
15.	बैंकिंग सुधार	240–262
16.	बैंकिंग धोखा-धड़ी-साइबर धोखा प्रकार एवं उपचार, कानूनी प्रावधान	263–281
17.	बैंकिंग विकास के संबन्ध में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा गठित विभिन्न समितियों के सुझाव	282–296
18.	विकास बैंकिंग : अवधारणा, विभिन्न बैंकिंग संस्थाएं, कार्यरत विकास बैंकों की समस्याएँ	297–312

इकाई 1
वाणिज्यिक बैंक - कार्य, प्रकार, महत्व, उपयोगिता एवम् साख-निर्माण

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 इतिहास एवं क्रमिक विकास
1.3 वाणिज्यिक बैंकों का अर्थ एवं परिभाषा
1.4 वाणिज्यिक बैंकों का महत्व
1.5 वाणिज्यिक बैंकों के कार्य
1.6 वाणिज्यिक बैंकों की उपयोगिता
1.7 साख निर्माण
1.8 उदाहरण
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 अभ्यास प्रश्न
1.12 संदर्भ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

वाणिज्य बैंक के विद्‌यमान होने के प्रमुख उद्देश्य है : -

- वाणिज्यिक बैंक सामान्य बैंकिंग कार्य करते हैं तथा इनकी बैंकिंग प्रणाली सुगम एवं सरल है। इसका मुख्य उद्देश्य देशवासियों को सेवायें, सुरक्षायें एवम् सुविधायें उपलब्ध कराना है।
- वाणिज्यिक बैंक का उद्देश्य यह है कि अपने ग्राहकों के लिए समयानुसार प्रतिनिधि के रूप में भी कार्य कर सकें, छोटी-छोटी बचतों को प्रोत्साहित करना, धन के स्थानान्तरण की सुविधा को बढ़ाना, लघु उद्‌योगों को आर्थिक सहायता देना, लाइसेन्सवार गोदाम की स्थापना में सहायता देना तथा ग्रामीण साख व्यवस्था में सरकार की साझेदारी को स्थापित करना है।
- वाणिज्यिक बैंक विदेशी व्यापार के लिये भी वित्त व्यवस्था एवम् आयात निर्यात के लिए साख उपलब्ध कराते हैं जिससे देश के व्यवसाय में वृद्धि के साथ-साथ देश की अर्थव्यवस्था में भी सुधार कर सकें।
- देशी बैंकर्स की शोषण प्रवृत्ति को समाप्त कर ग्राहकों में वाणिज्यिक बैंक के प्रति विश्वास कायम करना।

- देश में सुसंगठित एवम् सुव्यवस्थित मौद्रिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए समुचित एवम् पर्याप्त वित्त व्यवस्था कर सकें तथा मौद्रिक नीति का पालन करना तथा अधिक सक्रिय बनाने में सहायक होना।
- आत्मनिर्भर समाज का निर्माण करना।
- बैंकिंग विकास संबंधी कार्य करना तथा अन्य बैंकों की सहायता करना।

1.1 प्रस्तावना

सामान्य भाषा में मुद्रा का लेन देने करने वाली संस्था ही बैंक है जबकि बैंक केवल मुद्रा का लेन-देन मात्र ही नहीं करती है अपितु मुद्रा के निर्माता भी है। किसी भी देश का आर्थिक विकास बहुत कुछ उस देश की बैंकिंग व्यवस्था पर निर्भर करता है क्योंकि बैंकिंग व्यवस्था ही विकास कार्यों की वित्त व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है तथा वर्तमान में भारत में वाणिज्यिक बैंक अहम् भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं क्योंकि यह ग्राहकों की सुविधानुसार कार्य करते हैं जैसे :- जमा प्राप्त करना, चैकों का भुगतान करना, ऋण उपलब्ध करवाना, उद्यम को प्रोत्साहित करना, लाकर्स सुविधा प्रदान करना तथा ग्राहकों के प्रतिनिधि सम्बन्धी कार्य करना आदि सामान्यत: भारत में वाणिज्यिक बैंक संयुक्त पूंजी वाली कम्पनी के रूप में कार्य करते हैं। देश में 30 जून 2008 को कुल 168 अनुसूचित व्यापारिक बैंक थे जिनकी लगभग 76,487 शाखाएं थीं। स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, यू.को. बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा, पंजाब नेशनल बैंक, सैन्ट्रल बैंक, इण्डियन बैंक, देना बैंक, विजया बैंक आदि वाणिज्यिक बैंक के उदाहरण हैं।

1.2 इतिहास एवम् क्रमिक विकास

आधुनिक युग में वाणिज्यिक बैंक अत्यन्त लोकप्रिय तथा सुपरिचित संस्थान हो गया है जबकि बैंकिंग व्यवसाय भारत का अत्यन्त प्राचीन व्यवसाय है जिसका वर्णन कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति सर्वप्रथम कहाँ तथा किस प्रकार हुई, इस सन्दर्भ में बैंकर्स एवम् अर्थशास्त्रियों में पूर्णतया मतैक्य नहीं है जिसके कारण दो मतों ने जन्म लिया। प्रथम मत के अनुसार बैंक शब्द की उत्पत्ति इटालियन भाषा के (BANCO) शब्द से हुई है। जिसका अर्थ मुद्रा के कार्य करने वाले व्यापार गृहों से है। फ्रेंच भाषा में इसे (BANKE) और अंग्रेजी भाषा में (BANK) कहा जाता है।

द्वितीय मत के अनुसार कुछ बैंकर्स एवं अर्थशास्त्री इस शब्द की उत्पत्ति जर्मन भाषा के शब्द (BANCK) से मानते हैं जिसका अर्थ संयुक्त स्कन्धकोष (COMMON FUND) से होता है। द्वितीय मत के समर्थकों के अनुसार 1171 में वेनिस राज्य में युद्ध के फलस्वरूप जो आर्थिक संकट उत्पन्न हुआ उससे मुक्ति पाने हेतु राजा ने प्रजा से उनकी सम्पत्ति का 1 प्रतिशत भाग ऋण के रूप में प्राप्त किया इसी सामूहिक कोष को जर्मनी भाषा में (BANCK) शब्द की संज्ञा प्रदान की गई थी। जिससे अंग्रेजी के BANK शब्द का प्रादुर्भाव हुआ। आधुनिक बैंक का विकास सर्वप्रथम यूरोप में हुआ था जबकि सन् 1157 में इटली में बैंक ऑफ वेनिस के नाम से इसकी स्थापना हुई थी। इसके बाद अनेक बैंक स्थापित हुए जिनमें 1401 में बैंक ऑफ वारसीलोना 1407 में बैंक ऑफ जेनेवा, 1609 में बैंक ऑफ एम्स्ट्रडाम, 1694 में बैंक ऑफ इंग्लैंड सम्मिलित थे। सन् 1694 के बाद कुछ अवधि तक तो बैंक विकास धीमा रहा परन्तु 18वीं शताब्दी आने तक

बैंकों के विकास की गति में वृद्धि हुई तथा उसी समय बैंकिंग का कार्यभार मिश्रित पूंजी वाली कम्पनियों ने सम्भाल लिया। व 18वीं शताब्दी में ही सीमित उत्तरदायित्व को मान्यता प्राप्त हुई तथा बैंकों के नियमन और नियन्त्रण के लिए कानूनी व्यवस्था की जाने लगी। भारतीय व्यापार जगत में बैंकिंग व्यवसाय के चहुंमुखी विकास के लिए सर्वप्रथम वारेन हेस्टिंग्ज ने सन् 1896 में स्थापना का सुझाव दिया था जबकि भारत में बैंकिंग कम्पनी का पूर्णरूप से उद्भव सन् 1969 में 19 जुलाई को 14 बड़े बैंकों के राष्ट्रीयकरण की घोषणा के साथ हुआ। जिसके परिणामस्वरूप अब बैंक प्रणाली देश में इतनी विकसित हो गई है कि बैंक वर्तमान आर्थिक प्रणाली व व्यापार व्यवस्था के अविभाज्य अंग बन गये हैं। 1 जुलाई1955 को भारत में पहले वाणिज्यिक बैंक के राष्ट्रीयकरण के साथ स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया का जन्म हुआ।

1.3 वाणिज्यिक बैंक का अर्थ एव परिभाषा

आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं एवं मुद्रा तथा साख की बढ़ती हुई आवश्यकता के कारण वाणिज्यिक बैंक का विशेष महत्व हो गया है। आर्थिक विकास में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाएं, सुविधाएं एवम् सुरक्षाएं इतनी महत्वपूर्ण हो गई हैं कि यह बैंक जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। सामान्य भाषा में वाणिज्यिक बैंक से तात्पर्य उन बैंकों से है जो कि सामान्य बैंकिंग कार्य करते हैं। भारत में व्यापारिक बैंक संयुक्त पूंजी वाली कम्पनी के रूप में कार्य करते हैं। व्यापारिक बैंक धन जमा करने, ऋण प्रदान करने, चैकों का संग्रह एवं भुगतान करने, विदेशी मुद्रा की व्यवस्था करने, लाकर्स उपलब्ध करवाने, एक स्थान से दूसरे स्थान पर धनराशि भेजने, साख-पत्र निर्गमन करना, ग्राहक के लिए प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने,
अभिगोपन कार्य करने आदि अनेक कार्य करते हैं।

भारत में तीन प्रकार के व्यापारिक बैंक विद्यमान हैं -

(1) निजी क्षेत्र के मिश्रित पूंजी वाले

(2) सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक जिनमें राष्ट्रीयकृत बैंक भी शामिल हैं तथा

(3) विदेशी व्यापारिक बैंक।

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक : भारत में सार्वजनिक क्षेत्र में 27 व्यापारिक बैंकों का समावेश है जिनमें एक भारतीय स्टेट बैंक तथा उसके 7 सहयोगी बैंक, 19 राष्ट्रीयकृत वाणिज्यिक बैंक शामिल हैं। वाणिज्यिक बैंकों के पास देश की कुल जमाओं का लगभग 92 प्रतिशत भाग है जबकि 8 प्रतिशत भाग निजी क्षेत्र के बैंकों तथा अन्य व्यापारिक बैंकों के पास हैं।

स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया तथा उसके सहयोगी बैंक : जुलाई 1955 में गोखला ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति के सुझाव पर इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया को सार्वजनिक क्षेत्र में लेकर स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना की गई। स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना के साथ ही इस बैंक ने तीव्र गति से प्रगति की तथा ग्रामीण साख बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

स्टेट बैंक की प्रगति को देखते हुए सन् 1960 में भारतीय राज्यों में इसके 7 सहयोगी बैंकों की स्थापना की गई जो कि निम्न प्रकार है :

1. स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर
2. स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद

3. स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर
4. स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र
5. स्टेट बैंक ऑफ टावनकोर
6. स्टेट बैंक ऑफ मैसूर
7. स्टेट बैंक ऑफ पटियाला

राष्ट्रीयकृत बैंक : सरकार ने निजी वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीकरण दो चरणों में पूरा किया। प्रथम चरण में सरकार ने 19 जुलाई व 989 को एक अध्यादेश जारी कर निजी वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया जिनकी जमायें उस समय 50 करोड़ रु. से अधिक थी द्वितीय चरण में सरकार ने 15 अप्रेल 1980 को 8 बड़े निजी वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीकरण किया जिनकी जमायें 200 करोड़ रु. से अधिक थी। बाद में 4 सितम्बर व 993 को सरकार ने न्यू बैंक ऑफ इण्डिया का पी.एन.बी. में विलय कर दिया। इसलिए भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में 19 राष्ट्रीयकृत बैंक ही शामिल हैं।

प्रथम चरण के राष्ट्रीयकृत बैंक :- पंजाब नेशनल बैंक
सैन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया
युको बैंक
बैंक ऑफ बड़ौदा
बैंक ऑफ इण्डिया
केनरा बैंक
सिण्डीकेट बैंक
देना बैंक
यूनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया
यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया
इण्डियन बैंक
इलाहाबाद बैंक
बैंक ऑफ महाराष्ट्र
इण्डियन ओवरसीज बैंक

द्वितीय चरण के राष्ट्रीयकृत बैंक विजया बैंक
आन्ध्र बैंक
पंजाब एण्ड सिन्ध बैंक
कॉरपोरेशन बैंक
ओरिएन्टल बैंक ऑफ कॉमर्स

निजी क्षेत्र वाणिज्यिक बैंक : भारत में निजी क्षेत्र के 22 वाणिज्यिक बैंक कार्यरत है जिनकी 8269 शाखाएं हैं। निजी क्षेत्र वाणिज्यिक बैंक उन बैंकों को कहा जाता है जो कि निजी व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा स्थापित एवं संचालित किए जाते हैं तथा संयुक्त पूंजी बैंकर के रूप में भी कार्य करते हैं। उदाहरणार्थ :- एच.डी.एफ.सी. बैंक, आई.सी.आई.सी.आई. बैंक, राजस्थान बैंक आदि।

विदेशी व्यापारिक बैंक : विदेशी वाणिज्यिक बैंकों में उन विदेशी बैंकों की शाखाओं का समावेश है जो भारत में कार्य कर रहे हैं इनका उद्देश्य भारत में आयात-निर्यात को प्रोत्साहन देना है। सन् 2008 के अन्त तक इन बैंकों की लगभग संख्या 30 थी तथा इनकी लगभग 279 शाखायें थी। ये भारत के निर्यात व्यापार का 70 प्रतिशत तथा आयात व्यापार का लगभग 90 प्रतिशत तक वित्त प्रबन्ध करते हैं। उदाहरणार्थ :- निर्यात आयात बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम आदि।

भारत में वाणिज्यिक बैंकों को अनुसूचित तथा गैर अनुसूचित सूची के आधार पर वर्णित किया गया है। देश में लगभग 172 वाणिज्यिक बैंक कार्यरत है। (स्त्रोत: 2008 Journal) जिनमें 188 अनुसूचित बैंक तथा 4 गैर अनुसूचित बैंक है।

अनुसूचित बैंक : अनुसूचित बैंकों का अभिप्राय उन बैंकों से है जिनका नाम रिजर्व बैंक की द्वितीय अनुसूची में सम्मिलित किया जा चुका है जो निम्न शर्तों का पूरा करते हैं. :-

(1) बैंक की प्रदत्त पूंजी एवं कोष 5 लाख रूपये से कम नहीं हो।

(2) बैंक का कार्य उसके जमाकर्ताओं के हितों के विरूद्ध नही हो तथा

(3) यदि यह विदेशी बैंक है तो उस बैंक के देश में भारतीय बैंकों के कोई अनुसूचित नियम या प्रतिबन्ध लागू नही हो।

ऐसे अनुसूचित बैंकों को रिजर्व बैंक से प्राय: निम्नलिखित सुविधाएं मिलती है -

(i) ऐसे बैंक रिजर्व बैंक से बैंक दर पर ऋण प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं।

(ii) ऐसा बैंक स्वत: समाशोधन गृह का सदस्य हो जाता है।

(iii) ऐसे बैंकों को रिजर्व बैंक प्रथम श्रेणी बिलों की पुर्नकटौती सुविधा प्रदान करता है।

गैर अनुसूचित बैंक : जो बैंक रिजर्व बैंक की द्वितीय अनुसूची में सम्मिलित नही है उन्हें गैर अनुसूचित बैंक कहते हैं। भारत में ऐसे बैंकों की संख्या 1969 में 16 थी वह घटकर 1991 में केवल 3 रह गई। 30 जून 2008 को गैर अनुसूचित बैंकों की संख्या 4 थी तथा उनकी शाखाएं 31 थी। इन बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंक की वे सुविधाएं नहीं मिल पाती जो अनुसूचित बैंकों का प्राप्त हैं।

1.4 वाणिज्य बैंकों का महत्व

देश की अर्थव्यवस्था के सफल संचालन व आर्थिक विकास में बैंक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है तथा समस्त मौद्रिक व्यवस्था, वित्त व्यवस्था एवम् साख व्यवस्था को संचालित करने का कार्य बैंकिंग क्षेत्र करता है। एक उन्नत एवं सुसंगठित बैंकिंग व्यवस्था द्वारा ही अर्थव्यवस्था में विकास एवं स्थायित्व सम्भव है क्योंकि आज समूची उत्पादन एवं वितरण व्यवस्था बहुत हद तक बैंकों पर निर्भर है। बैंक आधुनिक युग में बहुमुखी कार्य करते हैं। इन्हीं ने पूंजी निर्माण को सम्भव बनाया है जिससे देश का औद्योगिक विकास हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति व संस्था को अपने दैनिक जीवन में मुद्रा एवं साख की आवश्यकता पड़ती है। यह महत्वपूर्ण कार्य बैंकिंग संस्थाएं ही सम्पन्न कर रही है।

विक्सेल (Wicksell) ने बैंकों के बारे में कहा है कि "बैंक आधुनिक चलन व्यवस्था का हृदय तथा केन्द्र बिन्दु है। मुद्रा वित्त एवं साख व्यवस्था में बैंकों का विशेष महत्व है। बैंकों के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के द्वारा प्रकट किया जा सकता है :-

(1) **बचतों को प्रोत्साहन** :- बैंकिंग व्यवस्था लोगों को बचत करने के लिए प्रोत्साहित करता है ताकि उनकी छोटी-छोटी बचतों को एकत्रित कर विशाल कोषों में परिवर्तित कर उत्पादन कार्य में लगा सकें। समाज में अनेक लोग अपनी बचतों को बैंक में न्यूनतम दर के ब्याज पर भी रखना पसन्द करते है क्योंकि उनको बैंक द्वारा नियमित भुगतान एवम् सुरक्षा का विश्वास होता है। बैंकिंग व्यवस्था में जनता द्वारा संग्रहित जमायें निरन्तर बढ़ रही है। जिसे बैंक इकट्ठा कर व्यापारियों एवं उद्योगों को ऋण के रूप में उपलब्ध कराता है। आधुनिक युग में विदेशी बैंक भी धन जमा करने का कार्य करने लगे हैं।

(2) **व्यापार एवं उद्योगों को विनियोग एवं अर्थ प्रबन्ध** :- बैंक देशी एवं विदेशी व्यापार को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। इसलिए बैंक द्वारा उद्योगपतियों एवं व्यापारियों को बड़ी मात्रा में स्थायी एवं कार्यशील पूंजी ऋण के रूप उपलब्ध कराई जा रही हैं। आजकल अधिकांश व्यापारिक भुगतान बैंकों के माध्यम से ही सम्पन्न किया जाता है। बैंक विभिन्न देशों के मध्य होने वाले आयात निर्यात में मुद्रा परिवर्तन का कार्य करता है। सारांश में, आज व्यापार, उद्योग, व्यवसाय सभी में बड़ी मात्रा में बैंकों द्वारा पूंजी विनियोग किया जाता है।

(3) **धन व बहुमूल्य वस्तुओं की सुरक्षा**:- बैंक का महत्व तब और बढ़ जाता है जब वो अपने ग्राहकों के धन व बहुमूल्य वस्तुओं को सुरक्षित रखने का विश्वास दिलाता है क्योंकि आज के युग में व्यक्ति अपने धन व बहुमूल्य वस्तुओं और गहनों की चोरी व अन्य अव्यवस्थाओं से बचाने के लिए बैंकों में जमा कराता है एवं लाकर्स सुविधा का उपयोग करता है तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपने धन को सुरक्षित पहुँचाने के लिए बैंकों का सहारा लेता है।

(4) **पूंजी निर्माण** :- बैंक अपनी साख निर्माण द्वारा लोगों से अनेक प्रकार के खातों में धन जमा कर पूंजी निर्माण करते हैं। बैंक उनके धन को व्यापार, उद्योग व्यवसाय आदि कार्यों में लगाते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर ग्राहक को नियमित समय पर भुगतान करने का विश्वास प्रदान करते हैं।

(5) **मुद्रा व्यवस्था में लोच एवं कीमतों में स्थायित्व** :- बैंकों के द्वारा ही समय-समय पर मुद्रा परिवर्तन का कार्य सम्पन्न किया जाता है। व्यापार एवं व्यवसाय में मुद्रा परिवर्तन या मौद्रिक उच्चावचनों के कारण उतार-चढ़ाव आते हैं। इन उच्चावचनों को बैंक ही नियमित करते हैं। विदेशी व्यापार में कई बार भुगतान कठिन हो जाता है परन्तु बैंक इस कठिन दौर को अपनी मौद्रिक नीति के माध्यम से नियोजित करते हैं। बैंकिंग प्रणाली ने साख मुद्रा के माध्यम से मुद्रा प्रणाली में लचीलापन उत्पन्न किया है। इस लोच एवं साख सृजन पर उचित नियन्त्रण करके बैंकिंग व्यवस्था कीमतों में होने वाले उच्चावचनों को रोककर स्थायित्व ला सकती हैं।

(6) **पिछड़े वर्गो एवं क्षेत्रों को सहयोग** :- बैंक पूंजी को अत्यधिक पूंजी वाले क्षेत्रों से कमी वाले क्षेत्रों में स्थानान्तरित करते हैं ताकि उस पूंजी का लाभदायक एवं कुशल उपयोग पिछड़े क्षेत्रों के आर्थिक विकास में हो सके और क्षेत्रीय विषमता कम हो सके।

(7) **सरकारी कार्यों में सहयोग** :- वर्तमान समय में सरकार का आर्थिक गतिविधियों में हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा है। सरकार को अनेक प्रकार से आय प्राप्त होती है जैसे करों से, शुल्कों से, ड्यूटियों से तथा वसूलियों द्वारा और अनेक प्रकार के व्यय करने पड़ते हैं जैसे वेतन, अनुदान, छात्रवृत्ति, कल्याणकारी योजनाओं तथा सेवाओं आदि का भुगतान करना इस कार्य में केन्द्रीय बैंक एवं उनके सहायक एवं सहयोगी बैंक सरकारी वित्त व्यवस्था करते हुए सरकार के प्रतिनिधि के रूप में सार्वजनिक ऋणों का संग्रह करते हैं। उन्हें वित्तीय परामर्श देते हैं तथा सरकार को ऋण प्रदान कर उसे आर्थिक विकास के कार्यों के लिए प्रेरित करते हैं।

(8) **विकास कार्यों में सहयोग** :- राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए ऋण नीति बनाकर, बैंक दर एवं अन्य अनुपात तय करके कृषि, उद्योग, विदेशी व्यापार, समाज आदि के लिए बैंक विकास कोष भी उपलब्ध करवाते हैं। मुद्रा मूल्य एवं सामान्य कीमत स्तर को सन्तुलित बनाकर विकास का मार्ग सुगम बनाने का कार्य भी बैंक करते हैं। विकास योजनाओं के लिए बैंकों में विशेष विभाग एवं शाखा खोली जाती है जो उत्पत्ति के साधनों में गतिशीलता प्रदान करती है जिससे उत्पादन और रोजगार में वृद्धि के साथ-साथ जीवन स्तर में वृद्धि होती है और देश के विकास का मार्ग भी प्रशस्त होता है।

(9) **मुद्रा का संस्थागत हस्तान्तरण एवम् भुगतान में सुविधा** :- बैंकों के द्वारा चैक, ड्राफ्ट, यात्री चैक, साख पत्र, विनिमय बिल स्वीकृति, क्रेडिट कार्ड डेबिड कार्ड आदि के माध्यम से मुद्रा का भुगतान एवं हस्तान्तरण सुरक्षित, सुगम तथा सस्ता हो गया है। इनके माध्यम से आजकल तत्काल भुगतान की भी व्यवस्था हो गई है।

(10) **विभिन्न ग्राहक सेवायें** :- बैंक अपने ग्राहकों के लिए विभिन्न प्रकार की महत्वपूर्ण सेवायें उपलब्ध करता है जैसे शेयरों का क्रय विक्रय करना, ट्रस्टी के रूप में कार्य करना, बिलों का भुगतान करना, अभिगोपन कार्य करना, प्रतिनिधित्व एवं परामर्श के रूप में कार्य करना आदि। वर्तमान समय में बैंक गारन्टी के रूप में भी ग्राहकों को सेवायें उपलब्ध करा रहा है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि आधुनिक समय में बैंक अर्थव्यवस्था के केन्द्र बिन्दु संचालक एवं नियन्त्रक के रूप में कार्य करते हैं और आर्थिक विकास में भारी योगदान देते है। आज की व्यापारिक प्रणाली और हमारा आर्थिक जीवन एक सक्रिय और सुदृढ़ बैंकिंग व्यवस्था के अभाव में सुचारु रूप से नही चल सकता है। बैंक ही व्यापार, वाणिज्य और व्यवसाय की धुरी है। इस प्रकार बैंक भारतीय अर्थव्यवस्था एवम् देश के आर्थिक ढाँचे को संचालित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बैंकों के बढ़ते महत्व से आम जनता एवं सरकार दोनों सुविधाओं का लाभ उठा रहे है।

1.5 वाणिज्यिक बैंक के कार्य

प्रारम्भ में बैंकों का प्रादुर्भाव मुद्रा का लेन-देन करने वाली संस्था के रूप में हुआ। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता जा रहा है। वैसे-वैसे बैंकों द्वारा किये जाने वाले कार्यों में भी वृद्धि होती जा रही है। जबकि केन्द्रीय बैंक के कार्य, वाणिज्यिक बैंकों से तथा औद्योगिक बैंकों से

भिन्न है तथा कार्य क्षेत्र भी अलग-अलग है। सामान्यत : आधुनिक बैंकों का संकुचित अर्थ केवल वाणिज्यिक बैंक से लगाया जाता है। विशिष्टता को ध्यान में रखते हुये आधुनिक वाणिज्यिक बैंकों के सामान्यत: निम्न कार्य बताये गये है - प्राथमिक कार्य एवम् गौण कार्य परन्तु भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम की धारा 5 के अनुसार किसी बैंकिंग संस्था के दो मुख्य कार्य है।

(i) जमा के रूप में धनराशि स्वीकार करना तथा

(ii) उधार देना माँगने पर अथवा वापस निकालने की सुविधा देना।

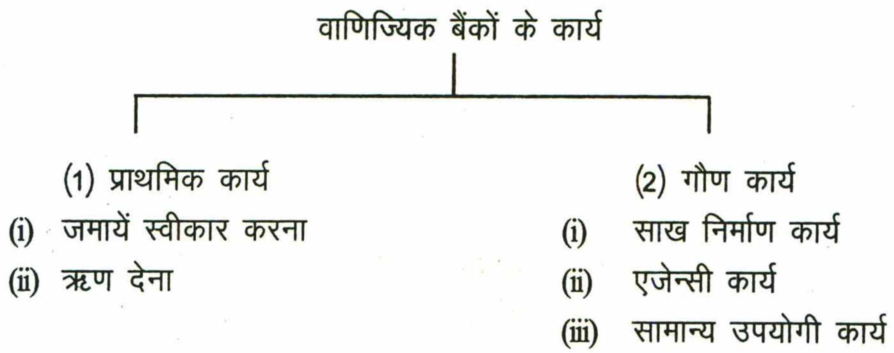

वाणिज्यिक बैंकों के कार्यों का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है

(1) प्राथमिक कार्य :

(i) **निक्षेप प्राप्त करना/जमायें स्वीकार करना** : बैंक जनता से जनता की जमाओं को स्वीकारने का कार्य करते हैं तथा जमा स्वीकारना बैंक का प्राथमिक तथा महत्वपूर्ण कार्य है। बैंक जनता को बचत करने तथा जमा करवाने के लिये आकर्षित तथा प्रोत्साहित रहती हैं। जमाकर्ताओं की सुविधा की दृष्टि से बैंक निम्न प्रकार के खाते खोलने की सुविधा प्रदान करे रहे हैं।

स्थायी जमा खाता : सावधि जमा खाते से तात्पर्य ऐसे खाते से है जिसमें जमा राशि को निश्चित अवधि की समाप्ति पर ही वापस प्राप्त कर सकते है। इस खाते का उपयोग केवल वे ही लोग कर सकते हैं जो अपनी धनराशि एक मुश्त निर्धारित अवधि के लिये बैंक के पास रखने की क्षमता एवं इच्छा रखते हो। यह खाता ग्राहक द्वारा अपनी बचतों को सुरक्षित रखने के लिये खोला जाता है जिसकी अवधि 3 माह से लेकर 20 साल तक की हो सकती है। सुरक्षा एवं ब्याज की दृष्टि से यह खाता सर्वश्रेष्ठ है।

बचत बैंक खाता : इस खाते का प्रमुख उद्देश्य जनता में बचत की भावना को प्रोत्साहन देना है। अल्प एवं मध्यम आय वर्ग के लिये यह खाता बहुत महत्वपूर्ण है। सामान्यत : बैंक अपने ग्राहकों को 500 रूपये जमा कराके इस बचत खाते को संचालित करने की सुविधा प्रदान करते है और इस खाते में जमा राशि पर 3.5 प्रतिशत के हिसाब से ब्याज भी देय होता है इसके माध्यम से कोई भी व्यक्ति अपनी छोटी-छोटी बचतों को बैंक में जमा करवा सकता है तथा आवश्यकता पड़ने पर वापस निकाल सकता है। पश्चिमी देशों में बचत बैंक अलग हैं पर भारत में व्यापारिक बैंक ही इस कार्य को करते है।

चालू खाता : चालू खाता व्यापारियों, संयुक्त पूंजी कम्पनियों आदि के लिये उपयुक्त होता है क्योंकि यह एक ऐसा खाता है जिसमें किसी भी बैंकिंग कार्यवधि में रूपये जमा व निकाले जा सकते है तथा एक दिन में अनेक बार लेन-देन किये जा सकते है। इस खाते में जमा मांग पर

देय होती है इसलिये बैंक इस पर कोई ब्याज नही देता है लेकिन इस खाते पर बैंक ग्राहकों को अधिविकर्ष की भी सुविधा देते हैं।

गृह बचत खाता : यह खाता भी ग्राहक की छोटी-छोटी बचतों को एकत्र करने का साधन है। इसके अन्तर्गत बैंक ग्राहक को गुल्लक या सेफ दे देता है। जिसे ग्राहक घर ले जाकर सुविधानुसार थोड़ा-थोड़ा धन उसमें डालते रहते है, कुछ समय बाद इस गुल्लक को बैंक में लाते है, जहां गुल्लक से जमा रकम निकालकर ग्राहक के खाते में जमा कर दी जाती है। इसमें ब्याज की दर बहुत कम तथा निकालने की शर्ते कुछ कठोर होती है। आधुनिक युग में इसका प्रचलन कम है।

अन्य जमा खाते/योजनायें : वाणिज्यिक बैंकों ने बचतों के विभिन्न उद्देश्यों के अनुरूप अनेक प्रकार के जमा खाते एवम् योजनायें भी चालू की है जिनमें आवर्ती या संचयी जमा खाता, अवयस्क बचत योजना, वार्षिक या निवृत्ति योजनायें, कृषक जमा योजनायें, सीनियर सीटीजन योजनायें आदि प्रमुख हैं।

(ii) ऋण देना : वाणिज्यिक बैंकों का द्वितीय प्रमुख कार्य ऋण देना है। बैंक अपने ऋणों पर उसके द्वारा जमाओं पर दिये जाने वाले ब्याज से अधिक दर से ब्याज लेता है। अधिकांश वाणिज्यिक बैंक जमा रकम में से अधिक से अधिक भाग उधार या अग्रिम देकर लाभ कमाते हैं। उधार देते समय धन की सुरक्षा का भी ध्यान रखा जाता है। साधारणत: ऋण या अग्रिम की निम्न विधियाँ हैं -

ऋण तथा अग्रिम देना : बैंकों द्वारा प्रतिभूतियों की जमानत पर ऋण तथा अग्रिम दिये जाते हैं। ये ऋण एक निश्चित समयावधि के लिये दिये जाते है तथा बैंक ऋण पर निश्चित दर से ब्याज लेता है। सामान्यत: यह राशि बैंक नकद न देकर उस राशि को ऋणी के खाते में जमा कर देतीं है या चैक द्वारा तृतीय पार्टी को भुगतान कर देती है।

अधिविकर्ष : बैंक चालू खाता रखने वाले अपने ग्राहकों को उनकी जमा राशि से अधिक रकम निकालने की जो सुविधा प्रदान करती है उसे अधिविकर्ष कहते है। इस अधिविकर्ष की सीमा ग्राहकों की आवश्यकताओं तथा भुगतान क्षमता को ध्यान में रखकर बैंक द्वारा निर्धारित की जाती है। निर्धारित सीमा तक ग्राहक वर्ष में कभी भी राशि निकाल सकता है तथा बैंक ग्राहक से निकाली गयी राशि पर ब्याज लेती है।

नकद साख : बैंक अपने ग्राहकों को व्यापारिक माल, ब्राण्ड या स्वीकृत प्रतिभूतियों की जमानत पर ऋण प्रदान करते है। यह राशि ग्राहक के खाते में जमा कर तो जाती है। ग्राहक आवश्यकता पड़ने पर इस राशि को निकाल सकता है। ग्राहक द्वारा निकाली गयी राशि पर ही बैंक ब्याज लेती है।

विनियम विपत्रों की कटौती : यह भी बैंक से ऋण लेने की एक विधि है। इस प्रकार के ऋणों के अन्तर्गत बैंक अल्प अवधि के लिये लिखे गये विपत्रों को परिपक्वता से पूर्व प्रापक के कमीशन या कटौती की राशि काटकर विलेख की शेष राशि बन भुगतान कर देती है। परिपक्वता की तिथि पर बैंक बिल के लेखक से बिल की राशि प्राप्त कर लेता है। यह ऋण अल्पकालीन तथा सुरक्षित होते है।

(2) गौण कार्य :

(i) **साख निर्माण कार्य :** बैंक केवल मुद्रा के व्यापारी ही नही है, बल्कि मुद्रा का निर्माण भी करते हैं अर्थात् ग्राहकों की जमाओं की तुलना में कहीं ज्यादा साख सृजन का कार्य करते हैं। बैंक जहाँ एक ओर जमाओं से ऋण उत्पन्न करते है वही दूसरी और ऋणों से जमाओं को जन्म मिलता है। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। इससे बैंक अपने पास नकद जमाओं से कही अधिक ऋण देने में समर्थ हो जाते है। जिससे बैंकों की साख निर्माण होती है। इसीलिये कहा जाता है कि ऋण जमा की सन्तान है तथा जमा ऋण की संतान है।

(ii) प्रतिनिधि या अभिकर्ता कार्य : बैंक अपने ग्राहकों के लिये प्रतिनिधि के रूप में भी कार्य करते है। इन कार्यों में से कुछ कार्य तो निःशुल्क किये जाते है तथा कुछ कार्यों का शुल्क या कमीशन लिया जाता हैं आधुनिक युग में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा किये जाने वाले एजेन्सी कार्य निम्नलिखित हैं

– बैंकों द्वारा अपने ग्राहकों की सुविधा के लिये धन हस्तान्तरण की व्यवस्था की जाती है।
– बैंक ग्राहकों के चैक, हुण्डी व बिलों आदि से प्राप्त भुगतान का संग्रहण करता है तथा उस रकम को ग्राहकों के खाते में जमा कर देता है।
– बैंक प्रतिनिधि के रूप में ग्राहकों के लाभांश, ब्याज, किराया, कमीशन आदि की राशि एकत्रित कर ग्राहकों के खाते में जमा कर देता है।
– बैंक अपने ग्राहकों के आदेशानुसार उनके चैकों एवं बिलों आदि का भुगतान करते हैं।
– बैंक अपने प्रमण्डल ग्राहकों के लिये अंशों, ऋणपत्रों, प्रतिभूतियों आदि के अभिगोपन का कार्य भी करते हैं।
– बैंक अपने ग्राहकों के आदेश व सुविधा के लिये उनके ट्रस्टी तथा प्रबंधक के रूप में भी कार्य करते हैं।
– बैंक अपने ग्राहकों के लिये अंशों तथा प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय का कार्य भी करते है तथा इसके लिये बैंक द्वारा कमीशन लिया जाता है।

(3) सामान्य उपयोगी सेवायें

प्राथमिक गौण एवं अभिकर्त्ता सम्बन्धी कार्यों के अतिरिक्त वाणिज्यिक बैंक अन्य उपयोगी कार्य भी करता है जिनमें कुछ निम्न प्रकार से है

– लॉकर्स उपलब्ध कराता है।
– बैंक अपने ग्राहकों को आर्थिक स्थिति की जानकारी देता है।
– वाणिज्यिक बैंक अपने ग्राहकों की वित्तीय विषयों पर परामर्श देने का भी कार्य करता है।
– विदेशी मुद्रा का क्रय - विक्रय करता है।
– बैंक अपने ग्राहकों को यात्रा चैक एवं साख पत्रों की व्यवस्था प्रदान कराता है।
– बैंक अपने देश के आर्थिक आँकड़े एकत्र करता है एवम् उन्हें प्रकाशित करता है।
– वाणिज्यिक बैंक अपने ग्राहकों को साख सम्बन्धी सूचना भी प्रदान करता है।

जब बैंक ग्राहकों के लिये विनिमय बिलों को स्वीकार करते है तो ऋणदाता को ऋणी की साख में विश्वास हो जाता है इसमें व्यापार विस्तार मे सहायता मिलती है।

निष्कर्ष : वाणिज्यिक बैंकों के उपर्युक्त कार्यों के अध्ययन से आधुनिक युग में बैंक विहिन समाज की कल्पना ही असहाय एवं अव्यावहारिक लगती है।

1.6 वाणिज्यिक बैंकों की उपयोगिता

वाणिज्यिक बैंकों का महत्व केवल ग्राहकों को सुविधायें, सुरक्षायें एवम् सन्तुष्टि प्रदान करने तक ही सीमित नही है अपितु इसका उपयोग समाज के प्रत्येक वर्ग के द्वारा किया जाने लगा है। वाणिज्यिक बैंक देश में वित्त व्यवस्था के साथ-साथ वित्त की दिशा भी निर्धारित करते हैं जिससे देश आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ एवं सम्पन्न होता है। इसलिये सारांश रूप से हम कह सकते है कि बैंकों के साधनो का ग्रामीण उद्योगों, कृषि क्षेत्र तथा लघु उद्योगों में प्रयोग होने से समाजवाद का मार्ग प्रशस्त होगा, रोजगार बढ़ेगा तथा आर्थिक प्रगति होगी। दूसरे शब्दों में बैंक ग्राहक सेवा एवम् सुविधा के अलावा देश के आर्थिक विकास में भी सहयोगी है जिसे निम्नलिखित बिन्दु स्पष्ट करते हैं :-

1. भारत जैसे विकासशील देशों में विकास के लिये धन व पूँजी की कमी को वाणिज्यिक बैंकों द्वारा पूरा किया जाता है अर्थात इन बैंकों का उपयोग उस समय अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है जब राष्ट्र में विकास के लिये वित्त व्यवस्था का प्रबन्ध करना हो।
2. वाणिज्यिक बैंकों का उपयोग देश में पूँजी निर्माण करने में सहायता प्रदान करता है। बैंक तीन प्रकार से पूँजी निर्माण में योगदान करते हैं -
   (i). वास्तविक बचतों को प्रोत्साहन देकर।
   (ii). बचतों को एकत्रित करके विकास कार्यों की ओर मोड़कर।
   (iii). बचतों को लाभदायक विनियोग में लगाकर।
3. देश की समस्याओं के समाधान में योगदान।
4. वाणिज्यिक बैंकों का उपयोग, ग्राहक द्वारा औद्योगिक विपणन तथा उत्पादन विनिमय जैसे कार्यों में भी किया जा सकता है।
5. किसान भी कृषि साख, ऋण या अनुदान आदि प्राप्त करने के लिये बैंक की सहायता ले सकते हैं।
6. व्यापारिक गतिविधियों में बैंकिंग प्रणाली का महत्वपूर्ण योगदान है अर्थात् व्यापारिक परामर्श या वित्तीय परामर्श के रूप में भी ग्राहक बैंकों का उपयोग कर सकता है।
7. बैंक साख-निर्माण करके लघु उद्योगों कुटीर उद्योगों, उपभोक्ता को साख उपलब्ध करवाते हैं। जिससे अतिरिक्त उत्पादन की माँग बनी रहने से उत्पादकों को प्रोत्साहन प्राप्त होता है और निवेश गतिविधियाँ बढ़ती है।
8. वाणिज्यिक बैंकों का उपयोग हम नकद धन जमा करवाने, ऋण लेने, साख-पत्र लेने अभिकर्त्ता सम्बन्धी सेवायें प्राप्त करने आदि के अतिरिक्त बीमा कारोबार सम्बन्धित सेवायें लेने में भी प्राप्त कर सकते हैं।

निष्कर्ष : राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बैंकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अत: बैंक का सामान्य सेवायें एवम् सुविधायें में उपयोग होने के साथ-साथ देश के आर्थिक विकास में

भी महत्वपूर्ण योगदान है आर्थिक विकास बैंकिंग प्रणाली के सहयोग के बिना कठिन है। आर्थिक जीवन में कदम-कदम पर बैंकों की रचनात्मक एवं सक्रिय भूमिका का महत्वपूर्ण उपयोग होता है।

1.7 साख निर्माण

आधुनिक युग को साख का युग कहा जाय तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि आज देश के कई व्यापारी अपने आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार में उधार पर माल खरीदते है और भविष्य में भुगतान के आधार पर सौदे करते है। लेटिन भाषा के 'क्रेडो' (CREDO) शब्द से ही (CREDIT) शब्द की उत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ है "मैं विश्वास करता हूँ या करती हूँ अत: व्यापारिक क्षेत्र में भी साख शब्द का अभिप्राय शोधन क्षमता में विश्वास करने से है। दूसरे शब्दों में बैंक की शोधन क्षमता पर विश्वास करके व्यक्तियों द्वारा उसके माध्यम से विभिन्न व्यवहारों को सम्पन्न करना "बैंक की साख" को प्रदर्शित करता है अर्थात् कहने का आशय यह है कि बैंकों के माध्यम से जितने लेन-देन या व्यवहार किये जाते है उस बैंक की साख उतनी ही अधिक होती है।

बैंक की वह ख्याति जिसके आधार पर कोई भी व्यक्ति अपनी सम्पत्ति व धन बैंक को अस्थायी रूप से देने को तैयार हो, बैंक की साख कहलाती है।

बैंक जिस साख के आधार पर जनता से धन प्राप्त करता है। उसी साख के आधार पर ग्राहक को साख-पत्र जारी करता है इस प्रकार साख-पत्र द्वारा बैंकर किसी दूसरे पक्ष से यह निवेदन करता है कि उस पत्र में लिखे तीसरे पक्ष को निर्धारित राशि प्रदान कर दे। साख-पत्र को जारी करने वाला बैंक उस धन राशि को प्रदान करने का वचन देता है जिसे कि साख-पत्र के अधीन प्रदान किया गया है। साख-पत्र. को दो वर्गो में बाँटा गया है प्रथम वर्ग व्यक्तिगत या यात्री साख-पत्र तथा द्वितीय वर्ग व्यापारिक साख पत्र ये साख पत्र अविनिमय साध्य और अहस्तांतरणीय होते है।

विकास के लिये अत्यधिक धन की आवश्यकता होती है तथा जनता के गरीब होने के कारण उसकी पूर्ति नही हो पाती है बैंक छोटी-छोटी जमायें प्राप्त करके कई गुना अधिक राशि उधार देने में सक्षम होते है। जिसे साख निर्माण कहते हैं। साख निर्माण से विकास दिल के रूप में अधिक धन उधार प्राप्त होता है। बैंक साख निर्माण करके उद्योगपतियों एवम् व्यापारियों को साख उपलब्ध करवाते है जिससे अतिरिक्त उत्पादन की माँग बनी रहे और उत्पादकों को प्रोत्साहन मिलता रहे और निवेश गतिविधियां बढ़ती रहे।

सारांश रूप में कह सकते है कि वाणिज्यिक बैंक जनता से रूपये जमा करता है और उधार दे देता है। इससे जहां एक और जमाओं से ऋणों को तथा ऋणों से जमाओं को जन्म मिलता है। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। इससे बैंक अपने पास नकद जमाओं से कही अधिक ऋण देने में समर्थ हो जाते है जिससे बैंक की साख का निर्माण होता है।

आधुनिक युग में साख मुद्रा का अत्यधिक महत्व हो गया है। सम्भवत: इसलिये कुछ अर्थशास्त्री वर्तमान मुद्रा व्यवस्था को साख मुद्रा अर्थव्यवस्था के नाम से सम्बोधित करते है। वाल्टर डब्ल्यू हैनेस का कथन है कि "व्यापारिक जगत में साख का उतना ही व्यापक महत्व है जितना जीवन में प्राणवायु का"। वर्तमान में बैंक द्वारा साख का सृजन करना एक महत्वपूर्ण कार्य हो गया। साख से तात्पर्य "साख एक प्रकार का विनिमय कार्य है, जिसमें कोई ऋणदाता किसी

ऋणी को वर्तमान समय में कुछ वस्तुएँ अथवा मुद्रा इस विश्वास पर प्रदान करता है कि कुछ समय बाद वह उसे वापिस कर देगा।" साख निर्माण के लिये आवश्यक तत्व -

1. समय पर भुगतान करना।
2. विश्वास को बनाये रखना।
3. धन के स्थानान्तरण में सुविधा प्रदान करना।
4. बैंकिंग व्यवसाय को सफल बनाने की पूर्ण क्षमता हो।

साख निर्माण की रीतियाँ : साख निर्माण करना वाणिज्यिक बैंकों के अनेक महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है। सेयर्स के शब्दों में : बैंक केवल द्रव्य जुटाने वाली संस्था ही नहीं है, परन्तु द्रव्य की निर्माता भी है। बैंक की सक्रिय पूँजी का एक बड़ा भाग साख निर्माण के द्वारा ही प्राप्त होता है। एक बैंक निम्नलिखित रीतियों के द्वारा साख का निर्माण करता है -

प्रतिभूति, विनिमय विपत्र आदि का क्रय करके : बैंक प्रतिभूतियों, हुण्डियों तथा विनिमय विपत्रों का क्रय करके भी साख -सृजन करते है।

ऋण देकर व्यापारिक बैंक ग्राहकों को ऋण देकर उनके खाते में रूपया जमा करके भी साख का निर्माण करते है। प्रत्येक बैंक में दो प्रकार की जमायें प्राप्त होती हैं -

प्राथमिक निक्षेप : जब कोई व्यक्ति नकद मुद्रा देकर अपने खाते में जमा करवाता है तो इसे प्राथमिक अथवा निष्क्रिय निक्षेप कहते है। वास्तव में, प्राथमिक निक्षेप ही साख निर्माण का प्रमुख आधार होता है।

सक्रिय अथवा व्युत्पन्न निक्षेप : बैंक के पास प्राथमिक जमा के रूप में जो धनराशि प्राप्त होती है उसका कुछ भाग नकद कोष में रखकर शेष धनराशि ऋण के रूप में उधार दे दी जाती है। बैंक द्वारा ऋण नकद न देकर खाते में जमा कर दिया जाता है तथा खाते में से ग्राहक अपनी आवश्यकतानुसार रूपया निकालता है।

इस प्रकार बैंक द्वारा दिये ऋण के बदले बैंक में एक नये जमा खाते की सृष्टि हो जाती है। इसलिये प्रो. कीन्स ने कहा है, ऋण जमाओं की सृष्टि करते है और जमायें ऋण की। अगर ऋण लेने वाला ऋण की रकम को नगद रूप में ही प्राप्त करना चाहता है तब भी वह उस रकम को किसी अन्य बैंक में जमा कर देता है। परिणामस्वरूप उस बैंक में एक नये जमा खाते की सृष्टि हो जाती है। ऋण देकर साख का निर्माण करना साख सृजन की महत्वपूर्ण विधि है। इस विधि के द्वारा बैंक के पास जितनी धन राशि नकद जमा के रूप में प्राप्त होती है उससे कई गुणा तक बैंक साख का सृजन कर सकता है।

साख-निर्माण की मान्यतायें : व्यक्ति चैक के बदले नकद भुगतान प्राप्त नहीं करते। भुगतानों को केवल ग्राहकों के खातों से धन-राशि हस्तांतरित करके निपटाया जाता है।

बैंक अपने पास भुगतान हेतु केन्द्रीय बैंक में निक्षेपों के अनुसार रखी जाने वाली वैधानिक निधि के अतिरिक्त नकद कोष नहीं रखते।

समाज में ऋणों की मांग इतनी अधिक है कि बैंक अपनी सम्पूर्ण उधार देने योग्य शक्ति का उपयोग कर सकते हैं तथा बैंक इस सीमा तक उधार दे देते हैं।

उपरोक्त मान्यतायें वास्तविक जीवन में 100 प्रतिशत सत्य नहीं उतरती. क्योंकि (अ) सभी व्यक्ति बैंकों में खाते नहीं खोलते। अत: नकद भुगतान की आवश्यकता पड़ती है, जिसके

लिये नकद कोष रखने आवश्यक हो जाते हैं। (ब) बैंक अपनी पूर्णक्षमता के उधार नहीं देते हैं इस प्रकार उधार देने योग्य कुछ शक्ति व्यर्थ हो जाती है। (स) ऋणों की मांग लाभ सम्भावना पर निर्भर होने से इस सीमा तक उधार लेने के लिये लोगों का तैयार होना आवश्यक नहीं है।

साख निर्माण की तकनीक : जैसा की उपर्युक्त विवेचन में स्पष्ट किया गया है कि नकद जमाओं के कारण ही बैंक ऋण देने में समर्थ हो पाते हैं तथा दिया हुआ प्रत्येक ऋण साख जमा का रूप धारण कर लेता है। इसे ही साख निर्माण की तकनीक कहते हैं। इसे हम एक उदाहरण द्वारा भली भाँति स्पष्ट कर सकते है। मान लीजिए कि कोई व्यक्ति बैंक के पास नकद जमा या प्रारम्भिक जमा के रूप में 100 रूपये की धनराशि जमा कराता है। यह भी मान लीजिए कि कानूनी मान्यता अथवा स्वयं के अनुभव के आधार पर कोई बैंक सदैव अपने पास 25 प्रतिशत नकद कोष रखने का निर्णय करता है। बैंक इस मान्यता के आधार पर यह निर्णय लेकर कि जमाकर्ता अपनी जमा की गई धनराशि को एक ही बार में नही निकालेगा वरन् थोड़ा-थोड़ा निकालेगा। इस मान्यता के आधार पर कुछ प्रतिशत नकद कोष रखकर कार्य चलाया जा सकता है। बैंक स्वयं के पास 100 रूपये की जमा राशि में से 25 प्रतिशत अर्थात् 25 रूपये नकद कोष रखकर शेष 75 रूपये किसी को ऋण के रूप में दे देगा। अन्य शब्दों में यह बैंक 75 रूपये की साख निर्माण का कार्य करता है। नकद कोष जितना कम रखा जायेगा उतना ही अधिक साख का निर्माण होगा।

बैंक के साख निर्माण की सीमायें : यद्यपि प्रत्येक बैंक में साख का सृजन करने की शक्ति या क्षमता होती है लेकिन यह असीमित नहीं होती अर्थात् बैंक के साख निर्माण कार्य की कुछ सीमायें होती है, जो निम्नलिखित हैं-

बैंक द्वारा नकद रखा जाने वाला कोष : प्रत्येक बैंक को अपनी जमाओं के भुगतान के लिये कुछ अंश में नकदी कोष रखना पड़ता है तथा इस नकदी कोष की मात्रा से बैंक की साख निर्माण की शक्ति सीमित हो जाती है। यदि कोष अधिक रखना पड़ा तो साख सृजन की गति मन्द हो जाती है और यदि कोष की मात्रा कम रखनी पड़ी तो साख की गति और बढ़ायी जा सकती है।

केन्द्रीय बैंक के पास जमा बैंकों का कोष देश के प्रत्येक बैंक को अपनी याचित एवं काल जमाओं का कुछ भाग केन्द्रीय बैंक के नकदी कोष के लिये रखना पड़ता है, जो जमाओं की वृद्धि तथा कमी के साथ-साथ अधिक या कम होता है। अत: इस वैधानिक नकदी कोष से भी बैंक की साख निर्माण शक्ति सीमित है। यदि अपेक्षाकृत कम प्रतिशत भाग केन्द्रीय बैंक के पास रखा गया तो बैंक अधिक मात्रा में साख का निर्माण कर सकते हैं और यदि केन्द्रीय बैंक के पास अपेक्षाकृत अधिक प्रतिशत दर से कोष रखा गया तो बैंकों की साख निर्माण करने की शक्ति कम हो जाती है।

धातु कोष : नोट निर्गमन द्वारा साख का जो सृजन किया जाता है, वह नोटों के आधार पर, रखे हुए धातु कोष द्वारा सीमित रहता है। यदि धातु कोष अधिक उपलब्ध है तो पत्र-मुद्रा की मात्रा बढ़ायी जा सकती है और यदि धातु कोष कम उपलब्ध हुआ तो पत्रमुद्रा कम करनी पड़ती है।

ऋण याचकों की साख : अधिकतर ऋण विशेषत: प्रतिभूतियों की जमानत पर दिये जाते है, अत: प्रतिभूतियाँ किस प्रकार की है, इससे भी बैंक की साख निर्माण शक्ति सीमित रहती है।

जमा कराने वाली की इच्छा : लीफ के अनुसार, बैंक की यह शक्ति जमा कराने वाली की इच्छा पर निर्भर होती है। यदि जमा कराने वाले जमा करना बंद कर दे तो बैंक साख का निर्माण नही कर सकते। उपयोग अधिक करती है तो इससे बैंक की साख निर्माण करने की शक्ति अधिक होगी।

बैंकिंग सुविधायें : यदि देश में बैंकिंग सुविधायें अधिक विकसित है तो बैंकों द्वारा साख निर्माण बड़े पैमाने पर होगा, क्योंकि लोग बैंकों से नियमित रूप से धन जमा करने तथा उधार लेने के अभ्यस्त होंगे।

जमानत का स्वभाव : बैंक केवल अच्छी प्रतिभूतियों पर ऋण देते हैं। यदि देश में अच्छी प्रतिभूतियों का चलन है, तो बैंक अधिक साख का सृजन कर सकेंगे।

प्रश्न यह है कि क्या बैंक वास्तव में साख-सृजन करते हैं?

बैंकों द्वारा साख सृजन के सम्बन्ध में अर्थशास्त्री एक मत नहीं है। कुछ अर्थशास्त्री हार्टले विदर्स, सेलिगमैन तथा कीन्स इत्यादि इस बात के समर्थक है कि बैंक साख सृजन करती है। इसके विपरीत डा. वाल्टर लीफ तथा एडविन कैनन आदि इसे स्वीकार नहीं करते। इन अर्थशास्त्रियों का विचार है कि बैंक साख का निर्माण नहीं करते वरन् साख निर्माण में जमाकर्ताओं की ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि जमाकर्ता अपनी राशि बैंक के पास जमा न छोड़कर स्वयं उपभोग कर ले, तथा ऋणी भी ऋण की नकद मांग करे तो साख सृजन क्यों कर सम्भव होगा। प्रो. केनन के शब्दों में, "बैंकिंग साख का निर्माण बैंकों द्वारा नहीं वरन् उन ग्राहकों के द्वारा होता है जो इसके लिए आवेदन देते हैं तथा उन जमानतों द्वारा होता है जो ग्राहक लाते हैं........।" प्रत्येक व्यावहारिक बैंकर जानता है कि वह साख, मुद्रा या अन्य किसी का सृजनकर्ता नहीं है वरन् ऐसा व्यक्ति है जो उन लोगों से, जिनके पास साधन हे, से उन व्यक्तियों को जो उनका प्रयोग कर सकते है, ऋण दिलाने को सुविधाजनक बनाता है।“

निष्कर्ष रूप से कह सकते है कि साख सृजन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। वर्तमान अर्थव्यवस्था केवल मुद्रा अर्थव्यवस्था की परिधि में ही बन्द नही है। वरन् साख व्यवस्था का भी आर्थिक क्रियाओं के सम्पादन में महत्वपूर्ण योगदान है। अत: यह कह सकते है कि वाणिज्यिक बैंक द्वारा साख का निर्माण करना एक महत्वपूर्ण कार्य हो गया है क्योंकि विश्वास के बिना वस्तुओं, सेवाओं एवं मुद्राओं का आदान-प्रदान सम्भव नही है।

1.8 उदाहरण

आधुनिक युग में एक सुव्यवस्थित, सुविकसित तथा समन्वित बैंकिंग प्रणाली देश के आर्थिक विकास की अविभाज्य कड़ी है जो वित्तिय साधनों के संग्रह और उनके उत्पादक उपयोगों में प्रवाह से औद्योगिक, व्यापारिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है तथा बैंक आज के समाज के हर वर्ग की जरूरत बन गया है तभी तो अर्थशास्त्री विक्सेल (Wicksell) ने कहा है “बैंक आधुनिक चलन व्यवस्था का हृदय तथा केन्द्र बिन्दु” है।

1.9 सारांश

देश की अर्थव्यवस्था में ज्यों-ज्यों विकास का महत्व तथा विकास के विभिन्न आयाम जुड़ रहे है, बैंकों का महत्व भी बढ़ता चला जा रहा है। आधुनिक युग में बैंक (वाणिज्यिक बैंक) समाज के प्रत्येक वर्ग का अभिन्न अंग बन गया है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति एवं संस्था को अपने दैनिक जीवन में मुद्रा एवं साख की आवश्यकता पड़ती है। यह महत्वपूर्ण कार्य बैंकिंग संस्थायें ही सम्पन्न कर रही है। देश के चहुंमुखी विकास के लिये बैंक एक उपयोगी साधन बन गया है। कुछ गरीब एवम् गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वालों में अनभिज्ञता के कारण भ्रांतियाँ विद्यमान है कि बैंक केदार मध्यम या उच्च वर्गो के लिये है जबकि बैंक प्रत्येक वर्ग की सेवा करने के लिये स्थापित हुये हैं जहाँ पर धन जमा, संरक्षण तथा निर्गमन होता है तथा जहाँ ऋण देने एवं कटौति की सुविधायें प्रदान की जाती है और एक स्थान से दूसरे स्थान पर धनराशि भेजने' की व्यवस्था की जाती है।

1.10 शब्दावली

बैंक : बैंक वह संस्था है, जो द्रव्य में व्यवसाय करती हैं, जो जनता से धन जमा पर प्राप्त करते है तथा ऋण के रूप में या जमाकर्ताओं के मांगने पर भुगतान करते है। संक्षेप में रूपये को लेन-देन करने वाली संस्था ही बैंक है।

वाणिज्यिक बैंक : जो बैंक सामान्य बैंकिंग का कार्य करते है उन्हें वाणिज्यिक बैंक कहा जाता हे वाणिज्यिक बैंक संयुक्त बैंक के रूप मैं होते है।

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक : भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के व्यापारिक बैंकों को जिनमें राष्ट्रीयकृत बैंक भी शामिल है तथा जिन बैंकों का नियंत्रण एवम् नियमन केन्द्रीय बैंक के अधीन होता हे। सार्वजनिक क्षेत्र का बैंक कहा जाता है।

अराष्ट्रीयकृत बैंक : जो बैंक निजी व्यक्तियों या संस्थानों द्वारा स्थापित संयुक्त पूंजी बैंकर के रूप में कार्य कर रहे है।

विदेशी व्यापारिक बैंक : इसके अन्तर्गत विदेशी बैंकों की शाखाओं का समावेश है जो भारत में कार्य कर रहे है। अनुसूचित बैंक : जो बैंक, रिजर्व बैंक, की द्वितीय अनुसूची में आते है तथा शर्ते निम्न पूर्ण शर्ते पूर्ण करते हैं - बैंक की प्रदत्त पूंजी एवं कोष 5 लाख रूपये से कम नहीं हों, बैंक का कार्य उसके जमाकर्ताओं के हितों के विरूद्ध ना हो तथा यह विदेशी बैंक है तो उस बैंक के देश में भारतीय बैंकों के देश में भारतीय बैंकों के विरुद्ध कोई अनुसूचित नियम या प्रतिबन्ध लागू नही करें।

गैर अनुसूचित बैंक : जिन बैंकों का नाम रिजर्व बैंक की द्वितीय अनुसूची में सम्मिलित नही है।

साख-निर्माण : वाणिज्यिक बैंकों के अनेक महत्वपूर्ण कार्यों में से एक महत्वपूर्ण साख निर्माण का अभिप्राय केवल विश्वास प्राप्त करने से होता है।

1.11 अभ्यास प्रश्न

सही विकल्प चुनिये :

1. आधुनिक बैंकों का संकुचित अर्थ लगाया जाता है -
    1. आयात-निर्यात बैंक से
    2. वाणिज्यिक बैंक से
    3. केन्द्रीय बैंक से
    4. औद्योगिक बैंक से
2. वाणिज्यिक बैंकों के कार्य में क्या सम्मिलित नही है?
    1. निक्षेप प्राप्त करना
    2. ऋण देना
    3. नोट निर्गमन करना
    4. साख निर्माण कार्य
3. बैंकिंग व्यवसाय की स्थापना का सुझाव सर्वप्रथम किसने और कब दिया -
    1. वारेन हेस्टिंगज, सन् 1896
    2. हिल्टन यंग, सन् 1926
    3. वारेन हेस्टिंगज, सन् 1895
    4. हिल्टन यंग, सन् 1928
4. भारत में कुल राष्ट्रीयकृत बैंकों की संख्या है -

    1. 19   2. 20

    3. 21   4. 18
5. "बैंक आधुनिक चलन व्यवस्था का हृदय तथा केन्द्र बिन्दू है" यह वाक्य किसने कहा -

    1. वारेन हेस्टिंगज   2. हिल्टन यंग

    3. विक्सेल   4. किनले

    5. ग्लिबर्ड

लघु उत्तरात्मक प्रश्न :

1. वाणिज्यिक बैंक का अर्थ स्पष्ट कीजिये?
2. आर्थिक विकास में बैंकों की भूमिका स्पष्ट कीजिये?
3. वाणिज्यिक बैंकों के लिये साख निर्माण क्यों आवश्यक है?
4. व्यापारिक बैंकों के कोई चार कार्य लिखिये?
5. अनुसूचित तथा गैर-अनुसूचित सूची की शर्तों को स्पष्ट 'कीजिये?
6. चालू खाते में ब्याज क्यों नही दिया जाता है?
7. बैंक शब्द का प्रादुर्भाव कैसे हुआ?
8. बैंक साख निर्माण की कोई दो सीमायें बताइये।

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. वाणिज्यिक बैंक की परिभाषा दीजिये तथा इसके कार्यों का भारतीय परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन कीजिये।

2. वाणिज्यिक बैंकों के प्रमुख उद्देश्य तथा महत्व का उल्लेख कीजिये?
3. आर्थिक विकास में बैंकों की भूमिका एवं उपयोगिता को स्पष्ट कीजिये?
4. वाणिज्यिक बैंक को परिभाषित करते हुये इनके प्रकारों को स्पष्ट कीजिये?
5. वाणिज्यिक बैंक के लिये क्या साख निर्माण आवश्यक है, अगर "हाँ" तो क्यों? अगर "नहीं" तो क्यों नही? भारतीय उदाहरणों में समझाइये।
6. साख शब्द का अर्थ बताइये तथा बैंकों द्वारा साख निर्माण को समझाइये।

1.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - बी.एल. ओझा
2. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - इन्द्रवर्धन त्रिवेदी के.जी. गोयल, सहदेव दान बारहठ
3. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - महेन्द्र कुमार शर्मा, इन्द्रवर्धन त्रिवेदी, जय प्रकाश टेलर, राजकुमारी जैन
4. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - डॉ. मालीराम जी.एन. शर्मा, डॉ. वी.के वशिष्ठ
5. बैंकिंग एवं वित्त - बी.एल. माथुर, जे.पी. यादव
6. बैंकिंग एवम् व्यावसायिक अध्ययन - डॉ विष्णुदत्त दवें, डॉ महेन्द्र कुमार शर्मा

इकाई 2
भारतीय बैंकिंग अधिनियम - 1949

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विकास उद्‌गम

2.4 आवश्यकता

2.5 अर्थ परिभाषा

2.6 बैंकों के कार्य

2.7 बैंकों के वर्जित कार्य

2.8 बैंकों की पूंजी

2.9 बैंकों के रक्षित कोष

2.10 नकद कोष

2.11 लाभांश

2.12 शाखा विस्तार

2.13 लाइसेंस नीति

2.14 ऋण नीति

2.15 बैंकों का प्रबंध

2.16 लेखा एवं अंकेक्षण

2.17 पर्यवेक्षण

2.18 भारतीय बैंकिंग (नियमन) अधिनियम 1949 एवं भारतीय रिजर्व बैंक

2.19 भारतीय बैंकिंग अधिनियम में केन्द्रीय सरकार को अधिकार

2.20 सारांश

2.21 शब्दावली

2.22 अभ्यास प्रश्न

2.23 संदर्भ ग्रन्थ

2.1 उद्देश्य

आप इस तथ्य को अच्छी तरह समझते ही हो कि किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास में बैंकों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है। आधुनिक उदारीकरण के युग में तो बैंकों की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी है। अत: बैंकिंग कम्पनियों पर प्रभावी नियंत्रण एवम् जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा के उद्देश्य से 17 जनवरी 1949 को सरकार ने एक व्यापक कानून "भारतीय बैंकिंग कम्पनी अधिनियम 1949 पारित किया जिसे 16 मार्च, 1949 को लागू

-कर दिया। 1965 में एक संशोधन से इस अधिनियम का नाम बदल कर "भारतीय बैंकिंग (नियमन) अधिनियम 1949 कर दिया। इस अधिनियम के अध्ययन करवाने के निम्नांकित उद्देश्य हैं :-

- अधिनियम में वर्णित बैंक की परिभाषा को जानना, समझना।
- राष्ट्रहित में बैंकों के प्रभावी एवम् सुचारु संचालन हेतु विभिन्न नियमों एवम् उपनियमों की जानकारी करवाना।
- अधिनियम में वर्णित बैंकों के दायित्वों एवम् अधिकारों की जानकारी करवाना।

2.2 प्रस्तावना

किसी भी व्यवस्था के सुचारु संचालन के लिए उपयुक्त नियम कानून की आवश्यकता होती है। बैंकिंग व्यवसाय पर आर्थिक विकास की गति, दिशा एवम् संरचना निर्भर करती है। अत: बैंकिंग व्यवसाय के सुचारु संचालन हेतु उपयुक्त वैधानिक नियमन की आवश्यकता हुई। उसी अनुरूप भारतीय बैंकिंग (नियमन) अधिनियम, 1949 पारित किया गया।

2.3 विकास उद्गम

भारत की प्राचीन शासन व्यवस्था काफी भिन्न रही है। लम्बे समय तक राजशाही शासन की व्यवस्था रही एवम् देश को लम्बे समय तक परतंत्र रूप में भी शासन को वहन करना पड़ा। फलस्वरूप सन् 1913 से पूर्व भारत में कोई बैंकिंग विधान ही नही था। विनियम साध्य अधिनियम 1881 ही एक ऐसा विधान था जिसके द्वारा बैंकिंग क्रियाओं पर थोड़ा बहुत नियंत्रण रखा जा सकता था। वस्तुत: उक्त अधिनियम बैंकिंग क्रियाओं पर प्रभावी ढंग से नियंत्रण करने में असफल रहा। उक्त स्थिति सन् 1905 के बैंकिंग संकट से साबित हो चुकी थी। परिणामस्वरूप सन् 1913 में भारतीय कम्पनी अधिनियम में बैंकिंग कम्पनियों के सम्बन्ध में अलग व्यवस्था की गई। लेकिन यह व्यवस्था भी अधिक प्रभावी सिद्ध नही हो पायी। सन् 1913-14 में इस कानून के होते हुए भी अनेक बैंक असफल हुए। लम्बे विचार विमर्श के बाद सन् 1934 में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया एक्ट पारित किया जिसमें बैंकों पर नियंत्रण रखने के लिए अनेक अधिकार दिये गये। लेकिन स्थिति में फिर भी अधिक सुधार नहीं हो पाया। बैंकों की प्रबन्ध व्यवस्था में दोष के कारण अनेक बैंक बराबर फैल होते रहें।

उक्त दशा में प्रभावी परिवर्तन लाने हेतु सन् 1939 में रिजर्व बैंक ने सरकार के समक्ष यह सुझाव रखा कि बिगड़ती हुई स्थिति में सुधार के लिए अलग से एक बैंकिंग कानून बनाया जाए। लेकिन इसी समय द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ने के कारण सरकार इस ओर ध्यान नहीं दे पाई। इस बीच सन् 1943-44 में सरकार ने कम्पनीज एक्ट मे एक बार पुन: संशोधन कर बैंकिंग व्यवस्था को प्रभावी बनाने का प्रयास किया, साथ ही बैंकिंग नियंत्रण के लिए रिजर्व बैंक को और अधिक अधिकार दिये गये। इन सबके के बाद भी अधिक सफलता नही मिल पाई। अत: सन् 1949 में सरकार ने यह अनुभव किया कि देश में बैंकिंग के समुचित एवं समन्वित विकास के लिए एक नया कानून बनाना चाहिए। इसी अनुरूप मार्च 1949 में बैंकिंग कम्पनीज अधिनियम पारित किया जिसमें 1965 में संशोधन कर नया नाम बैंकिंग (नियमन) अधिनियम कर दिया गया

इस प्रकार वर्तमान समय में भारतीय बैंकिंग प्रणाली का नियंत्रण एवं नियमन रिजर्व बैंक द्वारा इसी कानून के अन्तर्गत किया जा रहा है। उपरोक्त विवेचना से आप समझ गये होगे कि वर्तमान के इस कानून के स्वरूप को प्राप्त करने में काफी लम्बा समय लगा है।

2.4 आवश्यकता

बैंकिंग अधिनियम 1949 के उद्गम की विवेचना से यह स्पष्ट है कि इस अधिनियम की आवश्यकता लम्बे समय से महसूस की जाती रही है। भारत में प्रभावी बैंकिंग अधिनियम के अभाव में जहाँ एक ओर बैंकों के फैल होने तथा बैंकों के असन्तुलित विकास की समस्या थी वहाँ दूसरी ओर बैंकों के अकुशल प्रबन्ध अपर्याप्त पूंजी एवं अविवेकपूर्ण विनियोग नीति से बैंक के जमाकर्ताओं के हितों की उपेक्षा होती थी। ऐसी विषम परिस्थितियों में बैंकों के प्रभावी नियन्त्रण एवं नियमन के विशेष कानून से जमाकर्ताओं के धन को सुरक्षा प्रदान करने और बैंकिंग के समुचित, सन्तुलित एवं समन्वित तीव्र विकास हेतु बैंकिंग अधिनियम की आवश्यकता महसूस की गई। अधिनियम की आवश्यकता के प्रमुख कारण इस प्रकार रहे-

(1) **बैंकों को फैल होने से रोकना-** बैंकों के विकास काल के प्रारम्भ में ही बैंकों के निरन्तर फैल होने की प्रवृत्ति से जनता और जमाकर्ताओं का बैंकिंग व्यवस्था में विश्वास उठने लगा। अत: बैंकों को फैल होने से रोकने के लिये प्रभावी बैंकिंग अधिनियम की आवश्यकता पड़ी।

(2) **बैंकिंग का असन्तुलित विकास-** स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व प्रभावी बैंकिंग कानून के अभाव में भारत में बैंकिंग का सन्तुलित विकास नहीं हुआ। कुछ क्षेत्रों में बैंकिंग विकास इतना अधिक हुआ कि इनमें आपसी प्रतिस्पर्धा पाई जाती रही, जब कि अन्य क्षेत्र बैंकिंग सुविधाओं से एकदम वंचित रहे हैं। अत: बैंकिंग के सन्तुलित विकास हेतु बैंकिंग अधिनियम की आवश्यकता हुई।

(3) **स्वदेशी बैंकर्स तथा संगठित बैंकिंग में समन्वय-** स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व भारतीय मुद्रा बाजार मैं स्वदेशी बैंकर्स का बाहुल्य एवं प्रभुत्व था और भारतीय संगठित बैंकिंग से उसका समन्वय नहीं था। ये स्वदेशी बैंकर्स साहूकार के नाम से जाने जाते थे । इससे देश में बैंकिंग विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ा था। अत: बैंकिंग सुविधाओं का पर्याप्त विकास करने के लिये स्वदेशी बैंकों पर नियन्त्रण तथा उनका संगठित बैंकिंग से समन्वय स्थापित करने के लिये बैंकिंग से अधिनियम की जरूरत बढ़ी।

(4) **जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा-** बैंकों के निरन्तर फैल होने और उनके द्वारा जमाकर्ताओं को नुकसान पहुँचाने की प्रवृति से जनता का बैंकों में धन जमा कराने का विश्वास उठता जा रहा था। अत: जनता का विश्वास जमाने तथा जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा के लिये बैंकों पर नियन्त्रण के लिये बैंकिंग विधान अति आवश्यक हो गया था।

(5) **संगठित मुद्रा बाजार का विकास-** स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व वित्तीय सुविधाओं का अभाव था और मुद्रा बाजार अव्यवस्थित एवं असंगठित था जबकि तीव्र आर्थिक विकास के लिये एक संगठित मुद्रा बाजार की महती आवश्यकता होती है। अत: संगठित मुद्रा बाजार के विकास हेतु प्रभावी बैंकिंग अधिनियम की आवश्यकता महसूस हुई।

(6) **मौद्रिक एवम् साख नीतियों को सफल बनाना-** भारतीय बैंकिंग पर रिजर्व बैंक का प्रभावी नियन्त्रण न होने से रिजर्व बैंक मौद्रिक एवं साख नीतियों को सफलतापूर्वक लागू करने में असमर्थ रहता था। अत: उसके द्वारा लागू मौद्रिक एवं साख नीतियों की सफलता सुनिश्चित करने के लिये तथा बैंकिंग व्यवस्था पर उसके प्रभावी नियन्त्रण के लिए एक व्यापक बैंकिंग विधान की आवश्यकता थी।

(7) **बैंकों के अनुचित विनियोजनों पर नियन्त्रण-** बैंकों में प्रतिस्पर्धा एवं उद्योगपतियों के नियन्त्रण से बैंक सट्टेबाजी तथा गलत विनियोजन करते थे। इससे बैंकिंग का विकास कार्यों पर विनियोजन कम था। अत: बैंकों के अनुचित विनियोजनों पर नियन्त्रण तथा उनके साधनों का समुचित उपयोग करने के उद्देश्य से बैंकिंग विधान आवश्यक हो गया था।

2.5 बैंक की परिभाषा

बैंकिंग अधिनियम 1949 में बैंकिंग व्यवसाय एवम् बैंकिंग कम्पनी की परिभाषा इस प्रकार दी है। इस अधिनियम की धारा 5 (C) के अनुसार "एक बैंकिंग कम्पनी वह कम्पनी है जो भारत में बैंकिंग व्यवसाय करें।" धारा 5 (B) में "बैंकिंग व्यवसाय को स्पष्ट करते हुये लिखा है कि बैंकिंग व्यवसाय से तात्पर्य ऋण देने तथा विनियोजन के लिए जनता से निक्षेप प्राप्त करना है जो मांग करने पर चैक, ड्राफ़्ट अथवा अन्य प्रकार की आज्ञा द्वारा लौटाया जा सके।"

अधिनियम की धारा 7 के अनुसार बैंकिंग व्यवसाय करने वाली कम्पनियों को अपने नाम में बैंक, बैंकर या बैंकिंग शब्द का प्रयोग करना अनिवार्य है। वर्ष 1963 में धारा 7 में संशोधन कर यह प्रतिबंध लगाया गया है कि बैंकिंग व्यवसाय के अलावा अन्य कार्य करने वाली कम्पनियां इन शब्दों का प्रयोग नाम के साथ नही कर सकेगी। इससे यह स्पष्ट है कि बैंकिंग कम्पनी वह कम्पनी है जिसकी स्थापना कम्पनी अधिनियम के तहत हो तथा बैंकिंग व्यवसाय में लगी हो। आपको यहाँ यह समझना है कि औद्योगिक या अन्य कम्पनियाँ अपने वित्तीय संसाधन जुटाने के लिए जनता से निक्षेप प्राप्त करती है, तो उन कम्पनियों को बैंकिंग कम्पनी नहीं कहा जायेगा क्योंकि ऐसी कम्पनियाँ बैंकिंग कारोबार नही करती है।

स्पष्ट है कि बैंकिंग अधिनियम में बैंक की विशिष्ट एवम् स्पष्ट परिभाषा है। इस परिभाषा के अनुसार ही किसी कम्पनी को बैंक या गैर बैंक माना जाता है।

2.6 बैंकों के कार्य

बैंकिंग अधिनियम की धारा 6 के अनुसार कोई भी बैंक निम्नांकित कार्यों को कर सकता है।

(i) जमाए स्वीकार करना

(ii) ऋण देना

(iii) अधिविकर्ष की सुविधा

(iv) अग्रिम देना

(v) हुण्डी व विनियम पत्रों का भुनाना

(vi) विनियम पत्रों का क्रय-विक्रय करना

(vii) साख पत्र जारी करना

(viii) बहुमूल्य वस्तुओं को सुरक्षार्थ स्वीकार करना

(ix) वित्तीय सहायता देना

(x) राज्य संस्थाओं व व्यक्तियों के अभिकर्त्ता के रूप में कार्य करना

(xi) व्यक्तिगत व सार्वजनिक ऋणों के लिए अनुबन्ध व निर्गमन करना

(xii) अपने व्यवसाय के विकास व वृद्धि से सम्बन्धित कार्यों को करना

(xiii) केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिकृत अन्य कार्य सम्पादन करना

2.7 वर्जित कार्य

बैंकिंग कार्यों की प्रभावशीलता बनाये रखने हेतु इस अधिनियम में बैंकों के द्वारा कुछ कार्यों को नही करने के लिए इंगित किया है, इन्हे वर्जित कार्यों के नाम से जाना जाता है। अधिनियम की धारा 8 व 9 में बैंकिंग संस्थाओं के निषिद्ध कार्यों का उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार है :-

1. बैंक बैंकिंग कार्यों के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय नही कर सकती।
2. कोई भी बैंक माल का क्रय विक्रय नही कर सकती है।
3. बैंकिंग कम्पनी अपने निष्पादक के कार्य अथवा प्रन्यास के कार्य या धरोहर के कार्य के अतिरिक्त किसी अन्य कार्य के लिए सहायक कम्पनी की स्थापना नहीं कर सकती। अधिनियम की धारा 9 (1) के अनुसार बैंकिंग कम्पनी निम्नांकित कार्यों के लिए ही सहायक कम्पनी स्थापित कर सकती है:-
   - ट्रस्टों के दायित्वों को वहन करने के लिए,
   - वसीयत निष्पादन, ट्रस्टी या अन्य किसी रूप में सम्पत्तियों के प्रशासनिक दायित्वों के वहन करने के लिए एवं
   - रिजर्व बैंक की अनुमति से भारत के बाहर व्यवसाय चलाने हेतु सेफ डिपाजिट उपलब्ध करवाने के लिए।
4. बैंकिंग संस्था अपने कार्यालय के अतिरिक्त अन्य किसी भी अचल सम्पत्ति को रिजर्व बैंक की अनुमति के बिना 7 वर्ष से अधिक समय तक अपने पास नहीं रख सकती है।
5. बैंक ऐसी कम्पनियों के अंशों एवं ऋणपत्रों को नही खरीद सकता है जिसमें उसके संचालकों एवं प्रबंधकों का आर्थिक हित निहित है।
6. बैंक अपने ग्राहक की ओर से भी व्यापारिक व्यवहार नही कर सकता है और न ही व्यापारिक जोखिम उठा सकता है।
7. बैंक किसी व्यक्ति या संस्था को पूर्व निर्धारित राशि से अधिक का ऋण नहीं दे सकती हैं।
8. बैंक अधिनियम में वर्णित समय से अधिक के लिए ऋण नहीं दे सकते हैं।

वर्जित कार्यों की विवेचना से आप समझ गये होंगे कि निहित वर्जित कार्यों को सम्पादित नहीं करने से एक ओर बैंकों की कार्यकुशलता एवम् लाभदायकता में वृद्धि होती है एवम् दूसरी और जमाकर्ताओं के आर्थिक एवम् वित्तीय हितों की रक्षा होती हैं।

2.8 बैंकों की पूंजी

बैंकिंग कम्पनी में सुदृढ़ पूंजी का आधार होना आवश्यक है, क्योंकि सुदृढ़ पूंजी आधार ही सम्भावित हानि से जमाकर्ताओं को सुरक्षा प्रदान करता है। आप इस बात से तो सहमत होंगे कि व्यापार में पूंजी का अभाव घातक होता है और विशेषत: बैंकिंग व्यवसाय में तो पूंजी का अभाव खतरनाक सिद्ध हो सकता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए बैंकिंग नियमन अधिनियम, 1949 की धारा 11 में बैंकों की न्यूनतम पूंजी सम्बन्धी प्रावधानों का उल्लेख किया गया है। न्यूनतम पूंजी निश्चित करते समय भौगोलिक कार्यक्षेत्र, बैंक की स्थापना का स्थान व बैंक के ग्राहकों की आवश्यकताओं का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है। इस सम्बन्ध में धारा 11 के प्रावधान निम्नलिखित हैं-

1. भारत में समामेलित बैंक के लिये-

(1) ऐसे बैंक जिनकी स्थापना 16 सितम्बर, 1962 से पूर्व हुई हो तथा जिनका केवल एक ही कार्यालय है और वह कलकत्ता या बम्बई में न हो तो उनकी न्यूनतम पूंजी 50000 रूपये होगी। 16 सितम्बर, 1962 के बाद ऐसे बैंक 50000 रूपये से कम प्रदत्त पूंजी पर स्थापित नहीं किये जा सकते थे।

(2) यदि किसी बैंक के कार्यालय एक से अधिक राज्यों में हैं (बम्बई व कलकत्ता को छोड़कर) तो उनके लिए 5 लाख रू. की न्यूनतम प्रदत्त पूंजी एवं रक्षित कोष होने चाहिए।

(3) यदि किसी बैंक के कार्यालय कलकत्ता व बम्बई के साथ-साथ एक से अधिक राज्यों में स्थापित हैं तो उनकी प्रदत्त पूंजी व रक्षित कोष 10 लाख रूपये होने चाहिए।
उपर्युक्त प्रदत्त पूंजी व रक्षित कोष के अनुसार बैंकिंग संस्था देश के किसी भी भाग में (बम्बई व कलकत्ता सहित) अपने शाखा कार्यालय खोल सकती हैं।

(4) विदेशी बैंक द्वारा भारत में शाखाएं स्थापित करने के सम्बन्ध में यह प्रावधान है कि यदि वह भारत में (बम्बई व कलकत्ता को छोड़कर) अन्य स्थानों पर शाखाएं स्थापित करता है तो उसकी न्यूनतम प्रदत्त पूंजी व रक्षित कोष भारतीय मुद्रा में 15 लाख रूपये से कम नहीं होना चाहिए। यदि वह कलकत्ता व बम्बई को सम्मिलित करते हुए भारत में शाखा स्थापित करना चाहता है तो यह राशि कम से कम 20 लाख रूपये होनी चाहिए।

2. भारत के बाहर समामेलित बैंक के लिये-

(i) यदि बम्बई या कलकत्ता शहर या दोनों में इनका कार्यालय हो- 20 लाख रूपये।

(ii) यदि बम्बई या कलकत्ता शहर को छोड़कर अन्यत्र उनका कार्यालय हो- 15 लाख रूपये।

(5) **अधिकृत, अभिदत्त एवं प्रदत्त पूंजी में अनुपात** इस अधिनियम की धारा 12 (1) के अनुसार अधिकृत पूंजी, अभिदत्त पूंजी व प्रदत्त पूंजी में कम से कम 4 : 2 : 1 का अनुपात होना चाहिये। इसका आशय है कि अभिदत्त पूंजी अधिकृत पूंजी की कम से कम

50 प्रतिशत व प्रदत्त पूंजी अभिदत्त पूंजी की कम से कम 50 प्रतिशत होनी चाहिये। यदि भविष्य में बैंकिंग कम्पनी अपनी अधिकृत पूंजी बढ़ाती है तो रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित अवधि (अधिकतम दो वर्ष) में अपनी अभिदत्त व प्रदत्त पूंजी का समायोजन करना होगा।

(6) अदत्त पूंजी पर प्रभार धारा 14 (1) के अनुसार किसी बैंक को अपनी प्रदत्त पूंजी पर प्रभार उत्पन्न करने का अधिकार नहीं है। कोई प्रभार उत्पन्न होता हैं तो व्यर्थ है।

मताधिकार- बैंक अपनी पूंजी एकत्रित करने के लिये समता अंशों का ही निर्गमन कर सकते हैं। इस अधिनियम की धारा 12(4) के अनुसार प्रत्येक अंशधारी को पूंजी के अनुपात में मत देने का अधिकार होता है लेकिन किसी भी अंशधारी को कुल मतदान के 10 प्रतिशत से अधिक मत देने का अधिकार नहीं होगा। 1 फरवरी, 1994 के पहले मत देने का अधिकतम अधिकार 1 प्रतिशत ही था। लेकिन 1 फरवरी, 1994 को किये गये संशोधन से बैंकिंग व्यवसाय में निजी क्षेत्र के बढ़ने की सम्भावना बहु त अधिक बढ़ गई है।

2.9 रक्षित कोष

आप इस बात को अच्छी तरह से समझते हो कि बैंकिंग व्यवसाय आम जनता के सदविश्वास के साथ जुड़ा हु आ है। इस सदविश्वास की रक्षा करने हेतु बैंकों के पास आवश्यक रक्षित कोष होने की अपेक्षा की जाती है। इसी भावना के अनुरूप अधिनियम की धारा 17 (1) के अनुसार प्रत्येक बैंकिंग कम्पनी को लाभांश की घोषणा करने से पूर्व लाभ-हानि खाते द्वारा बताये गये लाभों का न्यूनतम 20 प्रतिशत संचय फण्ड में हस्तान्तरण करना आवश्यक है। यह तब तक जारी रहेगा जब तक कि संचित कोष में जमा राशि प्रदत्त पूंजी के बराबर नहीं हो जाती है। सन् 1962 में संशोधन के बाद संचित कोष में जमा राशि. प्रदत्त पूंजी के बराबर होने के बाद भी लाभ का 20 प्रतिशत भाग संचित कोष में जमा करना अनिवार्य किया है। संचित कोष में जमा कराई जाने वाली राशि का निर्धारण लाभांश की घोषणा से पूर्व के लाभ से किया जाएगा। यह व्यवस्था भारत में कार्यरत विदेशी बैंकों पर भी लागू कर दी गई है।

धारा 17 (1) (A) की व्यवस्था के अनुरूप रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की सिफारिश पर केन्द्रीय सरकार इस प्रावधान से किसी बैंकिंग संस्थान को छूट दे सकती है बशर्ते कि कम्पनी के रक्षित फण्ड का शेष कम्पनी की प्रदत्त पूंजी तथा अंश प्रीमियम के बराबर हो।

धारा 17 (2) में यह भी व्यवस्था है कि यदि बैंक अपने संचित कोष अथवा प्रदत्त पूंजी के किसी भाग को काम में लेता है तो उस राशि को काम में लेने की तिथि से 21 दिनों के : अन्दर उसे रिजर्व बैंक को इसकी जानकारी देनी होगी। रिजर्व बैंक आवश्यकतानुसार इस अवधि में वृद्धि कर सकता हैं। केन्द्र सरकार की दृष्टि से रक्षित कोष जमा दायित्वों के सन्दर्भ में पर्याप्त हो।

2.10 नकद कोष

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम 1934 की धारा 42 (1) के अनुसार प्रत्येक अनुसूचित बैंक को अपनी मांग दायित्वों का न्यूनतम 3 प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास जमा करना होता है जिसे 15 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। वर्तमान में यह 5 प्रतिशत है। बैंकिंग

अधिनियम की धारा 18 के अनुसार गैर अनुसूचित बैंकों को नकद कोष रिजर्व बैंक के पास या स्टेट बैंक के पास या इस उद्देश्य के लिए अन्य प्रमाणिक बैंक के पास या अपने पास रखना आवश्यक हैं। प्रत्येक बैंक को इसका विवरण प्रत्येक माह की 15 तारीक तक रिजर्व बैंक को भेजना अनिवार्य है।

रिजर्व बैंक इस नकद कोष अनुपात तकनीक का उपयोग देश में साख के नियंत्रण एवम् नियमन के लिए अनेक बार किया हैं एवम् किया जाता रहा हैं।

2.11 लाभांश

आप इस बात से सहमत होंगे कि उपर्युक्त दर से लाभांश की घोषणा एवम् उसका वितरण प्रत्येक व्यावसायिक संस्था की ख्याति एवम् संस्था के प्रति आर्कषण बनाने के लिए आवश्यक होता है। लेकिन संस्था के पास लाभ काल्पनिक नहीं हो अर्थात पूंजी में से लाभांश घोषित नही किया जा सकता है। इसी अनुरूप इस अधिनियम की धारा 15 के अनुसार बैंकिंग कम्पनी के लिये यह आवश्यक है कि वह लाभांश वितरण से पूर्व अपनी सभी व्यय एवं हानि की व्यवस्था कर ले। इन व्ययों में प्रारम्भिक पूंजीगत व्यय भी सम्मिलित हैं जिनकी व्यवस्था करनी होगी। इस प्रावधान में यह भी स्पष्ट है कि लाभांश वितरण से पूर्व स्वीकृत प्रतिभूतियों के मूल्य में अपकर्ष के कारण होने वाली हानियों का अपलिखित करना जरूरी नहीं है, यदि लेखा परीक्षकों की सन्तुष्टि के अनुरूप पर्याप्त व्यवस्था कर दी गई हो। भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 205,206 व 207 भी बैंकिंग कम्पनी पर लागू होती है। अत: लाभांश वितरण के पूर्व इनकी पालना करना भी जरूरी है।

2.12 शाखा विस्तार

उद्योग एवम् व्यापार का विकास उसके कार्य क्षेत्र में विस्तार पर भी निर्भर करता हैं। अत: बैंकिंग विकास में शाखा विस्तार का अपना न महत्वपूर्ण स्थान होता है। कोई भी स्थापित बैंकिंग कम्पनी विस्तार के लिये अपनी नई शाखा खोलना चाहती है या किसी शाखा का स्थान परिवर्तित करना चाहती है तो इस अधिनियम की धारा 23 के तहत उसे रिजर्व बैंक से पूर्व अनुमति प्राप्त करनी होगी। लेकिन यदि कोई बैंकिंग कम्पनी एक ही शहर या गाँव में शाखा के स्थान में परिवर्तन करना चाहती है या अस्थायी शाखा (अधिकतम एक माह के लिये) स्थापित करना चाहती है तो इसके लिये रिजर्व बैंक की पूर्व-अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है।

नई शाखा खोलने के लिये बैंकिंग कम्पनी द्वारा रिजर्व बैंक के पास लिखित में आवेदन करना होता है। रिजर्व बैंक प्राप्त आवेदन पत्रों पर निर्णय लेते समय निम्नलिखित बातों पर विचार करता है -

(i) बैंकिंग कम्पनी की आर्थिक एवम् वित्तीय स्थिति तथा पूर्व इतिहास

(ii) बैंकिंग कम्पनी के प्रबन्ध की सामान्य व्यवस्था

(iii) पूंजी की पर्याप्तता एवं आय की सम्भावना

(iv) इससे क्या सार्वजनिक हित होगा अर्थात आम जनता को क्या लाभ होगा?

(v) प्रशिक्षित कर्मचारियों को उपलब्धता

उक्त बातों पर सन्तुष्ट होने के बाद ही रिजर्व बैंक नई शाखा खोलने या स्थान परिवर्तन के सम्बन्ध में अनुमति प्रदान करता है।

शाखा नियमन की उक्त व्यवस्था से निश्चित रूप रो आपका यह मत बना होगा कि उक्त प्रावधान बैंकों की सुरक्षा एवम् आम जनता के हितों की रक्षा हेतु किया गया है।

2.13 लाइसेंस नीति

आपको यह जानना चाहिए कि लाइसेंस व्यवस्था क्यों लागू की जाती है? वस्तुत बैंकों की व्यवस्था के सुचारु संचालन एवम् नियमन में लाइसेंस नीति का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। भारत में रिजर्व बैंक से लाइसेन्स प्राप्त करके ही कोई कम्पनी बैंकिंग व्यवसाय कर सकती है अन्यथा नहीं। इस अधिनियम की धारा 22 में रिजर्व बैंक द्वारा लाइसेंस देने की विधि बताई गई है।

इस धारा के अनुसार कम्पनी को रिजर्व बैंक के पास लिखित में आवेदन करना होता है। रिजर्व बैंक लाइसेंस देने से पूर्व ऐसी कम्पनी की लेखा पुस्तकों की जांच कर सकता है। रिजर्व बैंक किसी भी कम्पनी को लाइसेंस तभी प्रदान करता है जबकि वह निम्नलिखित शर्ते पूरी होने के सम्बन्ध में सन्तुष्ट हो जाता है -

(1) कम्पनी अपने वर्तमान एवं भावी जमाकर्ताओं को उनकी राशि देय होने पर पूरी राशि चुका सकती है अर्थात जमाकर्ताओं की जमाओं का भुगतान करने योग्य हो।

(2) कम्पनी का कार्य संचालन ऐसा नहीं चल रहा है और सम्भावना भी नहीं है कि जिससे वर्तमान एवं भावी जमाकर्ताओं का अहित हो अर्थात बैंक का प्रबन्ध निक्षेपकर्ताओं के हित में हो।

(3) विदेशी कम्पनी है तो-

- (i) भारत में उस कम्पनी द्वारा व्यवसाय चलाना सार्वजनिक हित में होगा,
- (ii) जिस देश की कम्पनी है उस देश की सरकार व वहाँ का कानून भारतीय रजिस्टर्ड बैंकिंग कम्पनियों के विरूद्ध नहीं है,
- (iii) विदेशी कम्पनियों पर लागू होने वाले देश के कानून या अधिनियम का पालन करेगी।

इस प्रकार रिजर्व बैंक उपरोक्त शर्तो की जाँच करके सन्तुष्ट होने पर ही देश में बैंकिंग व्यवसाय करने के लिये लाइसेंस प्रदान करता है। यदि कोई बैंकिंग कम्पनी रिजर्व बैंक द्वारा लगाई गई शर्तों की पालना नहीं करती है या बैंक व्यवसाय करना छोड़ देती है तो उसके लाइसेन्स को रद्द करने का पूर्ण अधिकार रिजर्व बैंक को होता है।

यदि कोई बैंक रिजर्व बैंक के रद्द करने के आदेश को गलत या अनुचित समझता है, तो वह ऐसे आदेश के विरुद्ध भारत सरकार से अपील कर सकता है और इस सम्बन्ध में भारत सरकार का निर्णय अंतिम माना जाता है।

आपको यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि अपील का अधिकार लाइसेंस प्राप्त बैंक को ही हैं। यदि रिजर्व बैंक ने किसी आपत्ति के कारण लाइसेंस नहीं दिया तो अपील का अधिकार नहीं बनता। "सज्जन बैंक (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया विवाद में स्पष्ट

किया कि रिजर्व बैंक द्वारा सन्तुष्ट न होने पर लाइसेंस की अस्वीकृति व्यवसाय करने के मौलिक अधिकारों पर कुठाराघात नहीं है।"

2.14 ऋण नीति

आप यहाँ इस तथ्य से सहमत होगे कि बैंक अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी होती हैं। यह जितनी मजबूत होती है कार्यक्षमता उतनी ही अधिक तीव्र होती है। उपयुक्त ऋण नीति इसे मजबूत बनाती है। अधिनियम की धारा 20 के अनुसार प्रत्येक बैंक पर ऋण एवं अग्रिम देने के सम्बन्ध में निम्न प्रतिबन्ध हैं-

(i) बैंक अपने स्वयं के अंशों की प्रतिभूति पर ऋण स्वीकार नहीं कर सकता।

(ii) बैंक ऐसी कम्पनी या साझेदारी संस्था को ऋण स्वीकार नहीं कर सकता जिसमें किसी संचालक या कर्मचारी का हित या हिस्सा हो।

(iii) बैंक किसी ऐसे व्यक्ति को ऋण नहीं दे सकता, जिसमें गारन्टी किसी संचालक ने दी हो।

(iv) बैंक अपने संचालक को भी ऋण नहीं दे सकता। उपरोक्त प्रावधान का उद्देश्य बैंकों के प्रबंध में हित रखने वालों को हतोत्साहित करना है ताकि ये ऋणों में प्राथमिकता या अनुचित लाभ न पा सके।

धारा 21 में व्यापारिक बैंकों की ऋण नीति को नियन्त्रित करने के लिये रिजर्व बैंक को अधिकार दिया गया है। रिजर्व बैंक सामान्यत: सभी बैंकों या किसी विशेष बैंक को आदेश दे सकता है कि किसी उद्देश्य विशेष के लिये निर्धारित सीमा तक निश्चित ब्याज दर के आधार पर ही ऋण दें। साथ ही यह भी निर्देश देता है कि किन उद्देश्यों के लिये ऋण दिये जायें व किन के लिए नहीं। सुरक्षा की सीमा व गारन्टी के सम्बन्ध में निर्देश दिया जा सकता है।

2.15 बैंकों का प्रबन्ध

आप इस बात को जानते ही होंगे कि सुचारु एवम् संगठित प्रबंध व्यवस्था अलाभकारी व्यवसाय को लाभ की स्थिति में परिवर्तित कर सकता है एवम् कमजोर प्रबंध संगठन के कारण मजबूत व्यावसायिक ढाँचा भी चरमराकर गिर जाता है। अत: बैंकों की लाभदायकता कुशलता में वृद्धि उसी दशा में सम्भव है जबकि प्रभावी प्रबंध व्यवस्था हो। अधिनियम में इसकी व्यवस्था इस प्रकार हैं।

(अ) संचालक मण्डल का गठन- अधिनियम की धारा 10 के अनुसार कोई भी बैंकिंग कम्पनी अपने प्रबन्ध संचालन के लिये ऐसे व्यक्ति को सम्मिलित नहीं कर सकती है जो (i) किसी अन्य व्यापारिक या औद्योगिक कम्पनी का संचालक हो, (ii) दिवालिया घोषित हो चुका हो, (iii) फौजदारी मामले में जेल जा चुका हो, (iv) अन्य व्यवसाय में संलग्न हो। धारा 16 के अनुसार ऐसे व्यक्ति को भी संचालक नहीं बनाया जा सकता है जो किसी अन्य बैंक का संचालक हो या ऐसी कम्पनी का संचालक हो जो बैंकिंग कम्पनी के 20 प्रतिशत से अधिक मताधिकार रखती हो। धारा 10(A) के अनुसार यह आवश्यक है कि बैंकिंग कम्पनी में कम से कम 51 प्रतिशत संचालक ऐसे होने चाहिये जिन्हें लेखाशास्त्र, कृषि, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, सहकारिता, अर्थशास्त्र, वित्त, लघु, उद्योग अथवा अन्य ऐसे विषय जो रिजर्व बैंक की राय में बैंकिंग कम्पनी के लिए

उपयोगी हो, में से किसी एक या अधिक विषयों का ज्ञान होना चाहिए। साथ ही कम से कम दो संचालक ऐसे भी होने चाहिए जिन्हें कृषि, ग्रामीण अर्थ व्यवस्था, सहकारिता व उद्योग का ज्ञान एवं व्यावहारिक अनुभव होना चाहिये तथा उनका किसी उद्योग व्यापार एवं वाणिज्य से सम्बन्धित संस्थाओं, कम्पनियों या फर्म में सारवान हित (substantial interest) नहीं होना चाहिये।

(ब) अध्यक्ष की नियुक्ति- प्रत्येक बैंकिंग कम्पनी के लिये यह आवश्यक है कि उसमें एक पूर्णकालिक अध्यक्ष हो। अध्यक्ष का कार्यकाल संचालक मण्डल निश्चित करता है जो 5 वर्ष से अधिक नहीं हो सकता। संचालक मण्डल चाहे तो उस व्यक्ति को दुबारा अध्यक्ष बना सकता है। निम्न व्यक्तियों को बैंकिंग कम्पनियों का अध्यक्ष नहीं बनाया जा सकता है-

(i) बैंकिंग कम्पनी की सहायक कम्पनी तथा पंजीकृत धर्मार्थ कम्पनी को छोड़कर अन्य कम्पनियों के संचालक।

(ii) व्यापार, व्यवसाय या उद्योग में संलग्न फर्म में साझेदार या इनके स्वामी।

(iii) कम्पनी या फर्म में सारवान हित रखने वाले व्यक्ति।

(iv) व्यवसाय एवं पेशे में संलग्न व्यक्ति।

(v) व्यापारिक, वाणिज्यिक और औद्योगिक संस्था का संचालक, प्रबन्धक।

(स) नियोजन पर प्रतिबन्ध एवं रोक- बैंकिंग नियमन अधिनियम की धारा 10 के प्रावधान के अनुसार बैंकिंग कम्पनी-

(i) प्रबन्ध के लिये प्रबन्ध अभिकर्ता की नियुक्ति नहीं कर सकती है,

(ii) किसी ऐसी व्यक्ति को नियोजन मैं नहीं रखेगी या नियुक्त नहीं करेगी

(क) जो दिवालिया हो गया हो या पहले दिवालिया रहा हो या जिसने अपने लेनदारों को भुगतान करना बन्द कर दिया हो, अथवा

(ख) जो किसी चारित्रिक या आपराधिक मामले में न्यायालय द्वारा दण्डित हो चुका हो,

(ग) जिसका पारिश्रमिक रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की दृष्टि में ज्यादा हो,

(घ) जिसका पारिश्रमिक या उसका भाग कमीशन अथवा कम्पनी के लाभों में से हिस्से के रूप में हो,

(iii) किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त नहीं करेगी जो अन्य किसी कम्पनी में संचालक हो या अन्य व्यवसाय या पेशे में सम्मिलित हो।

बैंकिंग कम्पनी धारा 35B में प्रावधान है कि अपने अध्यक्ष, प्रबन्ध संचालक, पूर्णकालिक संचालक एवं मुख्य कार्यकारी की नियुक्ति, पद से हटाने, पुनर्नियुक्ति करने से पूर्व रिजर्व बैंक से लिखित में अनुमति प्राप्त करें। धारा 36A के प्रावधान के अनुसार रिजर्व बैंक सार्वजनिक हित में किसी भी बैंक के उच्च अधिकारी को हटा सकता है।

2.16 वार्षिक लेखा एवं अंकेक्षण

आप इस बात से सहमत होगे कि किसी भी व्यावसायिक संस्था का दर्पण उसकी लेखा एवम् अंकेक्षण की प्रभावी व्यवस्था होती है। दर्पण में किसी भी व्यक्ति का चेहरा उसी दशा में साफ सुथरा दिखता है जबकि दर्पण साफ हो। उसी प्रकार किसी संस्था की वित्तीय स्थिति का

सही दर्शन तब ही हो सकता है जबकि उपयुक्त लेखा एवं अंकेक्षण व्यवस्था को अपनाया है। बैंकिंग अधिनियम में इस सम्बन्ध में निम्नांकित प्रावधान हैं।

इस अधिनियम की धारा 29 से 33 तक नें बैंकों के वार्षिक लेखों एवं उनके अंकेक्षण के सम्बन्ध में प्रावधान हैं। धारा 29 के अनुसार प्रत्येक बैंक को अपने अन्तिम खाते अधिनियम की तृतीय अनुसूची के अनुसार कैलेण्डर वर्ष के अन्तिम दिन तैयार करने होते हैं। ये खाते भारतीय बैंकों को अपने सभी व्यवहारों के सम्बन्ध में एवं विदेशी बैंकों को भारत में स्थित शाखाओं के सभी व्यवहारों के लिए तैयार करने होते हैं। धारा 30 के अनुसार इन खातों का योग्यता प्राप्त अंकेक्षकों से अंकेक्षण कराना आवश्यक हे। सन् 1968 के संशोधन के अनुसार किसी भी बैंकिंग कम्पनी को अपने अंकेक्षकों की नियुक्ति, पुनर्नियुक्ति एवं हटाने से पूर्व रिजर्व बैंक से पूर्वानुमति प्राप्त करना आवश्यक है। धारा 31 के अनुसार प्रत्येक बैंकिंग कम्पनी के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने अन्तिम खाते एवं प्रतिवेदन प्रकाशन की तिथि के तीन माह की अवधि के अन्दर-अन्दर प्रत्येक की तीन-तीन प्रतियाँ रिजर्व बैंक को भेजे। रिजर्व बैंक इस अवधि को 3 माह तक और बढ़ा सकता है। धारा 32 में अन्तिम खातों एवं अंकेक्षकों के प्रतिवेदन की तीन-तीन प्रतियाँ कम्पनियों के पंजीयक को भेजना आवश्यक है। धारा 33 के अनुसार विदेशी बैंक को अपने अन्तिम खाते एवं प्रतिवेदन अपने मुख्य कार्यालय एवं भारत स्थित प्रत्येक शाखा कार्यालय में किसी महत्त्वपूर्ण स्थान पर रखना आवश्यक है।

सामयिक विवरणिया- धारा 27 के अनुसार प्रत्येक बैंकिंग कम्पनी को निम्नलिखित सामयिक विवरणियां निर्धारित प्रारूप में तैयार कर रिजर्व बैंक को भेजनी होती है

(1) धारा 28 के अनुसार 'अदावाकृत' जमा राशियों का विवरण।

(2) धारा 27 के अनुसार सम्पत्तियों एवं दायित्वों का विवरण। यह विवरण प्रत्येक माह के अन्तिम शुक्रवार को भेजा जाएगा।

(3) धारा 24(3) के अनुसार तरल सम्पत्तियों एवं दायित्वों का मासिक विवरण।

(4) धारा 24 के अन्तर्गत भारत स्थित सम्पत्तियों एवं दायित्वों का त्रैमासिक विवरण।

(5) धारा 27(2) के अन्तर्गत रिजर्व बैंक किसी भी बैंकिंग कम्पनी से आवश्यक विवरण एवं जानकारी, जिसे वह उचित समझे, मांग सकता है।

2.17 पर्यवेक्षण

आप जानते ही है कि उपयुक्त एवम् प्रभावी पर्यवेक्षण व्यवस्था संस्था की कार्यकुशलता में न केवल वृद्धि करती है वरन् लम्बे समय तक कार्यकुशलता को बनाये रखती है। इसी कारण बैंकिंग अधिनियम 1949 में भी इसकी उपयुक्त व्यवस्था की गई है।

बैंकिंग कम्पनियों की कार्यक्षमता बनाये रखने व उनमें सुधार हेतु इस अधिनियम की धारा 35 में रिजर्व बैंक को बैंकिंग कम्पनियों के निरीक्षण का अधिकार दिया गया है। रिजर्व बैंक स्वयं या केन्द्रीय सरकार के आदेश के तहत किसी भी बैंक की लेखा पुस्तकों की जांच कर सकता है। रिजर्व बैंक निरीक्षण रिपोर्ट की प्रतियां स्वयं-बैंक, भारत सरकार कम्पनी रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करता है। सम्बन्धित बैंक के क्रियाकलापों में अनियमितताएं पाये जाने पर रिजर्व बैंक उनमें समुचित सुधार के लिए बैंक प्रबन्धकों को सुझाव एवं निर्देश दे सकता है। यदि बैंक के क्रिया-कलापों में निश्चित समय पर सुधार नहीं किया जाता है तो केन्द्रीय सरकार के आदेश पर रिजर्व

बैंक उस बैंक के निस्तारण के लिए न्यायालय में प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करेगा। यदि बैंक के क्रिया-कलाप जनहित के विरूद्ध हैं तो केन्द्रीय सरकार ऐसे बैंक पर आगे जमायें प्राप्त करने पर प्रतिबन्ध लगा सकती है।

इस सम्बन्ध में बैंक के प्रत्येक अधिकारी व कर्मचारी का कर्तव्य है कि वह निरीक्षण अधिकारी के सम्मुख चाही गई समस्त सूचनायें या प्रपत्र समय पर प्रस्तुत करे। निरीक्षण अधिकारी बैंक के किसी भी संचालक को शपथ दिलाकर उसकी जाँच कर सकता है। केन्द्रीय सरकार आवश्यक समझती हो तो बैंक को पूरा अवसर देकर रिजर्व बैंक की जाँच रिपोर्ट को प्रकाशित भी करा सकती है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट हे कि जनहित एवम् राष्ट्रहित में पर्यवेक्षण की उपयुक्त एवम् प्रभावी व्यवस्था की गयी है।

2.18 भारतीय बैंकिंग (नियमन) अधिनियम 1949 एवम् भारतीय रिजर्व बैंक

आप जानते हो कि देश का रिजर्व बैंक बैंकिंग व्यवस्था का शीर्ष या सरताज बैंक होता है। देश में उपलब्ध समस्त बैंकिंग ढांचे को नियंत्रित एवम् नियमन करने की अधिकार, दायित्व रिजर्व बैंक के पास केन्द्रित है। अत: सुचारु नियंत्रण के लिए बैंकिंग अधिनियम में भी अनेक शक्तियाँ रिजर्व बैंक को प्रदान की है जो इस प्रकार है -

1. **धारा 21** के अनुसार रिजर्व बैंक जनहित में किसी भी बैंक या समस्त बैंक के लिये अग्रिम नई नीति बना सकता है।
2. **धारा 22** के अनुसार, रिजर्व बैंक को बैंकिंग कम्पनियों को लाइसेन्स देने व इसे रद्द करने का अधिकार
3. **धारा 23** के अनुसार, रिजर्व बैंक से बैंकों को शाखा विस्तार या स्थानान्तरण के लिये अनुमति लेना अनिवार्य है।
4. **धारा 27** के अनुसार, बैंकों के लिये आवश्यक है कि वे इस अधिनियम के तहत चाहे गये समस्त प्रपत्र व सूचनायें समय-समय पर रिजर्व बैंक के पास भेजें। साथ ही रिजर्व बैंक किसी भी बैंक को किसी भी प्रकार की सूचना भेजने के लिये भी कह सकता है।
5. **धारा 26** के अनुसार, प्रत्येक बैंक के लिये आवश्यक है कि हर वर्ष के अन्त में 30 दिनों के भीतर उन" खातों का विवरण निश्चित फार्म में रिजर्व बैंक के पास भेजे जिनमें पिछले 10 वर्षा से कोई व्यवहार नहीं हु आ।
6. **धारा 28** के अनुसार, रिजर्व बैंक जनहित में प्राप्त किसी भी सूचना को प्रकाशित कर सकता है।
7. **धारा 10** के अनुसार, किसी बैंक के अध्यक्ष, संचालक, मैनेजर को हटाने का रिजर्व बैंक का निर्णय अन्तिम होता है।
8. **धारा 6** के अनुसार, किसी बैंक की न्यूनतम पूंजी तथा रिजर्व के सम्बन्ध में भी रिजर्व बैंक का निर्णय अन्तिम होता है।

9. **धारा 12** के अनुसार, रिजर्व बैंक किसी बैंक को प्रदत्त पूंजी व अधिकृत पूंजी सम्बन्धी नियमों की पालना से 2 वर्षो तक मुक्ति दे सकता है।
10. **धारा 17** के अनुसार, रिजर्व बैंक किसी बैंकिंग कम्पनी को अपने लाभों की 20 प्रतिशत राशि रक्षित फण्ड में हस्तान्तरित करने सम्बन्धी प्रावधान में छूट दिलाने के लिये केन्द्रीय सरकार को सिफारिश कर सकता है।
11. **धारा 19** के अनुसार, रिजर्व बैंक किसी भी बैंक को विदेशों में कार्य करने के लिए सहायक कम्पनी बनाने की अनुमति प्रदान कर सकता है।
12. **धारा 20** के अनुसार, रिजर्व बैंक जमाकर्ताओं के अहित होने की स्थिति में किसी भी बैंक को आगे ऋण न देने या शर्तों के साथ ऋण देने का आदेश दे सकता है।
13. **धारा 27 व 28** के अनुसार, रिजर्व बैंक को किसी भी बैंक से कोई भी सूचना प्राप्त करने का अधिकार है।
14. **धारा 31** के अनुसार, रिजर्व बैंक वित्तीय वर्ष की समाप्ति के बाद तीन माह के भीतर अंकेक्षित अन्तिम खाते प्राप्त करने का अधिकारी है। रिजर्व बैंक समय सीमा में तीन माह की अतिरिक्त छूट दे सकता है।
15. **धारा 35** के अनुसार कोई भी बैंक अपने प्रबन्ध संचालक की नियुक्ति सम्बन्धी व्यवस्थाओं में परिवर्तन रिजर्व बैंक की पूर्व अनुमति के बिना नहीं कर सकता है।
16. **धारा 36** के अनुसार रिजर्व बैंक को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं :
    - (i) किसी बैंक या सभी बैंकों को विशेष सौदे न करने की चेतावनी दे सकता है या प्रतिबन्ध लगा सकता है।
    - (ii) किसी भी बैंक को ऋण देकर सहायता प्रदान कर सकता है।
    - (iii) किसी भी बैंक की संचालक मण्डल की सभा बुलाने का अधिकार हैं।
    - (iv) बैंक के किसी अधिकारी को रिजर्व बैंक कार्यालय में विचार-विमर्श हेतु बुलाना।
    - (v) रिजर्व बैंक अपने अधिकारी को किसी भी बैंक के संचालक मण्डल की सभा में उपस्थित होने व अपने विचार प्रस्तुत करने का आदेश दे सकता है व सभा की कार्यवाही की रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिये कह सकता है।
    - (vi) रिजर्व बैंक किसी भी बैंक को यह आदेश दे सकता है कि रिजर्व बैंक के विशेष अधिकारी को संचालक मण्डल की सभी सूचना देंगे।
    - (vii) रिजर्व बैंक निरीक्षण के पश्चात् बैंक के प्रबन्ध में परिवर्तन करने का आदेश दे सकता है।
17. **धारा 36** के अनुसार रिजर्व बैंक किसी भी बैंक में उसके द्वारा भेजे गये विवरणों की सत्यता की जाँच हेतु अधिकारी नियुक्त कर सकता है।
18. **धारा 38** के अनुसार रिजर्व बैंक न्यायालय में विशेष अवस्थाओं में किसी बैंक के समापन के लिये आवेदन प्रस्तुत कर सकता है।
19. **धारा 39** के अनुसार किसी बैंक के विघटन की दशा में निस्तारक नियुक्त कर सकता है।

20. **धारा 45** के अनुसार रिजर्व बैंक को किसी बैंकिंग कम्पनी को ऋण स्थगन काल स्वीकृत करने तथा एकीकरण की योजना तैयार कर केन्द्रीय सरकार को अनुमोदन हेतु भिजवाने का अधिकार है।

2.19 भारतीय बैंकिंग अधिनियम में केन्द्रीय सरकार को अधिकार

प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में समस्त शक्तियाँ, दायित्व चुनी हुई सरकारों में निहित होती हैं। सम्पूर्ण देश में वित्तीय एवम् बैंकिंग व्यवस्था का सुचारु संचालन हो इसकी जिम्मेदारी भी केन्द्रीय सरकार की ही होती है। अत: बैंकिंग अधिनियम 1949 में बैंकों की श्रेष्ठतम व्यवस्था के लिए अनेक अधिकार प्रदान किये है जो इस प्रकार हैं।

1. **धारा 52-** रिजर्व बैंक से परामर्श करके बैंकिंग अधिनियम को लागू करने के लिए नियम बनाकर गजट में प्रकाशित कर सकती है। नियमों की व्याख्या भी सकती है। नियमों में परिवर्तन, परिवर्धन या संशोधन कर सकती है।
2. **धारा 53-** केन्द्रीय सरकार रिजर्व बैंक की सलाह से किसी भी बैंक को इस अधिनियम की किसी या किन्हीं धाराओं या उपधाराओं से निश्चित अवधि या सामान्यत: लागू होने से मुक्त करने की घोषणा गजट में प्रकाशित कर सकती हैं।
3. रिजर्व बैंक द्वारा किसी बैंक का लाइसेन्स रद्द करने पर बैंक को 30 दिन के भीतर केन्द्रीय सरकार के पास अपील करने का अधिकार होता है। और इस सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार का निर्णय अन्तिम होता है।
4. **धारा 44A (7)-** केन्द्रीय सरकार रिजर्व बैंक के परामर्श से जनहित में दो या दो से अधिक बैंकिंग कम्पनियों के एकीकरण के लिये कह सकती है।
5. **धारा 45-** केन्द्रीय सरकार रिजर्व बैंक की सिफारिश पर अधिक से अधिक 6 माह के लिया किसी भी बैंक को विलम्बकाल दे सकती है। रिजर्व बैंक द्वारा प्रस्तुत बैंकों के एकीकरण या पुनर्गठन की योजना की स्वीकृत कर सकती हैं।
6. **धारा 45 (2)-** पुनर्गठित बैंक के किसी अधिकारी का संचालक व अंकेक्षक सहित न्यायालय द्वारा परीक्षण हो सकता हैं। दोषी को अन्य किसी कम्पनी में 5 वर्ष के लिए प्रबन्ध में भाग लेने एवं कार्य करने के लिए अयोग्य घोषित किया जा सकता हैं।

2.20 सारांश

भारतीय बैंकिंग अधिनियम 1949 के उपर्युक्त प्रावधानों की विवेदना से स्पष्ट है कि इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य बैंकिंग संस्थाओं की क्रियाओं पर वैधानिक नियन्त्रण स्थापित कर इनका सुव्यवस्थित एवं सुदृढ़ ढंग से विकास करना है ताकि बैंकिंग व्यवसाय में आने वाले परिवर्तनों को नयी दिशा एवं स्थायित्व प्राप्त हो सके एवम् आम जनता के बीच सद्विश्वास एवम् सुरक्षा का वातावरण बना रहें। इस अधिनियम में रिजर्व बैंक एवं केन्द्रीय सरकार को बैंकिंग संस्थाओं के विकास एवं उनकी नीतियों तथा क्रियाओं के नियन्त्रण. के सम्बन्ध में व्यापक अधिकार दिए गए हैं। आप यह भी समझ गये होंगे कि अधिनियम के क्रियान्वयन का भार देश के शीर्ष बैंक रिजर्व बैंक को सौंपा गया है। इसी का परिणाम है कि देश में व्यवस्थित ढंग से बैंकिंग विकास होता जा रहा है एवम् राष्ट्रीयकरण के बाद से आज तक कोई भी बैंक फेल नही हो

पाया है जिससे बैंकों की प्रति आम जनता का विश्वास सबसे ऊंचा है। भारत में वर्तमान की विश्वव्यापी मंदी में भी एक भी बैंक असफल नहीं हुआ जो इस अधिनियम की सफलता को इंगित करता है।

2.21 शब्दावली

RBI - भारतीय रिजर्व बैंक/केन्द्रीय बैंक भारत का सर्वोच्च बैंक

वार्षिक लेखा वर्ष -जिस वर्ष के लिए खातों का अंकेक्षण किया जाता है। वह वार्षिक लेखा वर्ष कहलाता है।

लाभांश (Dividend) - व्यवसायिक विनियोग पर जो लाभ कमाया जोता है उसे लाभांश कहते है।

2.22 अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय बैंकिंग अधिनियम 1949 की आवश्यकता क्यों महसूस हुई?
2. भारतीय बैंकों के वर्जित या निषिद्ध कार्यों की विवेचना कीजिये?
3. भारतीय बैंकों की पूंजी एवम् रक्षित कोष की व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रावधानों की विवेचना कीजिये?
4. भारतीय बैंकों की पर्यवेक्षण व्यवस्था को समझाइये?
5. भारतीय बैंकों की ऋण नीति की विवेचना कीजिये।

2.23 संदर्भ ग्रन्थ

(i). बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - डॉ मालीराम शर्मा, वशिष्ठ

(ii). बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - श्री बी एल ओझा

(iii). बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - सिंह, गुप्ता, स्वामी

(iv). बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - प्रो. त्रिवेदी, गोयल, जैन

(v). बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - एस. के शर्मा, जे. पी शर्मा

(vi). Banking Law & Practice - S.R. Davar

(vii). Banking Theory and Practice - P.K. Shrivastav

इकाई 3
रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम 1934

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 अधिनियम के उद्देश्य
3.3 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम 1934 के प्रमुख प्रावधान
3.4 रिजर्व बैंक के वर्जित कार्य
3.5 रिजर्व बैंक एवं वाणिज्यिक बैंकों में परस्पर संबंध
3.6 रिजर्व बैंक एक्ट में संशोधन
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्न
3.10 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़कर आप समझ पायेंगे की -

- रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट 1934 की आवश्यकता क्यों उत्पन्न हुई?
- इस अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं?
- अधिनियम के अन्तर्गत RBI की प्रबंध व्यवस्था का क्या प्रावधान है?
- अधिनियम में प्रमुख प्रावधान क्या-क्या हैं?
- कौन-कौन से कार्य रिजर्व बैंक नही कर सकता हैं?
- समय-समय पर अधिनियम में कौन-कौन से संशोधन हुए हैं?

3.1 प्रस्तावना

1896 मे हेस्टिंग्ज ने एवं 1913 मे चैम्बरलिन आयोग ने भारत में केन्द्रीय बैंक स्थापना का सुझाव दिया था, परन्तु सरकार द्वारा केन्द्रीय बैंक स्थापित न करके 1920 में इम्पीरियल बैंक स्थापित किया गया एवं इम्पीरियल बैंक को बैंकों के नियंत्रण एवं मार्गदर्शन का कार्य सौंपा गया, लेकिन केन्द्रीय बैंक की स्थापना की मांग निरंतर उठती रही। भारत में सुसंगठित एवं सुव्यवास्थेत बैंकिंग प्रणाली हेतु केन्द्रीय बैंक की आवश्यकता लम्बे समय से प्रतीत हो रही थी। प्रारम्भ में इरा दिशा में जितने भी प्रयत्न किये गऐ वे सब व्यर्थ रहे सन् 1926 में हिल्टन यंग कमीशन ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, उसमें सुझाव दिया गया कि भारत में इम्पीरियल बैंक से अलग एक स्वतंत्र केन्द्रीय बैंक स्थापित होना चाहिए। इस सुझाव के आधार पर सन् 1928 में भारतीय विधानसभा में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया स्थापित करने के लिए एक

बिल पेश किया गया, किन्तु वह बैंक सरकार का हो या हिस्सेदारों का इस वाद-विवाद के कारण यह बिल पारित नहीं हो सका। सन् 1934 में एक दूसरा बिल पेश किया गया, यह बिल 6 मार्च, 1934 को रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट के नाम से पास हो गया।

इस आधार पर भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम, 1934 के अन्तर्गत 1 अप्रेल, 1935 को हुई। यह उल्लेखनीय है कि इस अधिनियम में कुल 62 धारायें थी, जिन्हें दो चरणों में लागू किया गया। 1 जनवरी, 1935 को प्रथम चरण के रूप में अधिनियम की धारा 2 से 19, 47, 50, 53, 55 से 58 तथा 61 को तथा दूसरे चरण में 1 अप्रेल, 1935 को शेष धाराओं को लागू किया गया। प्रारम्भ में यह बैंक हिस्सेदारों के बैंक के रूप में कार्यरत था, 1 जनवरी, 1949 को बैंक का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

3.2 अधिनियम के उद्देश्य

भारत में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए की गयी है :-

1. नोट निर्गमन की उचित व्यवस्था करना।
2. मौद्रिक स्थायित्व स्थापित करना।
3. देश के हित में राष्ट्रीय मुद्रा तथा साख पद्धति का संचालन एवं नियंत्रण करना।
4. रूपये के आन्तरिक तथा बाह्य मूल्य में स्थिरता बनाये रखना।
5. सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित मुद्रा बाजार का विकास करना।
6. सार्वजनिक ऋणों की व्यवस्था करना।
7. अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग स्थापित करना एवं
8. देश में व्यवस्थित ढंग से बैंकिंग ढांचे का विकास करना।

रिजर्व बैंक अपनी स्थापना के साथ ही उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयासरत है।

3.3 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम 1934 के प्रमुख प्रावधान

रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 को अध्ययन की दृष्टि से निम्न अध्यायों में विभक्त किया जा सकता है :-

क्रं. सं.	**अध्याय**	**समाविष्ट विषय**
1.	प्रथम अध्याय	प्रारम्भिक
2.	द्वितीय अध्याय	स्थापना, पूँजी, प्रबन्ध, व्यवसाय एवं विभाग
3.	तृतीय अध्याय	केन्द्रीय बैंक के रूप में रिजर्व बैंक के कार्यों का विवरण
4.	तृतीय (अ) अध्याय	साख सूचनाओं का एकत्रीकरण एवं प्रकाशन
5.	तृतीय (ब) अध्याय	-बैंकिंग तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा निवेश गैर प्राप्ति एवं उपयोग सम्बन्धी प्रावधान
6.	चतुर्थ अध्याय	सामान्य प्रावधान
7.	पंचम अध्याय	दण्ड व्यवस्था

1. प्रथम अध्याय - प्रारंभिक (INTRODUCTION)

प्रारंभ में इस एक्ट में कुल 61 धारायें एवं 5 अनूसूचियाँ थी। समय-समय पर कई धारायें हटा दी गयी है एवं अनुसूचियों में से भी 3 अनुसूचियों को हटा दिया गया है। अब केवल दो अनुसूचियाँ ही है - प्रथम अनुसूची में रिजर्व बैंक के कार्यक्षेत्रों (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) का निर्धारण तथा दूसरी अनुसूची में अनुसूचित बैंकों (Sheduled Banks) के नाम हैं, इनकी संख्या बदलती रहती है। क्योंकि इस अनुसूची में रिजर्व बैंक की आवश्यक शर्तों को पूरा करने वाले बैंकों के नाम जोड़े जाते हैं तथा शर्ते पूरी न करने वालों के नाम को हटा दिया जाता है।

यह अधिनियम प्रारम्भ में जम्मु-कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण देश पर लागू किया गया था, 1956 के संशोधन से यह अधिनियम जम्मु-कश्मीर में भी लागू हो गया है अर्थात् अब यह अधिनियम सम्पूर्ण देश पर लागू है।

2. द्वितीय अध्याय - स्थापना, पूंजी प्रबन्ध, व्यवसाय एवं विभाग (Establishment, Capital, Management, Business, and Departments)

A. स्थापना एवं पूंजी - रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट 1934 के अन्तर्गत रिजर्व बैंक 1 अप्रेल, 1935 से एक हिस्सों के बैंक के रूप में प्रारंभ किया गया था, इसकी अधिकृत पूंजी 5 करोड़ रूपये थी जो 100 रूपये के हिस्सेदारों में विभक्त थी। दो लाख बीस हजार रूपये के हिस्सा सरकार को और शेष हिस्सा जनता को निर्गमित किया गया। प्रारंभ में किसी भी व्यक्ति को पाँच हिस्सों से अधिक हिस्से नहीं दिये गये थे, बाद में 1940 में एक्ट को बदलकर यह निर्धारित कर दिया गया कि कोई व्यक्ति अकेला या साझे में 20000 रूपये से अधिक के अंश अपने नाम में नही रख सकेगा। 1934 के रिजर्व बैंक एक्ट को सन् 1948 में संशोधित कर रिजर्व बैंक का 1 जनवरी, 1949 से राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। राष्ट्रीयकरण के पश्चात् भारत सरकार ने रिजर्व बैंक के समस्त हिस्से हिस्सेदारों से 100 रूपये के हिस्से के बदले व 118 रूपये 10 आने के हिसाब से निर्धारित कर खरीद लिए। इसमें 100 रूपये के बदले में 3 प्रतिशत सरकारी बॉण्ड निर्गमित किये गए और शेष रकम का नकद रूपये में भुगतान कर दिया। अब यह बैंक पूर्ण सरकारी स्वामित्व वाला बैंक है।

B. प्रबन्ध व्यवस्था - रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट 1934 के अनुसार प्रारंभ में बैंक का प्रबन्ध 16 संचालकों के एक केन्द्रीय बोर्ड के सुपुर्द किया गया था। इन 16 संचालकों में से एक गवर्नर, दो डिप्टी गवर्नरों, चार संचालकों को विशेष हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिए नियुक्त किया जाता था तथा एक अन्य संचालक को भारत के गवर्नर जनरल मनोनीत करते थे तथा शेष 8 संचालक जिनमें से दो संचालक कलकत्ता, दी संचालक मुंबई और दो संचालक दिल्ली क्षेत्र के चुनते थे और एक-एक संचालक मद्रास तथा रंगनू क्षेत्र के हिस्सेदार चुनते थे। प्रत्येक क्षेत्र का एक स्थानीय बोर्ड होता था, इनमें आठ संचालक होते थे। जिनमें से पाँच सदस्य हिस्सेदारों द्वारा चुने जाते थे और तीन सदस्य केन्द्रीय बोर्ड द्वारा मनोनीत किये जाते थे। स्थानीय बोर्डों का प्रमुख कार्य केन्द्रीय बोर्ड के लिए संचालक चुनना तथा उसे आवश्यक विषयों पर सलाह देना था।

1949 में रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण हो जाने के पश्चात् इसका प्रबन्ध भारत सरकार के हाथ में आ गया है। रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 8 के अनुसार केन्द्रीय निदेशक मण्डल में

अब 20 निदेशक हो सकते है। इसकी रचना को एक चार्ट द्वारा निम्नानुसार दर्शाया जा सकता है-

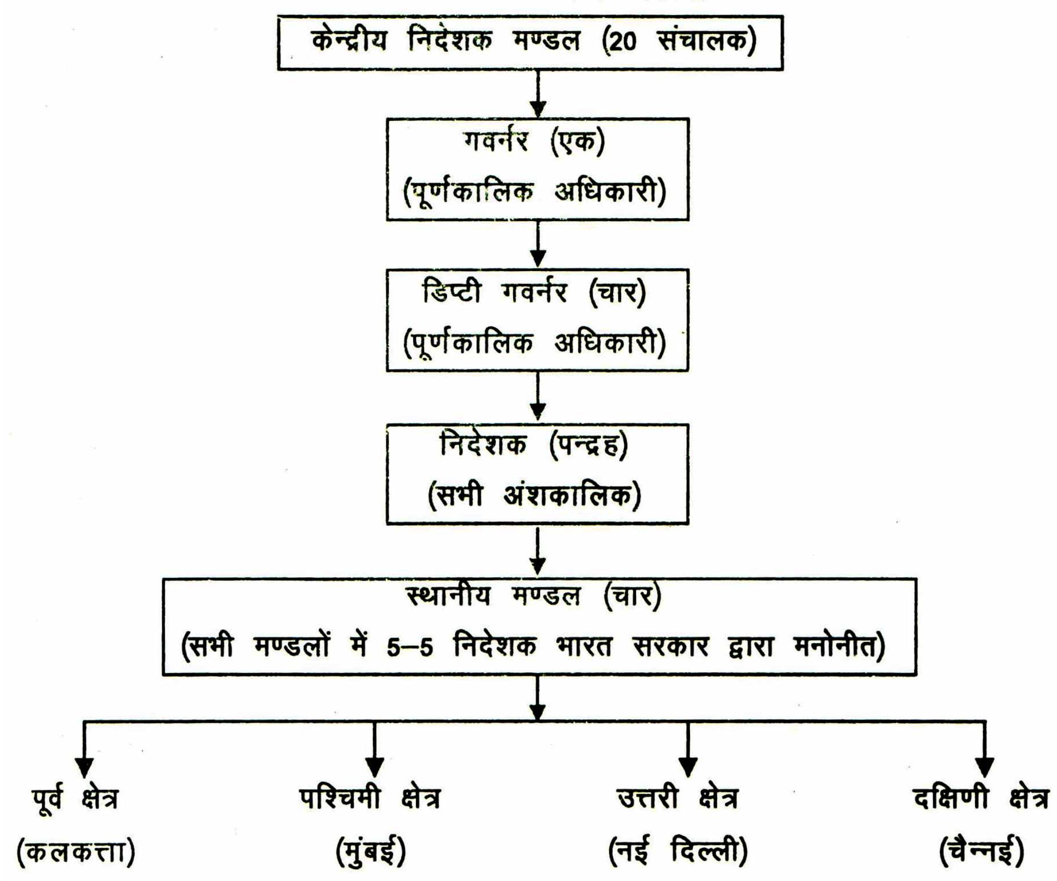

केन्द्रीय निदेशक मण्डल - इसका गठन निम्नानुसार किया जाता है -

1. गवर्नर और डिप्टी गवर्नर - एक गवर्नर तथा चार डिप्टी गवर्नर केन्द्रीय सरकार द्वारा पाँच वर्षो के लिए नियुक्त किये जाते हैं, इनका वेतन केन्द्रीय सरकार की सलाह से केन्द्रीय बोर्ड निर्धारित करता है। किसी व्यक्ति को एक से अधिक बार भी गवर्नर नियुक्त किया जा सकता है। गवर्नर तथा डिप्टी गवर्नर पूर्णकालीन अधिकारी होते हैं।

2. निदेशक - केन्द्र सरकार द्वारा 15 निदेशक नियुक्त किये जाते हैं, जिससे संबन्धित प्रावधान निम्न है।

(i) **चार निदेशक** केन्द्र सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं जिनका मनोनयन रिजर्व बैंक के प्रत्येक स्थानीय निदेशक मण्डल में से किया जाता है।

(ii) **दस निदेशक** भारत सरकार द्वारा चार वर्ष की अवधि तक के लिए मनोनीत किये जाते हैं, नये निदेशक की नियुक्ति होते ही पुराने निदेशक का कार्यकाल स्वत: ही समाप्त माना जाता है।

(iii) **एक निदेशक केन्द्र सरकार द्वारा मनोनीत सरकारी अधिकारी**, जो प्राय: भारत सरकार का वित्त सचिव (Finance Secretary) होता है जो सरकार द्वारा निर्धारित अवधि तक कार्य कर सकता है।

वेतन भत्ते तथा कार्य - रिजर्व बैंक का गवर्नर तथा उसके चार डिप्टी गवर्नर पूर्णकालिक अधिकारी होते हैं, और उनका पूरा समय बैंक के प्रशासन में लगता है। इनके वेतन-भत्ते केन्द्र सरकार की सहमति से केन्द्रीय निदेशक मण्डल द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। ये निदेशक अंशकालीन सदस्य होते हैं, इनके भत्ते भी केन्द्र सरकार की सहमति से निर्धारित किये जाते हैं। गवर्नर रिजर्व बैंक का प्रमुख अधिकारी होता है। वह केन्द्रीय निदेशक मण्डल को सभाओं की अध्यक्षता करता है तथा बैंक के सम्पूर्ण कार्य का संचालन स्वयं की देख-रेख में करता है एवं उस पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है। चार डिप्टी गवर्नर तथा सरकारी अधिकारी केन्द्रीय निदेशक मण्डल की सभाओं में भाग लेने तथा अपनी राय प्रकट करने के अधिकारी तो होते है किन्तु उन्हे मत (Vote) देने का अधिकार नही होता है। इस प्रकार केन्द्रीय निदेशकों मण्डल के 20 में से केवल 15 निदेशक को ही मताधिकार (Voting Right) प्राप्त है।

गवर्नर की अनुपस्थित में उसके द्वारा मनोनीत डिप्टी गवर्नर केन्द्रीय निदेशक मण्डल की सभाओं की अध्यक्षता करता है। केन्द्रीय निदेशक मण्डल की बैठक में सभी महत्वपूर्ण निर्णय लिये जाते है। निदेशक मण्डल के द्वारा लिये गये सभी निर्णय, चाहे कोई पद खाली भी क्यों न हो, वैध माने जाते है और इसमें किये गये निर्णय को चुनौती नही दी जा सकती।

3. स्थानीय मण्डल - प्रशासनिक दृष्टि से अधिनियम में देश को चार क्षेत्रों में बांट कर उनके अलग-अलग चार स्थानीय बोर्ड बनाये गये जिससे प्रशासनिक व्यवस्था सुव्यवस्थित चलती रहे। इनमें सम्मिलित राज्य निम्नानुसार हैं : -

(1) **उत्तरी क्षेत्र (Northern Zone)** - इस क्षेत्र में जम्मू- कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, चंडीगढ़, दिल्ली. राजस्थान तथा उत्तरप्रदेश शामिल है और इसका मुख्यालय दिल्ली में है।

(2) **पूर्वी क्षेत्र (Eastern Zone)** - बस क्षेत्र में अरूणाचल प्रदेश, असम, नागालैण्ड, मणिपुर मिजोरम, त्रिपुरा, मेघालय, पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा, सिक्किम तथा अण्डमान निकोबार द्वीप समूह शामिल है तथा इसका मुख्यालय कलकत्ता में है।

(3) **पश्चिमी क्षेत्र (Western Zone)** - इसमें मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, गोआ तथा दमन-द्वीप शामिल है। इसका मुख्यालय मुम्बई में है।

(4) **दक्षिणी क्षेत्र (Southern Zone)** - इसके अन्तर्गत आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडू केरल तथा पाण्डिचेरी एवं लक्षद्वीप आते है और इसका मुख्यालय चेन्नई में है।

इन स्थानीय मण्डलों की प्रशासन व्यवस्था सुव्यवस्थित संचालित करने के लिये स्थानीय निदेशक मण्डलों का गठन निम्नानुसार किया जाता है:--

(1) प्रत्येक स्थानीय मण्डल में पांच निदेशक होते हैं उनकी नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा उसी क्षेत्र के निवासियों में से की जाती है और उनके विभिन्न क्षेत्र के विशेषज्ञों को महत्व दिया जाता है अर्थशास्त्र., सहकारिता तथा स्वदेशी बैंकिंग से सम्बन्धित विशेषज्ञों को प्राथमिकता दी जाती है।

(2) स्थानीय मण्डल का अध्यक्ष - सम्बन्धित मण्डल के निदेशक सदस्यों द्वारा अपने में से ही एक निदेशक को अध्यक्ष चुना जाता है, वह उसकी सभाओं की अध्यक्षता करता है।

(3) स्थानीय मण्डल में निदेशकों की नियुक्ति चार वर्ष के लिये होती है। ये कार्यकाल समाप्ति के बाद भी नई नियुक्ति तक बने रहते हैं एवं इनकी दूसरी बार भी नियुक्ति की जा सकती है।

इनका कार्य निर्धारण केन्द्रीय निदेशक मण्डल द्वारा किया जाता है और वे अपने - अपने क्षेत्र की बैंकिंग एवं मौद्रिक समस्याओं के बारे में केन्द्रीय निदेशक मण्डल के निर्देश अनुसार कार्य कर उन्हे आवश्यक सुझाव देते रहते है। निम्नलिखित व्यक्तियों को स्थानीय मण्डल का सदस्य मनोनीत नहीं किया जा सकता है :-

(i) वेतन - भोगी सरकारी अधिकारी या कर्मचारी।

(ii) दिवालिया, पागल अथवा अस्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति।

(iii) किसी बैंक में नियोजित अधिकारी या कर्मचारी।

(iv) किसी सहकारी बैंक अथवा व्यापारिक संस्था के निदेशक मण्डल का कोई सदस्य।

केन्द्रीय निदेशक मण्डल की बैठकें - इस सम्बन्ध में निम्नांकित प्रावधान उल्लेखनीय हैं :-

(i) वर्ष में कम से कम छः बैठकें होना आवश्यक है।

(ii) तीन महीने में कम से कम एक बैठक बुलाना अनिवार्य है।

(iii) बैठक गवर्नर द्वारा बुलाई जाती है।

(iv) बैठक की अध्यक्षता गवर्नर करता है। गवर्नर की अनुपस्थिति में डिप्टी गवर्नर अध्यक्षता कर सकता है।

(v) विशिष्ट स्थिति में जब किसी विषय पर बराबर मत हो तो अध्यक्ष का मत निर्णायक मत होता है।

(vi) विशेष परिस्थितियों में केन्द्रीय सरकार आदेश जारी कर केन्द्रीय निदेशक मण्डल के सम्पूर्ण अधिकारों को स्थगित कर सकती है।

C. **व्यवसाय एवं विभाग** - रिजर्व बैंक का मुख्य व्यवसाय केन्द्रीय सरकार के निर्देशानुसार मौद्रिक व्यवसाय एवं विदेशी विनिमय व्यवस्था तथा सम्पूर्ण देश में बैंकिंग व्यवस्था को सुव्यवस्थित एवं नियमित रूप से संचालित करना है। कार्य को सुव्यवस्थित संचालित करने हेतु बैंक ने चार मुख्य कार्यालय **मुम्बई, दिल्ली, चेन्नई** तथा **कानपुर** में खोल रखे हैं। रिजर्व बैंक के प्रमुख विभाग निम्नलिखित है :-

1. **नोट निर्गमन विभाग** - इस विभाग का मुख्य कार्य कागजी नोटों का प्रकाशन करना है। इस विभाग की शाखाएँ **मुम्बई, कलकत्ता** तथा **चेन्नई** आदि 14 स्थानों पर है। हर एक शाखा दो भागों में विभाजित है। प्रथम **कोष विभाग** - इसका कार्य नोट निकालने और उसका विनिमय करने का है। दूसरा **साधारण विभाग** - इसका कार्य रजिस्ट्रेशन करने, नोटों को जाँचने एवं रद्द करने, इनका हिसाब रखने तथा अंकेक्षण करने का है।

2. **बैंकिंग विभाग** - यह विभाग बैंकिंग क्रियाओं का उचित प्रबंधन करता है इस विभाग के प्रमुख कार्य अन्य बैंकों को अनुज्ञा-पत्र देने, उसके नकद कोष रखने, उनको आर्थिक सहायता तथा सलाह देने, उनका निरीक्षण करने, उनके रूपये एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने तथा सरकारी

लेन- देनों का उचित प्रबन्ध करना है। इस विभाग की शाखाएँ मुम्बई, कलकत्ता चेन्नई दिल्ली, कानपुर आदि 14 स्थानों पर है। यह विभाग पांच विभागों में विभाजित है।

3. **बैंकिंग विकास विभाग (Department of Banking Development)-** यह विभाग छोटे शहरों कस्बों एवं गांवों में बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार करने एवं ग्रामीण क्षेत्र की आर्थिक समस्याओं का अध्ययन कर उनका हल निकालने के लिये स्थापित किया गया है। इस विभाग का एक प्रमुख कार्य ग्रामीण बैंकिंग अनुसंधान कमेटी की सिफारिशों को कार्यान्वित कर बैंकिंग विकास करना है।

4. **बैंकिंग क्रियाओं का विभाग (Department of Banking Operations)** - इस विभाग का प्रमुख कार्य भारतीय बैंकिंग व्यवस्था पर नियन्त्रण स्थापित करना एवं उनका निरीक्षण करना है। इस विभाग को बैंकों का वार्षिक निरीक्षण करने, उनके विभिन्न प्रकार के विवरणों -पत्रों की जाँच करने, उनकी कार्य - पद्धति की विवेचना करने का अधिकार है तथा यह विभाग उनके दोषों को दूर करने के लिए एक वार्षिक रिपोर्ट आवश्यक सुझावों सहित प्रकाशित करने का कार्य भी करता है।

5. **कृषि साख विभाग** - इस विभाग का प्रमुख कार्य कृषि साख समस्याओं के निराकरण हेतु विशेषज्ञों को नियुक्त करना, आवश्यकतानुसार केन्द्रीय सरकार, प्रादेशिक सरकारों, प्रदेशीय सहकारी संस्थाओं और बैंकिंग संस्थाओं को कृषि साख सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करना एवं रिजर्व बैंक की कृषि साख नीति का निर्धारण एवं क्रियान्वयन करना है।

6. **विनिमय नियन्त्रण विभाग** - इस विभाग की स्थापना विदेशी विनिमय -दर नियन्त्रण करने के उद्देश्य से की गयी है। विनिमय दर को स्थायी रखने के लिये यह विभाग निश्चित दर पर विदेशी विनिमय का क्रय - विक्रय करता है। एक्ट की धारा 40 के अनुसार विदेशी विनिमय का क्रय विक्रय करने का अधिकार रिजर्व बैंक को ही दिया गया है।

7. **औद्योगिक साख विभाग** - यह विभाग औद्योगिक वित्त निगम एवं राज्य वित्त निगमों को परामर्श देने तथा लघु व मध्यम उद्योगों को साख उपलब्ध कराने हेतु स्थापित किया गया है।

8. **व्यय तथा बजट नियन्त्रण विभाग** - यह विभाग बैंक के व्यय तथा बजट नियन्त्रण का कार्य करता है।

9. **गैर - बैंकिंग कम्पनी विभाग-** यह विभाग गैर बैंकिंग कम्पनियों तथा वित्तीय संस्थाओं पर नियन्त्रण तथा उनकी देख रेख व जाँच का कार्य करता है।

10. **अन्वेषण तथा संमक विभाग (Department of Research and Statistics)** - यह विभाग मुद्रा तथा बैंकिंग आदि क्षेत्रों में नवीन अन्वेषण करने तथा मुद्रा - बाजार, बैंकिंग ब्याज दरें, उत्पादन, लाभांश आदि से सम्बन्धित आँकडों को एकत्रित कर उनको प्रकाशित करने का कार्य करता है। यही विभाग प्रतिमाह एक मासिक - पत्र तथा प्रतिवर्ष मुद्रा तथा अर्थ- सम्बन्धी रिपोर्ट आदि प्रकाशित करता है।

11. **आर्थिक विश्लेषण तथा नीति विभाग -** इस विभाग का कार्य आर्थिक समस्याओं का अध्ययन एवं विश्लेषण कर भावी नीति निर्धारित करना है।

3. तृतीय अध्याय - रिजर्व बैंक का कार्य (Functions of Reserve Bank of India)

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम 1934 की विभिन्न धाराओं में बैंक को निम्नलिखित कार्य करने का अधिकार दिया है:-

(1) **नोट निर्गमन का कार्य करना (Note Issuing Authority)** - भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 22 के अधीन रिजर्व बैंक को कागजी मुद्रा निर्गमन का एकाधिकार प्राप्त है। इस कार्य को सुव्यवस्थित तरीके से सम्पादित करने के लिए बैंक ने एक स्वतंत्र नोट प्रकाशन विभाग स्थापित किया है। धारा 33 के अनुसार कागजी मुद्रा की सुरक्षा के लिए सुरक्षित कोष, स्वर्ण सिक्कों, स्वर्ण पाट, विदेशी सिक्यूरिटियों, रूपयों तथा रूपये की सिक्यूरिटियों में रखना पड़ता है। 1956 के पूर्व आनुपातिक स्वर्ण कोष प्रणाली प्रचलित थी, जिसमें इस सम्पूर्ण कोष का 40 प्रतिशत स्वर्ण सिक्कों, स्वर्ण पाट या विदेशी सिक्यूरिटयों में रखना आवश्यक था और कम से कम 40 करोड रूपये के मूल्य के सोने या स्वर्ण पाट अनिवार्य रूप से कोष में जमा रखना आवश्यक था। इस सोने का मूल्य प्रति रूपया 8.4712 ग्रेन शुद्ध सोना या 21 रूपये 3 आना 10 पाई प्रति तोला के हिसाब से लगाया जाता था। इस कोष का शेष 60 प्रतिशत भाग सरकारी प्रतिभूतियों, स्वीकृत बिलों या प्रतिज्ञा पत्रों के रूप में रखना होता था। अधिनियम में संशोधन कर 1956 में आनुपातिक स्वर्ण कोष प्रणाली को बदल दिया गया है और उसके स्थान पर न्यूनतम कोष प्रणाली को अपनाया गया है। प्रारम्भ में इस प्रणाली के अनुसार 400 करोड़ रूपये का न्यूनतम रिजर्व विदेशी प्रतिभूतियों में और 115 करोड़ रूपये सोने के सिक्कों में रखने की व्यवस्था की गई थी। इस प्रकार कुल 515 करोड़ रूपयों का रिजर्व में रखना निश्चित किया गया था। इस अधिनियम में अक्टूबर 1957 में एक ऑर्डिनेन्स के द्वारा परिवर्तन किया गया और न्यूनतम चलन कोष 200 करोड रूपये का निश्चित किया गया, जिसमें 115 करोड़ रूपये का स्वर्ण एवं स्वर्ण सिक्के और 85 करोड रुपये की विदेशी प्रतिभूतियाँ निर्धारित की गयी। अधिनियम की धारा 24 के अनुसार वर्तमान में रिजर्व बैंक को 2 रुपये, 5 रूपये-, 10 रुपये, 20 रूपये, 50 रूपये, 100 रूपये, 500 रूपये. एवं 1000 रूपये के नोट छापने का अधिकार हैं।

(2) **बैंकों के बैंक का कार्य करना (Functions of Banker's Bank)** - रिजर्व बैंक. का दूसरा प्रमुख कार्य देश के बैंकों पर नियन्त्रण, संगठन तथा उनका पथ प्रदर्शन करना है। सन् 1949 में बैंकिंग (नियमन) अधिनियम के अन्तर्गत रिजर्व बैंक को अन्य बैंकों का नियन्त्रण करने के लिए निम्नलिखित विशेषाधिकार दिये गये हैं:-

(i) भारतवर्ष में कार्य करने वाले बैंकों को अनुज्ञापत्र जारी करना।

(ii) समय- समय पर बैंकों का निरीक्षण और पर्यवेक्षण करना।

(iii) बैंकों की संख्या निर्धारण और नवीन शाखाओं पर नियन्त्रण करना।

(iv) बैंकों की एकीकरण तथा पुनसंगठन की योजनाओं की जाँच करना एवं स्वीकृति देना।

(v) बैंक विवरणों की प्राप्ति तथा पुनर्निरीक्षण करना।

(vi) बैंकों के समापन एवं निस्तारण करने की सिफारिश करना।

(vii) विशेष परिस्थितियों में बैंकों को या किसी बैंक विषय के लेन - देन विशेष को करने से रोकना अनुशासनात्मक कार्यवाही करना या धमकी देना।

(viii) बैंकों के लिए ऋण नीति का निर्धारण करना।

(ix) बैंक का वार्षिक चिट्ठा तथा अन्य खाते अंकेक्षक की रिपोर्ट सहित प्राप्त करना।

(x) बैंकों को संकट काल में बैंकों को सलाह तथा सहायता देना।

(3) केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बैंकर के रूप में कार्य करना - रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 की धारा 17,20,21 तथा 22 के प्रावधानों के अनुसार रिजर्व बैंक केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के बैंकर के रूप में कार्य कर सकता है। वह उन्हे तीन महिने की अवधि तक के ऋण दे सकता हे, उनकी प्रतिभूतियों का क्रय- विक्रय कर सकता है तथा उनके लिये करों तथा ऋणों की राशि का संग्रहण, उनकी जमाओं को बिना ब्याज रखना, सरकार के ऋण की व्यवस्था करता है। इस कार्य हेतु बैंक सरकारों से 2000 रूपये प्रति करोड़ वार्षिक दर पर कमीशन वसूल करता है। बैंक द्वारा दीर्घकालीन ऋण विभिन्न प्रकार की सरकारी सिक्यूरिटियों में तथा अल्पकालीन ऋण सरकारी बिलों (Treasury Bills) के रूप में भी उपलब्ध कराये जाते है। अल्पकाल के लिए भी केन्द्रीय और राज्य सरकार रिजर्व बैंक से काम चलाऊ ऋण (Ways and Means Advances) प्राप्त कर सकती हैं। जहाँ रिजर्व बैंक की शाखा या कार्यालय नही होता वहां रिजर्व बैंक इस अधिनियम के अधीन स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया को अपना अभिकर्ता नियुक्त करता है। कार्य संचालन हेतु सरकार द्वारा निर्दिष्ट स्थानों पर रिजर्व बैंक को चलन तिजोरियाँ भी रखनी होती है जिनमें पर्याप्त मात्रा में चलन मुद्रा रखनी होती है। राजकीय कोषागार द्वारा इसमें से धनराशि निकाली जाती है या जमा कराई जाती है। रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 17(5) के अधीन रिजर्व बैंक केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों को 3 माह बाद वापसी योग्य काम चलाऊ अग्रिम (Ways and means) भी प्रदान करती है।

(4) विदेशी विनिमय का नियन्त्रण करना (Control on Foreign Exchange) - रिजर्व बैंक को धारा 40 के अन्तर्गत भारतीय रूपये के बाह्य मूल्य को स्थिर रखने का अधिकार दिया गया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु R.B.I. निश्चित दरों पर विदेशी विनिमय का क्रय - विक्रय करती है। इस सम्पूर्ण क्रिया के संचालन एवं नियन्त्रण के लिए रिजर्व बैंक ने पृथक् से विनिमय नियन्त्रण विभाग की स्थापना कर रखी है।

(5) साख नियमन एवं नियन्त्रण (Credit Control and Regulation) - साख का नियमन एवं नियन्त्रण रिजर्व बैंक का एक महत्वपूर्ण कार्य है। साख नियन्त्रण की विभिन्न विधियाँ अपना कर रिजर्व बैंक साख व्यवस्था को नियन्त्रित रखता है।

(6) समंको का एकत्रीकरण एवं प्रकाशन (Collection and Publicationof Data) - रिजर्व बैंक अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित आवश्यक समंक एकत्रित करता है एवं उनका विश्लेषण कर उन्हे समय-समय पर प्रकाशित करता है।

(7) अन्य कार्य - अधिनियम की धारा 17 के अन्तर्गत रिजर्व बैंक को निम्नलिखित कार्य करने का अधिकार दिया गया है. -

(i) **बिना ब्याज जमाये (Deposits) प्राप्त -करना-** धारा 17(1) के अनुसार रिजर्व बैंक का कार्य बिना ब्याज केन्द्र -सरकार, राज्य सरकारों स्थानीय निकायों, बैंकों तथा अन्य व्यक्तियों सें जमाएँ प्राप्त करना तथा उनके चैक आदि का संग्रहण करना है।

(ii) **बिलों का क्रय विक्रय तथा पुर्नकटौती** - धारा 17 (2) (a) के अनुसार रिजर्व बैंक व्यापारिक बिलों का क्रय- विक्रय तथा पुर्नकटौती (Rediscounting) का कार्य करती है। ऐसे बिल सामान्यत: 90 दिन से अधिक अवधि के नही होने चाहिये। निर्यात बिल 181 दिन तथा कृषि वित्त से सम्बन्धित बिल 15 महीने की अवधि तक के हो सकते है।

(iii) **लघु उद्योगों के वित्त बिलों की पुर्नकटोती करना** - धारा 17(2) (bb) के अनुसार लघु उद्योगों को वित्त उपलब्ध कराने एवं ऐसे बिल जिनकी अवधि 12 माह से अधिक न हो तथा जिन पर राज्य सरकार की गारन्टी हो, उन पर पुनर्कतौती की जा सकती है।

(iv) **विदेशी मुद्रा तथा विदेशी विनिमय बिलों का लेन-देन** - रिजर्व बैंक अधिनियम धारा 17 (3) (b) के अनुसार बैंक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के किसी सदस्य राष्ट्र द्वारा लिखे गये विपत्रों या कोषागार पत्रों (Treasury Bills) की पुर्नकटौती (Rediscount) का कार्य करता है जो भारत के निर्यात व्यवहारों या अन्य किसी कारण से लिखे गये हों।

(v) **बैंकों को ऋण** - धारा 17 (4) के अनुसार रिजर्व बैंक को अनुसूचित बैंकों तथा राज्य सहकारी बैंकों को उनके 180 दिन की परिपक्वता वाले प्रतिज्ञापत्रों की धरोहर पर ऋण देने का अधिकार है।

(vi) **अन्य संस्थाओं को ऋण** - अधिनियम के अन्तर्गत रिजर्व बैंक स्थानीय निकायों, अनुसूचित बैंकों. राज्य सहकारी बैंकों तथा राज्य वित्त निगमों को विनिमय बेलों तथा प्रतिज्ञा पत्रों की धरोहर पर 90 दिन तक के ऋण दे सकता है। सहकारी प्रतिभूतियों को धरोहर पर राज्य वित निगमों को 18 महीने तक की अवधि के ऋण दिये जा सकते है।

(vii) **विदेशी प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय** - धारा. 17 3(b) के अनुसार रिजर्व बैंक 10 वर्ष तक की परिपक्वता वाली विदेशी प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय भी कर सकता है।

(viii) **समाशोधन गृह का कार्य (Clearing House Function)** - धारा 17 2(c) के अनुसार रिजर्व बैंक को बैंकों तथा अन्य संस्थाओं के आपसी बैंकिंग लेन -देनों के लिये समाशोधन गृह के रूप में कार्य करने का भी अधिकार दिया गया है।

(ix) **बैंकिंग प्रशिक्षण तथा अनुसंधान कार्य** - रिजर्व बैक को इस अधिनियम के अन्तर्गत बैंकिंग कार्यों सम्बन्धी प्रशिक्षण तथा नवीन अनुसंधान कार्य करने का भी अधिकार दिया गया है।

(x) **सरकार के बहुमूल्य कोषों एवं विदेशी विनियम कोषों के संरक्षक के रूप में कार्य** - इस अधिनियम के अन्तर्गत भारतीय रिजर्व बैंक को सरकार के बहुमूल्य धात्विक कोषों तथा विदेशी विनिमय कोषों को सुरक्षित रखने का अधिकार दिया गया है।

अध्याय तृतीय (अ) -साख सूचनाओं का एकत्रीकरण एवं प्रकाशन (Collection and Publication of Credit Information)

भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 43 के अनुसार, रिजर्व बैंक को देश के सभी बैंकों की जमाओं, दायित्वों आदि के सामूहिक समंक प्रत्येक सप्ताह प्रकाशित करने होते है। इस हेतु बैंक साख एवं अन्य सूचनाओं का एकत्रित करता है। धारा 45 (A) से 45(G) तक में यह व्यवस्था है कि रिजर्व बैंक किसी भी बैंक से विभिन्न व्यक्तियों अथवा संस्थाओं को उधार दी गई राशि के सम्बन्ध में सूचना माँग सकता है। साख सूचना माँगने का उद्देश्य बैंकों द्वारा एक ही

व्यक्ति अथवा संस्था को अत्यधिक ऋण देने पर रोक लगाना भी है। समय-समय पर रिजर्व बैंक इन सूचनाओं को प्रकाशित करती है।

अध्याय तृतीय (ब) - गैर बैंकिंग तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा निवेश प्राप्ति एवं उपयोग सम्बन्धी प्रावधान (Regulation of Reciept of deposits and their uses by Non Banking Companies)

रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 45 (H) से 45(S) तक के प्रावधानों में रिजर्व बैंक को गैर-बैंकिंग कम्पनियों द्वारा जमाएँ प्राप्त करने तथा उधार देने अथवा उपयोग करने की क्रियाओं का नियमन करने से संम्बन्धित अधिकार प्राप्त है। इन प्रावधानों के अन्तर्गत रिजर्व बैंक किसी भी गैर-बैंकिंग कम्पनी द्वारा : -

(i) जमाएँ प्राप्त करने हेतु विज्ञापन या प्रोस्पेक्टस निकालने पर रोक लगा सकता है।
(ii) जमाएँ प्राप्त करने पर कुछ अतिरिक्त शर्ते लगा सकता है।
(iii) प्राप्त जमाओं सम्बन्धी सूचना मांग सकता है।
(iv) जमाएँ प्राप्त करने सम्बन्धी आवश्यक दिशा - निर्देश जारी कर सकता है।

इन धाराओं का उद्देश्य बैंकों तथा गैर - बैंकिंग कम्पनियों के बीच जमा प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा पर रोक लगाना एवं जमाकर्ताओं के धन के दुरूपयोग पर रोक लगाना है। 20 मार्च, 1997 को संशोधित रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 43(S) के द्वारा अनिगमित निकायों के जमाएँ स्वीकार करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया है।

प्रतिबन्धित व्यवसाय (Restricted Business) - पैसा उधार देने का व्यवसाय तथा किसी भी योजना के तहत जमाएँ स्वीकार करने का कार्य प्रतिबन्धित व्यवसाय है। उपरोक्त प्रावधानों के अतिरिक्त धारा 45-I की उपधारा (सी) में उल्लिखित निम्न व्यवसाय की श्रेणी में रखे गए है -

(1) वित्तीय व्यवसाय।
(2) शेयर, स्टॉक, बॉण्ड, ऋण - पत्र तथा सरकारी प्रतिभूतियों का व्यवसाय,
(3) किराया क्रय व्यवसाय
(4) बीमा व्यवसाय
(5) चिट फण्ड व्यवसाय
(6) किसी भी योजना के तहत रकम इकट्ठा करना तथा उसे नगद, इनाम, उपहार या अन्य किसी भी रूप में उन्ही व्यक्तियों के मध्य या अन्य व्यक्तियों में बाँटना।

पुरानी जमाओं का पुनर्भुगतान (Repayment of Old Deposits)

धारा 45(S) के प्रावधान 1 अप्रेल, 1997 से लागू है। यदि किसी प्रतिबन्धित व्यक्ति ने धारा 45(S) के प्रावधानों का पालन न कर 1 अप्रैल 1997 से पूर्व जमाएँ प्राप्त कर रखी है तो यह आवश्यक है कि वह उन जमाओं का पुनर्भुगतान, उनके देय होते ही या 31 मार्च, 2000 तक दोनों मे से जो पहले हो कर दे। 1 अप्रैल 1997 से पूर्व जमाओं का पुनर्भुगतान यदि सम्भव न हो रहा हो तो अधिकतम एक वर्ष की मियाद भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा बढ़ाई जा सकती है। ऐसा जमाकर्ता द्वारा आवेदन देने तथा रिजर्व बैंक के सन्तुष्ट होने पर ही, इसमें छूट दिया जाना सम्भव है। अगर किसी व्यक्ति द्वारा धारा 45(S) के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन किया जाता

है तो उसे दो वर्ष तक का कारावास, या स्वीकार की गई जमा राशि के दो गुनी तक या 2,000 रूपये तक, दोनो में से जो अधिक हो के बराबर का दण्ड दिये जाने का प्रावधान है।

धारा 58(b) के अनुसार यदि कोई व्यक्ति धारा 45(S) की धाराओं का उल्लंघन करता है तो उसे 2 वर्ष तक सजा हो सकती है या डिपॉजिट ली गई राशि की दो गुनी राशि तक जुर्माना या दो हजार रूपये, जो भी अधिक हो, या दोनो दण्ड दिये जाने का प्रावधान है।

गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों का पंजीकरण (Registration of Non Banking Financial Companies)

इस अधिनियम की धारा 45I(A) भारतीय रिजर्व बैंक (संशोधन) अधिनियम, 1997 द्वारा यथा निविष्ट की उपधाराओं के अन्तर्गत अवशिष्ट गैर-बैंकिंग कम्पनी सहित, किसी भी गैर-बैंकिंग कम्पनी जो 9 जनवरी 1977 से पूर्व अस्तित्व में थी के लिए व्यवसाय प्रारम्भ करने से पूर्व रिजर्व बैंक के पास पंजीकरण करवाना अनिवार्य कर दिया है। अगस्त 2008 तक देश में ऐसी लगभग 57 हजार गैर - बैंकिंग फाइनेंस कम्पनियाँ कार्यरत थी।

चतुर्थ अध्याय - सामान्य प्रावधान (General Provisions)

(1) अनुसूचित बैंक सम्बन्धी प्रावधान (Provision Related to Schedule Banks)

भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 की धारा 2(e) के अनुसार अनुसूचित बैंक से तात्पर्य उस बैंक से है जिसका नाम रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की द्वितीय अनुसूची में सम्मिलित किया गया है। द्वितीय अनुसूची में उन बैंकों को सम्मिलित किया गया है जो धारा 42(6) की शर्तो का पालन करते है। यह शर्ते निम्नलिखित है:-

(1) बैंक की प्रदत्त पूंजी तथा कोष कम से कम 5 लाख रूपये हो,

(2) बैंक का कार्य अपने जमाकर्ताओं के हितों के विरूद्ध न हो,

(3) बैंक भारतीय कम्पनी अधिनियम या अन्य किसी ऐसे अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत हो, तथा

(4) बैंक की आर्थिक स्थिति अच्छी हो।

(5) अनुसूचित बैंकों को ऋण, पुनर्कटौती, समाशोधन एवं हस्तान्तरण की सुविधा प्रदान की जाती है साथ ही उन्हे समय-समय पर मार्गदर्शन भी दिया जाता है।

(2) तरल कोष संबंधी प्रावधान (Provisions Related to Liquid funds)

अनुसूचित वाणिज्य बैंकों को अपनी कुल जमाओं का एक निश्चित प्रतिशत भाग रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित अनुपात में नकद कोषों के रूप में रखना पड़ता है। वर्तमान में वैज्ञानिक तरल अनुपात (Statutory Liquidity Ratio) की दर 25 प्रतिशत है यह साख नीति के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है। प्रत्येक अनुसूचित वाणिज्य बैंक को अपने लेन-देन का साप्ताहिक ब्यौरा प्रत्येक शुक्रवार को रिजर्व बैंक के पास भेजना पड़ता है।

(3) नकद कोष सम्बन्धी प्रावधान (Provisions Related to Cash funds)

भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 42(1) में प्रावधान है कि प्रत्येक अनुसूचित बैंक को अधिनियम की धारा 42(2) के अन्तर्गत प्रेषित विवरणिका में दिखाये गये कुल औसत दैनिक दायित्वों का न्यूनतम 3 प्रतिशत सदैव रिजर्व बैंक के पास नकद जमा रखना पड़ता है। यदि

रिजर्व बैंक चाहे तो नकद कोष अनुपात को 15 प्रतिशत तक बढ़ा सकता है। वर्तमान में नकद कोष अनुपात 5 प्रतिशत है।

(4) कृषि साख हेतु दो विशेष कोषों की स्थापना (Establishment of to Special fund for Agricultural Credit)

रिजर्व बैंक ने कृषि साख को बढ़ावा देने के लिये रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 46(A) तथा 46(B) के तहत क्रमशः निम्नलिखित दो विशेष कोषों की स्थापना की है:-

(1) राष्ट्रीय कृषि साख (दीर्घकालीन संचालन) कोष - इसकी धारा 46(A) के अन्तर्गत स्थापना की गयी है।

(2) राष्ट्रीय कृषि साख (स्थिरीकरण) कोष - इसकी स्थापना धारा 46(B) के अन्तर्गत की गयी है।

(5) औद्योगिक वित्त कोष की स्थापना (Establishment of Industrial Finance Funds)

रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 46 के अन्तर्गत औद्योगिक वित्त की व्यवस्था हेतु राष्ट्रीय औद्योगिक वित्त (दीर्घकालीन कोष) की स्थापना की गयी है।

(6) लाभ सम्बन्धी प्रावधान (Provisions Relating to Profits)

रिजर्व बैंक के राष्ट्रीयकरण के बाद रिजर्व बैंक अधिनियम 1949 की धारा 48 में यह प्रावधान है कि रिजर्व बैंक को होने वाला वार्षिक शुद्ध लाभ प्रतिवर्ष केन्द्र सरकार को सौंपा जायेगा। यह लाभ आयकर से मुक्त होगा।

(7) रिजर्व बैंक द्वारा बैंक दर की घोषणा (Declaration of Bank Rate by R.B.I.)

रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 49 के अन्तर्गत प्रावधान किया गया है कि साख नियन्त्रण हेतु रिजर्व बैंक समय - समय पर बैंक दर (Bank Rate) की घोषणा करेगा। जिस दर पर वह विनिमय बिलों तथा अन्य व्यापारिक पत्रों को खरीदेगा अथवा उनको पुनर्कटौती (Rediscounting) करेगा। वर्तमान में बैंक दर 6 प्रतिशत है।

(8) रिजर्व बैंक के खातों का अंकेक्षण एवं जांच (Audit of Accounts of R.B.I.)

अधिनियम की धारा 50, 51 तथा 52 के अन्तर्गत रिजर्व बैंक के सभी खातों के अनिवार्य अंकेक्षण का प्रावधान हैं। अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्र सरकार कम से कम दो अंकेक्षकों की नियुक्ति की जाती है। ये अंकेक्षक अपना प्रतिवेदन (Report) केन्द्र सरकार को प्रस्तुत करते हैं। अधिनियम में यह भी प्रावधान है कि यदि भारत सरकार चाहे तो रिजर्व बैंक के हिसाब-किताब की जाँच के लिये अंकेक्षकों के अतिरिक्त भारत के महा- अंकेक्षक एवं नियंत्रक को भी आदेश दे सकती है।

(9) गोपनीयता सम्बन्धी प्रावधान (Provisions Related to)

रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 45Cव 45Dके अन्तर्गत बैंकों के द्वारा प्रेषित सूचनाओं को गोपनीय रखा जाता है। कोई भी न्यायालय ट्रिब्यूनल या प्राधिकरण रिजर्व बैंक या अन्य किसी बैंक को इन सूचनाओं के प्रस्तुतीकरण या निरीक्षण के लिये बाध्य नहीं कर सकता है।

(10) बैंक के तथ्यों का प्रकाशन (Publication of Facts of the banks)

रिजर्व बेक अधिनियम की धारा 43 के अन्तर्गत रिजर्व बैंक द्वारा देश के सभी अनुसूचित बैंकों की जमाओं, दायित्वों आदि से सम्बन्धित सामूहिक आँकड़ो को प्रति सप्ताह प्रकाशित

करना अनिवार्य है। इस हेतु रिजर्व बैंक ये आँकड़े अपने सभी अनुसूचित बैंकों से प्रति माह (प्रत्येक शुक्रवार तक के आँकड़े) प्राप्त करता है एवं उन्हे सामूहिक रूप से एकत्रित कर प्रकाशित करता है।

(11) रिजर्व बैंक के एजेन्ट के रूप में स्टेट बैंक को नियुक्ति (State Banks of India of Agent of R.B.I.)

रिजर्व बैंक अधिनियम को धारा 45 के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि जहां रिजर्व बैंक की कोई शाखा या कार्यालय नहीं है वहां रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, स्टेट बैंक (SBI) अथवा उसकी सम्बद्ध समूह बैंक शाखा को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करता है। 1956 से पूर्व इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया रिजर्व बैंक के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता था।

(12) साख सूचना सेवा (Credit Information Service)

अधिनियम की धारा 45(A) से धारा 45(G) तक में यह प्रावधान है कि रिजर्व बैंक किसी भी बैंक से विभिन्न व्यक्तियों एवं संस्थाओं को दिये गये अग्रिमों एवं ऋणों की सूचना मांग सकता है और इस प्रकार संग्रहित सूचना अन्य बैंकों को दे सकता है ताकि वे बैंक उसका उपयोग साख देते समय कर सके। इसका उद्देश्य एक व्यक्ति अथवा संस्था द्वारा कई बैंकों से ऋण लेने को एवं साख के केन्द्रीयकरण की प्रवृति पर रोक लगाना है।

अध्याय पंचम- अधिनियम से दण्ड सम्बन्धी व्यवस्था (Provisions Related to Penalty)

अधिनियम की धारा 58 (B) के अन्तर्गत रिजर्व बैंक को जान- बूझकर गलत सूचनाएँ देने, सूचना न देने या विलम्ब करने, धारा 31 का उल्लंघन करने अथवा ऋण सम्बन्धी गोपनीयता भंग करने के लिये दोषी व्यक्तियों को दण्ड देने को व्यवस्था की गई है जिसका संक्षेप में विवरण इस प्रकार है :-

(1) **असत्य विवरण देना -** अधिनियम की धारा 58(B) (1) के अनुसार जब कोई व्यक्ति अपने प्रार्थना पत्र, विवरणी, प्रविवरण आदि में रिजर्व बैंक को असत्य या गलत सूचना देता है अथवा कोई महत्वपूर्ण तथ्य छिपाता है तो दोषी व्यक्ति को 3 वर्ष का कारावास, आर्थिक दण्ड या दोनो का भागी बनाया जा सकता है।

(2) सूचना देने में भूल-चूक या सही समय पर सूचना न देने पर रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 58(B) (2) के अनुसार प्रत्येक अपराध के लिये 2000 रूपये आर्थिक दण्ड तथा अपराध जारी रहने तक 100 रूपये प्रतिदिन का अर्थ दण्ड दिया जा सकता है।

(3) रिजर्व बैंक अधिनियम की 58(B)(3) के अनुसार यदि धारा 31 के प्रावधान का उल्लंघन किया जाता है तो उस विपत्र, प्रतिज्ञापत्रों बिल या हुण्डी की राशि तुल्य अर्थदण्ड की व्यवस्था है।

(4) ऋण सम्बन्धी गोपनीयता भंग करने के दोषी व्यक्ति को अधिनियम की धारा 58(B)(4) के अन्तर्गत 6 माह का कारावास अथवा एक हजार रूपये का अर्थदण्ड अथवा दोनो सजाएँ दी जा सकती है। रिजर्व बैंक अधिनियम के अन्तर्गत यदि अपराध किसी कम्पनी द्वारा किया जाता है तो उसके लिये सम्बन्धित उत्तरदायी व्यक्ति दण्ड का भागी होगा।

3.4 रिजर्व बैंक के वर्जित कार्य

अधिनियम की धारा 19 के अन्तर्गत रिजर्व बैंक द्वारा निम्नांकित कार्य करना वर्जित है:-

(1) किसी भी प्रकार का व्यापार या व्यवसाय करना।

(2) किसी कम्पनी में प्रत्यक्ष हित रखना अर्थात उसके अंश खरीदना या अंशों की धरोहर पर ऋण देना।

(3) किसी अचल सम्पत्ति को बन्धक रख कर अथवा उसके अधिकार पत्रों की जमानत पर ऋण या अग्रिम देना।

(4) चालू अथवा अन्य खातों में जमा पर ब्याज देना।

(5) बैंक द्वारा सामान्य व्यक्तियों को ऋण देना।

(6) दर्शनी बिलों के अतिरिक्त अन्य कोई बिल लिखना या स्वीकार करना।

(7) रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 17, 18, 42 तथा 45 में की गई व्यवस्थाओं में बाधक नहीं होगी।

3.5 रिजर्व बैंक तथा वाणिज्यक बैंकों में परस्पर सम्बन्ध

व्यापारिक बैंकों एवं रिजर्व बैंक के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह निम्न प्रावधानों से स्पष्ट है:-

(1) **पर्यवेक्षण एव नियन्त्रण (Supervision and Control)** रिजर्व बैंक बैंकिंग कम्पनियों के काम-काज पर नियन्त्रण हेतु पर्यवेक्षक एवं नियन्त्रक नियुक्त करता है एवं निम्न तरीकों से पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण करता है: -

(i) धारा 22 के अनुसार भारत में बैंकिंग व्यवसाय के लिए रिजर्व बैंक से लाइसेन्स प्राप्त करना जरूरी है।

(ii) धारा 23 के अनुसार प्रत्येक बैंकिंग कम्पनी से यह अपेक्षा की जाती है कि भारत में किसी नये स्थान पर शाखा खोलने या वर्तमान स्थान को बदलने से पहले वह रिजर्व बैंक से अनुमति प्राप्त करे।

(iii) धारा 35 के अनुसार रिजर्व बैंक स्वयं या केन्द्रीय सरकार के निर्देशानुसार बैंकिंग कम्पनी का निरीक्षण कर सकता है।

(iv) धारा 35 (क) के अनुसार रिजर्व बैंक जनहित में बैंकिंग कम्पनियों को निर्देश जारी कर सकता है।

(v) धारा 36 के अनुसार रिजर्व बैंक को यह भी अधिकार है कि वह बैंकिंग कम्पनी को किसी विशिष्ट लेन-देन करने के प्रति सावधान कर सके और उसे सलाह दे सके।

(vi) धारा 36 (क) के अन्तर्गत रिजर्व बैंक को यह भी अधिकार प्राप्त है वह किसी बैंक के अध्यक्ष, निदेशक, मुख्य कार्यकारी अधिकारी को उसके पद से हटा सकता है।

(2) बैंकों के बैंकर के रूप में (As Bankers Bank) - बैंकों के बैंकर के रूप में रिजर्व बैंक अंतिम ऋण दाता (Lender of Last Resort) की भूमिका अदा करता है। धारा 18 के

अन्तर्गत रिजर्व बैंक बैंकों को विशेष अवसरों पर आपात ऋण दे सकता है। धारा 17 की सीमा में रहते हुए ऐसे ऋण दिये जा सकते है।

(3) साख नियन्त्रक के रूप में (As Credit Controller) - वाणिज्यिक बैंकों द्वारा दी जाने वाली ऋण राशि पर रिजर्व बैंक कई प्रकार से नियन्त्रण लगा सकता है। दिशा - निर्देशों के अनुरूप बैंकों को कार्य करने होते है।

(4) साख सम्बन्धी जानकारी एकत्र करना तथा उपलब्ध करवाना (Collection and availability of credit informations) - भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम में सन् 1962 में अध्याय iii - क जोड़ देने के बाद से रिजर्व बैंक बैंकिंग कम्पनियों से साख संबंधी जानकारी एकत्र करता है, उनका विश्लेषण कर उन्हे प्रकाशित करवाता है।

3.6 रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 में संशोधन

1935 में अधिनियम के लागू होने के पश्चात इसमें समय-समय पर कई महत्वपूर्ण संशोधन किये गये है। प्रारम्भ में वर्णित 61 धाराओं में से कई धाराओं को हटा दिया गया है तथा प्रारम्भ की पांच अनुसूचियों के स्थान पर केवल दो अनुसूचियां रह गई है। 1948 में रिजर्व बैंक अधिनियम में संशोधन करने से रिजर्व बैंक हिस्सेदारों का बैंक न रहकर पूर्णत: सरकारी बैंक हो गया। केन्द्र सरकार ने हिस्सेदारों से समस्त अंश पूँजी स्वयं खरीद ली है।

1951 में किये गये संशोधन से यह अधिनियम जम्मु कश्मीर को छोड़ समस्त भारत में लागू हो गया एवं गवर्नर की अनुपस्थिति में गवर्नर द्वारा मनोनीत डिप्टी गवर्नर को गवर्नर के सभी अधिकार मिल गये साथ ही कृषि बिलों की अवधि 9 माह से बढ़ाकर 15 माह कर दी गई। इसी तरह 1953 के रिजर्व बैंक अधिनियम संशोधन किया -गया, इससे रिजर्व बैंक को राज्य सहकारी बैंकों को 16 माह से 5 वर्ष तक की अवधि के लिये 5 करोड़ रूपये तक के ऋणों का अधिकार प्राप्त हो गया।

1955 में संशोधन द्वारा कृषि वित्त व्यवस्था हेतु रिजर्व बैंक को दो विशेष कोष (i) राष्ट्रीय कृषि साख (दीर्धकालीन संचालन) तथा (ii) राष्ट्रीय कृषि साख (स्थिरीकरण) स्थापित किये गये। 1956 के संशोधन से अधिनियम 1934 की धारा 32 (2) में परिवर्तन किया गया है एवं नोट निर्गमन की आनुपातिक कोष प्रणाली के स्थान पर न्यूनतम कोष प्रणाली अपनायी गयी। प्रारम्भ में यह कोष 515 करोड़ रूपये रखा गया था किन्तु कालान्तर में संशोधन द्वारा न्यूनतम कोष 200 करोड़ रूपये रखा गया, जिसमें 115 करोड़ रूपये का स्वर्ण तथा 85 करोड़ रूपये की विदेशी प्रतिभूतियाँ रखी गई। इस संशोधन से 1934 के अधिनियम की धारा 37 अप्रभावी हो गई।

रिजर्व बैंक एक्ट में 1964 में संशोधन किया गया, इसमें धारा 46 (C) के अन्तर्गत औद्योगिक वित्त व्यवस्था के लिए राष्ट्रीय औद्योगिक साख (दीर्धकालीन संचालन) कोष स्थापित किया गया।

1965 में धारा 42 में संशोधन से रिजर्व बैंक को राज्य सहकारी बैंकों को भी अनुसूचित बैंकों की सूची में शामिल करने का अधिकार प्राप्त हो गया।

1974 में संशोधन किया गया जिसमें देयताओं की परिभाषा में परिवर्तन किया गया, जिसके अनुसार किसी बैंक के कुल दायित्वों में से (i) भारतीय स्टेट बैंक या उसके सहायक बैंक (ii) कोई राष्ट्रीयकृत बैंक (iii) कोई बैंकिंग कम्पनी या सहकारी बैंक अथवा केन्द्र सरकार द्वारा कोई अनुसूचित अन्य वित्तीय संस्था के कुल दायित्वों को घटाने के बाद प्राप्त शेष राशि कुल देयताओं में गिनी जायेगी। 1977 में पारित संशोधन से रिजर्व बैंक को अतिरिक्त नकद कोष प्राप्त करने का अधिकार मिल गया। 20 मार्च, 1997 के रिजर्व बैंक (संशोधन) अधिनियम की धारा 45(S) के अन्तर्गत गैर- बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों (Non Banking Finance Companies- NBFCs) पर रिजर्व बैंक के नियंत्रण को कड़ा कर दिया गया है। अधिनियम के अनुसार जिन व्यक्तियों, फर्मों अथवा व्यक्ति समूहों का मुख्य कारोबार किसी भी योजना के तहत जमाएँ प्राप्त करना व उधार देना है वे भी अब यह कार्य बिना गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनी गठन के नही कर सकेंगे। इस प्रकार समय-समय पर अनेक संशोधन रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 में किये गये।

3.7 सारांश

1934 में जब रिजर्व बैंक अधिनियम लागू किया गया, तब रिजर्व बैंक एक हिस्सेदारों के बैंक के रूप में कार्यरत था। लेकिन बाद में रिजर्व बैंक को पूर्ण सरकारी स्वामित्व में ले लिया गया। इसके फलस्वरूप इस अधिनियम को व्यवहारिक एवं लोचशील बनाने के लिए समय-समय पर आवश्यकतानुसार कई परिवर्तन किये गये, जिससे बैंक अपने उद्देश्यों की प्राप्ति कर सके। समय-समय पर अधिनियम में किये गये परिवर्तनों के फलस्वरूप यह अधिनियम काफी व्यवहारिक एवं व्यापक हो गया है एवं रिजर्व बैंक अपने उद्देश्यों यथा नोट निर्गमन, मूल्य स्थायित्व, विदेशी विनिमय नियन्त्रण, जमा, उधार एवं साख व्यवस्था पर नियन्त्रण आदि में सफल रहा है। अन्त में यह कहा जा सकता है कि रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 काफी सीमा तक अपने उद्देश्यों में सफल रहा है।

3.8 शब्दावली

अधिनियम	– राज्य या शासन द्वारा की गयी व्यवस्था को बनाये रखने के लिए नियम।
अनुसूचि	– श्रृंखलाबद्ध क्रियाओं का क्रम जिसमें क्रियाओं के संचालन सम्बन्धी सूची निर्धारित की जाती है।
बैंक दर	– वह दर जिस पर रिजर्व बैंक द्वारा प्रथम श्रेणी की प्रतिभूतियाँ की कटौती की जाती है। वर्तमान में यह दर 6 प्रतिशत है।
वैधानिक तरल अनुपात	– वह अनुपात जो बैंकों द्वारा अपनी समस्त जमाओं का तरल के रूप में रखना पड़ता है, जिससे जनता को आवश्यकता पड़ने पर भूगतान किया जा सके वर्तमान में वैधानिक तरलता अनुपात 25 प्रतिशत है।

नकद संरक्षित अनुपात	–	प्रत्येक अनुसूचित बैंक को अपनी जमाओं का एक निश्चित भाग जो नकद कोष के रूप में केन्द्रीय बैंक के पास रखना होता है। वर्तमान में नकद कोष अनुपात 5 प्रतिशत है।

3.9 अभ्यास प्रश्न

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम 1934 के उद्देश्य बताइये।
2. 1934 अधिनियम को कितने अध्यायों में विभक्त किया गया है?
3. रिजर्व बैंक के वर्जित/प्रतिबन्धित कार्यों की व्याख्या कीजिये।
4. रिजर्व बैंक की स्थापना के समय पूंजी व्यवस्था क्या थी?
5. रिजर्व बैंक की प्रशासनिक व्यवस्था बताइये।
6. स्थानीय मण्डल क्या है, वर्तमान में कितने स्थानीय मण्डल कार्य कर रहे है?
7. रिजर्व बैंक के नोट निर्गमन सम्बन्धी प्रावधान बताइये।
8. रिजर्व बैंक अधिनियम में भारतीय बैंकिंग प्रणाली के नियमन एवं नियंत्रण सम्बन्धी प्रावधानों को संक्षेप
9. में बतलाइये।
10. अनुसूचित बैंक बनने की मुख्य शर्तों का उल्लेख कीजिये।
11. रिजर्व बैंक द्वारा गैर बैंकिंग कम्पनियों पर जमाएँ प्राप्त करने का नियमन कैसे किया जाता है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. रिजर्व बैंक अधिनियम के अन्तर्गत बैंक की प्रबन्ध व्यवस्था पर प्रकाश डालिये।
2. रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 के प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
3. रिजर्व बैंक अधिनियम के अन्तर्गत रिजर्व बैंक के कार्यों का वर्णन कीजिए। इसके वर्जित कार्य भी बताइये।

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

(1) रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम 1934

(2) बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - डॉ. मालीराम, शर्मा वशिष्ट

(3) बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - डॉ. त्रिवेदी, शर्मा

इकाई 4
बैंकिंग नियमन (संशोधन) अधिनियम, 1970

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 अधिनियम के उद्देश्य
4.3 अधिनियम की आवश्यकता
4.4 अधिनियम के अन्तर्गत राष्ट्रीयकृत बैंक
4.5 अधिनियम के मुख्य प्रावधान
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्न
4.9 संदर्भ ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़कर आप समझ पायेंगे कि : -

- बैंकिंग नियमन संशोधन अधिनियम लागू करने के क्या उद्देश्य रहे हैं ।
- बैंकिंग नियमन संशोधन की आवश्यकता क्यों पड़ी?
- इस अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत प्रथम एवं द्वितीय चरण मैं किन-किन बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया?
- अधिनियम के प्रमुख प्रावधान क्या-क्या हैं?
- अधिनियम का क्या प्रभाव रहा हैं?

4.1 प्रस्तावना

देश की बैंकिंग प्रणाली का मुख्य उद्देश्य छोटी-छोटी बचतों को एकत्रित कर उसे उत्पादक कार्यों में लगाना एवं विकसित उपलब्ध साख को सन्तुलित रूप से देश के सभी भागों में वितरित करना होता हैं, जिससे विकास की गति में तीव्रता लाई जा सके।

इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु स्वाधीनता के पश्चात् बैंकिंग अधिनियम 1949 पारित किया गया ताकि इस अधिनियम के माध्यम से देश में सुव्यवस्थित एवं नियन्त्रित तरीके से बैंकिंग विकास किया जा सके, लेकिन स्वाधीनता के पश्चात् दो दशकों में भी बैंकों ने अपनी क्रियाओं के माध्यम से सरकार को कोई ऐसी दिशा प्रदान नहीं की जिससे यह प्रकट हो कि बैंक राष्ट्र के आर्थिक विकास में अपनी अहम भूमिका निभा रहे है। इस दौरान बैंकों की कार्य शैली एवं नीतियाँ परम्परावादी रही तथा लाभ की मनोवृत्ति मे सदैव सामाजिक लाभ को गौण रखा गया एवं निजी स्वार्थ ही सर्वोपरि रहा।

अन्य शब्दों में - स्वाधीनता के पश्चात् दो दशकों में देश के व्यापारिक बैंकों ने अपने निजी हित को ही सर्वोपरि मानते हुए एवं केवल लाभ कमाने को ही महत्वपूर्ण मानते हुए देश में बैंकिंग प्रणाली को विकसित किया। फलस्वरूप इन बैंकों की शाखा विस्तार नीति बड़े शहरों की ओर ही केन्द्रित रही। मुख्य रूप से ये बैंक उद्योग एवं व्यापार क्षेत्र को ही पोषित करते रहे एवं आर्थिक विकास में बैंकों का योगदान कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित रहा। इसका मुख्य कारण इन बैंकों पर पूँजीपति वर्ग का नियन्त्रण तथा प्रबन्ध व्यवस्था में कुछ ही अंशधारियों का प्रभुत्व एवं असन्तुलित शाखा विस्तार नीति रहे। जिससे शहरी क्षेत्रों में तो बैंकिंग विकास हुआ परन्तु ग्रामीण क्षेत्र लगभग अछूता ही रहा।

1955 में विकास की गति में तीव्रता लाने के उद्देश्य से इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया को भारतीय स्टेट बैंक के रूप में राष्ट्रीयकृत किया गया। भारतीय स्टेट बैंक के साथ उसके सहयोगी बैंक भी राष्ट्रीयकृत हो गये। इन बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात ये बैंक सरकारी निर्देशों के अनुरूप कार्य करने लगे एवं विकासात्मक उद्देश्य को पूरा करने का भरपूर प्रयास इनके द्वारा किया जाने लगा तथा अपने उद्देश्य में सफल भी रहे, वही दूसरी ओर व्यापारिक बैंक देश के आर्थिक विकास विशेषकर ग्रामीण विकास में सरकार के भरपूर प्रयासों के बावजूद भी रूचि प्रदर्शित नहीं कर रहे थे। देश के सभी क्षेत्रों में बैंकिंग विस्तार कर सुविधायें पहुँचाना, समाज के सभी वर्गो को बैंकिंग सेवायें प्रदान कर साख सुविधायें उपलब्ध कराना, निजी क्षेत्र के बैंकों को पूँजीपतियों के नियन्त्रण से मुक्त करना, कमजोर एवं गरीब वर्ग को बैंकिंग सेवाएं उपलब्ध कराना आदि ऐसी क्रियाएं हैं जो एक कल्याणकारी सरकार के लिये आवश्यक थी। इस उद्देश्य को प्राप्त, करने के लिए सरकार को बैंकिंग अधिनियम में परिवर्तन करना पड़ा एवं बैंकिंग नियमन में संशोधन किया गया। इसे बैंकिंग कम्पनीज (उपक्रम अधिग्रहण एवं अन्तरण) अधिनियम 1970 के नाम से जाना जाता है।

4.2 बैंकिंग नियमन संशोधित अधिनियम के उद्देश्य

स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग दो दशकों में भी जिन उद्देश्यों यथा साख निर्माण, औद्योगिक विकास, कृषि विकास, प्राथमिक क्षेत्र का विकास, ग्रामीण विकास आदि के लिए बैंक स्थापित किये गये थे उनकी पूर्ति नहीं कर पा रहे थे। अत: जनहित में यह आवाज निरन्तर उठ रही थी कि ऐसे कदम उठाये जाये, जिससे बैंकिंग व्यवस्था पर सरकार का समुचित नियन्त्रण हो एवं देश में प्रभावशाली तरीके से बैंकिंग विकास हो सके, इसी उद्देश्य से बैंकिंग नियमन संशोधन अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य निम्न थे:-

1. **बैंकों में अव्यवस्था एवं अकुशलता पर रोक (control on Mismanagement and Inefficiency)**

निजी बैंक केवल स्वामियों के व्यक्तिगत हितों की पूर्ति के लिए संचालित किये जाते हैं एवं जमाकर्ताओं व अन्य लोगों के हितों पर ध्यान नहीं देते है। प्रो. सियर्स के मतानुसार निजी बैंक कम कार्यकुशल ही नहीं होते, वरन् उनका व्यवसाय व्यय भी ऊँचा होता है। वे साधनों की सीमितता के कारण योग्य प्रबन्धकों एवं कुशल संचालकों की सेवाओं का प्रयोग करने में असमर्थ

होते हैं। जबकि राष्ट्रीयकृत बैंक ज्यादा कुशल तरीको से सेवायें दे सकते है। यही कारण है कि बैंकों में अव्यवस्था एवं अकुशलता के समापन के लिए राष्ट्रीयकरण आवश्यक है।

2. मौद्रिक नीति का एकीकृत संचालन (Aggregate operation of monetary Policy)

देश का केन्द्रीय बैंक देश में मौद्रिक नीति को सफलतापूर्वक तभी संचालित कर सकता है, जब बड़े बैंकों की शाखाएं पूरे देश के विभिन्न क्षेत्रों मे फैली हुई हों उन पर केन्द्रीय बैंक का प्रभावशाली नियन्त्रण हों अन्यथा रिजर्व बैंक को अपनी मौद्रिक नीति के कार्यान्वयन में कठिनाई आती थी, अत: मौद्रिक नीति के सफल संचालन के लिए बैंकों का राष्ट्रीयकरण अनिवार्य सा हो गया था।

3. समाजवादी लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक (Helpful to achieve Socialist Objects)

देश में समाजवादी समाज की, स्थापना के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए व्यवसायिक बैंकों के अपार साधनों को निजी पूँजीपतियों के हाथ में छोड़ना उपयुक्त नहीं माना जा सकता। निजी बैंक सार्वजनिक हितों के लिये ऋण नही देते या आनाकानी करते है। ऐसी स्थिति में बैंकों का राष्ट्रीयकरण ही उपयुक्त समझा गया। जिससे सार्वजनिक क्षेत्र में विकास में तीव्रता लाई जा सके।

4. आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों की पूर्ति (To achieve the object of Economic Planning)

देश में आर्थिक विकास के लिए आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाया गया है। योजना की सफलता वित्तीय साधनों की यथासम्भव पर्याप्तता एवं सामयिक उपलब्धता एवं उनके उपयोग पर निर्भर करती है। निजी बैंक अपने वित्तीय साधनों की योजनाओं की प्राथमिकता के अनुसार ही विनियोजित करें यह आवश्यक नहीं है। इस कारण आर्थिक योजनाओं को क्रियान्वित करने एवं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बैंकों का राष्ट्रीयकरण अनिवार्य सा हो गया था जिससे सरकार इन बैंकों की जमा पूंजी का प्रयोग योजनाओं की प्राथमिकता के अनुसार निर्धारित कर सके।

5. बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार एवं विकास (Exatention & Development of Banking Facilities)

निजी बैंक के स्वामियों को अपने लाभ की चिन्ता अधिक और देश के हित की चिन्ता कम थी। इसी कारण वे ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में शाखायें खोलने में अधिक रूचि नहीं रखते थे। 1969 तक औसतन 65,000 व्यक्तियों के पीछे एक बैंक था जबकि विकसित राष्ट्रों में प्रति 15,00 से 5,000 जनसंख्या पर एक बैंक का औसत है। यह सोचा गया कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण से ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार व विकास सम्भव हो पायेगा।

6. बैंकों के साधनों व लाभों का देश हित में उपयोग (Use of Banking Resources in interest of country)

बैंकों के राष्ट्रीयकरण से बैंकों की जमा-पूँजी का उपयोग देश के आर्थिक विकास मे विवेकपूर्ण ढंग से संभव होगा, क्योंकि सरकार निजी लाभ की तुलना में जनहित की दृष्टि से बैंकों

के साधनों का उपयोग अधिक करेगी। बैंकों को प्राप्त होने वाले लाभों का उपयोग भी जनकल्याण कार्यों के लिए किया जा सकेगा।

7. **जनता का विश्वास तथा बैंक जमा में वृद्धि (Trust of Public and increase in Bank Deposits)**

बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में यह तर्क दिया जा रहा था कि निजी बैंक क्षेत्र की अपेक्षा सरकारी बैंकों में जनता का अधिक विश्वास होता है। भारत में निजी बैंकों के निरन्तर असफल होते रहने के कारण जनता का इन बैंकों में विश्वास भी घट रहा था। अत: जनता में बैंकों के प्रति विश्वास जाग्रत करने तथा उनकी बचतों को बैंक में जमा करवाने एवं उन्हे आकर्षित करने हेतु बैंकों का राष्ट्रीयकरण आवश्यक सा हो गया था।

4.3 संशोधित अधिनियम की आवश्यकता

भारतीय बैंकिंग नियमन अधिनियम 1949 मे निम्न कारणों से संशोधन की आवश्यकता महसूस की गयी है।:-

1. **देश की अर्थव्यवस्था एवं विकास में तेजी लाना (Flow in development of Country's Economy)**

भारत में योजनाबद्ध विकास के लिये वित्तीय साधनों की कमी की समस्या सदैव रही है, साधनों की कमी के कारण कृषि, लघु उद्‌योग तथा रोजगार के क्षेत्र में अपेक्षाकृत प्रगति धीमी रही। देश में आर्थिक विकास की गति में तेजी लाने तथा उपेक्षित क्षेत्रों में पर्याप्त वित्तीय साधनों की पूर्ति के लिए बैंकों का राष्ट्रीयकरण अनिवार्य सा हो गया था।

2. **पूंजीपतियों के केन्द्रीयकरण को समाप्त करना (To abolish centralization of capitalists)**

वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत सभी निजी बैंकों पर कुछ पूँजीपतियों का ही स्वामित्व एवं नियन्त्रण था। उनके प्रभुत्व से छुटकारा पाने तथा उनके नियन्त्रण को समाप्त करने के लिए बैंकों के राष्ट्रीयकरण ही एक मात्र विकल्प था।

3. **कृषि, लघु उद्‌योगों व निर्यात व्यापार के लिए वित्तिय साधनों की पूर्ति (Financial resources for agriculture, for agriculture, Small industries and exports)**

बैंकों पर पूँजीपतियों के प्रभुत्व के कारण बैंक जमाओ का अधिकाधिक उपयोग बड़े-बड़े उद्‌योगों या सट्टे के कार्यों या उनकी स्वार्थ पूर्ति में होता था। वे कृषि, लघु उद्‌योगों व निर्यात व्यापार में ऋण उपलब्ध करने में कोई विशेष रूचि नही रखते थे। ऐसी स्थिति में नियन्त्रण हेतु बैंकों का राष्ट्रीयकरण करना आवश्यक प्रतीत होने लगा।

4. **बैंकों में पेशेवर व्यवस्थापकों की नियुक्ति करना (Appointments of Professional Managers in Banks)**

बैंकिंग व्यवसाय एक ऐसा व्यवसाय है, जिसके संचालकों एवं प्रबन्धकों में विशेष योग्यता होनी चाहिए। निजी बैंकों की व्यवस्था परम्परागत प्रबंधकों या व्यवस्थापकों के हाथों में थी,

जिससे असुरक्षा बनी रहती थी। अतः बैंकों की व्यवस्था को पेशेवर व्यवस्थापकों के हाथों में सुपुर्द करना राष्ट्रीयकरण का एक प्रमुख उद्देश्य था, जिससे कार्यकुशलता बढ़ सके।

5. नये उद्यमियों को प्रेरित करना (To motivate the new enterpreneurs)

राष्ट्रीयकरण से पूर्व आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण कुछ ही हाथों में केन्द्रित था। नये उधमियों को प्रोत्साहन का पूर्ण अभाव था। अतः यह आवश्यक प्रतीत होने लगा कि बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो जिससे नवीन उद्योगपतियों को प्रोत्साहन मिले एवं विकेन्द्रित व्यवस्था संभव हो सके।

6. बैंकिंग कर्मचारियों की सेवा, सुरक्षा एवं समुचित प्रशिक्षण (Service, Security and Training to Bank Employees)

राष्ट्रीयकरण का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है कि बैंकों में कार्यरत कर्मचारियों में सेवा एवं सुरक्षा की भावना बनी रहे एवं समय-समय पर अनुकूल प्रशिक्षण व्यवस्था भी हो, जिससे कर्मचारियों में कुशलता बनी रहे, जिससे बैंकिंग व्यवसाय के विकास एवं विस्तार में सहयोग मिलता रहे।

7. ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक शाखाओं का विस्तार (Extension of Bank Branches in Rural Sector)

राष्ट्रीयकरण का एक प्रमुख उद्देश्य भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में भी बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार एवं विकास करना भी था। जिससे एक ओर ग्रामीण बचतें निवेश की ओर आकर्षित हो, वहाँ दूसरी ओर उपेक्षित क्षेत्रों में ऋणों से अर्थव्यवस्था के विकास में तेजी लाई जा सके।

4.4 बैंकिंग नियमन संशोधन अधिनियम के अन्तर्गत राष्ट्रीयकृत बैंक

इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य जनहित में व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण करना था, जिससे इन बैंकों का स्वामित्व, प्रबन्ध, नीति निर्धारण एवं नियन्त्रण सरकार के अधीन आ सके एवं सरकार अपने दिशा-निर्देशों के अनुरूप बैंकिंग व्यवस्था का संचालन कर इनका तेजी से विकास कर सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु 19 जुलाई, 1969 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा 50 करोड़ रु. से अधिक जमाओं वाले 14 बड़े बैंकों का एक विशेष अधिनियम द्वारा राष्ट्रीयकरण किया गया। राष्ट्रीयकरण की इस प्रक्रिया के विरूद्ध 10 जनवरी, 1970 को भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने बैंकों के राष्ट्रीयकरण पर स्थगन आदेश जारी कर दिया। स्थगन आदेश में मुख्यतः निम्न आदेश थे -

1. केन्द्र सरकार द्वारा बैंक में सलाहकार मण्डल की स्थापना पर रोक।
2. बैंकिंग कम्पनीज (नियमन) अधिनियम 1949 के अन्तर्गत प्रयुक्त नियमों के अतिरिक्त कोई अन्य निर्देश जारी करने पर रोक।
3. बैंकों के अध्यक्षों को हटाने पर रोक।

संसद द्वारा अध्यादेश :-

14 फरवरी 1970 को संसद द्वारा पारित संसोधन के आधार पर एक नया अध्यादेश जारी कर प्रथम चरण में 14 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। जिनका नाम निम्न प्रकार है :- (1) सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, (2) बैंक ऑफ इण्डिया, (3) पंजाब नेशनल बैंक, (4) बैंक ऑफ बड़ौदा, (5) यूनाइटेड कॉमर्शियल बैंक, (6) केनरा बैंक, (7) यूनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया, (8) देना बैंक, (9) सिन्डीकेट बैंक, (10) यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, (11) इलाहाबाद बैंक, (12) इण्डियन बैंक, (13) बैंक ऑफ महाराष्ट्र, (14) इण्डियन ओवरसीज बैंक।

द्वितीय दौरः -

15 अप्रेल, 1980 को 6 और निजी क्षेत्र के बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया, इन 6 राष्ट्रीयकृत बैंकों के नाम इस प्रकार है: - (1) आन्ध्रा बैंक, (2) पंजाब एण्ड सिन्ध बैंक, (3) विजया बैंक, (4) कॉर्पोरेशन बैंक तथा (5) ओरिएण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स, (6) न्यू बैंक ऑफ इण्डिया। (नोट - न्यू बैंक ऑफ इण्डिया का विलय पंजाब नेशनल बैंक में कर दिया गया है।)

बैंकों के राष्ट्रीयकरण के कारण (Causes of Bank Nationalisation)

समय-समय पर व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण जिन कारणों से किया गया है उन्हे निम्न बिन्दुओं से समझा जा सकता है:-

1. ग्रामीण एवं सुदूर आंचलिक क्षेत्र में साख का विस्तार करना।
2. प्रभावकारी साख नीति का विकास एवं संचालन करना।
3. पूँजीपति वर्ग पर नियन्त्रण स्थापित कर आम जनता को बैंकिंग व्यवस्था के निकट लाना।
4. व्यापारिक बैंकों की कार्यप्रणाली में एकरूपता लाना।
5. बैंकिंग क्षेत्र में एकाधिकारी प्रवृत्तियों पर रोक लगाना।
6. विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में बैंकों की भागीदारी सुनिश्चित करना।
7. निजी क्षेत्र के दोषों को दूर कर बैंकिंग संस्थाओं को समाज उपयोगी बनाना।
8. देश के आर्थिक विकास में व्यापारिक बैंकों की सक्रिय सहभागिता निर्धारित करना।
9. बैंकों में पेशेवर प्रबन्धकों की नियुक्ति करना जिससे प्रबन्धकीय कुशलता में वृद्धि हो सके।
10. देश में सन्तुलित बैंकिंग विकास के लक्ष्य को पूरा करना।
11. सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वहन करना।
12. सरकारी नीति एवं मार्गदर्शन में देश के विकास में योगदान देना।

4.5 अधिनियम के मुख्य प्रावधान

केन्द्र सरकार ने व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण को मूर्त रूप देने के उद्देश्य से 25 जुलाई, 1969 को संसद द्वारा बैंकिंग कम्पनीज (उपक्रम अधिग्रहण एवं अन्तरण) अधिनियम, 1969 पारित किया। इस अधिनियम के विरूद्ध भी उच्चतम न्यायालय में चुनौती याचिका दायर की गई। 10 फरवरी, 1970 को 11 न्यायाधीशों की पूर्ण पीठ ने 10 के बहुमत से निर्णय दिया कि यद्यपि संसद को बैंकों के अधिग्रहण हेतु अधिनियम पारित करने का कानूनी अधिकार है

किन्तु अधिनियम में विनिर्दिष्ट बैंकों के उपक्रमों के संवैधानिक अन्तरण तथा उनकी क्षतिपूर्ति के उपबन्ध संविधान की धारा 31 (2) में दी गई संवैधानिक आधारभूत गारन्टी का उल्लंघन करता है तथा यह अधिनियम विद्वेष की भावना से प्रेरित, भेदभावपूर्ण तथा काल्पनिक क्षतिपूर्ति निर्धारण के आधार पर गैर-कानूनी एवं असंवैधानिक है, अत: आदेश पर रोक लगाई जाती है।

उच्चतम न्यायालय द्वारा उठायी गई आपत्तियों को दूर करने के उद्देश्य से महामहिम राष्ट्रपतिजी ने **14 फरवरी**, 1970 को एक नया अध्यादेश जारी कर 14 बड़े व्यापारिक बैंकों का पुन: राष्ट्रीयकरण कर दिया, जिसे बाद में संसद द्वारा बैंकिंग कम्पनीज (उपक्रम अधिग्रहण एवं अन्तरण) अधिनियम, 1970 के रूप में पारित कर बैंक राष्ट्रीयकरण अध्यादेश पर अपनी मुहर लगाई गई एवं 3। मार्च, 1970 को राष्ट्रपतिजी ने इस अधिनियम पर अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। इस अधिनियम में प्रमुख प्रावधान निम्न प्रकार है: -

1. **निजी बैंकों का अधिग्रहण एवं नये राष्ट्रीयकृत बैंकों की स्थापना (Acquisition of Private Bank and Establishment of New Nationalised Bank):** - देश के 14 बड़े निजी बैंकों का अधिग्रहण कर राष्ट्रीयकरण किया गया। इस अधिनियम, 1970 की धारा 3 (1) के अन्तर्गत सभी 14 राष्ट्रीयकृत बैंक अपने पूर्व नाम से ही जाने जायेंगे एवं 19 जुलाई, 1969 से ही राष्ट्रीयकृत माने गये।
2. **चुकता पूंजी (Paid-up Capital) :** - अधिनियम की धारा 3(2) तथा 3(3) के अनुसार प्रत्येक राष्ट्रीयकृत बैंक की चुकता पूंजी उतनी ही रखी गई जितनी उसके पुराने नाम में थी, किन्तु सारी अंश पूंजी केन्द्र सरकार में निहित एवं आवंटित समझने का प्रावधान किया गया।
3. **नये बैंकों की स्थापना (Establishment of New Banks) :** - अधिनियम की धारा 3(4) में इन नये राष्ट्रीयकृत बैंकों की स्थापना की व्यवस्था की गई जिसके अनुसार इन बैंकों को शाश्वत उत्तराधिकार (Perpetual Succession) तथा सामान्य मुहर (Common Seal) वाली निगमित संस्था (Coporate Body) के रूप में स्थापित माना गया है और उन्हे सम्पत्ति प्राप्त करने, बेचने तथा रखने का अधिकार दिया गया है। इन राष्ट्रीयकृत बैंकों को अपने नाम से वाद प्रस्तुत करने अथवा प्रतिवाद प्रस्तुत करने एवं अनुबंध करने का अधिकार दिया गया।
4. **नये बैंकों का अन्तरण तथा नाम से "The" एवं "Limited" शब्दों का हटाने का प्रावधान** :- अधिनियम की धारा 4 के अन्तर्गत निजी बैंकिंग संस्थाओं, जिनका राष्ट्रीयकरण किया गया है, इन नये राष्ट्रीयकृत बैंकों के नाम उनके पुराने बैंकों के नाम से ही रखे जाने का प्रावधान किया गया, किन्तु इनके नाम में से पूर्व "The" तथा पश्चात "Limited" शब्दों को हटाने का भी प्रावधान किया गया।
5. **राष्ट्रीयकृत बैंकों का व्यवसाय (Business of New Nationalised Bank) :** - इस अधिनियम में नये राष्ट्रीयकृत बैंकों को भी भारतीय बैंकिंग कम्पनीज (नियमन) अधिनियम, 1949 की धारा 5(b) तथा 6(1) में उल्लेखित बैंकिंग के सामान्य व्यवसाय एवं अन्य सम्बद्ध कार्यों को करने की अनुमति का प्रावधान किया गया है।

6. **नये राष्ट्रीयकृत बैंकों का प्रबन्ध (Management of New Nationalised Bank)** : - इस हेतु निम्न प्रावधान किये गये हैं:-

(i) अधिक्षण, निर्देशन एवं कार्य संचालन का प्रावधान अधिनियम की धारा 7(2) के अन्तर्गत इन बैंकों के कामकाज और व्यवसाय का सामान्य अधीक्षण, निर्देशन तथा प्रबन्ध का कार्य संचालक मण्डल में निहित होने का प्रावधान किया गया है।

(ii) **संचालक मण्डल की अधिकतम सदस्य संख्या एवं हटाने का अधिकार :** - अधिनियम की धारा 7(4) के प्रावधान के अनुसार केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त प्रथम संचालक मण्डल के सदस्यों की संख्या 7 से अधिक नही होगी। केन्द्र सरकार बैंक के हित में आवश्यक समझे जाने पर प्रथम संचालक मण्डल के किसी भी संचालक को उसके पद से हटाने का अधिकार केन्द्र सरकार का होगा।

(iii) **संचालक मण्डल का गठन तथा तत्सम्बन्धी योजना का अधिकार** :- अधिनियम की धारा 9 में भारत सरकार को इन राष्ट्रीयकृत बैंकों के संचालक मण्डलों का गठन तथा उससे सम्बंधित योजनाएं क्रियान्वित करने का अधिकार दिया गया है। यह भी प्रावधान किया गया जिसके द्वारा संचालक मण्डल में (अ) सम्बद्ध बैंकों के कर्मचारी और जमाकर्ताओं के प्रतिनिधि तथा (ब) कृषक, श्रमिकों और शिल्पकारों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों को भी शामिल किया जा सकता है।

(iv) **संचालक मण्डलो को नियमन के बनाने का अधिकार** :- अधिनियम में राष्ट्रीयकृत बैंकों के संचालक मण्डलों को बैंकों के कार्य संचालन हेतु भारतीय रिजर्व बैंक की पूर्वानुमति प्राप्त कर सभी प्रकार के मामलों के बारे में नियमन बनाने का अधिकार भी दिया गया है। अधिनियम में यह भी प्रावधान किया गया है कि नये राष्ट्रीयकृत बैंकों के लिये उनसे सम्बद्ध संचालक मण्डलों द्वारा बनाये गये नियमनों की प्रकिया पूरी नहीं होती तब तक अन्तरिम अवधि में बैंक के पूर्व अन्तर्नियतों (Articlas of Association), नियमों, उपनियमों अथवा उनके द्वारा प्रदत्त आदेशों को ही उन राष्ट्रीयकृत बैंकों के नियमनों के रूप में माना जायेगा।

7. **केन्द्र सरकार द्वारा दिये गये निर्देशों का पालन (Obeying the Directions from the Central Government) :-** अधिनियम की धारा (8) में यह प्रावधान किया गया है कि राष्ट्रीयकृत बैंकों अपने कार्य सम्पादन हेतु उन सब निर्देशों का अनिवार्य रूप से पालन करेंगे जो रिजर्व बैंक के परामर्श से केन्द्रीय सरकार द्वारा सार्वजनिक हित से सम्बन्धित नीति विषयक मामलों में दिये जायें।

8. **राष्ट्रीयकृत बैंकों की प्रबन्ध योजना बनाने का प्रावधान (Provision for Scheme of Management for the Nationalised Banks)** - अधिनियम की धारा 9 के अन्तर्गत केन्द्र सरकार को राष्ट्रीयकृत बैंकों के लिये प्रबन्ध योजना तैयार करने का भी अधिकार दिया गया है इसके अन्तर्गत दिसम्बर,197० में संसद में प्रस्तुत राष्ट्रीयकृत बैंकों की प्रबन्ध योजना के सम्बन्ध में मुख्य बातें इस प्रकार है :-

A. राष्ट्रीयकृत बैंकों के संचालक मण्डलों का गठन - इसके गठन का अधिकार केन्द्र सरकार को होगा। निदेशक मण्डल का गठन निम्नानुसार होगा -

(a) **पूर्णकालिक निदेशक (Whole Time Director)** की संख्या दो से अधिक नहीं होगी और उनमें से एक प्रबन्ध निदेशक (Managing Director) होगा।

(b) **एक निदेशक बैंक** के कर्मचारियों में से लिया जायेगा जिसकी नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा सम्बद्ध बैंकों की प्रतिनिधि यूनियनों द्वारा सुझाये गये तीन नामों की सूची में से किये जाने का प्रावधान है।

(c) एक निदेशक केन्द्र सरकार द्वारा राष्ट्रीयकृत बैंक के उन कर्मचारियों में से नियुक्त किया जायेगा जो कर्मकार (Workmen) नही हैं।

(d) **एक निदेशक** जमाकर्ताओं के हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिये नियुक्त किया जायेगा।

(e) **तीन निदेशक** ऐसे व्यक्ति होंगे जो क्रमश: कृषक, श्रमिकों तथा शिल्पकारों के हितों का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं, इन्हे केन्द्र सरकार के मतानुसार नियुक्त किया जायेगा।

(f) **एक निदेशक** रिजर्व बैंक के अनुमोदन से रिजर्व बैंक के कर्मचारियों में से लिया जा सकेगा।

(g) **एक निदेशक** केन्द्र सरकार का अधिकारी होगा।

(h) **एक निदेशक अथवा एक से अधिक परन्तु अधिकतम पांच निदेशक तक**

ऐसे विषयों के विशेषज्ञों मेंसे लिये जा सकेंगे जो केन्द्र सरकार की दृष्टि में अपने विशेष ज्ञान अथवा व्यवहारिक अनुभव से राष्ट्रीयकृत बैंक के कार्य में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

B. संचालक मण्डलों के चेयरमैन तथा प्रबन्ध निदेशक:-

राष्ट्रीयकृत बैंकों की प्रबन्ध व्यवस्था के अनुसार उपरोक्त निदेशकों में से केन्द्र सरकार किसी एक को संचालक मण्डल का अध्यक्ष नियुक्त करेगी जो बोर्ड की बैठकों की अध्यक्षता करेगा तथा किसी एक निदेशक को बैंक का प्रबन्ध निदेशक (Managing Director) नियुक्त करेगी जो बैंक के मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में कार्य में कार्य करेगा। केन्द्र सरकार चाहे तो इन दोनों पदों पर ही निदेशक को नियुक्त कर सकती है।

C. राष्ट्रीयकृत बैंकों की प्रबन्ध समिति (Managing Committees) का गठन एवं अधिकार : -

इस समिति में बैंक का चेयरमैन, प्रबन्ध निदेशक, रिजर्व बैंक अधिकारियों में से मनोनित निदेशक तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनित अधिकारी निदेशक के अतिरिक्त केन्द्र सरकार द्वारा नामित निदेशक भी सम्मिलित हो सकेंगे जिनकी अधिकतम संख्या चार तक हो सकेगी। यह प्रबन्ध समिति उन अधिकारों का प्रयोग करेगी जो संचालक मण्डल द्वारा उसे निष्पादन हेतु सौंपे गये हैं।

D. संचालक मण्डलों द्वारा सलाहकार समितियों (Advisory Committees) का गठन एवं उनके कार्य:-

अधिनियम के अन्तर्गत राष्ट्रीयकृत बैंकों के संचालक मण्डलों द्वारा सलाहकार समितियों के गठन की भी व्यवस्था की गई है। ये समितियां संचालक मण्डल द्वारा सौंपे गये

कार्यों का सम्पादन करेंगी तथा उसके द्वारा सौंपे गए विषयों पर सलाह देंगी। इन समितियों का गठन करने में बैंक के निदेशकों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को समितियों में सदस्य बनाये जाने का प्रावधान किया गया है।

E. राष्ट्रीयकृत बैंकों के लिये पांच प्रादेशिक सलाहकार समितियों के गठन (Five Regional Consultative Committees) का प्रावधान:-

राष्ट्रीयकृत बैंकों की प्रबन्ध योजना के अन्तर्गत पांच क्षेत्रों के लिये अलग-अलग प्रादेशिक सलाहकार समितियां नियुक्त करने का प्रावधान है। ये समितियां समय-समय पर अपने-अपने क्षेत्रों की बैंकिंग सम्बन्धी समस्याओं की समीक्षा करती है तथा रिजर्व बैंक और केन्द्र सरकार के विचार हेतु उपर्युक्त सिफारिशें प्रस्तुत करती है। इन समितियों में केन्द्र सरकार द्वारा मनोनीत व्यक्तियों के अतिरिक्त सम्बद्ध राज्यों तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों के प्रतिनिधि सम्मिलित किये जाने का प्रावधान भी है।

9. केन्द्र सरकार को राष्ट्रीयकृत बैंकों के पूंजी आकार में वृद्धि का अधिकार (Right of Central Govt.to Increase Capital of Nationalised Banks): -

अधिनियम की धारा 9 के अन्तर्गत राष्ट्रीयकृत बैंकों की पूंजी के आकार में वृद्धि करने का अधिकार भी केन्द्र सरकार को दिया गया है। अधिनियम की धारा 9(2) के अनुसार ऐसे बैंकों की प्रदत्त पूंजी अधिक से अधिक 15 करोड़ रू. ही हो सकती है।

10. राष्ट्रीयकृत बैंकों के लेखे एवं अंकेक्षण (Accounts and Audit) सम्बन्धी प्रावधान: -

इस संबंध में निम्न प्रावधान है:-

(i) धारा 10(1) के अन्तर्गत राष्ट्रीयकृत बैंकों की लेखा पुस्तकें (Books of Accounts) प्रत्येक वर्ष 31दिसम्बर को बन्द की जायेगी।

(ii) धारा 10(3) के अनुसार यह प्रावधान किया गया है कि रिजर्व बैंक की पूर्वानुमति लेकर प्रत्येक बैंक ऐसा अंकेक्षक नियुक्त करेगा जो कम्पनियों के अंकेक्षक होने योग्य है। रिजर्व बैंक ऐसे अंकेक्षकों का पारिश्रमिक केन्द्र सरकार के परामर्श से निर्धारित करेगा।

(iii) धारा 10(4) के अन्तर्गत नियुक्त अंकेक्षकों को बैंक की सभी लेखा पुस्तकों, लेखों तथा प्रलेखों (Documents) को न्यायोचित समय में देखने व जाँच करने का अधिकार होगा। जरूरत पड़ने पर अंकेक्षक बैंक के अभिरक्षक (Custodian) अथवा किसी अधिकारी अथवा कर्मचारी से खातों के सम्बन्ध में पूछताछ करने का भी अधिकारी होगा। इसके अतिरिक्त बैंक के अंकेक्षकों को जांच-पड़ताल में अपनी सहायतार्थ किसी लेखापाल (Accountant) अथवा किसी अन्य व्यक्ति को भी नियोजित करने का अधिकार है, इसका व्यय भार बैंक वहन करेगा।

(iv) धारा 10(5) के प्रावधान के अन्तर्गत अन्य बैंकिंग कम्पनियों की भांति ही इन बैंकों के अंकेक्षक भी अपना अंकेक्षण प्रतिवेदन तथा प्रमाण पत्र बैंकों को प्रस्तुत करेंगे, साथ ही ऐसे तथ्यों की जानकारी भी बैक को देंगे जो उनकी जानकारी में आये है।

(v) धारा 10(6) के अनुसार अंकेक्षक द्वारा प्रतिवेदन (Auditor's Report) केन्द्र सरकार को प्रस्तुत किया जावेगा तथा उसकी एक-एक प्रति क्रमश: रिजर्व बैंक तथा सम्बन्धित बैंक को प्रेषित की जायेगी।

11. राष्ट्रीयकृत बैंक के लाभ का वितरण (Distribution of Nationalised banks):-

धारा 10(7) में प्रावधान किया गया है कि समस्त वैधानिक प्रावधानों की पूर्ति एवं समायोजन के पश्चात् राष्ट्रीयकृत बैंकों के लाभ-हानि खातों में जो भी लाभ शेष रहेगा वह केन्द्र सरकार को हस्तान्तरित कर दिया जायेगा।

12. राष्ट्रीयकृत बैंकों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के सेवा सम्बन्धी प्रावधान (Provisoin for services of Nationalised Bank):-

धारा 12(2) में प्रावधान किया गया है कि राष्ट्रीयकरण से पूर्व उस बैंक में जो अधिकारी एवं कर्मचारी कार्यरत थे, वे राष्ट्रीयकृत बैंक में भी उसी तरह अधिकारी एवं कर्मचारी माने जायेंगे और उन्ही सेवा शर्तों पर कार्यरत रहेंगे जैसे ये पूर्व बैंक में थे।

13. राष्ट्रीयकृत बैंकों में कर्तव्यपरायणता एवं गोपनीयता का दायित्व (Obligations as to Fidelity and Secrecy) : -

अधिनियम की धारा 13 में प्रावधान है कि:-

(i) सभी राष्ट्रीयकृत बैंक बैंकों में प्रचलित पद्धतियों, व्यवहारों एवं परम्पराओं का अनिवार्य रूप से पालन किया जावेगा, जब तक विधि द्वारा उपेक्षित न हों।

(ii) ऐसे बैंकों से यह भी अपेक्षा है कि वे अपने विभिन्न घटकों से सम्बन्धित सूचनाओं को गुप्त (secret) रखेंगे और वैधानिक दृष्टि से आवश्यक होने पर ही ऐसी सूचनाओं को उचित तरीके से प्रकट करेंगे।

(iii) राष्ट्रीयकृत बैंक के निदेशक, अंकेक्षक, सलाहकार, अधिकारी तथा कर्मचारी प्रत्येक को अपने पद का कार्य भार संभालने से पूर्व कर्त्तव्य परायणता और गोपनीयता की निर्धारित प्रपत्र में शपथ लेना अनिवार्य है।

14. राष्ट्रीयकृत बैंकों के निदेशकों का दायित्व (Liability of Directors of Nationalised Bank):-

धारा 16(2) में राष्ट्रीयकृत बैंकों के निदेशकों, स्थानीय बोर्ड अथवा कमेटी सदस्यों के लिये उनके दायित्व सम्बन्धी प्रावधान स्पष्ट किये गये हैं। यह प्रावधान किया गया है कि निम्न दशाओं में बैंक को होने वाली हानि, व्यय, कमी अथवा दोष के सम्बंध में व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होंगे:-

(i) बैंक द्वारा प्राप्त किसी सम्पत्ति अथवा प्रतिभूति के मूल्य में कमी अथवा उनके स्वामित्व में उत्पन्न दोष से होने वाली हानि, अथवा

(ii) बैंक के किसी ग्राहक अथवा ऋणी के दिवालिया हो जाने अथवा उसके किसी गलत कार्य के कारण हुई हानि, अथवा

(iii) अपने पद का कार्य सम्पादन करने के सम्बन्ध में किये गये कार्य से हुई हानि।

किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट प्रावधान है कि यदि ऐसी हानि, व्यय, कमी या दोष बैंक के किसी निदेशक अथवा सदस्य के द्वारा जानबूझकर किये गये कार्यों अथवा उसकी चूक (default) के कारण हुई है तो उन्हे इस प्रावधान का लाभ नहीं मिलेगा एवं वे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होंगे।

15. क्षतिपूर्ति का अधिकार (Right of Indemnity):-

अधिनियम की धारा 16(1) में राष्ट्रीयकृत बैंकों के कस्टोडियनों, अधिकारियों, कर्मचारियों, भारत सरकार और रिजर्व बैंक के अधिकारियों को अपने पदों का कर्त्तव्यपालन करने में जो भी व्यय अथवा हानि उठानी पड़े तो उसकी क्षति-पूर्ति सम्बन्धित बैंक द्वारा की जावेगी। साथ ही यह भी प्रावधान है कि यदि ऐसा व्यय या हानि राष्ट्रीयकृत बैंक के कस्टोडियनों, अधिकारियों, कर्मचारियों अथवा उक्त केन्द्र सरकार एवं रिजर्व बैंक अधिकारियों द्वारा जानबूझकर कर किये गये कार्यों अथवा चूक (default) के कारण हुई है तो उपरोक्त अधिकार प्राप्त नहीं होगा। संबंधित पक्षकार व्यक्तिगत रूप से इस हेतु जिम्मेदार होंगे।

16. राष्ट्रीयकृत बैंकों का नियमन (Regulation of Nationalised Banks):-

अधिनियम की धारा 19 में यह प्रावधान है कि संचालक मण्डल को राष्ट्रीयकृत बैंकों के नये नियमनों (Regulations) की रचना का अधिकार होगा, किन्तु ये नियमन ;Regulationsद्ध बैंकिंग कम्पनीज (उपक्रम अधिग्रहण एवं अन्तरण) अधिनियम, 1970 के अथवा समय-समय पर किये गये प्रावधानों के अनुरूप होंगे। नये नियमन नहीं बनाये जाने तक बैंकों के पूर्व में निर्धारित अन्तर्नियम, नियम अथवा उपनियम अथवा आदेश ही नये राष्ट्रीयकृत बैंकों पर लागू माने जाने का प्रावधान था।

4.6 सारांश

जैसा कि आपने अध्ययन किया है कि बैंकिंग व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय बैंकिंग (नियमन) अधिनियम 1949 लागू किया गया था। योजनाबद्ध विकास के दो दशकों के बाद भी यह महसूस किया गया कि जिस उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अधिनियम बनाया गया वे उद्देश्य प्राप्त नहीं हो रहे हैं। निजी क्षेत्र में बैंकिंग व्यवस्था सुचारु रूप से विकसित नहीं हो रही थी, अत: यह आवश्यक समझा गया कि बैंकों पर प्रभावशाली नियंत्रण एवं पूरे देश में हर क्षेत्र में बैंकिंग सुविधा के विस्तार के लिए अधिनियम में संशोधन कर ऐसी व्यवस्था की जावे जिससे प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया जा सके एवं सरकारी या केन्द्रीय बैंक का प्रभावी नियन्त्रण समुचित बैंकिंग व्यवस्था पर हो सके। इसी उद्देश्य से बैंकिंग कम्पनीज (उपक्रम अधिग्रहण एवं अन्तरण) अधिनियम लागू किया गया एवं अधिनियम के अन्तर्गत अब तक 2 चरणों में देश के 20 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। ये राष्ट्रीयकृत बैंक बहुत सीमा तक अपने उद्देश्यों में सफल रहे हैं। इसके अतिरिक्त निजी क्षेत्र के इम्पीरीयल बैंक को 1955 में सार्वजनिक क्षेत्र में लिया गया है जिसके 7 सहयोगी बैंक भी सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यरत हैं।

4.7 शब्दावली

साख निर्माण	–	उपलब्ध मुद्रा एवं साख से साख का सृजन करना साख निर्माण कहलाता है।
मौद्रिक नीति	–	मौद्रिक नीति का अभिप्राय एक निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मुद्रा का विस्तार एवं संकुचन करने से है।
राष्ट्रीयकरण	–	जब सरकार किसी संस्था का स्वामित्व अपने अधीन ले लेती है तो इस क्रिया को राष्ट्रीयकरण कहते हैं।
अनुबन्ध	–	अनुबन्ध एक ऐसा ठहराव जो पक्षकारों के मध्य दायित्व उत्पन्न करता है तथा उसकी व्यवस्था करता है।

4.8 अभ्यास प्रश्न

अ) लघुत्तरात्मक प्रश्न: -

(1) बैंकिंग संशोधन अधिनियम पारित करने की आवश्यकता क्यों पड़ी?

(2) बैंकिंग संशोधन अधिनियम के उद्देश्य बताइये।

(3) राष्ट्रीयकरण क्या होता है?

(4) अधिनियम के अनुसार प्रारम्भ में कितनी व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया था? उनके नाम बताइये।

(5) 1980 में जिन 6 बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया था उनके नाम बताइये।

(6) क्षतिपूर्ति का अधिकार क्या होता है?

(7) सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक तथा राष्ट्रीयकृत बैंक में क्या अंतर है?

(8) राष्ट्रीय बैंक के निदेशक के दायित्वों का वर्णन कीजिए।

ब)निबन्धात्मक प्रश्न: -

1. बैंकिंग संशोधन अधिनियम 1970 (बैंकिंग कम्पनीज (उपक्रम अधिग्रहण एवं अन्तरण) अधिनियम, 1970) के प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिये।
2. राष्ट्रीयकृत बैंकों के सम्बन्ध में पारित बैंकिंग कम्पनीज (उपक्रम अधिग्रहण एवं अन्तरण) अधिनियम, 1970 की मुख्य विशेषताएं समझाइये।
3. भारतीय बैंकिंग (नियमन) अधिनियम 1949 में संबोधन की क्यों आवश्यकता पड़ी? इस अधिनियम में 1970 में पारित संशोधन का वर्णन कीजिए।

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. बैंकिंग कम्पनीज (उपक्रम अधिग्रहण एवं अन्तरण) अधिनियम 1970
2. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - डॉ. मालीराम शर्मा एवं वशिष्ठ
3. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - डॉ. त्रिवेदी शर्मा आदि
4. भारत में बैंकिंग व्यवस्था - डॉ. एम. एल. झिंगन

इकाई : 5
बैंक एवं ग्राहक में संबंध

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 इतिहास एवं विकास

5.3 अर्थ एवं परिभाषा

5.4 बैंक तथा ग्राहक के मध्य संबंध

सामान्य संबंध

- ऋणी एवं ऋणदाता का संबंध
- अभिकर्ता के रूप में संबंध
- प्रन्यासी के रूप में संबंध
- परामर्श दाता के रूप में संबंध

विशेष संबंध

- बैंकर के अधिकार
- ग्रहणाधिकार
- ग्राहक के भुगतानों के नियोजन का अधिकार
- समायोजन/प्रतिसाद का अधिकार
- ब्याज कमीशन व अन्य आकस्मिक प्रभार का अधिकार
- परिसीमा अवधि

बैंक के दायित्व

- चैकों को का भुगतान करना
- चैक के अनुचिवत अनादरण पर दायित्व
- खातों की गोपनीयता बनाये रखने का दायित्व
- अनुचित एवं गलत सूचना देने पर दायित्व
- कुर्की आदेश पर दायित्व

5.5 नामांकन सुविधा

5.6 बैंकर एवं ग्राहक संबंधों की समाप्ति

5.7 उदाहरण

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 अभ्यास प्रश्न

5.11 संदर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

बैंक एवं ग्राहक में संबंध का अध्ययन करवाने के निम्नांकित उद्देश्य हैः-

- इस संबंध की परिभाषा को जानना, एवं समझना।
- इस संबंध में वर्णित इसके इतिहास एवं विकास का अध्ययन करवाना।
- इस संबंध में वर्णित बैंकों के दायित्व की जानकारी करवाना

5.1 प्रस्तावना

बैंक एवं ग्राहक के संबंध अधिक महत्वपूर्ण एवं जटिल भी है। बैंकों की कार्यप्रणाली का संबंध ग्राहकों के व्यवहार पर निर्भर है। बैंकों की लगातार बढ़ती लोकप्रियता के कारण बैंक एवं ग्राहक के बीच विद्यमान संबंधों की स्पष्ट व्याख्या एवं विश्लेषण करना अत्यावश्यक है। संबंधों की स्पष्टता से ही बैंक एवं ग्राहक दोनों को अपने कर्तव्य एवं दायित्वों के निर्वाह में सुगमता रहती है। इसके अभाव में बैंक एवं ग्राहकों को कई विवादों एवं अड़चनों का सामना करना पड़ सकता है। अत: बैंकों के लगातार लंबे अवधि से कार्य संपादित करने एवं ग्राहकों को भी लगातार लंबे अनुभवों के कारण इन संबंधों को कुछ विद्यमान कानूनों एवं व्यवहारों के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। बैंकों के लंबे अनुभवों के कारण कार्य परंपरायें ही कानून के समान महत्व रखती है। इस प्रकार बैंक एवं ग्राहक के मध्य संबंधों की व्याख्या उपलब्ध अधिनियम की धाराओं के साथ-साथ बैंक की परंपराओं के आधार पर भी की जाती है। बैंक एवं ग्राहक दोनों को अपने अधिकारों, कर्तव्यों एवं दायित्वों को स्पष्टता से समझने एवं निर्वहन करने पर ही दोनों का विकास एवं संबंधों में मधुरता संभव है।

5.2 इतिहास एवं विकास

बैंक एवं ग्राहक के संबंधों का इतिहास बैंकों के विकास के इतिहास के साथ ही जुड़ा हुआ है। बैंकों के विकास का इतिहास ईसा से 2 हजार वर्ष पूर्व बेबीलोनिया व युनान के मंदिर के उधार लेन देन कार्य से माना जाता है। भारत में वौदिक काल से इनका विद्यमान होना माना जाता है।

प्रारंभ में बैंकों की संख्या अत्यधिक कम होने से ग्राहकों की संख्या भी सीमित थी। अत: संबंधों में अत्यधिक निकटता थी। संबंधों में जटिलताओं का अभाव था। परंतु बैंकिंग का विकास लगातार तेजी से बढ़ा, बैंकों की संख्या एवं कार्य प्रणाली में तेजी से प्रसार ही नहीं हुआ, बल्कि व्यावसायिक आवश्यकता के अनुरूप बैंकों के कार्यों में विविधताओं के साथ तेजी से वृद्धि हुई। आज बैंकों एवं ग्राहकों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई है। दूर संचार की इस क्रांति के युग में बैंकों की कार्यप्रणाली में हुए बदलाव के साथ ही ग्रहकों के मध्य संबंधों में भी विविधता के साथ कई नयी जटिलताएं भी सामने आ रही हैं। अत: आज बैंक एवं ग्राहकों के संबंधों की स्पष्ट व्याख्या और भी अधिक न्यायोचित हो गयी है।

5.3 अर्थ एवं परिभाषा

बैंक एवं ग्राहक के संबंधों को समझने से पूर्व बैंक एवं ग्राहक की परिभाषा एवं अर्थ समझना अधिक आवश्यक है।

बैंक का अर्थ एवं परिभाषा

सामान्यतया मुद्रा में लेन देन करने वाली संस्था ही बैंक कहलाती है। बैंक अपने ग्राहकों से जमाएं स्वीकार करती है तथा इनके मांगने पर ड्राफ्ट चैक, आदेश या अन्य प्रकार से पुनर्भुगतान करती है तथा उन्हें उधार देने का कार्य करती है।

भारतीय विनियम साध्य विलेख अधिनियम, 1881 के अनुसार "बैंकर के अंतर्गत बैंकिंग क कार्य करने वाला प्रत्येक व्यक्ति, संस्था, डाकघर, बचत बैंक सम्मिलित है।" भारतीय बैंकिंग (नियमन) अधिनियम 1949 के अनुसार" बैंक का आशय उधार देना तथा विनियोजन के लिए जनता से मुद्रा में जमाएं स्वीकार करना तथा चैक, ड्राफ्ट आदेश या अन्य प्रकार से मांगने अथवा अन्य प्रकार से वापिस पुनर्भुगतान की व्यवस्था करना है।"

इस प्रकार बैंक वह है जो बैंक का कार्य करती है। मुद्रा में लेनदेन करना बैंकों का प्रमुख कार्य है। वर्तमान में बैंकों के कार्यों में विविधतायें आने से इनके कार्यों में अत्यधिक वृद्धि हो रही है।

ग्राहक का अर्थ

बैंक का ग्राहक वह संस्था या व्यक्ति होता है जिसका बैंक में खाता होता है तथा बैंक के साथ नियमित व्यवहार रखता है।

सर जॉन पेजेट के अनुसार " एक आकस्मिक सौदा कर लेने मात्र से किसी व्यक्ति को बैंक का ग्राहक नहीं कहा जा सकता। ग्राहक होने के लिए कुछ मान्य सौदे अथवा आदत होनी आवश्यक है।"

उपरोक्त परिभाषा के आधार पर ही 1894 में मेथ्यूज बनाम विलियन्स ब्राउन एंड कंपनी के मध्य हुए विवाद में निर्णय में स्पष्ट किया गया कि बैंक के साथ खाता खोलते समय केवल प्रथम जमा के व्यवहार के आधार पर कोई व्यक्ति बैंक का ग्राहक नहीं होता बल्कि बैंक के साथ लेनदेन में नियमितता होनी आवश्यक है। उपरोक्त परिभाषा को प्राचीन विचारधारा माना जाता है।

आधुनिक विचारधारा के अनुसार कोई भी व्यक्ति बैंक का ग्राहक तब से माना जाता है जब से वह बैंक में अपना खाता खुलवाता है। चाहे आगे लेनदेन नियमित हो या अनियमित।

डॉ. डी. एल. हार्ट के अनुसार "एक ग्राहक वह है जिसका बैंकर के पास कोई खाता हो या जिसके लिए कोई बैंकर स्वभावत: बैंकर के रूप में कार्य करने का दायित्व अपने उपर लेता है।"

सी. बी. ड्रोवर तथा डब्लयू बी बोसले के अनुसार "बैंकर ग्राहक संबंध उत्पन्न करने के लिए इस आशय से आपसी इरादा होना आवश्यक है तथा बैंकिंग खाता खोलना आवश्यक है। वह संबंध उस क्षण से ही स्थापित हो जाता है जिस समय पहली बार ऐसा निर्णय कर लिया है तथा इसमें वह पहला भुगतान भी सम्मिलित होता है जो खाता खोलने के लिए दिया जाता है।"

उपरोक्त आधुनिक परिभाषा के आधार पर ही कई निर्णय हुए हैं जिसमें सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड बंबई बनाम वी गोपीनाथन नायक तथा अन्य,लेड ब्रोक बनाम टाड 1914 ग्रेट वेस्टर्न रेल्वे बनाम लंदन एवं काउण्ट्री बैंक 1901 प्रमुख है। इस प्रकार ग्राहक होने की दो शर्ते हैं-

1. बैंक में अपने नाम का खाता हो, चाहे वह बचत खाता, चालू खाता या सावधि जमा खाता।
2. जिसका बैंक के साथ व्यवहार हो चाहे वह आकस्मिक या नियमित हो।

5.4 बैंक तथा ग्राहक के मध्य संबंध

बैंक अपने ग्राहकों के लिए कई प्रकार की सेवायें प्रदान करते हैं। बैंक ग्राहक के लिए एजेंट, सलाहकार, ट्रस्टी, ऋणदाता, विनियोक्ता आदि के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता

है। बैंकिंग सेवाओं में लगातार विविधता के कारण बैंक एवं ग्राहक के बीच संबंधों में कई पेचीदगियां एवं व्यापकता सामने आने लगी है। बैंक एवं ग्राहक संबंधों की व्याख्या में इनके परस्पर अधिकारों, कर्तव्यों एवं दायित्वों की प्रकृति एवं विश्लेषण सम्मिलित होता है। इस संबंध को दो भागों में विभाजित कर आसानी से समझा जा सकता है।

अ- सामान्य संबंध व ब- विशेष संबंध

अ- सामान्य संबंध

सामान्य संबंध में एक बैंकर अपने ग्राहक के लिए एजेन्ट, परामर्शदाता, ऋण दाता एवं ऋणी, तथा प्रन्यासी के रूप में जो भूमिका निभाता है, उसका विवरण निम्नानुसार उल्लेखित है।

1. ऋणदाता एवं ऋणी का संबंध

जब ग्राहक बैंक में अपने जमा खाते में राशि जमा कराता है तो बैंक ऋणी एवं ग्राहक ऋणदाता के रूप में होते हैं। इसके विपरीत जब बैंक अपने ग्राहकों को खाते में जमा राशि से अधिक राशि ओवर ड्राफ्ट के रूप में देता है या ऋण प्रदान करता है तो बैंक ऋणदाता एवं ग्राहक ऋणी होता है। उक्त संबंध की व्याख्या पपोजी बनाम हिल, 1808 विवाद में दिये गये निर्णय में की गई है।

जब ग्राहक द्वारा अपनी राशि बैंक में जमा करा दी जाती है, तब वह राशि बैंक अपनी राशि मानकर उसका विनियोग करती है। जमा राशि के बराबर राशि का आहरण जमाकर्ता द्वारा मांगने पर बैंक को अदा करनी होती है। जमा राशि पर निर्धारित ब्याज अदा भी करती है। ऐसी स्थिति में बैंक ऋणी एवं ग्राहक ऋणदाता होता है न कि अभिकर्ता या दलाल।

"जान पेजेट" ने भी कहा कि "बैंक तथा ग्राहक का संबंध प्रमुख रूप से देनदार एवं लेनदार का है जो ग्राहक के खाते की वर्तमान स्थिति से निश्चित की जाती है।"

ऋणी एवं ऋणदाता के रूप में बैंक तथा ग्राहक के संबंध की निम्न प्रमुख विशेषतायें हैं -

1. बैंक एवं ग्राहक के बीच एक अनुबंध

जब ग्राहक अपनी जमा राशि बैंक में अपने खाते में जमा कराता है तथा बैंक में खाता खुलवाता है उसी समय दोनों के मध्य अनुबंध हो जाता है जिसके अनुसार बैंक ऋणी हो जाता है तथा ग्राहक ऋण दाता। बैंक उक्त जमा राशि का विनियोग अपने लाभ कमाने के उद्देश्य से कर सकता है। उक्त राशि को ग्राहक द्वारा मांगने पर बैंक द्वारा लौटाना उसका दायित्व होता है।

2. गर्भित या अर्द्ध अनुबंध

बैंक एवं ग्राहक के मध्य ऋणी एवं ऋणदाता का संबंध 'अतिरिक्त दायित्व' उत्पन्न कर देता है। अतिरिक्त दायित्व में निम्नलिखित मुख्य बातें आती हैं -

1 अपने ग्राहकों के बिलों की वसूली करना।

2 बैंक अपने ग्राहकों को पूर्व सूचना दिये बिना अपना व्यवसाय बंद नहीं कर सकता।

3 ग्राहक का भी दायित्व है कि उसके द्वारा लिखित आदेशों के कारण बैंक के हित गुमराह या धोखे में पड़ने की संभावना न हो।

3. ग्राहक द्वारा जमा राशि की मांग करना अनिवार्य -

बैंक अपनी इच्छा से खाते में जमा राशि का भुगतान ग्राहक को नहीं कर सकता। यदि किसी कारण से संपूर्ण राशि का भुगतान बैंक कर दे तथा जिसके कारण ग्राहक के चैकों का अनादरण हो जाये तो इससे हुई क्षति की पूर्ति का दायित्व बैंक को वहन करना होगा।

4. मांग का समय व स्थान उपयुक्त हो

ग्राहक बैंक को भुगतान का आदेश उसी शाखा में प्रस्तुत कर सकता है जहां उसका खाता होता है तथा यह आदेश बैंकिंग कार्यवधि में प्रस्तुत करना होता है।

5. मांग का ढंग उपयुक्त होना चाहिए

ग्राहक अपनी जमा राशि प्राप्त करने का आदेश चैक या आहरण आदेश द्वारा भुगतान की प्रचलित रीति द्वारा ही भुगतान प्राप्त कर सकता है। ग्राहक के मौखिक या टेलिफोन पर दिये गये आदेशों की पालना करने के लिए बैंक बाध्य नहीं है।

6. समय सीमा नियम का लागू होना -

परिसीमन आधिनियम 1963 धारा 2 'ज' में दी गई परिसीमन की अवधियों की अनुसूची के अनुच्छेद 22 के अनुसार मांग तिथि के 3 वर्ष के अंदर अपने बैंक पर वाद प्रस्तुत करने का अधिकार होता है। यह समय सीमा नियम जमा राशि की मांग की तिथि से लागू होता है। 3 वर्ष की अवधि बीतने के पश्चात् ऋण समय वर्जित (Time barred) हो जाता है।

कालातीत ऋण की वसूली के लिए इस अधिनियम की धारा 3(1) के अनुसार उसकी वसूली के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।

7. पारस्परिक दायित्व

बैंक का ग्राहक के प्रति यह दायित्व होता है कि वह ग्राहक द्वारा लिखित चेकों को यथा समय भुगतान करे उसके बिलों का संग्रहण करे। ग्राहक के आदेशों का पालन करेगा। इसी प्रकार ग्राहक का भी बैंक के प्रति यह दायित्व बनता है कि वह चैक लिखते समय पूर्ण सावधानी बरतेगा ताकि बैंक को जालसाजी एवं गलत फहमी का शिकार न होना पड़े।

2. अभिकर्ता के रूप में संबंध

बैंक अपने ग्राहक का अभिकर्ता के रूप में निम्नलिखित प्रमुख कार्य सम्पन्न करता है-

1. ग्राहक के बिलों, चैकों, हुंडियों, प्रतिज्ञा पत्रों आदि का भुगतान प्राप्त करना।
2. ग्राहक के आदेशानुसार ब्याज, बीमा,किराया चंदा तथा ऋणों की किस्तों का भुगतान करना।
3. ग्राहकों की ओर से अंशों, ऋणपत्रों, बॉडों तथा अन्य प्रतिभूतियों रहा क्रय विक्रय करना।
4. ग्राहक के धन को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना।
5. ग्राहक के लिए ब्याज, लाभांश किराया, ऋण की किस्तें आदि वसूल करना।
6. ग्राहक के आदेशानुसार एजेंट के रूप में अन्य कार्य करना।

बैंक को अपने ग्राहक के आदेशानुसार एजेन्ट के रूप में कार्य करते समय प्रमुख निम्न सावधानियां बरतनी चाहिए।

1 बैंक को दिये गये आदेश स्पष्ट एवं लिखित होने चाहिए।

2 बैंकों को अपने ग्राहक के एजेन्ट के रूप में जो सेवायें प्रदान की है उसका पारिश्रमिक वसूल करने का पूर्ण अधिकार है।

3 यदि बैंक अभिकर्ता के रूप में कार्य करते समय लापरवाही या कपटपूर्ण व्यवहार के कारण ग्राहक को कोई क्षति होती है तो ग्राहक को भारतीय अनुबंध एक्ट की धारा 162 के प्रावधानों के अंतर्गत बैंकर को क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी माना जाता है।

3. प्रन्यासी के रूप में संबंध

बैंक अपने ग्राहकों के बहुमूल्य आभूषण, महत्वपूर्ण प्रपत्र तथा धन आदि लॉकर में सुरक्षित रखने की सुविधा प्रदान करते हैं। सुरक्षार्थ रखी वस्तुओं का स्वामित्व तो ग्राहक का होता है परंतु बैंकर एक ट्रस्टी के रूप में सेवायें प्रदान करता है। ट्रस्टी के रूप में सेवायें प्रदान करते समय बैंक को निम्न सावधानियां बरतनी चाहिए।

1 सुरक्षार्थ प्राप्त वस्तुओं की प्रविष्टि सेफ कस्टडी रजिस्टर में कर लेनी चाहिए तथा ग्राहक के इस पर हस्ताक्षर करवा लेने चाहिए। वापिस लौटाने पर भी इस पर ग्राहक के हस्ताक्षर अवश्य करवा लेना चाहिए।

2 बैंक को इस संपति की सुरक्षा वैसे ही प्रदान करनी चाहिए जैसा व्यक्ति स्वयं अपनी संपति की करता है। लापरवाही से होने वाली क्षतिपूर्ति के लिए बैंक उत्तरदायी होगा।

3 बैंक को ग्राहक की संपति का निरीक्षण करने का अधिकार है।

4 ग्राहक द्वारा स्वयं के मांगने या उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति को सुरक्षार्थ रखी संपति को पुन: सौंपने का दायित्व बैंक का होता है। मनोनीत व्यक्ति को या उसके उत्तराधिकारी को उसकी मृत्यु होने पर संपति को लौटाना होता है। अनाधिकृत व्यक्ति को संपति लौटाने पर बैंकर क्षतिपूर्ति का उत्तरदायी होगा।

5 संपति के गुम हो जाने या उसको कोई क्षति पहुंचने पर बैंकर क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होगा।

4. परामर्शदाता के रूप में संबंध

बैंक आर्थिक एवं वित्तीय क्षेत्र का विशेषज्ञ होता है। आजकल बैंक अपने ग्राहकों को पूंजी विनियोजन के संबंध में उपयुक्त सलाह भी प्रदान करते हैं। कई बैंकों ने इसके लिए अलग से परामर्श प्रकोष्ठ भी बना रखे हैं। बैंकर को ग्राहक को कोई भी सलाह पूर्ण सावधानी एवं ईमानदारी के साथ प्रदान करनी चाहिए। सलाह देते समय कोई भी तथ्य नहीं छिपाना चाहिए जिससे ग्राहक को कोई नुकसान हो जाए। यदि बैंकर ऐसा नहीं करता है तो उसे ग्राहक को हुई क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

ब- विशेष संबंध

आधुनिक बैंकिंग व्यवसाय में जटिलताओं एवं विविधताओं के कारण बैंक एवं ग्राहक के मध्य संबंधों में बैंक को प्रदत्त दायित्वों एवं अधिकारों के कारण इनके मध्य विशिष्ट संबंध उत्पन्न होते हैं। जो प्रमुख रूप से निम्न हैं -

बैंकर के अधिकार

बैंक को अपने ग्राहकों के विरूद्ध निम्न पांच वैधानिक अधिकार प्राप्त हैं -

1. ग्रहणाधिकार

भारतीय संविदा अधिनियम 1872 की धारा 171 के अंतर्गत बैंकर को अपने ग्राहक के विरूद्ध ग्राहक द्वारा बैंक के पास रखी गयी संपति को स्पष्ट निर्देशों एवं विशेष उद्देश्य के अभाव

में तब तक रोके रखने का अधिकार है जब तक कि वह बैंकर के बकाया ऋणों का भुगतान न कर दे।

ग्रहणाधिकार दो प्रकार का होता है-

1. सामान्य ग्रहणाधिकार -

भारतीय संविदा अधिनियम 1872 की धारणा 17 के अनुसार बैंकर को ग्राहक के विरूद्ध सामान्य ग्रहणाधिकार प्राप्त है। वेण्डो बनाम बार्नेट विवाद में दिये गये निर्णय में यह स्पष्ट किया गया कि जब तक कोई स्पष्ट आशय का अनुबंधन हो अथवा ग्रहणाधिकार के अंतर्गत गर्भित अनुबंध संबंधी परिस्थितियां न हो, बैंकर को निश्चित रूप से उन संपूर्ण संपतियों पर सामान्य ग्रहणाधिकार प्राप्त होता है।

2. विशिष्ट ग्रहणाधिकार -

बैंकर का विशिष्ट ग्रहणाधिकार तब प्राप्त होता है जब बैंकर ने अपने पास रखी संपति को प्राप्त करने में धन या विशेष प्रयत्न किया हो।

बैंकर के ग्रहणाधिकार के अपवाद -

1 जब ग्राहक बैंकर को अपनी बहुमूल्य वस्तुएं दस्तावेज, आभूषण सुरक्षा हेतु सौंपता है तो बैंकर ट्रस्टी के रूप में होता है। अत: ऐसी संपतियों पर ग्रहणाधिकार प्राप्त नहीं होता।

2 विशेष उद्देश्य या विशिष्ट निर्देशों से सौंपी संपति पर भी बैंकर का ग्रहणाधिकार नहीं होता।

3 ग्राहक ने यदि किसी अन्य व्यक्ति के ट्रस्टी होने के कारण बैंक में राशि जमा कराई है तो ऐसे खाते में जमा राशि पर बैंक का ग्रहणाधिकार नहीं हो सकता।

4 भूल से या जोर जबरदस्ती से प्राप्त संपति पर बैंक का ग्रहणाधिकार नहीं हो सकता।

5 अपरिपक्व क्या एवं अस्वीकृत क्या की प्रतिभूति के रूप में जमा संपति पर बैंकर का ग्रहणाधिकार लागू नहीं होता।

6 विक्रय के उद्देश्य से बैंकर को सौंपी संपति पर भी बैंक का ग्रहणाधिकार नहीं होता।

7 संयुक्त नाम या अन्य व्यक्ति के साथ जमा खाते में जमा राशि या संपति पर बैंक का ग्रहणाधिकार नहीं हो सकता।

2. बैंकर का ग्राहक के भुगतानों के नियोजन का अधिकार

यदि किसी ग्राहक के बैंक में ऋण के अलग-अलग तिथियों के अलग-अलग खाते हो तथा जब ग्राहक इन खातों में धन राशि जमा कराता है तो बैंकर को यदि कोई स्पष्ट निर्देश नहीं दिये गये हो तो ऐसी दशा में बैंकर को अपने विवेक एवं इच्छानुसार नियोजन (Appropriation) का विशेषाधिकार प्राप्त होता है। कलेटन विवाद में यह तथ्य स्पष्ट हुआ कि स्पष्ट निर्देशों के अभाव में बैंक प्रत्येक भुगतान राशि को सबसे पहले देय ऋण का भुगतान मानेगा और जमा प्रविष्टि द्वारा नाम प्रविष्टि का समायोजन क्रमानुसार होगा। इस संदर्भ में बैंक को निम्न सावधानियां रखनी चाहिए

1. ग्राहक द्वारा किये गये भुगतानों का नियोजन या तो ग्राहक के स्पष्ट निर्देशानुसार हो या परिस्थिति गर्भित निर्देश अनुसार या बैंक के स्वयं विवेकानुसार करना चाहिए।

2. स्पष्ट निर्देशों के अभाव में बैंकर ऐसे भुगतानों का समायोजन समयावधि पार ऋणों के भुगतानों में भी कर सकता है। इसकी सूचना ग्राहक को अवश्य देनी चाहिए।
3. पुराने भुगतानों का नये खाते में नियोजन संभव नहीं होता।

3 बैंकर का समायोजन अथवा प्रतिसाद का अधिकार

बैंकर को यह वैधानिक अधिकार प्राप्त है कि वह किसी ग्राहक के अपने विभिन्न खातों में जमा राशि को उसी ग्राहक में नाम शेष वाले खाते में परस्पर प्रतिसाद/समायोजन कर सकता है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति का ऋण खाते में 2,00,000 रू डेबिट शेष है तथा इसी ए व्यक्ति के जमा खाते में 1,00,000 रू. जमा शेष है तो बैंक चाहे तो जमा यह राशि ऋण खाते में जमा कर सकती है। शेष 1,00,000 रूपये ऋण राशि को वसूल करने का दावा पेश कर सकती है।

समायोजन अधिकार की शर्ते -

1. विभिन्न प्रकार के खाते उसी ग्राहक के नाम से खोले गये हो।
2. विभिन्न खाते उसी शाखा या उसी बैंक की विभिन्न शाखाओं में स्थित हो।
3. इस अधिकार के विरूद्ध कोई परस्पर कोई विपरीत समझौता न किया गया हो।
4. ग्राहक का खाता ट्रस्टी के रूप में नहीं होना चाहिए।
5. संयुक्त खाते का समायोजन एकाकी एवं एकाकी खाते का समायोजन संयुक्त खाते में नहीं हो सकता हे।
6. समायोजन के अधिकार का प्रयोग परिपक्व देय दायित्व के भुगतान के लिए ही हो सकता है।
7. कुर्की आदेश की दशा में शेष राशि का ही समायोजन संभव है।

4 बैंकर का ग्राहक से ब्याज, कमीशन एवं अन्य आकस्मिक प्रभार का अधिकार

बैंकर को अपने ग्राहक को दिये गये ऋण या अधिविकर्ष पर ब्याज प्राप्त करने का अधिकार है। इसी प्रकार ड्राफ्ट बनाने, अन्य सेवायें प्रदान करने के बदले कमीशन व अन्य विशेष सेवाओं के बदले शुल्क या आकस्मिक प्रभार वसूलने का वैधानिक अधिकार बैंकर को प्राप्त है। जिसे संबंधित व्यक्ति के खाते में नाम लिखा जाता है।

5. बैंकर के लिए परिसीमा अवधि

परिसीमा अधिनियम 1963 के अनुसार भुगतान वसूल करने की परिसीमा अवधि तीन वर्ष है, जो ऋण देय तिथि से आगे मानी जाती है। इसी प्रकार बैंकर द्वारा ग्राहकों की जमा धन राशि को भुगतान की परिसीमा अवधि भी तीन वर्ष है। यह तिथि जमाकर्ता द्वारा मांगे जाने की तिथि से मानी जाती है। ग्राहक द्वारा मांग न करने की दशा में ग्राहक की जमा राशि को सदैव बनाये रखने का अधिकार है।

बैंकर का ग्राहकों के प्रति दायित्व

ग्राहकों के प्रति प्रमुख दायित्व निम्न है-

1. ग्राहकों के चैकों का भुगतान करना

बैंकों का यह वैधानिक दायित्व है। भारतीय विनियम साध्य विलेख अधिनियम 1981 की धारा 31 के अनुसार प्रत्येक बैंकर को चैक का भुगतान करने का वैधानिक दायित्व है। इसके लिए निम्न शर्तों की पूर्ति होनी चाहिए।

1. ग्राहक द्वारा लिखा चैक पूर्ण हो, उसमें चाही गई सभी सूचनाएं तिथि, आहार्यी (Drawer) का नाम, राशि, नमुनानुसार हस्ताक्षर, बिना काट छांट के राशि अंकों व शब्दों में समान लिखी हो।
2. आहार्यी के खाते में पर्याप्त धन राशि जमा हो।
3. चैक विधिवत ठीक समय उचित स्थान व उचित ढंग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
4. ग्राहक का खाता होने पर ही बैंकर चैक का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है।
5. अधिविकर्ष की सुविधा बिना पूर्व सूचना के बैंक द्वारा बंद नहीं की जा सकती।
6. अप्रेल 1989 के बाद यदि कोई ग्राहक बिना पर्याप्त जमा राशि के बैंकर पर चैक लिखता है तो चैक आहार्यी पर चैक राशि के दुगने तक जुर्माना अथवा एक वर्ष की सजा अथवा दोनों दिये जाने का प्रावधान है। अत: बिना पर्याप्त राशि के चैक नहीं काटना चाहिए अन्यथा दंड का भागी होना होगा।

2. बैंकर पर ग्राहक के चैक का अनुचित अनादरण पर दायित्व-

भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम 1881 की धारा 31 के अनुसार यदि बैंकर बिना किसी वैध कारणों के ग्राहक के चैकों का भूल या जान बुझकर अनादरण -करने पर ग्राहक को हुई हानि की क्षत्तिपूर्ति के लिए बैंकर उत्तरदायी होता है। यह क्षति सामान्य क्षति तब होती है जब ग्राहक व्यापारी, व्यवसायी या उद्योगपति नहीं होता है। इसके विपरीत ग्राहक यदि व्यापारी, व्यवसायी एवं उद्योगपति ग्राहक का चैक अनादरण होता है तो यह क्षति पर्याप्त क्षति समझी जाती है जिसमें व्यवसाय की साख को पहुंचने वाली चोट भी सम्मिलित मानी जाती है।

3. ग्राहक के खातों की गोपनीयता बनाये रखने का दायित्व-

टर्ननियर बनाम नेशनल प्रोविन्शियल बैंक विवाद 1924 के निर्णयानुसार "ग्राहक के कार्यकलापों की गोपनीयता रखना बैंक का वैधानिक दायित्व है जो बैंक तथा ग्राहक के बीच गर्भित अनुबंध से उत्पन्न होता है। अत: बैंक को अपने ग्राहक के खाते तथा उससे संबंधित किसी तथ्य को किसी तीसरे पक्षकार को नहीं बताना चाहिये। भारतीय बैंकिंग कंपनियां (उपक्रमों का अर्जन तथा अंतरण) अधिनियम 1970 की धारा 13 में राष्ट्रीयकृत बैंकों के लिए स्पष्ट प्रावधान है कि "जब तक विधि द्वारा अन्यथा अपेक्षित न हो, बैंकों में प्रचलित पद्धतियों एवं रीति-रिवाजों का पालन करेंगे और विशेष रूप से अपने घंटकों के कामकाज से संबंधित कोई जानकारी तब तक प्रकट नहीं करेंगे जब तक कि परिस्थितियां ऐसी न हो जिनमें उन्हें विधि द्वारा अथवा बैंकों में प्रचलित पद्धतियों एवं रीति रिवाजों के अनुसार ऐसी जानकारी देना आवश्यक अथवा उचित न हो।"

निम्न परिस्थितियों में बैंकर को खातों की जानकारी तीसरे पक्षकार को देने की कानूनी बाध्यता है-

अ- वैधानिक अनिवार्यता-

निम्न अधिनियमों के तहत जानकारी देना बैंकर का वैधानिक दायित्व है-

1. आयकर अधिनियम, 1961 के अंतर्गत
2. उपहार कर अधिनियम, 1958 के अंतर्गत
3. विदेशी मुद्रा नियंत्रण अधिनियम, 1973 के अंतर्गत
4. भारतीय बैंकिंग अधिनियम, 1949 की धारा 26 के अनुसार प्रति वर्ष रिजर्व बैंक को ऐसे खातों की सूचना भेजना जिसमें 10 वर्षो से कोई लेनदेन नहीं हुआ हो।
5. भारतीय कंपनी अधिनियम 1956 के अंतर्गत
6. बैंकर पुस्तक साक्ष्य अधिनियम 1891 के अंतर्गत
7. भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 के अंतर्गत
8. भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत

ब जनहित में ऐसा करना उचित हो।

स बैंकर के स्वयं के हित में न्यायोचित हो।

द विभिन्न बैंकों द्वारा परस्पर जानकारी दी जाती है।

4 ग्राहक के बारे में अनुचित अथवा गलत सूचना देने पर बैंकर का दायित्व

बैंकर को वैधानिक बाध्यताओं जनहित व बैंकिंग परिपाटी के अंतर्गत जानकारियां देना जरूरी होता है। सूचनायें देते समय सावधानी रखनी चाहिए। गलत एवं अनुचित ढंग से दी गई जानकारी के कारण ग्राहक एवं तीसरे पक्षकार को हुई क्षति के लिए बैंक को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। अत: सूचना देने में किसी प्रकार की लापरवाही बैंकर को नहीं रखनी चाहिए।

5 कुर्की आदेश पर बैंकर का दायित्व

सिविल प्रक्रिया संहिता के नियम 46 आदेश 21 के अंतर्गत जब कभी लेनदार की प्रार्थना पर न्यायालय के कुर्की आदेश द्वारा बैंक में पड़े ऋणी के धन की निकासी पर रोक लगा दी जाती है तो बैंक पर न्यायालय आदेश की पालना का दायित्व आ जाता है।

न्यायालय द्वारा कुर्की आदेश पर बैंकर का दायित्व

1. तत्काल प्रभाव से यह आदेश लागू हो जाते हैं।
2. राशि के उल्लेख नहीं होने पर संपूर्ण राशि पर कुर्की आदेश प्रभावी होता है।
3. कुर्की आदेश उस व्यक्ति के सभी खातों पर प्रभावी माना जाता है।

निम्न दशाओं में कुर्की आदेश लागू नहीं होता है -

1. यदि ग्राहक का ट्रस्टी के रूप में खाता है।
2. संयुक्त खाता होने पर।
3. साझेदारी खाता होने पर।
4. ग्राहक के नये खाते खोलने पर।
5. कुर्की आदेश से भिन्न नाम में खाता होने पर।
6. कुर्की आदेश के बाद प्राप्त जमा राशि पर यह आदेश लागू नहीं होता।

आयकर अधिकारियों द्वारा कुर्की पर बैंकर का दायित्व आयकर अधिनियम की धारा 226(3) के अनुसार आयकर अधिकारियों को ऐसे व्यक्तियों से आयकर की वसूली करने के लिए

बैंकों में उपलब्ध ऐसे ग्राहकों के खाते पर कुर्की आदेश पारित होने पर उनका भुगतान रोकने का वैधानिक दायित्व बैंक का होता है।

5.5 नामांकन सुविधा

भारतीय बैंकिंग (नियमन) अधिनियम 1949 में वर्ष 1983 में एक संशोधन कर ग्राहकों को नामांकन की सुविधा प्रदान की।

यह प्रावधान निम्न हैं:-

1. नामांकन का अर्थ - नामांकन का अर्थ यह होता है कि ग्राहक की मृत्यु हो जाने पर ग्राहक द्वारा नामांकित व्यक्ति को ग्राहक के खाते में जमा राशि प्राप्त करने का अधिकार है। ग्राहक यह अधिकार जीवित रहते हुए कभी भी किसी व्यक्ति को दे सकता है।
2. संयुक्त खाते की दशा में संयुक्त खाते के सभी खातेदार संयुक्त रूप से किसी व्यक्ति को नामांकिती नियुक्त कर सकते हैं।
3. नामांकन में परिवर्तन या रद्द करने का अधिकार ग्राहक अपनी मृत्यु से पूर्व कभी भी रद्द करने या 'उसके परिवर्तन का अधिकारी होता है।
4. नामांकितों को ग्राहक की मृत्यु उपरांत भुगतान करते ही बैंक का दायित्व समाप्त हो जाता है।

नामांकन से नामांकित व्यक्ति केवल धन राशि प्राप्त करने हेतु अधिकृत किया जाता है, वह पूर्ण रूपेण उसका स्वामी नहीं बन सकता। मृतक व्यक्ति के वैधानिक उत्तराधिकारियों के अधिकार यथावत बने रहते हैं।

5.6 बैंकर तथा ग्राहक के संबंधों की समाप्ति

सामान्यत: निम्न स्थितियों में बैंकर एवं ग्राहक के संबंधों की समाप्ति हो जाती है।

1. पारस्परिक सम्मति द्वारा - दोनों जब चाहे जब खाता बंद कर सकते है।
2. पूर्व सूचना देकर - एक दूसरे को पूर्व सूचना देकर खाता बंद कर सकते हैं।
3. ग्राहक की मृत्यु पर - उत्तराधिकारी को भुगतान नहीं होने तक उस खाते का ट्रस्टी बैंक ही होता है।
4. ग्राहक के पागल होने पर - सूचना मिलते ही संचालन बंद कर देना चाहिए।
5. ग्राहक के दिवालिया होने पर अधिकृत सूचना मिलते ही संचालन बंद कर देना चाहिए। खाते की राशि सरकार द्वारा नियुक्त समापन कर्ता को सौंपनी चाहिए।
6. खाते की राशि का अभिहस्तांकन किसी तीसरे पक्षकार को होने पर खाता बंद हो जाता है।
7. कुर्की आदेश आने पर खाते का संचालन बंद हो जाता है।
8. कंपनी/साझेदारी के समापन पर खाता बंद हो जाता है।
9. बैंक का व्यवसाय बंद हो जाने पर।

5.7 उदाहरण

बैंकर एवं ग्राहक के मध्य संबंधों के बारे में सभी को जानना आवश्यक है। बैंकर के ग्राहक के प्रति अधिकार एवं कर्तव्य जितने स्पष्ट एवं जानकारियां होगी उतना ही बैंकर को अनावश्यक विवादों से मुक्त रखेगा जो बैंकर को अपने व्यवसाय को सुचारु रूप से आगे बढ़ाने में सहायक होगा। इसी प्रकार ग्राहक को बैंकर के प्रति क्या अधिकार मिले हुए हैं, क्या दायित्व हैं उनका जितना ढंग से पालन किया जायेगा ग्राहक को ही सुविधा रहेगी। बैंकर एवं ग्राहक दोनों विधि संगत व्यवहार करेंगे। अपने दायित्वों का निर्वाह पूर्ण जानकारी एवं सावधानी से करेंगे उतना ही अनावश्यक विवादों से बचेंगे। अत: बैक एवं ग्राहक के संबंध आज के युग में व्यापारी, उद्योगपति, व्यवसायी, नौकरी पेशा, मजदूर एवं आम नागरिक सभी के लिए जानना हितकर है। आज सभी का काम बैंक से होता ही है।

5.8 सारांश

इस इकाई में बैंकर एवं ग्राहक के संबंध के अध्ययन से इनका अर्थ, विशेषतायें एवं आपसी संबंधों के बारे में चर्चा की गई है। बैंकर ग्राहक के लिए ऋणी एवं ऋणदाता, एजेंट, सलाहकार, प्रन्यासी के रूप में कार्य करता है। बैंकर एवं ग्राहक के लिए दोनों को देश में उपलब्ध कानून के अधीन कुछ अधिकारों एवं दायित्वों का निर्वाह करना होता है। कुछ बैंकिंग परंपरा के अनुसार एक निश्चित बैंकिंग प्रक्रिया होती है। जिसका निर्वाह बैंकर एवं ग्राहक दोनों को करना होता है। दोनों के मध्य कोई विवाद होने पर इन उपलब्ध कानूनों एवं कार्य परंपरा के अधीन ही इन विवादों का निपटारा किया जाता है। अत: इस इकाई के अध्ययन से हमें बैंक एवं ग्राहक के विभिन्न रूपों में निभाई जाने वाली भूमिका उनके अधिकारों दायित्वों का पूर्ण बोध हो जाता है। जिससे बैंक एवं ग्राहक के संबंधों में किसी प्रकार की कोई अड़चन या विवाद उत्पन्न न हो।

5.9 शब्दावली

1. ऋणदाता एवं ऋणी

जब ग्राहक बैंक में खाता खोलकर अपना धन जमा करवाता है तो बैंक ऋणी एवं ग्राहक ऋणदाता बन जाता है। जब ग्राहक बैंक में अपने जमा धन से अधिक राशि निकलवाता है तो बैंक ऋणदाता एवं ग्राहक ऋणी बन जाता है।

2. अभिकर्ता

जब कोई व्यक्ति/संस्था अपने मालिक या प्रधान के आदेशानुसार मालिक की हैसियत से कार्य करता है जो वह मालिक या प्रधान का एजेन्ट या अभिकर्ता होता है। बैंक भी अपने ग्राहकों के कई कार्य एजेन्ट के रूप में संपादित करता है।

3. प्रन्यासी

जब कोई व्यक्ति किसी मालिक के विश्वास एवं आदेशानुसार किसी संपति की देखभाल, सुरक्षा करता है तो वह उस मालिक या संस्था का ट्रस्टी कहलाता है। बैंक भी जब ग्राहक के बहुमूल्य आभूषण धन आदि को लॉकर्स में सुरक्षित रखता है तो बैंक ग्राहक का ट्रस्टी होता है।

इन संपतियों का स्वामित्व ग्राहक का होता है। मांगने पर इन संपतियों को पुन: लौटाने का दायित्व ट्रस्टी का होता है।

4. ग्रहणाधिकार

भारतीय अनुबंध अधिनियम 1872 की धारा 171 के अंतर्गत बैंकर को अपने ग्राहक के विरूद्ध ग्राहक द्वारा बैंकर के पास रखी गई संपति को तब तक रोके रखने का अधिकार है जब तक कि वह बैंकर के बकाया ऋणों का भुगतान न कर दे। इस प्रकार संपति को रोके रखने के अधिकार को ही ग्रहणाधिकार कहा जाता है।

5. परिसीमा अवधि

परिसीमा अधिनियम 1963 के अनुसार बैंकर के लिए प्रदत ऋण का देय तिथि से तीन वर्ष में वसूली करने की परिसीमा अवधि है। इस अवधि उपरांत ऋण कालातीत (Time barred) हो जाता है जिसकी वसूली के लिए वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

6. चैक का अनादरण

बैंक अपने ग्राहक के चैक का स्पष्ट एवं वैधानिक कारण होने पर ही चैक को बिना भुगतान किये लौटाने का अधिकार होता है। उदाहरणार्थ - ग्राहक के खाते में पर्याप्त जमा राशि न होने, चैक कट्टा फट्टा होने, ग्राहक के हस्ताक्षर न मिलने, पर्याप्त सूचना के अभाव आदि के कारण बैंक ग्राहक के चैक को पुन: बिना भुगतान लौटा सकता है। बिना किसी उचित कारण के अभाव में यदि बैंक ऐसा करता है तो इसके लिए ग्राहक को हुई क्षति की पूर्ति करने का दायित्व बैंक का होता है।

7. आहर्ता अथवा निर्माता

बैंक का ग्राहक जब अपने खाते से भुगतान हेतु निर्धारित फार्म में बैंक को एक निश्चित राशि किसी व्यक्ति फर्म अथवा संस्था को या उसके आदेशित व्यक्ति को या वाहक को चुकाने का आदेश देता है तो वह चैक का आर्हता या निर्माता कहलाता है।

8. आहर्ती

वह बैंक शाखा जिसको ग्राहक ने चैक लिखकर भुगतान का आदेश दिया है।

9. आदता

यह वह व्यक्ति को है जिसको या जिसके आदेशित व्यक्ति को चैक में लिखित धन राशि का भुगतान प्राप्त करने या करवाने का अधिकार है।

10. कुर्की आदेश

यह न्यायालय या आयकर विभाग द्वारा बैंक को किसी ग्राहक की संपति या धनराशि के भुगतान को रोकने के आदेश को कुर्की आदेश कहा जाता है। इस आदेश में उल्लेखित व्यक्ति के खाते, या संपति को बैंक तब तक भुगतान पर रोक लगा देता है जब तक न्यायालय चाहता है।

11. नामांकिती

बैंक के ग्राहक को यह अधिकार प्रदान किया गया है जिसमें वह जीवित रहते हुए अपने खाते की राशि का भुगतान अपनी मृत्यु के बाद जिस व्यक्ति को दिलवाना चाहता है उसको अधिकृत कर सकता है। अधिकृत व्यक्ति जिसे ग्राहक की मृत्यु के बाद भुगतान प्राप्त होता है

नामांकिती कहलाता है। यह नामांकन की सुविधा या प्रत्येक ग्राहक को भारतीय बैंकिंग (नियमन) अधिनियम 1949 की धारा 452 (ए) द्वारा प्रदान की गई है।

5.10 अभ्यास प्रश्न

अ- लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. बैंकर का ग्राहक के विरूद्ध ग्रहणाधिकार की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
2. बैंकर का ग्राहक के खाते में समायोजन अथवा प्रतिसाद (setoff) के अधिकार की शर्तों को बताइए।
3. बैंकर के खातों की गोपनीयता का दायित्व समझाइए।
4. बैंकर की कुर्की आदेश पर दायित्व की व्याख्या कीजिए।
5. बैंकर एवं ग्राहक के संबंधों की समाप्ति की स्थितियां कौन-कौन सी होती हैं।
6. नामांकन सुविधा क्या है?

ब- निबंधात्मक प्रश्न

1. बैंकर तथा ग्राहक के बीच सामान्य एवं विशेष संबंधों का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।
2. बैंकर के अपने ग्राहकों के प्रति अधिकारों एवं दायित्वों को समझाइए।
3. बैंकर कब तथा किस रूप में ग्राहक के खातों को जानकारी दे सकता है।"

5.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार- पी एन वार्ष्णेय
2. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार- बी एल ओझा
3. बैंक विधि एवं व्यवहार- डा एच सी शर्मा
4. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार- स्वामी व गुप्ता

इकाई 6
विभिन्न प्रकार के खाते

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 इतिहास एवं विकास

6.3 खातों के प्रकार

- बचत बैंक खाता
- चालू खाता
- आवर्ती जमा खाता
- सावधि जमा खाता
- विशेष प्रकार के खाते

6.4 खाता खोलने की प्रक्रिया

6.5 खाता संचालन की प्रक्रिया

6.6 नामांकन सुविधा

6.7 उदाहरण

6.8 सारांश

6.9 शब्दावली

8.10 अभ्यास प्रश्न

6.11 संदर्भ ग्रन्थ

6.0 उद्देश्य

खातों के प्रकारों का अध्ययन करवाने का निम्नांकित उद्देश्य है:-

- विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों, संस्थाओं निगमों आदि बैंकों से किस प्रकार ऋण लिया जा सकता है उसकी जानकारी करवाना।
- आधुनिक युग में ए टी एम, इन्टरनेट बैंकिंग एवं मोबाइल बैंकिंग की जानकारी करवाना।
- खातों के प्रकारों को विस्तृत रूप से अध्ययन करवाना।

6.1 प्रस्तावना

बैंक अपने ग्राहकों को मुद्रा के लेनदेन संबंधी सेवायें प्रदान करते हैं। प्रारंभ में बैंक के कार्य केवल ग्राहकों की जमाएं प्राप्त कर उनको आवश्यकता होने पर पुन: लौटाने एवं ऋण एवं अधिविकर्ष की सेवायें देने तक सीमित थी। लेकिन आज इस तकनीकी युग एवं संचार क्रांति के कारण बैंकों की सेवाओं में भी अत्यधिक विविधताएं आने लगी है। आज बैंकों के निजीकरण के कारण बैंकिंग क्षेत्र में तीव्र प्रतिस्पर्धा बड़ी है। प्रत्येक बैंक अपने व्यवसाय को बढ़ाने के लिए ग्राहकों के लिए कई प्रकार की सुविधायें, खातों में बदलाव लाती है। ग्राहक की आवश्यकतानुसार

खातों के संचालन में परिवर्तन कर रही है। पहले बैंकों से धन का लेनदेन एक निश्चित समय काल तक सीमित था आज प्रत्येक बैंक ए. टी. एम. के द्वारा ग्राहकों को 24घंटे जमा धन को निकालने के लिए ग्राहकों को ए टी एम कार्ड, डेबिट कार्ड, क्रेडिट कार्ड निर्गमित कर रही है। इस प्रकार बैंक के खातों में भी विविधीकरण एवं संचालन प्रक्रिया में लगातार बदलाव आ रहा है। अत: ग्राहकों को भी इन नवीन बदलावों के बारे में जानकारी होना अत्यावश्यक है।

6.2 इतिहास एवं विकास

बैंक में खातों के प्रकार, संचालन में बदलाव एवं नवीन प्रकार की सुविधाओं का विकास क्रमबद्ध रूप से बैंकिंग के विकास के इतिहास के साथ जुड़ा हुआ है। प्रारंभ में बैंकिंग सेवायें बहुत ही सीमित थी। खातों में आज के अनुसार विविधीकरण नहीं था। बैंकिंग सुविधाओं का संबंध कुछ ही धनाढ्य लोगों तक सीमित था। बैंक भी कुछ बड़े शहरों, कस्बों तक ही सीमित थे। आज बैंक का संबंध समाज के प्रत्येक वर्ग, उद्योगपति, व्यापारी, नौकरीपेशा, मजदूर महिला बच्चे सबसे जुड़ा हुआ है। आज बैंक के अभाव में किसी भी व्यक्ति का जीवन सुविधापूर्ण व्यतीत नहीं हो सकता। बैंक आज समाज के लिए अतिआवश्यक संस्था के रूप में विद्यमान है। यही कारण है कि आज बैंक छोटे-छोटे गांवों तक फैली हुई है इसमें ओर विस्तार हो रहा है। बैंक का व्यवसाय लगातार उचाइयां प्राप्त कर रहा है। बैंक अपने क्रियाकलापों में समाज, व्यापार, व्यवसाय की स्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार दिन प्रतिदिन परिवर्तन कर रहा है, आगे भी परिवर्तन लगातार होता रहेगा।

6.3 खातों के प्रकार

बैंक अपने अलग-अलग ग्राहकों के लिए उनकी आवश्यकतानुसार अलग-अलग प्रकार के खाते खुलवाने की सुविधाएं प्रदान करते है सामान्यतया निम्न खाते खोले जाते हैं -

1. बचत बैंक खाता

समाज के अल्प व मध्यम आय वर्ग विशेषकर नौकरी पेशा, कामगारों, विद्यार्थियों के लिए यह खाता महत्वपूर्ण होता है। इस खाते में ग्राहक द्वारा अपनी छोटी-छोटी बचत राशि जमा कराई जाती है तथा आवश्यकता होने पर चैक या आहरण पत्र के माध्यम से राशि निकलवायी जा सकती है। बैंकों को इससे कम ब्याज पर करोड़ों की जमाएं प्राप्त हो जाती है। ग्राहकों को भी आय तथा धन की सुरक्षा तथा कभी भी वापस भुगतान लेने की सुविधा प्राप्त होती है।

इस खाते की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं -

(i) यह खाता कोई भी व्यक्ति, फर्म, संस्था, क्लब, कंपनी, सहकारी समिति अपने व्यक्तिगत नाम या संयुक्त नाम से खोल सकती है। इस खाते को खोलने के लिए न्यूनतम आयु वैसे तो 18 वर्ष होनी चाहिए परंतु विद्यार्थियों के लिए यह आयु कम भी हो सकती है। 18 वर्ष से कम के व्यक्ति बैंक में खाता खोल सकता है। उसका संचालन अपने हस्ताक्षर द्वारा कर सकता है परंतु अनुबंध अधिनियम के अनुसार वह अन्य दायित्व के लिए उसे कानूनी रूप से उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।,

(ii) प्रारंभिक जमा एवं न्यूनतम शेष

इस खाते को खोलने के लिए प्राय न्यूनतम 500 रू (चेक रहित सुविधा) तथा 1000 रूपये (चैक सुविधा सहित) खाता खोल सकते हैं। अलग-अलग बैंकों में अलग अलग न्यूनतम राशि खाते में रहनी आवश्यक है। सामान्यत: 500 रू एवं 1000 रू न्यूनतम राशि खाते में सदैव शेष रहनी चाहिए इससे कम राशि होने पर बैंक कुछ पेनल्टी या शुल्क खाते में नाम लिख सकती है।

(iii) धन की वापसी

सामान्यत: वर्ष में 150 बार इस खाते में जब चाहे धन राशि निकाल सकते हैं। अत्यधिक बार धन के निकालने पर बैंक चाहे तो कुछ पेनल्टी/शुल्क वसूल कर सकती है।

(iv) ब्याज

वर्ष में दो बार इन खातों में जमा शेष पर ब्याज की गणना की जाती है। प्रत्येक माह की 10 तारीख से अंतिम तारीख के मध्य न्यूनतम शेष पर ही ब्याज देय होता है। ब्याज की दर अति न्यूनतम सामान्यतया: 3 से 5 प्रतिशत लगभग रहती है।

(v) ग्राहकों के स्थायी आदेशों की पालना

यदि ग्राहक अपने खाते में से सीधे बिजली, टेलिफोन, किराया, क्लब शुल्क का भुगतान करने के स्थायी आदेश देता है तो वह राशि प्रतिमाह या निर्देशानुसार संबंधित व्यक्ति/संस्था को भुगतान करता है। जिसका कुछ बैंक शुल्क लेते हैं कुछ यह सुविधायें निशुल्क प्रदान करते हैं।

2. चालू खाता

यह खाता प्राय: उद्योगपतियों, व्यापारियों या संस्थाओं के लिए उपयोगी होता है। इस खाते में प्रतिदिन कितनी ही बार राशि जमा भी हो सकती है एवं नाम भी। अत: इन खातों पर बैंक जमा पर ब्याज का भुगतान नहीं करती है।

इसकी प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं -

(i) इस खाते में नगद की अपेक्षा चैक से लेनदेन अधिक होने से नगद लेनदेन की जोखिमों से बचाव होता हे।

(ii) प्रतिदिन होने वाले व्यवहार की संख्या पर कोई प्रतिबंध नहीं है। अनेकों बार एक ही दिन में लेनदेन संभव है।

(iii) राशि का भुगतान ग्राहक की मांग पर देय होता है।

(iv) इस खाते में न्यूनतम शेष बैंक एवं शाखा के ग्रामीण एवं शहरी होने पर निर्भर करता है। सामान्यतया यह राशि 5000 रूपये है।

(v) खातों में बार-बार इन्द्राज होने के कारण बैंक प्रति पेज या अन्य आधारों पर प्रासंगिक व्यय **(Incidental charges)** वसूल करता है।

(vi) जमा शेष पर ब्याज देय नहीं है।

(vii) तृतीय पक्षकारों के तथा पृष्ठांकित चैकों के भुगतान एवं संग्रहण करने की सुविधा दी जाती है।

(viii) इन खातों में अधिविकर्ष (Overdraft) की सुविधा भी दी जा सकती है।

(ix) बिलों का संग्रहण पेंशन, भुगतान, धन हस्तांतरण सुविधायें निशुल्क या न्यूनतम शुल्क लेकर दी जाती है।

बैंक द्वारा इन खातों के संचालन के लिए निम्न सावधानियां रखनी चाहिए।

(i) ग्राहक से काउंटर पर चैक प्राप्त होते ही उसे टोकन देकर हस्ताक्षर करवा लेने चाहिए।

(ii) काउंटर पर लिपिक द्वारा चैक की तारीख, राशि (अंकों व शब्दों में)नमूने के हस्ताक्षर प्रापक व्यक्ति के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

(iii) विशेष कर चैक की तारीख छः माह पुरानी या चैक उत्तर दिनांकित (Post dated) नहीं होना चाहिए।

(iv) वाहक चैक होने पर उसका भुगतान किसी भी व्यक्ति को किया जा सकता है जबकि आदेशित चैक का भुगतान खाते के माध्यम से ही संभव है। एकाउंट पेयी चैक (Account payee cheque) का भुगतान चैक में उल्लेखित व्यक्ति के नाम के खाते में जमा करके ही किया जाना चाहिए।

3. आवर्ती जमा खाता

यह खाता उन व्यक्तियों के लिए अच्छा होता है जो छोटी छोटी बचत प्रतिमाह जमा करा कर एक बड़ी रकम जुटाना चाहते हैं। इस खाते में व्यक्ति 10 के गुणक में जितनी चाहे उतनी राशि प्रतिमाह जमा करा सकता है। इस खाते में जमा कराने की अधिकतम अवधि भी ग्राहक की इच्छानुसार 1 वर्ष, 2 वर्ष, 3 वर्ष, 5 वर्ष या अधिक हो सकती है। निर्धारित राशि प्रतिमाह अंतिम तारीख से पूर्व खाते में जमा होनी चाहिए। कभी किसी माह जमा न होने पर दंडात्मक राशि वसूली जा सकती है।

परिपक्वता की तिथि पर ब्याज सहित जमा राशि का भुगतान व्यक्ति को कर दिया जाता है। परिपक्वता से पूर्व भुगतान लेने पर उस अवधि के लिए निर्धारित व्याज दर से एक प्रतिशत कम ब्याज की गणना कर जमा राशि मय ब्याज का भुगतान मांगने पर किया जा सकता है। इस खाते में जमा राशि का तीन चौथाई भाग ऋण के रूप में भी कभी भी लिया जा सकता है। ऐसी दशा में ऋण पर ब्याज देय ब्याज से 2 प्रतिशत अधिक वसूल किया जाता है। इस खाते को उसी बैंक की अन्य शाखा में ग्राहक की इच्छा पर उसी नाम से स्थानांतरित भी किया जा सकता है। यह खाता नौकरी पेशा या छोटी छोटी बचत से बड़ी जमा राशि प्राप्त करने वाले के लिए अत्यधिक उपयोगी है।

4. सावधि जमा खाता

यह खाता उन व्यक्तियों व संस्थाओं के लिए उपयोगी होता है जो एक मुश्त राशि एक निर्धारित अवधि तक बैंक में जमा रखना चाहते हैं। अधिक अवधि के लिए जमा करवाने पर ब्याज भी अधिक देय होता है। पूर्व निर्धारित अवधि के बाद परिपक्वता अवधि पर ब्याज सहित जमा राशि का भुगतान ग्राहक को देय होता है। इस खाते की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं -

1. जमा की अवधि

यह अवधि 15 दिन से अधिकतम 10 वर्ष हो सकती है। कुछ स्थितियों में यह अवधि 10 वर्ष से भी अधिक हो सकती है। यह अवधि इंडियन बैंकर्स एसोसियेशन द्वारा निर्धारित की जाती है।

2. जमा की रसीद

जब व्यक्ति एक मुश्त निर्धारित अवधि के लिए बैंक में राशि जमा कराता है तो बैंक ग्राहक को एक जमा रसीद (F.D.R.) देती है जिस पर जमा कर्ता का नाम दिनांक, राशि,

परिपक्वता तिथि, परिपक्वता राशि, नोमिनी का नाम आदि लिखा होता है। शाखा प्रबंधक के हस्ताक्षर होते हैं। इस प्रपत्र पर अहस्तांतरणीय (Not transferable) शब्द लिखा होता है अर्थात् जमाकर्ता इसे दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरित नहीं कर सकता। परिपक्वता तिथि को इसका भुगतान इस रसीद को प्रस्तुत करके प्राप्त किया जा सकता है।

3. इस खाते में न्यूनतम 100 रू तथा अधिकतम राशि की कोई सीमा निर्धारित नहीं है।

4. ब्याज की दरें

यह दरें प्रत्येक बैंक द्वारा स्वयं निर्धारित होती है। पूर्व में यह दरें रिजर्व बैंक तय करता था परंतु अब एक वर्ष से अधिक अवधि वाली दरें बैंक स्वयं अपनी स्थिति के अनुसार तय करता है।

जिसमें समय समय पर परिवर्तन होता रहता है। अवधि सामान्यतया: 15 दिन से 45 दिन तक 46 दिन से 60 दिन तक, 61 दिन से 179 दिन तक, 180 से 1 वर्ष तक, 1 वर्ष से 2 वर्ष तक, 2 से 3 वर्ष तक, 3 वर्ष से 5 वर्ष तक होती है। अलग अलग अवधि अनुसार ब्याज दरें जो सामान्यता: 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत तक होती है। अधिक अवधि के लिए जमा पर अधिक ब्याज दर देय होती है।

5. परिपक्वता अवधि से पूर्व भुगतान -

सामान्यतया: परिपक्वता तिथि पर ही जमा राशि मय ब्याज का भुगतान प्राप्त होता है। परंतु विशेष स्थिति में जमाकर्ता की इच्छा पर इस परिपक्वता तिथि से पूर्व भी भुगतान किया जा सकता है। लेकिन ब्याज की गणना करते समय यह देखा जाता है कि यह जमा राशि बैंक में कितनी अवधि तक जमा रही। इस अवधि के लिए पूर्व निर्धारित ब्याज दर से 1 प्रतिशत ब्याज दर कम कर ब्याज की गणना की जाती है।

6. ब्याज का भुगतान

जमाकर्ता द्वारा ब्याज परिपक्वता तिथि या त्रैमासिक जैसी भी जमा कर्ता चाहे प्राप्त कर सकता है। ग्राहक की इच्छा पर ब्याज की राशि ग्राहक के बचत खाते में हस्तांतरित कर दी जाती है।

7. अग्रिम

सावधि जमा रसीद पर परिपवक्ता तिथि के पूर्व ग्राहक चाहे तो अपने नाम ऋण भी लिया जा सकता है। यह ऋण की राशि जमा राशि के 75 प्रतिशत तक हो सकती है। ऋण पर ब्याज देय ब्याज से 2 प्रतिशत अधिक वसूल करता है। परिपक्वता तिथि को ऋण एवं ब्याज की वसूली करने के बाद शेष जमा राशि यदि है तो उसका भुगतान बैंक अपने ग्राहक को कर देगा।

8. जमा राशि का भुगतान

सामान्यतया जमाकर्ता के बचत खाते में राशि जमा करके किया जाता है। 20,000 रूपये से कम जमा राशि होने पर नगद में भी इसका भुगतान किया जा सकता है।

9. सावधि जमा का ग्राहक की इच्छा पर आगे निर्धारित अवधि तक के लिए नवीनीकरण भी किया जा सकता है। नवीनीकरण के लिए जमा रसीद बैंक को प्रस्तुत करनी पड़ती है।

10. रसीद खो जाने पर या चोरी हो जाने पर बैंक को अनुरोध करने पर क्षतिपूर्ति बॉड (Indemnity bond) लेकर डुप्लीकेट रसीद ग्राहक को दी जाती है।

11. सावधि जमा रसीद पर भी कुर्की आदेश होने पर इसका पालन बैंक को करना होता है।
12. मूल जमा कर्ता की प्रार्थना पर रसीद में अन्य जमा कर्ताओं का नाम भी जोड़ा जा सकता है।
13. जमा रसीद का दान वसीयतनामा द्वारा किया जा सकता है। परंतु यह दान मृत्यु के पश्चात ही प्रभावी होगा।
14. यह रसीद बैंक को प्रतिभूति के रूप में भी जमा कराई जा सकती है।

5. विशेष प्रकार के खाते

अलग अलग बैंक जमाएं बढ़ाने हेतु कई नवीन प्रकार के खाते खोलने की सुविधायें प्रदान करते हैं। जिसमें से प्रमुख निम्न हैं

1. सुगम जमा योजना

इस योजना में सावधि जमा खाता व बचत खाता दोनों की विशेषताएं विद्यमान रहती है। इसमें 10,000 रूपये न्यूनतम राशि जो 1,000 रू के गुणांक में अधिक चाहे जितनी हो सकती है। इसमें आवश्यकता पड़ने पर राशि का कोई भाग निकाला जा सकता है। शेष बची राशि पर सावधि जमा रसीद की तरह अधिक ब्याज देय होता है। इस खाते में स्टाक इनवेस्ट जारी करने की सुविधा भी प्राप्त होती है। इस प्रकार इस खाते में बचत खाते की तरह कमी भी राशि निकालने की सुविधा के साथ लंबी अवधि तक जमा राशि होने पर ब्याज भी अधिक प्राप्त हो जाता है।

2. सुविधा बचत योजना

यह योजना छोटे कस्बे गांवों में उपयोगी है। इस खाते में एक व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह 10 रूपये के गुणांक में 5,000 रूपये तक की राशि मासिक किश्तों में 10 वर्ष तक जमा करा सकते हैं। देरी से जमा होने पर कोई दंड राशि नहीं ली जाती। इसमें से कुल जमा राशि में देय ब्याज सहित उसके 50 प्रतिशत तक कभी भी ऋण लिया जा सकता है।

3. निधि संचय खाता

यह योजना कम अवधि के लिए जमा राशि रखने वालों के लिए उपयुक्त है। इसमें 46 दिन की अवधि के लिए आकर्षक ब्याज दर पर असीमित अवधि तक जमाएं रखने की सुविधा है। इस योजना का लाभ यह है कि 46 दिन की अवधि समाप्ति के बाद स्वत: नवीनीकृत होती रहती है।

4. पारसमणी जमा योजना

यह आवर्ती जमा का ही एक रूप है जिसमें ग्राहक 100 रूपये या इसके गुणांक में प्रतिमाह राशि एक निर्धारित अवधि तक जमा कराता है इसके बाद बैंक से मासिक आय के रूप में यह राशि आगे पेंशन के रूप में प्राप्त करता रहता है।

5. नकद प्रमाण पत्र योजना

इस योजना में 100 रूपये, 500 रूपये, 1000 रू तथा 10,000 रुपये निश्चित अवधि के लिए जमा कराई जा सकती है। इसके बदले बैंक उसे उस जमा राशि का प्रमाण पत्र प्रदान करता है। इन प्रमाण पत्रों पर आकर्षक दर से ब्याज देय होता है।

6. सुखद भविष्य योजना

इसमें जमा कराया गया धन व्यक्ति को उसके बुढ़ापे या सेवा निवृति पर एक मुश्त आकर्षक राशि के रूप में उपलब्ध कराई जाती है।

7. जन हितेषी जमा योजना

यह योजना उनके लिए उपयोगी है जिन्हें प्रतिमाह बच्चे की शिक्षा खर्च, या मकान किराया या बीमा प्रीमियम जमा कराना है। इसके लिए ग्राहक एक निश्चित एक मुश्त राशि बैंक में जमा करा देता है इस जमा राशि के ब्याज की राशि से मासिक भुगतान उपरोक्त खर्चो के लिए किया जाता है।

8. विवाह एवं शिक्षा योजना

इस योजना में 50 रूपये या अधिक राशि प्रतिमाह 10 वर्ष तक जमा कराई जाती है। 15 वर्ष बाद एक मुश्त राशि तथा तत्पश्चात् 300 रूपये प्रति माह पांच वर्ष तक या 450 रूपये 3 वर्ष तक राशि उपलब्ध होती है। जिससे बच्चों की शिक्षा या विवाह करने में आसानी रहती है।

9. अरावली जमा योजना

यह योजना भी अल्प बचत कर्ताओं के लिए उपयोगी है। जिसमें 100 रू या इसके गुणांक में 10 वर्ष तक जमा कराई जाती है जो 7 वर्ष में दुगनी एवं 10 वर्ष में तिगुनी राशि हो जाती है। यह समय समय पर देय ब्याज की दर पर निर्भर करती है। एक मुश्त राशि बच्चों की उच्च शिक्षा एवं विवाह में उपयोगी रहती है।

6.4 खाता खोलने की प्रक्रिया

बैंक में जब ग्राहक खाता खोलता हे तो बैंक व ग्राहक के संबंधों के अंतर्गत बैंक को दायित्व का निर्वाह करना होता है। अत: बैंक खाता खोलने से पूर्व खाता खोलने की संपूर्ण प्रक्रिया का निर्वाह करता है। ताकि भविष्य में कोई बाधा या वैधानिक दायित्व से बचा जा सके।

खाते खोलते समय निम्न सावधानियाँ अपनाई जाती हैं-

1 अनुबंध करने योग्य

बैंक में खाता उसी व्यक्ति या संस्था का खोला जा सकता है जो अनुबंध करने की पात्रता रखता है। खाता उसी व्यक्ति का खोला जा सकता है जो स्वस्थ मस्तिष्क का है, वयस्क है तथा अनुबंध करने के लिए किसी कानून द्वारा अयोग्य घोषित नहीं किया है।

2. बैंक का खाता खोलने के लिए निर्धारित आवेदन प्रपत्र में आवेदन करना होता है। आवेदन प्रपत्र का नमूना इस प्रकार है -
3. आवेदन पत्र के साथ ग्राहक का फोटो लगाना अनिवार्य है। आवेदन पत्र के पीछे सभी नियम छपे होते हैं जिसे आवेदनकर्ता को पढ़ना चाहिए।

4. संदर्भ

बैंक में खाता खोलने के लिए ऐसे व्यक्ति का संदर्भ बैंक को देना होता है जिसको बैंक पहले से जानता है। बैंक का पूर्व ग्राहक ही संदर्भ व्यक्ति हो सकता है। संदर्भ व्यक्ति को ग्राहक की पहचान तभी देनी चाहिए जब वह उसे भली भांति जानता हो तथा उसका चरित्र संदेह पूर्ण नहीं हो। बैंक को भी पूर्ण जानकारी करनी चाहिए। संदर्भ व्यक्ति के हस्ताक्षर बैंकर को अपने सामने कराने चाहिए। संदर्भ व्यक्ति का भी दायित्व होता है कि जिसका वह संदर्भ दे रहा है उस बारे में पूर्ण जानकारी है। समुचित परिचय के अभाव में बैंक के साथ धोखाधड़ी होने की संभावना रहती है। जिसके लिए बैंक को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

5. नमुने के हस्ताक्षर एवं आवश्यक प्रपत्र

बैंक को खातेदार के हस्ताक्षर अपन सम्मुख ही कराने चाहिए। खातेदार के पहचान से संबंधित प्रपत्र निवास प्रमाण पत्र आदि आवश्यक रूप से प्राप्त करने चाहिए।

6. जमा कराने की पर्ची

बैंक अधिकारी पूर्ण संतुष्ट होने पर व खाते में निर्धारित राशि जमापर्ची के माध्यम से बैंक में जमा करानी चाहिए।

7. खाता खुल जाने पर ग्राहक को पास बुक, चैक बुक (यदि मांग करे) जमा पर्ची बुक दे देनी चाहिए। ताकि खाते का संचालन आगे कर सके।

6.5 खाता संचालन की प्रक्रिया

ग्राहक अपनी जमाएं जब चाहे खाते में जमा करा सकता है तथा आवश्यकता होने पर जमा राशि बैंक से निकलवा सकता है। खाते में जमा कराना या निकालने की प्रक्रिया ही खाते का संचालन करना है। इसके लिए निम्न पुस्तिकाओं /प्रपत्रों की आवश्यकता होती है -

1 जमा पर्ची पुस्तिका

ग्राहक जब अपने खाते में कोई राशि चैक या ड्राफट जमा कराता है तो उसे जमा पर्ची में लिखे संपूर्ण विवरण को भरना होता है। इस पर्ची में दिनाँक, खाता संख्या, पृष्ठ संख्या, नाम राशि, प्रलेख का विवरण, रकम का विवरण लिखकर अपने हस्ताक्षर करने होते हैं। यह जमा पर्ची पर्ण एवं प्रतिपर्ण दो भागों में होती है। दोनों की पूर्ति करने के बाद रकम सहित यह काउंटर पर देनी होती है। लिपिक पर्ण व प्रतिपर्ण पर भरी हुई सूचना के अनुसार रकम प्रलेख प्राप्त करता है तथा प्राप्ति की सील लगाकर प्रतिपर्ण पर अपने हस्ताक्षर कर ग्राहक को लौटा देता है। जमापर्ची का रंग खाते के अनुसार अलग अलग भी हो सकता हे। यह पर्ची काउंटर पर उपलब्ध रहती है।

2 निकासी पत्र

ग्राहक को अपने बचत खाते से राशि निकालने के लिए निकासी पत्र भराकर काउंटर पर पास बुक के साथ देना होता है। निकासी पत्र में ग्राहक का नाम, खाता संख्या, राशि अंकों व शब्दों में लिखकर जमा कर्ता के हस्ताक्षर करने होते हैं। यह हस्ताक्षर वैसे ही होने चाहिए जैसे नमूने के हस्ताक्षर किये थे। पास बुक के अभाव में बैंक भुगतान करने के लिए मना कर सकते हैं। सक्षम अधिकारी, हस्ताक्षर का मिलान नमुना हस्ताक्षर से करके भुगतान करने का आदेश देता है। रोकड़िया अपने पास निकासी प्रपत्र रखकर राशि का भुगतान ग्राहक को कर देता है इस प्रपत्र के पीछे भी दो हस्ताक्षर ग्राहक के करवाये जाते हैं यानि ग्राहक ने काउंटर से राशि प्राप्त कर ली है।

3 चैक बुक

बैंक चालू खाते एवं बचत खाते दोनों प्रकार के ग्राहकों को चैक बुक की सुविधा उपलब्ध कराता है। चैक बुक उन्हीं ग्राहकों को दी जाती है जो खाते में एक निर्धारित न्यूनतम राशि सदैव में जमा रखते हैं। ग्राहक के मांगने पर 10 या 100 चैक की पुस्तिका जैसी आवश्यकता हो ग्राहक को प्रदान की जाती है। चैक की पूर्ति करके जिसे इसका भुगतान दिलवाना हो उसे प्रदान कर देना चाहिए। इस चेक में बैंक का नाम, दिनांक, प्रापक का नाम (payee) राशि (शब्दों व अंकों में) लिखी होती है। नीचे बाई और चैक संख्या एवं दायी ओर हस्ताक्षर जमाकर्ता के होने आवश्यक हैं।

यह चैक आदेशित या वाहक हो सकता है। वाहक चैक का भुगतान काउंटर में प्रस्तुत करते ही हो सकता है। आदेशित चैक का भुगतान आदेशित व्यक्ति के खाते में चैक का जमा करके ही हो सकता है। बैंक खाते में पर्याप्त राशि न होने या नमुने के हस्ताक्षर नहीं मिलने या अन्य सूचनाऐं नहीं भरी होने, कांट छांट होने पर चैक को बिना भुगतान किये लौटा सकता है।

4 पास बुक

यह बुक बैंक में खाते की नकल होती है। जो लेखे बैंक के पास उपलब्ध हैं उन सब का इन्द्राज इस पासबुक में भी होता है। दिनांक, आहरण की राशि, जमा की राशि एवं शेष राशि का पूर्ण विवरण इसमें उल्लेखित होता है। यह एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो किसी भी विवाद होने पर इसका मिलान बैंक से किया जाता है। इसे प्रविष्टियों के लिए समय समय पर बैंक को प्रस्तुत करनी चाहिए। आजकल सभी प्रविष्टियां कम्प्यूटर से होने के कारण प्रिंटर से इसमें प्रविष्टियों अंकित करवानी चाहिए।

पास बुक के प्रथम पृष्ठ पर ग्राहक का नाम, खाता सं, खाता बही, पृष्ठ सं., ग्राहक का पता व्यवसाय आदि का विवरण होता है। ग्राहक को पास बुक में कोई त्रुटि ज्ञात होती है या भूलचूक की जानकारी होती है तो बैंक अधिकारी को अवगत कराकर पास बुक में सुधार कराना चाहिए। पास बुक ही खाते की अधिकृत एवं प्रमाणित प्रतिलिपि होती है। पास बुक में अशुद्ध प्रविष्टियों के संदर्भ में यह कई निर्णयों में स्पष्ट हुआ कि यदि ग्राहक के पक्ष में पास बुक में कोई प्रविष्टि की हुई है और ग्राहक इसकी शुद्धता पर विश्वास करते हुए अपने लिए राशि निकालता है तो बैंक इसके लिए मना नहीं कर सकता। यह निर्णय मावजी बनाम दि नेशनल बैंक ऑफ इंडिया में स्पष्ट हुआ है।

यदि बैंक द्वारा पास बुक में कम राशि जमा करने या अधिक राशि नाम लिखने की गलत प्रविष्टि हुई है तो इसका आशय है कि अशुद्ध प्रविष्टि बैंक के पक्ष में की गई है। इस संबंध में ग्राहक का यह कर्तव्य है कि अशुद्ध प्रविष्टि की जानकारी होते ही बैंक को अवगत कराये। इसके अभाव में ग्राहक को लापरवाही का दोषी माना जायेगा। इसका बैंक के हितों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

6.6 नामांकन सुविधा

भारतीय बैंकिंग (नियमन) अधिनियम 1949 में संशोधन कर खातेदारों का बैक मे नामांकन की सुविधा प्रदान की है। ग्राहक खाता खोलते समय या बाद में मृत्यु पूर्व कभी भी खाते का नामांकन किसी व्यक्ति विशेष को कर सकता है। इसमें संशोधन भी ग्राहक की इच्छा से कभी भी संभव हैं। ग्राहक की मृत्यु के बाद बैंक का दायित्व है कि वह नामांकित व्यक्ति को इस खाते की राशि का भुगतान कर दे। उत्तराधिकारी कानून के कारण इस राशि पर उत्तराधिकारी द्वारा भी अपना स्वामित्व ठहराया जा सकता है। बैंक का दायित्व खाते की राशि भुगतान तक ही सीमित है।

6.7 उदाहरण

इकाई के अध्ययन बैंक एव ग्राहक दोनों के लिए अति महत्वपूर्ण है। बैक को खाते खोलते समय कौन सी सावधानियां को ध्यान रखना है। स्पष्ट व्याख्या होने से इनका ध्यान रखा

जाता है। ग्राहक को विभिन्न प्रकार के खातों की पूर्ण जानकारी होने से किस प्रकार का खाता बैंक में खुलवाना है तथा खाता कैसे खुलवाना है, क्या विशेष सावधानियां रखनी हैं इनकी पूर्ण जानकारी होने से आने वाली बाधाओं से छुटकारा मिलता है।

6.8 सारांश

यह इकाई विद्यार्थियों के लिए इस दृष्टि से उपयोगी है कि आज के युग में सभी का कार्य बैंक से होता ही है। एक पढ़े लिखे व्यक्ति से यह अपेक्षा रहती है कि वह बैंक में किस किस प्रकार के खाते खोले जा सकते हैं। किस व्यक्ति के लिए कौन सा खाता उपयोगी रहेगा। खाता खोलने के लिए क्या प्रक्रिया है। ग्राहक व बैंक दोनों को खाते खोलते समय, खाते का संचालन करते समय, खाते को बंद कराते समय क्या प्रक्रिया अपनानी है क्या सावधानी रखनी है। चैक बुक पास बुक व जमा पर्ची का उपयोग किस प्रकार करना है, सभी तथ्य पूर्ण समझने से बैंकिंग कार्य सुविधापूर्वक संचालित होता है। आगे किसी प्रकार की जटिलता एवं विवाद से बचा जा सकता है। इस प्रकार बैंकों के विभिन्न खाते एवं उनका संचालन संबंधी पूर्ण जानकारी आज के युग में अति महत्वपूर्ण है।

6.9 शब्दावली

1 संदर्भ

बैंक में किसी भी व्यक्ति का खाता खोलने के पूर्व ऐसे व्यक्ति की पहचान मांगी जाती है जो बैंक का पूर्व परिचित होता है। अर्थात बैंक का ग्राहक ही किसी नये व्यक्ति का संदर्भ व्यक्ति बन सकता है। संदर्भ देने का आशय यह है कि संदर्भ देने वाला व्यक्ति खुलवाने वाले व्यक्ति को भली प्रकार पहचानता है तथा उसका चरित्र संदेह वाला नहीं है।

2 अधिविकर्ष

ग्राहक अपने खाते में जमा राशि से अधिक राशि निकालता है तो यह अधिविकर्ष कहलाता है। अधिविकर्ष की राशि की पूर्व में स्वीकृती कराने पर ही इस सुविधा का उपयोग ग्राहक कर सकता है।

3 नमूने के हस्ताक्षर

बैंक में खाता खुलवाते समय बैंक अधिकारी के सम्मुख ग्राहक जो हस्ताक्षर करता है वह प्रपत्र में सुरक्षित आगामी लेनदेन करते समय रिकार्ड में बैंक द्वारा रखे जाते हैं। इस हस्ताक्षर से लेन देन करते समय ग्राहक के हस्ताक्षर मिलान करने चाहिए। इसके अभाव में भुगतान के लिए बैंक मना कर सकता है।

4 सावधि जमा की रसीद

बैंक में ग्राहक जब एक निश्चित राशि निश्चित अवधि के लिए एक मुश्त जमा कराता है तो उसे बैंक एक जमा की रसीद प्रदान करता है। इसमें जमा राशि, ब्याज दर, जमा की दिनांक, परिपक्वता तिथि, परिपक्वता की राशि, बैंक का नाम, रसीद संख्या, शाखा प्रधान के हस्ताक्षर आदि सभी सूचनाएं अंकित होती हैं। इस रसीद को भुगतान लेने के लिए बैंक में प्रस्तुत करना अनिवार्य है।

5 अहस्तांतरणीय

यह शब्द जिस प्रलेख पर अंकित होता है इसका प्रभाव यह होता है कि यह उल्लेखित प्रलेख किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित नहीं किया जा सकता। जैसे सावधि जमा रसीद पर 'अहस्तांतरणीय' शब्द अंकित है अर्थात् इसका भुगतान किसी अन्य को हस्तांतरित नहीं हो सकता।

6 प्रासंगिक व्यय

बैंक चालू खाते में प्रतिदिन जो बार बार लेनदेन की प्रविष्टियां करता है तो बैंक को उस खाते में प्रासंगिक व्यय के नाम लिखने का अधिकार होता है।

7 संयुक्त खाता

जब बैंक में दो या अधिक व्यक्तियों का सामूहिक रूप से खाता खोला जाता है तो यह संयुक्त खाता होता है।

8 निकासी प्रपत्र

बचत खाते में से ग्राहक स्वयं राशि प्राप्त करने के लिए यह प्रपत्र पास बुक के साथ देने पर बैंक इस राशि का भुगतान करता है। इसमें ग्राहक का नाम, दिनांक, राशि (अंकों व शब्दों में) नमूने के हस्ताक्षर आदि सूचनाएं भरनी होती हैं।

6.10 अभ्यास प्रश्न

अ लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. बचत खाते की विशेषताएं बताइये।
2. आवर्ती खाता क्या है?
3. खाता खोलते समय संदर्भ का क्या आशय है। स्थायी जमा रसीद का नमुना बताइए।
4. चैक का नमूना लिखिये।
5. पास बुक के बारे में बताइये।

ब निबंधात्मक प्रश्न

1. बैंक में कौन कौन से खाते खोले जा सकते हैं इनकी संक्षिप्त में विशेषताएं बताइये।
2. बैंक में खाते के संचालन की प्रक्रिया समझाइये।
3. खाते खोलने की सामान्य प्रक्रिया सविस्तार से समझाइए।

6.11 संदर्भ गन्र्थ

1. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार- पी एन वार्ष्णेय
2. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार- बी एल ओझा
3. बैंक विधि एवं व्यवहार- डा एच सी शर्मा
4. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार- स्वामी व गुप्ता

इकाई 7
विभिन्न व्यक्तियों के खाते

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 इतिहास एवम् विकास

7.3 अर्थ एवं परिभाषा

7.4 व्यक्तिगत खाते

- 7.4.1 अवयस्क ग्राहक खाता
- 7.4.2 पागल ग्राहक खाता
- 7.4.3 शराबी ग्राहक खाता
- 7.4.4 विवाहित महिला खाता
- 7.4.5 पर्दानशील महिला खाता
- 7.4.6 निरक्षर ग्राहक खाता
- 7.4.7 संयुक्त खाता
- 7.4.8 अन्धे या नेत्रहीन व्यक्ति का खाता
- 7.4.9 निसारक खाता
- 7.4.10 वादेशक खाता

7.5 संस्थागत अथवा गैर व्यक्तिगत खाते

- 7.5.1 साझेदारी फर्म के खाते
- 7.5.2 संयुक्त पूंजी वाली कम्पनी के खाते
- 7.5.3 सहकारी समितियों के खाते
- 7.5.4 संयुक्त हिन्दू परिवार खाते
- 7.5.5 क्लब, स्कूल, तथा अन्य संस्थाओं के खाते
- 7.5.6 सरकारी विभाग के खाते
- 7.5.7 स्थानीय संस्थाएँ

7.6 सारांश

7.7 अभ्यास प्रश्न

7.8 संदर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य

आप जानते ही हो कि बैंकिंग क्षेत्र वित्तीय ढाँचें का आधार स्तम्भ होता है। वही बैंकों की क्रियाकलापों का सम्पादन बैंकों में खुले विभिन्न खातों के माध्यम से होता है। अत: इस इकाई में विभिन्न व्यक्तियों के खातों का अध्ययन करवाने के निम्नांकित उद्देश्य हैं:-

- बैंकों में कौन-कौन व्यक्ति एवम् संस्थायें खाते खुलवा सकते हैं।
- बैंकों में खाते खुलवाने की वैधानिक प्रक्रिया क्या होती है।
- खाते खुलवाने के सम्बंध में बैंक एवम् ग्राहक के दायित्व एवम् अधिकारों की जानकारी करवाना।
- बैंकों को विभिन्न व्यक्तियों के खाते खोलते समय क्या-क्या सावधानियां रखनी चाहिए।

7.1 प्रस्तावना

कोई भी व्यक्ति, फर्म या संस्था बैंक में खाता खोलने पर बैक का ग्राहक बन जाती है। आप इस बात से सहमत होंगे कि बैंकर और ग्राहक के मध्य बहु आयामी सम्बन्ध होते है। ग्राहक द्वारा बैंक में खाता खोलते ही बैंक की स्थिति एक ऋणी तथा ग्राहक की स्थिति एक ऋणदाता की हो जाती है। बैंकों द्वारा ग्राहकों को अनेक प्रकार की सेवाएं प्रदान की जाती है। बैंक एवम् ग्राहक के बीच सम्बन्ध तब ही स्थापित हो सकते है जबकि ग्राहक बैंक में खाता खोले एवम् उसका संचालन करे। बैंक द्वारा विभिन्न प्रकार के खातों को खोलने के लिए निर्धारित नियम एवम् प्रक्रिया अपनायी जाती है। वस्तुत: विभिन्न खातों के माध्यम से ही बैंकिंग क्रियाओं का संचालन होता है। बैंकों द्वारा लाभ हानि का आकलन भी खुले हुए खाते एवम् उनके द्वारा सम्पादित क्रिया से होता है

7.2 इतिहास एवम् विकास

बैंकों में विभिन्न व्यक्तियों के खातों का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि बैंकों का इतिहास। बैंकों के जन्म के साथ ही खातों को खुलवाने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई थी। प्रारम्भ में बैंकों में व्यक्तियों द्वारा खाते खुलवाये जाते थे। लेकिन उद्योग एवम् व्यापार में विस्तार के साथ बहु आयामी खातों को खोलने एवम् संचालित करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। वर्तमान में कोई भी व्यक्ति या संस्था बैंक ग्राहक के रूप में नही जानी जा सकती है जब तक कि विधि मान्य खाता नही खुलवाया जाता है। आधुनिक काल में बैंकों द्वारा व्यक्तिगत खातों के साथ अव्यक्तिगत खाते भी खोले जा रहे हैं जिनमें साझेदारी फर्म का खाता, संयुक्त पूंजी वाली कम्पनी का खाता, सहकारी समितियों के खाते, सरकारी खाते एवम् क्लब विद्यालय, धर्मार्थ संस्थाएं इत्यादि का खाता महत्वपूर्ण है।

7.3 अर्थ एवम् परिभाषा

सामान्यत: कोई भी व्यक्ति या संस्था अथवा व्यक्तियों का समूह जो प्रसंविदा करने के लिए कानूनी रूप से सक्षम हो तथा विधिसम्मत क्या से बैंक में खाता खोलने के लिए आवेदन करता है एवम् बैंक की शर्तों को मानने को तैयार होने पर बैंक द्वारा खाता खोल दिया जाता है तो उसे बैंक का "खातेदार" माना जाता है। कभी-कभी बैंक ऐसे व्यक्तियों को भी अपना खातेदार बना लेता हैं, जो कानूनी रूप में सक्षम नहीं है। किन्तु उनके हितों के रक्षार्थ कानून ऐसी इजाजत देता है, तब उन्हे भी बैंक के खातेदार माना जाता है। भारतीय अनुबंध अधिनियम के अनुसार अवयस्क, पागल और शराबी व्यक्ति वैद्य अनुबंध करने के लिए योग्य नहीं माने जाते हैं। अत: इनके खाते नही खोले जा सकते हैं।

इस प्रकार "जब कोई व्यक्ति या संस्था विधि सम्मत का से बैंक में धन जमा कराने एवम् बैंकिंग क्रियाओं का लाभ उठाने के लिए खाता खोलता है जो उसे बैंक का खातेदार माना जाता है।"

चूकि बैक में खाता खोलने के साथ ही बैंक और ग्राहक के बीच प्रसंविदा की स्थिति उत्पन्न होती है, इसलिए प्रसंविदा अधिनियम की धारा 11 के अन्तर्गत ग्राहक में प्रसंविदा करने की वैधानिक सक्षमता जरूरी हैं। साथ ही बैंक ग्राहक का स्वरूप वही होता है जिस प्रकार का खाता बैंक में खोला जाता है। इस आधार पर खातों को मोटे रूप में दो भागों में विभाजित किया जा सकता है

(अ)व्यक्तिगत खाते

(ब)संस्थागत या अव्यक्तिगत खाते

7.4 व्यक्तिगत खाते

इसके अन्तर्गत बैंक के उन सब ग्राहकों का समावेश करते हैं, जिन्होंने व्यक्तिगत रूप में बैंक में अपने खाते खोल रखे हैं। इनमें मुख्य खाते का विवरण इस प्रकार हैं -

7.4.1 अवयस्क ग्राहक खाता

अवयस्क या नाबालिग ग्राहक से अभिप्राय बैंक के उस ग्राहक से है जिसकी आयु 18 वर्ष से कम है अथवा वयस्कता प्राप्ति से पूर्व यदि कोई कोर्ट ऑफ वार्ड्स द्वारा संरक्षक नियुक्त किया गया हो तो ऐसे व्यक्ति की आयु 21 वर्ष से कम है। इंग्लैण्ड के कानून के अनुसार 21 वर्ष से कम आयु वाला व्यक्ति अवयस्क माना जाता है।

भारतीय प्रसंविदा अधिनियम की धारा 11 के अनुसार अवयस्क को प्रसंविदा करने का अधिकार नहीं है। लेकिन मद्रास हाई कोर्ट की पूरी बैंच के राधावाचारियर बनाम श्रीनिवास, 1917 विवाद में किये गये निर्णय के अनुसार अवयस्क के पक्ष में किया गया कथक प्रर्वतनीय है। इसके अतिरिक्त प्रसंविदा अधिनियम की धारा 68 के अनुसार अवयस्क की सम्पत्ति को उसे दी गई जीवन के लिए आवश्यकताओं को पूर्ति की वस्तुओं के लिए उत्तरदायी होना पड़ेगा। ही, अवयस्क स्वयं व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होता। यदि कोई ऋण अवयस्क को अन्य दशाओं मे दिया जाता है तो वह इसे लौटाने के लिए कदापि उत्तरदायी नहीं है। यह ऋण का प्रसंविदा व्यर्थनीय नहीं अपितु व्यर्थ है।

अवयस्क का खाता- बैंक द्वारा प्राय: अवयस्क को बचत खाता खोलने का अधिकार दिया जाता है, केवल विशेष परिस्थितियों में चालू खाता खोलने की अनुमति देती है। यदि अवयस्क अपनी आयु के 18 वर्ष पूरे कर चुका है तो वह अपने खाते को स्वयं चला सकता है। 18 वर्ष से कम आयु के नाबालिग के खाते का परिचालन उसके स्वाभाविक अभिभावक द्वारा ही किया जा सकता है। पर यदि अवयस्क को खाते में अधिविकर्ष करने की अनुमति दे दी गई तो इसे वैधानिक रूप से वापस करने का उसका उत्तरदायित्व नहीं हैं। यदि इस अधिविकर्ष की जमानत के रूप में कोई प्रतिभूति ली गई है तो वह भी वापस करनी होगी।

अवयस्क का बचत खाता- अवयस्क का बचत खाता खोलते समय बैंकों द्वारा उन्हें दो भागों में बाटा गया है-

1. **10 वर्ष से कम आयु वाले नाबालिग**- 10 वर्ष से कम आयु वाले नाबालिक व्यक्तियों का बचत-खाता उसके सहज अभिभावक अथवा न्यायालय द्वारा मनोनीति अभिभावक के साथ खोला जा सकता है, जिसमें खाता परिचालन का अधिकार अभिभावक को ही होता है। **भारतीय हिन्दू अवयस्कता एवं संरक्षकता अधिनियम, 1956** के अन्तर्गत नाबालिग का स्वाभाविक अभिभावक उसका पिता होता है और पिता की मृत्यु के बाद उसकी माता को स्वाभाविक अभिभावक माना जाता है किन्तु मुस्लिम एक्ट के अनुसार नाबालिग का स्वाभाविक अभिभावक उसका पिता तथा पिता की मृत्यु के बाद पिता द्वारा लिखित वसीयत में मनोनीत व्यक्ति अथवा पिता के पिता अथवा न्यायालय द्वारा मनोनीत व्यक्ति को नाबालिग का स्वाभाविक अभिभावक माना जाता है। अत: अवयस्क के खाते का परिचालन उसके स्वाभाविक अभिभावक द्वारा ही किया जा सकता है। पर न्यायालय द्वारा मनोनीत अभिभावक को अवयस्क के खाता परिचालन का अधिकार नहीं होता।

2. **10 वर्ष की आयु पूर्ण करने अथवा उससे अधिक आयु** - वाले अवयस्क (नाबालिग) को अपने नाम से बैंक में बचत खाता खोलने तथा उसके परिचालन का अधिकार दिया गया है। कुछ बैंकों ने जमा शेष की अधिकतम राशि 50 हजार रू. तथा बचत खाता से राशि निकालने की एक बार में अधिकतम राशि दस हजार रू. की सीमा निर्धारित कर रखी है। ऐसे नाबालिग के लिये सावधि जमा की कोई सीमा नहीं है किन्तु बैंकों को इस खाते के विरूद्ध ऋण देने तथा देय तिथि से पूर्व भुगतान करने की मनाही है।

अवयस्क का खाता खोलने एवं संचालन में रखी जाने वाली सावधानियां

(1) आयु का प्रमाण

बैंक को अवयस्क का खाता खोलते समय उसकी आयु का विश्वसनीय प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लेना चाहिए जिससे बैंक ऋणों की जोखिमों से बच सके। यदि अवयस्क ऋण लेते समय अपनी आयु अधिक बतला दे तथा बाद में आयु को कम बतलाकर ऋणों के भुगतान से इन्कार कर दे तो ऐसी स्थिति में बैक को हानि हो जायेगी। ऐसा इसलिए होगा की न्यायालय अवयस्क के हितों की रक्षा करेगा।

इंग्लैंड में लेस्ली बनाम शील विवाद में अवयस्क ग्राहक ने बैंक में आयु के सम्बन्ध में झूठा प्रमाण दिया था। न्यायालय ने अपने निर्णय में अवयस्क की रक्षा की थी। इसी तरह भारत में अयोध्या प्रसाद बनाम चंदन लाल विवाद में इलाहबाद उच्च न्यायालय तथा मोहरी बीबी बनाम धर्मदास धोष विवाद में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने भी इसी मत की पुष्टि की, "झुठी आयु बतलाकर अवयस्क द्वारा प्राप्त ऋणों की वसूली करने का बैंक को अधिकार नहीं है।"

(2) अवयस्कता के समय किये गये अनुबन्धों की पुष्टि

आप जानते ही हो कि अवयस्कता के समय किये गये प्रंसविदे व्यर्थ होते हैं। इस कारण यदि कोई अवयस्क व्यक्ति ऋण या अग्रिम ले लेता है या प्रतिज्ञा पत्र लिख देता है तो उसके वयस्क होने पर उनकी पुष्टि नहीं करायी जा सकती। यदि कोई ऋणदाता अवयस्क ऋणी से वयस्क होने पर पुष्टि करा भी लेता है तो वह प्रर्वतनीय नहीं होगी। इसका अर्थ आप यह नहीं निकाले कि अवयस्कता के समय लिये गये ऋणों या प्रतिज्ञा पत्रों का भुगतान वयस्कता के समय करना अवैधानिक है। अत: अनुबन्धों की पुष्टि में सावधानी रखनी चाहिए।

(3) सम्पत्ति गिरवी

बैंक को अवयस्क की सम्पत्ति गिरवी रखकर अग्रिम ऋण नहीं देने चाहिए क्योंकि वैधानिक रूप से ऐसा प्रसंविदा व्यर्थ होता है। अत: बैंक ऐसी सम्पति का विक्रय नहीं कर सकता।

(4) अवयस्क अभिकर्त्ता

हालांकि अवयस्क अपने स्वयं के लिए अभिकर्ता नियुक्त नहीं कर सकता लेकिन वह स्वयं अभिकर्त्ता के रूप में कार्य कर सकता है। अवयस्क अभिकर्त्ता द्वारा किये गये सभी आर्थिक व्यवहारों के लिए उसका नियोक्ता उत्तरदायी होता है। इसलिए बैंक को उसके नियोक्ता से राशि निकालने की सीमा व अधिकार के लिए स्पष्ट लिखित आदेश प्राप्त कर लेना चाहिए ताकि अवयस्क अभिकर्त्ता अपनी अधिकार सीमा से बाहर कार्य नहीं कर सके। भारतीय प्रसंविदा अधिनियम की धारा 184 के अन्तर्गत, "नियोक्ता को अपने अवयस्क अभिकर्त्ता के प्रति कोई अधिकार नहीं होता।"

(5) अधिविकर्ष

अवयस्क का खाता खोलने के लिए बैंक स्वतंत्र है लेकिन वैधानिक तौर पर अवयस्क से ऐसे ऋणों की राशि वसूल नहीं की जा सकती। अत: अवयस्क खातों में यथा सम्भव अधिविकर्ष की सुविधा नहीं देनी चाहिए।

(6) अवयस्क साझेदार

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 30(i) में अवयस्क की स्थिति को स्पष्ट किया गया है, "कोई भी व्यक्ति जब सम्बन्धित राजनियम के अनुसार अवयस्क है, किसी फर्म में साझेदार नहीं हो सकता किन्तु वह समस्त साझेदारों की सहमति से साझेदारी के लाभों को प्राप्त करने के लिए सम्मिलित किया जा सकता है।" अवयस्क एक पूर्ण साझेदार नहीं हो सकता तथा फर्म की हानि या देनदारी के लिए उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कमिश्नर उत्तर कुमार बनाम प्रमोद कुमार विवाद में इसी मत की पुष्टि की थी।

अवयस्क साझेदार वयस्कता प्राप्ति के पश्चात् फर्म का साझेदार बना रह सकता है या सम्बन्ध विच्छेद कर सकता है, जैसी भी स्थिति हो, स्पष्ट कर देना चाहिए। यदि वह साझेदार बना रहना चाहता है तो दायित्वों के लिए उत्तरदायी होगा तथा सम्बन्ध विच्छेद करने पर उसके दायित्व अवयस्क के रूप में लगायी गई पूंजी तक सीमित रहेंगे। अत: साझेदारी खाता खोलते समय अवयस्क की स्थिति को ध्यान मे रखना चाहिए।

(7) अवयस्क के साथ संयुक्त खाता

यदि बैंक अवयस्क व्यक्ति के साथ वयस्क व्यक्ति का संयुक्त खाता खोलता है तथा ऐसे खाते पर बैंक अधिविकर्ष की सुविधा प्रदान करता है तो अधिविकर्ष की राशि अवयस्क से वसूल नहीं की जा सकती बल्कि वयस्क व्यक्ति ही उत्तरदायी रहेगा। यदि अवयस्क व्यक्ति को प्रतिज्ञा पत्र के आधार पर बैंक ऋण स्वीकृत कर देता है तो ऐसी स्थिति में भी बैंक उक्त राशि को वसूल नहीं कर सकती चाहे उस ऋण का उपयोग स्वयं अवयस्क ने किया हो या किसी दूसरे व्यक्ति ने। क्योंकि अवयस्क के साथ किया गया प्रसंविदा व्यर्थ होता है।

(8) जीवन की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में भुगतान

जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अवयस्क द्वारा कोई प्रसंविदा किया जाता है तो वह विधि मान्य होगा। अनिवार्य आवश्यकताओं का निर्णय ग्राहक की आर्थिक व सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखकर किया जाता है। यदि अवयस्क ग्राहक ने अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति बैंक ऋण लेकर की हो तो बैंक ऐसी ऋणराशि की वसूली अवयस्क की सम्पत्ति से कर सकती है। मोहम्मद अली बनाम चिकी शाह विवाद मे इस मत की पुष्टि की गई है।

(9) नामांकन की सुविधा

अवयस्क ग्राहक के लिए नामांकन सुविधा पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। कोई भी खाता धारक ग्राहक अथवा सुरक्षा जमा लॉकर रखने वाला व्यक्ति चाहे तो अवयस्क को नामांकित कर सकता है।

7.4.2 पागल गाहक खाता

जैसा की आप जानते ही कि भारतीय अनुबांध अधिनियम धारा 11 के अनुसार, "अनुबन्ध करने वाला व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ होना चाहिए।" धारा 12 के अनुसार "अनुबन्ध करने के लिए ऐसा कोई भी व्यक्ति स्वास्थ्य मस्तिष्क वाला कहा जाता है जो कि अनुबन्ध करते समय अपने हितों पर पड़ने वाले प्रभावों के विषय में विवेकपूर्ण निर्णय करने की क्षमता रखता हो। "पागल व्यक्ति में सोच-समझने की शक्ति न होने के कारण उसके द्वारा किये गये अनुबन्ध व्यर्थ होते हैं। किसी पागल व्यक्ति का खाता खोलने व संचालन करते समय बैंक को सावधानियाँ रखनी चाहिए ताकि दोषी नहीं ठहराया जा सके। अत: यदि बैंक को पक्के रूप में ज्ञात होता है कि खाता खुलवाने वाला व्यक्ति पागल है तो खाता नही खोलना चाहिए।

इतना ही नही कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते है जो जिन्हें कभी-कभी पागलपन का दौरा पड़ता है तथा शेष समय सामान्य रहते है तो ऐसे व्यक्तियों को पागलपन के क्षणों में अनुबन्ध करने का अधिकार नहीं होता है। "मचियाना बनाम उसमान वियरी विवाद" में न्यायालय का निर्णय था कि. "यदि बैंक का कोई ग्राहक खाता खोलने के पश्चात पागल हो जाता है तथा बैंक को इसकी सूचना मिल जाती हैं तो ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखे गये चैकों का भुगतान रोक देना चाहिए। क्योंकि मानसिक अस्वस्थता के क्षणों में किया गया कोई भी अनुबन्ध वैद्य नहीं होता।", अत: बैंक को पागल व्यक्ति का खाता नहीं खोलना चाहिए।

ग्राहक द्वारा पूर्णत: स्वास्थ्य लाभ करने पर इस खाते को पुन: चालू किया जा सकता है। लेकिन आपको यहाँ यह भी समझना होगा कि जब कोई ग्राहक न्यायालय द्वारा पागल घोषित कर दिया जाता है तो साथ ही साथ न्यायालय उसकी सम्पत्ति की देख-रेख के लिए एक संरक्षक की भी नियुक्ति कर देता है। इस संरक्षक को पागल ग्राहक के खाते पर चैक लिखने का भी अधिकार मिल जाता है। यह बात स्मरण योग्य है किए पत्नी को अपनी एवं अपने पागल पति पर निर्भर करने वाले व्यक्तियों की आवश्यकता की वस्तुओं के लिए पति को बाध्य करने का अधिकार होता है। अत: यदि पत्नी, पति के पागलपन की अवस्था में आवश्यकता की वस्तुओं का क्रय कर लेती है तो विक्रेता पागल ग्राहक के खाते में से वस्तुओं का मूल्य प्राप्त करने के लिए दावा कर सकता है। ग्राहक के पागल हो जाने पर उसके द्वारा नियुक्त एजेण्ट के भी सब

अधिकार समाप्त हो जाते है। बैंकर द्वारा ग्राहक को अच्छी मानसिक स्थिति में दिये गये ऋण वसूल किये जा सकते हे।

पागल ग्राहक खाते सम्बन्धी सावधानियां

1. बैंक को यह सुनिश्चित करना चाहिए की जिस व्यक्ति को पागल मान कर खाता खोलने से मना किया जाता हे, उस सम्बन्ध में बैंक के पास पक्के सबूत हो।
2. पागल व्यक्ति का परीक्षण भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 11 एवम् 12 के अनुसार करना चाहिए।
3. खाता खुलवाने के बाद यदि कोई खातेदार पागल हो जाता है एवम् इसका उचित प्रमाणपत्र बैंक के समक्ष प्रस्तुत कर दिया जाता है तब बैंक को पागल व्यक्ति के खाते का संचालन पागल अवधि तक रोक देना चाहिए।
4. बैंक पागलपन की जानकारी के अभाव में सामान्य व्यापार सदविश्वास में चैक का भुगतान कर दे तब बैंक दोषी नही माना जायेगा।
5. यदि पागल व्यक्ति का कोई संरक्षक नियुक्त होता है जो पागल व्यक्ति की और उसकी सम्पत्ति की देखरेख करेगा तब बैंक को देखना चाहिए कि ऐसा संरक्षक न्यायालय द्वारा मुकर्र हो।

7.4.3 शराबी ग्राहक खाता

शराबी से आशय उस व्यक्ति से हे जिसने इतनी अधिक शराब का सेवन कर लिया हे जिसके फलस्वरूप वह अपने ऊपर अनुबन्ध के पड़ने वाले प्रभावों को विवेकपूर्ण रूप से समझने में असमर्थ हो गया हो, तब ही उसे शराबी माना जायेगा।

इस परिभाषा से आप इस बात से सहमत होंगे कि मदिरा-पान करने मात्र से कोई व्यक्ति प्रसंविदा करने के अयोग्य नहीं हो जाता। प्रसंविदा करने की अयोग्यता उत्पन्न करने वाला तत्व तो मानसिक असन्तुलन एवं अस्वस्थता है। यदि कोई व्यक्ति यह प्रमाणित कर दे और न्यायालय सन्तुष्ट हो जाये कि अमुक व्यक्ति मदिरा-पान करने से इतना अधिक मानसिक रूप से अस्वस्थ हो गया था कि वह चैक के लिखने या विनिमय लेख की स्वीकृति देते समय इस बिल अथवा चैक के लिखने के प्रभाव को समझने में असमर्थ था तभी वह व्यक्ति अपने उत्तरदायित्वों से मुक्त हो सकता है तथा बैंकों को उत्तरदायी बना सकता है। यदि कोई मदिरोन्मत्त व्यक्ति' बैंक में भुगतान के लिए चैक पेश करता है तो बैंक को इसका भुगतान करते समय साक्षी करा लेना चाहिए। न्यायालय ने एक निर्णय में स्पष्ट किया कि यदि मद्यपान द्वारा नशे में होश गुम व्यक्ति किसी को चैक सौंप देता है और यह चैक का पाने वाला फिर इस चैक को किसी धारक को बेचैन कर देता है जो इसे सद्भावना से एवं मूल्य देकर प्राप्त करता है तो उसे इस चैक के सम्बन्ध में श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। इस कारण चैक का लेखक मदिरोन्मत्त होने का संरक्षण प्रान्त नहीं कर सकेगा।

सावधानियां:- बैंकर को शराबी व्यक्ति के खाता खोलने में निम्नांकित सावधानियाँ रखनी चाहिएः-

1. अनुचित लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से नशे की हालत में चैक बिल तथा प्रतिज्ञा पत्र लिखवाया या स्वीकार करवाया गया हो एवम् बैंक के पास इनकी पक्की जानकारी हो तब बैंक को भुगतान नही करना चाहिए।

2. यदि कोई शराबी नशे की हालत में बैंक के भुगतान के लिए चैक प्रस्तुत करता है तो बैंक को उसका भुगतान करते समय गवाहों के सामने हस्ताक्षर करवाकर किसी उत्तरदयायी व्यक्ति से प्रमाणित करा लेना चाहिए। ऐसी दशा में बैंक को भुगतान का दोषी नहीं माना जायेगा।

7.4.4 विवाहित महिला खाता

आप निश्चित रूप से जानते होंगे कि भारतीय संविधान में बिना लिंगभेद के प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार प्राप्त हैं। इसी आधार पर भारतीय विवाहित महिला सम्पत्ति अधिनियम, 1874 के अनुसार विवाहित महिलाओं को अपनी पृथक् सम्पत्ति रखने का अधिकार होता है। वे अपनी अर्जित धनराशि से बैक में अपने नाम में पृथक् खाता खोल सकती हैं और बैंक से व्यवहार भी कर सकती हैं। वे बैंक से अपने नाम ऋण एवं अधिविकर्ष प्राप्त कर सकती हैं। पर इन सब के लिए वे स्वयं ही जिम्मेदार हैं। उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति से ही ऋण की वसूली की जा सकती है, न कि पति की सम्पत्ति में से और न पति के ऋण के शोधन के लिए पत्नी की सम्पत्ति प्रस्तुत की जा सकती है। वस्तुत: पत्नी द्वारा अर्जित आय एवं सम्पत्ति पर पत्नी का स्वतन्त्र एवं पृथक् अधिकार होता है जैसा कि आपको जानकारी होनी चाहिए कि हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 14 के अनुसार हिन्दु महिला का अपनी सम्पत्ति पर असंदिग्ध एवं सम्पूर्ण अधिकार है। मुस्लिम महिला को भी शादी के पश्चात् भी प्रसंविदा करने का अधिकार होता है।

पत्नी अपने दायित्वों के लिए स्वयं जिम्मेदार होती है पर यदि पत्नी अपने पति के अभिकर्ता के रूप में दायित्व ग्रहण करती है अथवा अपने पति के जीवन की आवश्यकताओं के लिए ऋण लेती हो तो पति इस ऋण के शोधन के लिए उत्तरदायी ठहराया जायेगा। फ्रांस के अधिनियम के अनुसार एक फ्रांसीसी महिला को अपने पति की सहमति के बिना अपने नाम से खाता खोलने का अधिकार नहीं होता। पर भारतीय नियम इस दृष्टि से उदार हैं। बैंक को विवाहित महिला के नाम में खाता खोलने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

सावधानियां- विवाहित महिला खाता खोलने में निम्नांकित सावधानियां रखनी चाहिए:

1. महिला खाते पर अधिविकर्ष की सुविधा देने से बचना चाहिए क्यों कि साधारणत: विवाहित स्त्री की अपनी पृथक कोई विशेष मूल्यवान सम्पत्ति नहीं होती है।
2. विवाहित महिलाओं को अधिक ऋण सुविधा देने से भी बचना चाहिए क्यों कि इनसे वसूली आसानी से नही हो सकती है।
3. विवाहित महिला की गारंटी लेने से भी बचना चाहिए क्यों कि यदि गारण्टी को प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सके तो बैंक को हानि वहन करनी पड़ेगी। अत: बैक को चाहिए की पत्नी की प्रत्याभूति पर पति को ऋण स्वीकृत न करे।

7.5.5 पर्दानशीन महिला खाता

आपको यहाँ यह जानना, समझना चाहिए कि प्रत्येक जाति, धर्म समुदाय की अपनी अपनी रीति-रिवाज एवम् सामाजिक व्यवहार की व्यवस्थायें होती हैं। उसी अनुरूप महिलायें अपना व्यवहार अपनाती है। ऐसी महिलाएं जो परिवार के निकट सदस्यों के अलावा अन्य व्यक्तियों से पर्दा करती है तथा उन से कोई व्यवहार नहीं रखती, पर्दानशील महिलाएं कहते हैं। भारतीय कानून

में ऐसी महिलाओं को संरक्षण प्रदान किया गया है। उनके द्वारा किये जाने वाले अनुबन्धों में यह मान्यता रहती है कि (i) ऐसी महिला ने अनुचित प्रभाव में आकर अनुबन्ध किया हो और उसमें स्वतंत्र सहमति का अभाव हो और (ii) ऐसी महिला अनुबन्ध के वास्तविक अभिप्राय से पूर्णत: अवगत न हो।

पर्दानशीन महिला से अनुबन्धों में प्रतिपक्ष पर ही यह सिद्ध करने का दायित्व डाला गया है कि पर्दानशीन महिला द्वारा किया गया अनुबन्ध उक्त दोनों से मुक्त है अर्थात् अनुबन्ध में न तो अनुचित प्रभाव से अनुबन्ध किया गया है और उसको अनुबन्ध का अभिप्राय भी पूर्णत: मालूम था

सावधानियां- पर्दानशीन महिला खाता खोलने में निम्नांकित सावधानियां रखनी चाहिए:

1. बैंक को पर्दानशीन महिलाओं का खाता खोलते समय उपयुक्त अंग से उनका परिचय प्राप्त करना चाहिए अन्यथा किसी दूसरी महिला के नाम रो खाता खुलवा कर धोखा किया जा सकता है।
2. पर्दानशीन महिलाओं की खातों के व्यवहारों पर कड़ी नजर रखनी चाहिए।
3. ऐसे खातों पर ऋण या अधिविकर्ष स्वीकार करने से बचना चाहिए।
4. जहां तक हो अशिक्षित पर्दानशीन महिला का खाता नही खोलना चाहिए।

7.4.6 निरक्षर ग्राहक खाता

सामान्य शब्दों में ऐसे व्यक्ति जिन्हें अक्षर ज्ञान नही होता, निरक्षर व्यक्ति कहलाते हैं, ऐसे व्यक्ति ने तो अपने हस्ताक्षर करने में समर्थ हैं और न लिख पढ़ सकते है। फिर भी बैंक में उनको अपना बचत खाता तथा सावधि जमा खाता खोलने का अधिकार है। अत: निरक्षर व्यक्ति भी खाता खोल सकता हैं।

सावधानियां- ऐसे खातों को खोलते समय बैंकर को निम्नांकित सावधानियां रखनी चाहिए।

1. बैंक के निर्धारित आवेदन-पत्र पर निरक्षर ग्राहक की अंगूठे की निशानी को किसी सम्मानित व्यक्ति द्वारा गवाह के रूप में प्रमाणित करा लेना चाहिए।
2. निरक्षर ग्राहक के छाया चित्र की एक प्रमाणित प्रति बैंक को अपने पास तथा एक प्रति उसकी पास-बुक पर लगा देनी चाहिए ताकि पहचानने में सुविधा रहे।
3. निरक्षर ग्राहक द्वारा चैक से राशि निकालने पर तथा ऋण लेते समय इस बात की पुष्टि किसी पुराने ग्राहक से करा लेनी चाहिए।
4. 4.निरक्षर ग्राहक को बैंक से रूपया निकालने अथवा ऋण लेते समय स्वयं बैंक में उपस्थित होना चाहिए।
5. यथा सम्भव अशिक्षित व्यक्ति का चालू खाता नहीं खोलना चाहिए।

7.4.7 संयुक्त खाता

उद्योग एवम् व्यापार संचालन में अनेक बार ऐसे बैंक खातों की आवश्यकता भी होती है जिसका संचालन दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा किया जाये। ऐसी दशा में "जब एक से अधिक व्यक्ति मिलकर बैंक में खाता खोलते हैं तो ऐसे खाते को संयुक्त खाता कहा जाता है। ऐसे खाते के लिए न्यूनतम दो व्यक्तियों का होना आवश्यक हैं। संयुक्त खाता खोलने वाले पक्षकारों में अवयस्क भी हो सकता है। वह अवयस्क या उसकी सम्पत्ति व्यक्तिगत रूप में दायी नही हो

सकती। संयुक्त खाता खोलने के इच्छुक सभी व्यक्तियों को बैंक द्वारा निर्धारित औपचारिकताओं को पूरा करना होता है। इस खाते के संचालन की प्रक्रिया को भी स्पष्ट रूप से घोषित करना होता है।

संयुक्त खातेदार की मृत्यु कुर्की आदेश एवम् दिवालिया तथा पागल होने पर संयुक्त खाते की दशा:

आपको यहाँ यह समझना भी आवश्यक हे कि जब संयुक्त खातेदारों में से किसी एक अथवा अधिक की मृत्यु हो जाने पर बैंक को सूचना मिलते ही तुरन्त प्रभाव से उस खाते से भुगतान रोक देना चाहिए। भविष्य की परेशानियों से बचने के लिए बैंक को पुराना संयुक्त खाता बन्द कर शेष जीवित खातेदारों का संयुक्त नया खाता खोल देना चाहिए।

जब संयुक्त खातेदारों में से किसी एक की मृत्यु हो गयी हो तो मृतक व्यक्ति की मृत्यु से पूर्व लिखे गये चैक को मृत्यु के पश्चात बैंक में भुगतान हेतु प्रस्तुत किया जाय तो बैंक को ऐसे चैक का भुगतान तब ही करना चाहिए जब तक कि शेष जीवित खातेदार भुगतान की अनुमति दे दे। ध्यान रहे कि मृत्यु हो जाने पश्चात मृतक खातेदार की मृत्यु से पूर्व लिखे गये चैक निरस्त हो जाते है इनका भुगतान जीवित खातेदारों की अनुमति से हो सकता है।

यदि ऋण खाता है तो किसी भी संयुक्त खातेदार की मृत्यु हो जाने पर मृतक का ऋण दायित्व सुनिश्चित करने के लिये संयुक्त ऋण खाते का परिचालन रोक देना चाहिये क्योंकि खाता के परिचालन चालू रहने पर उसमें जमा करायी गयी राशि मृतक के दायित्व को कम करती है। क्लेटन V/s बैंक विवाद में यह निर्णय था कि प्रथम जमा करायी गयी राशि प्रथम ऋण की वसूली समझी जाती है जब तक कि कोई विपरीत निर्देश या अनुबन्ध न हो।

सावधि खाते की राशि देय तिथि से पूर्व भी बिना दण्डनीय व्याज के जीवित बचे संयुक्त खाताधारियों तथा मृतक के विधिक उत्तराधिकारियों को चुकाया जा सकता है।

कुर्की आदेश हो जाने पर

यदि न्यायालय द्वारा संयुक्त खाते के सभी खातेदारों पर कुर्की आदेश जारी कर दिया जाता है, तो बैंक को संयुक्त खाता तथा इनके व्यक्तिगत खाते की राशि का भुगतान रोक देना चाहिए। लेकिन संयुक्त खाते के किसी एक खातेदार के व्यक्तिगत खाते पर न्यायालय कुर्की आदेश जारी करता है तो बैंक उसके व्यक्तिगत खाते से ही भुगतान रोकने का अधिकारी होता है।

दिवालिया तथा पागल हो जाने पर

यदि संयुक्त खातेदारों में से कोई भी खातेदार दिवालिया हो जाये अथवा पागल हो जाये और इसकी सूचना बैंक को मिल जाती हैं तो बैंक को तुरन्त प्रभाव से खाते से भुगतान बन्द कर देना चाहिए। सामान्यत: दिवालिया घोषित हो जाने पर सरकारी निस्तारक तथा पागल हो जाने की दशा में वैधानिक संरक्षक के अधिकार में खाते की राशि चली जाती है। ऐसी अवस्था में बैंक को संयुक्त खाते पर लिखे गये चैकों का भुगतान तब तक नहीं करना चाहिए जब तक कि हस्तान्तरित के हस्ताक्षर नहीं हो जाते।

सावधानियां: बैंकर को संयुक्त खाता खोलते समय निम्नांकित सावधानियां रखनी चाहिए।

1. संयुक्त खाता खोलने के इच्छुक सभी व्यक्तियों का बैंक के निर्धारित आवेदन पत्र पर हस्ताक्षर होने चाहिए।

2. संयुक्त खाते का संचालन संयुक्त रूप से किया जायेगा या कुछ व्यक्तियों द्वारा, जो भी हो बैंक को स्पष्ट निर्देश लिखित में प्राप्त कर लेना चाहिए।
3. अग्रिम सुविधा प्राप्त करने तथा गिरवी रखने आदि के लिए कौन सा व्यक्ति अधिकृत होगा। इसके लिए भी बैंक को लिखित में सभी खाताधारियों के हस्ताक्षर सहित प्राप्त कर लेना चाहिए।
4. सभी खातेदारों की सहमति से संयुक्त खाते के संचालन का अधिकार किसी बाह्य व्यक्ति को दिया जा सकता है लेकिन बैंक को ध्यान रखने चाहिए कि ऐसा अधिकृत व्यक्ति किसी दूसरे को उस खाते के संचालन के लिए नियुक्त नहीं कर दें।
5. यदि चैकों के भुगतान को रुकवाने के लिए सभी खातेदार बैंक से निवेदन करते है कि बैंक को आदेश की पालना में भुगतान रोक देना चाहिए क्योंकि सभी की सहमति के बिना भुगतान नहीं किया जा सकता।
6. संयुक्त खाते में ऋण अथवा अधिविकर्ष के लिए भी बैंक को संयुक्त खातेदारों की ओर से स्पष्ट निर्देश प्राप्त कर लेने चाहिए कि संयुक्त। खाते के ऋणों का दायित्व संयुक्त या व्यक्तिगत रहेगा।
7. बैंकों को सुविधा के लिए संयुक्त खातेदारों के संयुक्त दायित्व के साथ-साथ पृथक-पृथक व्यक्तिगत दायित्वों का निर्धारण भी कर लेना चाहिए। ताकि ऋण राशि का भुगतान न होने पर संयुक्त या व्यक्तिगत रूप से वैधानिक कार्यवाही की जा सके एवं ऋण राशि वसूल की जा सके।
8. संयुक्त खाते को संचालित करने वाले खातेदार की मृत्यु, पागल या दिवालिया हो जाने पर खातेदार का खाता संचालन अधिकार मत: ही समाप्त हो जाता है। एसी स्थिति में मैं को खाते से भुगतान रोक देना चाहिए।

7.4.8 अन्धे या नेत्रहीन व्यक्ति का खाता

आप इस बात से सहमत होंगे कि अंधापन प्रकृति की तरफ से अभिशाप होता है। लेकिन भारतीय कानूनों में अन्धे व्यक्तियों को भी समान रूप से अधिकार प्रदान किये हैं। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 में ऐसे व्यक्ति को अनुबन्ध के अयोग्य नही माना है। अत: उसे बैंक में अपना खाता खोलने तथा उसके संचालन के पूरे अधिकार हैं। अन्धे व्यक्ति द्वारा खाता खुलवाने पर भी बैंक की समस्त औपचारिकताओं को पूरा करना होगा

सावधानियां: एक अन्धे या नेत्रहीन व्यक्ति से खाते को खोलने मे बैंकर को निम्नांकित सावधानियाँ रखनी चाहिए:

1. नेत्रहीन व्यक्ति को खाता खोलने के लिये स्वयं उपस्थित होना चाहिये और उसका केवल बचत खाता अथवा सावधि खाता ही खोला जाना चाहिये। उसका चालू खाता खोलना जोखिमपूर्ण है अत: नही खोलना उचित है। इस सम्बन्ध में बैंक को विशेष सावधानी रखनी चाहिए।
2. बैंक द्वारा उसका किसी विश्वसनीय व्यक्ति के साथ संयुक्त खाता भी खोला जा सकता है।

3. अन्धे व्यक्ति के तीन फोटो खाता खोलते समय ले लेने चाहिये जो क्रमश: आवेदन पत्र, खाते तथा नमुने के हस्ताक्षर वाले कार्ड पर चिपकाने चाहिये ताकि उसकी पहचान सुविधाजनक हो जाये।
4. नमूने के हस्ताक्षर के रूप में बायें हाथ के अंगूठे के तीन निशान अथवा शिक्षित होने पर तीन हस्ताक्षर लेने चाहिये। अगर उसके परिचितों से दो व्यक्तियों द्वारा गवाही हो जाये तो उत्तम रहेगा।
5. नेत्रहीन व्यक्ति अपना खाता परिचालन का अधिकार किसी अन्य व्यक्ति को मुख्तारनामे द्वारा दे सकता है। बैंक को मुख्तारनामें की औपचारिकता को ठीक से पूरी करवाना चाहिए।
6. शिक्षित नेत्रहीन व्यक्ति को चैक बुक की सुविधा दी जा सकती है पर यथा संभव तीसरे पक्ष के हित में चैक रेखांकित हो तो अच्छा है।
7. बैंक से चैक अथवा आहरण प्रार्थी से भुगतान लेने के लिए खुद उपस्थित होना चाहिये और भुगतान देते समय किसी अन्य जानकार खातेदार की गवाही लेनी चाहिये।

उपयुर्क्त विवेचना से आप समझ गये होगे कि उक्त सावधानियों बरतने से अंधे व्यक्ति एवम् बैंक दोनों को धोखाधड़ी से बचाया जा सकता है।

7.4.9 निस्तारक खाता

भारतीय बैंकिंग कम्पनी अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत बनाई गई कम्पनी के समापन पर उसकी सम्पत्ति एवं लेनदारियों का निपटारा करने हेतु न्यायालय अथवा कम्पनी के अंशधारियों अथवा लेनदारों द्वारा अधिनियम से निस्तारक नियुक्त किया जाता है। न्यायालय द्वारा निस्तारक नियुक्त होने पर उसको किसी अनुसूचित बैंक में खाता खोलना आवश्यक है जबकि अन्य द्वारा नियुक्त निस्तारक को किसी भी बैंक (अनुसूचित अथवा अन्य) में खाता खोलना पड़ता है। इसके लिये निस्तारक को न्यायालय द्वारा नियुक्ति आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि अथवा अंशधारियों या लेनदारों द्वारा नियुक्ति सम्बन्धी प्रस्ताव की प्रतिलिपि बैंक को देनी पड़ती है। यह खाता निस्तारक के व्यक्तिगत नाम से न होकर उसके सम्बन्धित कम्पनी के पद से होता है। उदाहरणार्थ-

1 निस्तारक A & B Co. Ltd. Mumbai.

2 शासकीय निस्तारक X & Y Co. Ltd.

(न्यायालय द्वारा नियुक्ति पर)

जब एक ही निस्तारक नियुक्त किया जाता है तो बैंक खाता परिचालन न्यायालय के तत्सम्बन्धी नियुक्ति आदेश के अनुसार अथवा प्रस्ताव के अनुसार होना चाहिये किन्तु यदि एक से अधिक निस्तारक नियुक्त किये जाते हैं तो नियुक्ति संलेख के अनुरूप ही बैंक के चेकों अथवा विनियम साध्य लेखों पर एक अथवा सभी के हस्ताक्षर होने चाहिये। स्पष्ट उल्लेख के अभाव में चैक व अन्य विनियम साध्य लेखों पर सभी निस्तारकों के हस्ताक्षर जरूरी हैं। यह अधिकार निस्तारकों के बीच ही हस्तान्तरित हो सकता है, अन्य को नहीं।

सावधानियां :

1. बैंक को ध्यान रखना चाहिए कि निस्तारक के बैंक सम्बन्धी सभी लेन-देन उसके अधिकार क्षेत्र में हो।
2. किसी भी निस्तारक को कम्पनी के नाम से प्राप्त चैकों या अन्य प्राप्तियों को अपने व्यक्तिगत खाते मे जमा कराने का अधिकार नहीं होता।
3. कम्पनी के स्वैच्छिक समापन की अवस्था में तो निस्तारक को 500 रू. से अधिक राशि 10 दिन से अधिक अपने पास रखने का अधिकार नहीं है। न्यायालय अपने नियुक्ति आदेश में इस राशि को बढ़ा सकता है। उक्त सभी तथ्यों को बैंकर को ध्यान रखना चाहिए।

7.4.10 वादेशक खाता

अपनी सुविधा की दृष्टि से कभी-कभी कोई व्यक्ति बैंक में अपना खाता खोलकर उसके परिचालन का अधिकार अपने वादेशक को सौंप देता है तो बैंक को नियुक्ति आदेश की छानबीन द्वारा उसकी सत्यता एवं वास्तविकता परख लेनी चाहिये और इस नियुक्ति आदेश के संलेख के अनुरूप ही वादेशक को ग्राहक का खाता परिचालन करने देना चाहिये। यदि बैंक नियुक्ति, पत्र में यह उल्लेख देखे कि ग्राहक की ओर से वादेशक, को खाता संचालित करने का अधिकार है, तो इसका तात्पर्य यह है कि वादेशक को चैक लिखने और धन राशि जमा करने का अधिकार है। उसे खाते पर अधिविकर्ष या बिल आदि स्वीकार करने पृष्ठांकन करने आदि का अधिकार नहीं है। लेकिन यदि वादेशक को ग्राहक के खाते में धन राशि निकलवाने का अधिकार भी प्राप्त है तो बैंक वादेशक द्वारा किये गये व्यवहारों की विशेष जाँच नहीं करता है।

सावधानियाँ: इस खाते के सम्बन्ध में बैंकर को निम्नांकित सावधानियाँ बरतनी चाहिए -

1. वादेशक नियुक्ति की समस्त औपचारिकता पूरी तरह से पूर्ण होनी चाहिए।
2. बैंक को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कोई वादेशक ग्राहक के नाम से प्राप्त चैक को अपने खाते में तो हस्तान्तरित नहीं कर रहा है।
3. यदि किसी वादेशक ने ग्राहक के नाम से प्राप्त चैक को अपने खाते में हस्तान्तरित किया हो तो उसकी सूचना ग्राहक को दे देनी चाहिए अन्यथा बैंक लापरवाही का दोषी माना जायेगा।

7.5 संस्थागत अथवा गैर व्यक्तिगत खाते

यद्यपि बैंक में अधिकांश खाते व्यक्तिगत होते हैं, किन्तु आधुनिक युग में व्यावसायिक फर्मो, संयुक्त पूंजी वाली कम्पनियों तथा संस्थाओं के खाते भी बढ़ते जा रहे हैं। इन खातों के खोलने एवम् उनके संचालन के निश्चित नियम होते हैं।

इन खातों में मुख्य खाते इस प्रकार हैं -

7.5.1 साझेदारी फर्म के खाते

आप जानते ही होंगे कि व्यापार में साझेदारी फर्म का विशेष महत्व होता है। सामान्यत: जब दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलकर किसी व्यापार व्यवसाय का संचालन करते है तो उसे साझेदारी फर्म कहा जाता है। साझेदारी अधिनियम 1932 धारा 4 के अनुसार, “साझेदारी उन व्यक्तियों के बीच का सम्बन्ध है, जिन्होंने किसी ऐसे कारोबार से उपार्जित लाभ को बांटने का

समझौता किया है, जिसे वे सब अथवा उन सबके लिए कार्य करते हुए कोई एक व्यक्ति चलाता हो।"

परिभाषा से स्पष्ट है कि साझेदारी सम्बन्ध लिखित अथवा मौखिक अनुबन्ध से उत्पन्न होती है। इस सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए दो या दो से अधिक किन्तु 20 से अधिक व्यक्ति साझेदार नहीं हो सकते। यदि फर्म बैंकिंग व्यवसाय करती है तो साझेदारों की संख्या 10 से अधिक नहीं होनी चाहिए अन्यथा साझेदारी फर्म असंवैधानिक हो जाती है। साझेदारों के मध्य किये गये अनुबन्ध को साझेदारी संलेख कहते हैं। जो व्यक्ति इस साझेदारी सम्बन्ध को स्थापित करते है वे व्यक्तिगत रूप से साझेदार एवं सामूहिक रूप से फर्म कहलाते हैं।

साझेदारी फर्म एक व्यावसायिक संस्था होने के कारण अपने नाम से बैंक में अपना चालू खाता या अन्य खाता खोल सकती है। साझेदारी फर्म में एक से अधिक स्वामी होते हैं। अत: बैंक को एक साझेदारी फर्म के नाम से खाता खोलने एवं उसके संचालन के सम्बन्ध हर प्रकार की स्थिति को स्पष्ट करना चाहिए।

साझेदारी फर्म को खाता खोलने में बैंक की समस्त औपचारिकता को पूरा करना होता है।
सावधानियां: बैंकर को साझेदारी खाता खोलने में निम्नांकित सावधानियाँ रखनी चाहिए।

1. **साझेदारी संलेख**- साझेदारी फर्म का खाता खोलने से पूर्व बैंक को साझेदारी संलेख की एक प्रति प्राप्त कर सावधानी से जाँचकर लेनी चाहिए। साझेदारी संलेख साझेदारों के मध्य अनुबन्ध द्वारा स्थापित सम्बन्धों को व्यक्त करता है। इस संलेख में (i) साझेदारी फर्म के व्यवसाय की प्रकृति, (ii) साझेदारों के नाम व पता, (iii) व्यवसाय का क्षेत्र, (iv) साझेदारी अवधि, (v) पूंजी सरचना, (vi) पूंजी में साझेदारी का हिस्सा, (vii) साझेदारों के प्रबन्ध तथा वित्तीय अधिकार, (viii) साझेदारों के दायित्व, (ix) लाभ-हानि का विभाजन अनुपात, (x) साझेदारों के अवकाश ग्रहण करने, (xi) नये साझेदारों के प्रवेश नियम, (xii) साझेदारों के गर्भित अधिकारों पर रोक आदि अनेक बातों का समावेश होता है। अत: खाता खोलने से पूर्व साझेदारी संलेख सभी साझेदारों के हस्ताक्षर सहित लेना चाहिए।

2. **खाता फर्म के नाम से ही खोला जाय-** जब कोई बैंक किसी साझेदारी फर्म का खाता खोलता है तो उसे फर्म के नाम से ही खाता खोलना चाहिए। किसी एक या अधिक साझेदारों के व्यक्तिगत नाम से खाता नहीं खोला जाना चाहिए। खाता खोलने के लिए बैंक को संयुक्त आवेदन पत्र एवं उस प्रस्ताव की प्रतिलिपि ले लेनी चाहिए जिसके द्वारा फर्म ने बैक में खाता खोलने का निश्चय किया था।

3. **फर्म का पंजीयन**- सामान्यत: किसी भी बैंक को किसी भी अपंजीकृत फर्म का खाता नहीं खोलना चाहिए। यद्यपि अधिनियम में साझेदारी फर्म के पंजीयन की बाध्यता नहीं है। लेकिन पंजीयन न कराने के गम्भीर परिणाम होते हैं। इसलिए सभी साझेदारी फर्म अपना पंजीयन करा लेती हैं। अपंजीकृत फर्म से लेन-देन में बैंक को निम्न जोखिमों का सामना करना पड़ सकता है।

(i) बैंक अपंजीकृत संस्था के विरूद्ध वैधानिक कार्यवाही नहीं कर सकता।

(ii) कोई भी साझेदार अपंजीकृत फर्म के विरूद्ध वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता।

(iii) फर्म किसी बाहरी पक्ष के विरूद्ध वाद प्रस्तुत नहीं कर सकती।

(iv) बैंक अपंजीकृत फर्म के विरूद्ध समायोजन के अधिकार का उपयोग नहीं कर सकता।

4. **खाता खोलने व संचालन का अधिकार**- बैंक को साझेदारी संलेख का भली-भांति अध्ययन करने के बाद यह देखना चाहिए कि संलेख में खाता खोलने और उसके संचालन का अधिकार किन-किन साझेदारों को दिया गया हैं। लिखित सहमति के बिना कोई साझेदार खाता संचालन का अधिकार किसी अन्य साझेदार को नहीं सौंप सकता है। जिस भी साझेदार को खाता संचालन का अधिकार दिया गया है, उससे यह अधिकार किसी साझेदारों के नोटिस देने पर वापस लिया जा सकता है।

यहाँ एक विशेष बात ध्यान में रखनी होगी कि एक साझेदार अपनी फर्म का प्रतिनिधि होता है। बैंक किसी भी साझेदार द्वारा लिखे गये चैक का भुगतान कर सकता है। लेकिन साझेदारी संलेख या आवेदन में जिस एक या कुछ साझेदारों को खाता संचालन का अधिकार दिया गया हो या किसी साझेदार के इस अधिकार पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया हो तो बैंक को ऐसे निर्देशों की पालना करना चाहिए।

5. **फर्म खाते के संचालन पर रोक लगाना-** यद्यपि साझेदारी फर्म के खाते का संचालन एक या कुछ साझेदारों को अधिकृत करके किया जा सकता है और वे चैक द्वारा राशि निकाल सकते हैं लेकिन ऐसे लिखे गये चैकों का भुगतान कोई भी अन्य साझेदार रुकवा सकता है। यदि फर्म के खाते का संचालन कोई एक साझेदार ही करता है तो बैंक को और अधिक सतर्कता रखनी चाहिए।

6. **फर्म की वैधानिक स्थिति**- साझेदारी फर्म का गठन भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 के आधार पर किया गया है तथा फर्म पूर्ण रूप से वैद्य है। इस बात की बैंक को जांच कर लेनी चाहिए। प्रत्येक साझेदार फर्म का प्रतिनिधि होता है, फर्म के नाम से किये गये व्यवहारों में प्रत्येक साझेदार व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते है। गैर वैधानिक संस्थाओं के साथ व्यवहार करते समय बैंक को अधिक सावधानी रखनी चाहिए, क्योंकि गैर वैधानिक संस्थाओं के सदस्य हानि की स्थिति में एक-दूसरे के विरूद्ध वाद प्रस्तुत नही कर सकते।

7. **फर्म के लिए ऋण लेना, सम्पत्ति गिरवी रखना, गारण्टी देना, चैक व बिल लिखना तथा उनका पृष्ठांकन करना-** सभी साझेदारों की सहमति से फर्म का संचालक साझेदार फर्म के लिए ऋण ले सकता है, सम्पत्ति गिरवी रख सकता है तथा चैक, बिल आदि लिख सकता है तथा उनका पृष्ठांकन भी कर सकता है। सहमति के अभाव में बैंक को फर्म की सम्पत्ति, चैक तथा बिलों के भुगतान पर वैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। अतः सुविधा की दृष्टि से बैंक को सभी साझेदारों की लिखित सहमति प्राप्त कर लेनी चाहिए।

8. **साझेदार की सेवा निवृति-** फर्म से जब भी कोई साझेदार निवृत होता है, तो निवृति की सूचना तुरन्त बैंक को दे देनी चाहिए अन्यथा निवृति के पश्चात भी बैंक द्वारा फर्म को दिये गये ऋणों के लिए वह उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। बैंक को साझेदार की सेवा निवृति की सूचना मिलते ही फर्म का खाता बन्द कर देना चाहिए तथा नया खाता खोल देना चाहिए। जिससे पुराने फर्म तथा नई फर्म के दायित्वों का पृथक-पृथक निर्धारण सम्भव हो सके। इससे भविष्य में दायित्व निर्धारण की समस्या उत्पन्न नहीं होती।

9. **साझेदार का दिवालिया हो जाना-** भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 धारा 34 (1) के अनुसार जिस दिन किसी साझेदार को न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित किया जाता है, तब दिवालिया हो जाने पर बैंक को फर्म का खाता बन्द कर देना चाहिए तथा शेष साझेदारों के नाम

से फर्म का नया खाता खोलकर उसके संचालन हेतु निर्देश प्राप्त कर लेने चाहिए। यदि दिवालिया घोषित होने के पश्चात् किसी भी साझेदार द्वारा हस्ताक्षरित चैक बैंक में भुगतान हेतु पेश किया जाता है तो बैंक को ऐसे चैक का भुगतान रोक देना चाहिए तथा उस चैक के भुगतान हेतु शेष साझेदारों से नया आदेश प्राप्त कर लेना चाहिए।

10. **साझेदार के पागल हो जाने-** ऐसी दशा में फर्म के पक्ष में यही उचित रहेगा कि पागल साझेदार का फर्म से अलग कर एक नयी फर्म का गठन कर लिया जाए क्योंकि जब तक न्यायालय फर्म को समाप्त करने के आदेश नहीं देता तब तक फर्म पागल साझेदार के कार्यों के लिए उत्तरदायी रहेगी। बैंक को भी नया खाता खोल देना चाहिए।

11. **नये साझेदार का प्रवेश-** अधिनियम की धारा 31 के अनुसार सभी पुराने साझेदारों की सहमति से साझेदारी फर्म में किसी नये व्यक्ति को शामिल किया जा सकता है। नये साझेदार के प्रवेश करने से फर्म की स्थिति में अन्तर आ जाता है। इसलिए फर्म का पुराना खाता बन्द कर नया खाता खोलना चाहिए। इसके लिए फर्म की पूर्व प्रक्रिया से गुजरना पड़ेगा। फर्म के पुराने दायित्वों के लिए पुराने साझेदारों से एक पृथक घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर करा लेने चाहिए।

12. **साझेदारी की समाप्ति-** साझेदारी की समाप्ति पर साझेदारी फर्म का समापन हो जाता है तथा बैंक खाते का संचालन केवल व्यावसायिक लेन-देनों के निपटारे, के लिए किया जाता है। सरकारी प्रापक की नियुक्ति के पश्चात बैंक खाते में जमा राशि प्रापक को सौंप दी जाती हैं।

7.5.2 संयुक्त पूंजी वाली कम्पनी के खाते

आपको जानना ही चाहिए कि बीसवीं शताब्दी में औद्योगिक एवं व्यापारिक विकास का आधार कम्पनियों को माना जाता है जिससे विशाल स्तर पर आर्थिक क्रियाओं का संचार सम्भव हो सका।

भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 धारा 3 के अनुसार "कम्पनी से तात्पर्य इस अधिनियम के अधीन निर्मित एवं पंजीकृत कम्पनी से है या ऐसी विद्यमान कम्पनी से है, जिसकी रजिस्ट्री पूर्व के किसी कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत हुई हो।" हम कह सकते है कि कम्पनी एक वैधानिक कृत्रिम व्यक्ति होती है, जिसका समामेलन कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत हुआ हो, जिसमें सदस्यों का दायित्व सामान्यत: सीमित होता है, जिसकी अपनी सार्वमुद्रा होती है तथा जिसका संचालन पार्षद सीमानियम तथा पार्षद उपनियमों से होता है। इस परिभाषा में एक संयुक्त पूंजी कम्पनी की विशेषताओं का समावेश है जो उसे अन्य व्यावसायिक संस्थाओं से पृथक एक स्वतंत्र एवं शाश्वत अस्तित्व वाली कानूनी संस्था के रूप में प्रतिस्थापित करती है। संक्षेप में-

(i) संयुक्त पूंजी कम्पनी कानून द्वारा निर्मित कृत्रिम व्यक्ति के समान है।
(ii) संयुक्त पूंजी कम्पनी का अपने अंशधारियों से पृथक स्वतंत्र अस्तित्व होता है।
(iii) कम्पनी के अंशधारियों का दायित्व सीमित होता है।
(iv) कम्पनी में शाश्वत उत्तराधिकार पाया जाता है।
(v) कम्पनी की अपनी सार्वमुद्रा होती है।
(vi) कम्पनी की पूंजी, कार्यक्षेत्र, कार्य तथा संचालन आदि का निर्धारित कम्पनी के पार्षद सीमानियमों तथा पार्षद अन्तर्नियमों से होता है।

कम्पनी की इन विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए ही बैंक द्वारा कम्पनी के नाम से किसी भी प्रकार का खाता खोला जा सकता है, संयुक्त पूंजी वाली कम्पनी को बैंक में विभिन्न प्रकार के खातों को खुलवाने के लिए उन सभी औपचारिकताओं को पूर्ण करना होता है जो उन खातों के लिए बैंक द्वारा निर्धारित कर रखा हों। खातों के सम्बन्ध में यदि किसी प्रकार का विवाद उत्पन्न होता है तब बैंक कम्पनी के नाम से वाद प्रस्तुत कर सकती है एवम् कम्पनी बैंक के नाम से वाद प्रस्तुत कर सकती है।

सावधानियाँ:- बैक को कम्पनी का खाता खोलने एवं संचालित करने में निम्नांकित सावधानियां बरतनी चाहिए:-

(1) **कम्पनी का खाता खोलने के लिये आवेदन-पत्र प्राप्त करना-** कम्पनी का बैंक में खाता खोलने के इच्छुक व्यक्तियों को बैंक के छपे हुए आवेदन-पत्र को भरकर एवं कम्पनी के सचिव अथवा अध्यक्ष के हस्ताक्षरों से युक्त आवेदन-पत्र बैंक को प्रस्तुत करना पड़ता है। इस आवेदन-पत्र में संचालकों के नाम, पते एवं हस्ताक्षर, संचालक मण्डल द्वारा खाता खोलने का प्रस्ताव, चैक, बिलों अथवा अन्य विनिमय साध्य प्रलेखों पर हस्ताक्षर कर सकने वाले संचालकों के अधिकार आदि का स्पष्ट उल्लेख होता है। इस आवेदन-पत्र में कम्पनी खाता परिचालन करने वाले संचालकों के नमूना हस्ताक्षर भी ले लिये जाते हैं। बैंक को इन सभी सूचनाओं का परीक्षण अच्छी प्रकार से करना चाहिए।

(2) **कम्पनी के पार्षद सीमानियम तथा पार्षद अन्तर्नियम-** बैंक को कम्पनी का खाता खोलने के पूर्व (i) कम्पनी का पार्षद सीमा नियम तथा, (ii) कम्पनी का पार्षद अन्तर्नियम दोनों की एक-एक प्रमाणित प्रतिलिपि लेना जरूरी है। इनकी प्राप्ति के बाद इनकी गहन जांच करनी चाहिये ताकि कम्पनी के इन दस्तावेजों की सत्यता स्पष्ट हो जाये।

आपको ध्यान में रखना होगा कि इन दोनों प्रपत्रों की प्रमाणित प्रतिलिपित से कम्पनी के खाते के परिचालन में नियमों तथा उपनियमों के अतिक्रमण को रोकने में मदद मिलेगी।

(3) **कम्पनी का व्यापार प्रारम्भ करने का प्रमाण-पत्र प्राप्त करना-** यद्यपि एक प्राइवेट कम्पनी को समामेलन का प्रमाण-पत्र मिलने के साथ ही अपना व्यापार प्रारम्भ करने का वैधानिक अधिकार मिल जाता है किन्तु एक, सार्वजनिक कम्पनी को तब तक व्यापार करने का अधिकार नहीं मिलता जब तक कि उसे व्यापार प्रारम्भ करने का प्रमाण पत्र प्राप्त नहीं हो जाता। इस प्रमाण-पत्र को प्राप्त करने के लिये एक पब्लिक कम्पनी को भारतीय कम्पनी अधिनियम,1956 की धारा 149 की न्यूनतम चन्दे की प्राप्ति तथा अंश आवंटन शर्तों की पूर्ति करना जरूरी होता है। जब तक पब्लिक कम्पनी को (i) समामेलन का प्रमाण-पत्र तथा, (ii) व्यापार प्रारम्भ का प्रमाण पत्र दोनों प्राप्त नहीं हो जाते, उसे वैधानिक लेन देन का अधिकार नहीं मिलता। अत: बैंक को किसी भी नई पब्लिक कम्पनी का खाता खोलने से पूर्व इन दोनों प्रमाण-पत्रों की मूल प्रतियां मय प्रमाणित फोटो-प्रतिलिपियां प्राप्त कर लेनी चाहिये तथा मूल प्रतियों को अवलोकन के बाद लौटा देना चाहिये।

(4) **दस्तावेजों की जांच-** खाता खोलने से पूर्व बैंक को चाहिए कि वह कम्पनी से प्राप्त सभी आवश्यक दस्तावेजों की गहन जांच करे ताकि कम्पनी के संविधान, अधिकार तथा उद्देश्यों के बारे में पूर्णतया अवगत हो सके।

(5) **कम्पनी को ऋण लेने का अधिकार-** व्यावसायिक क्षेत्र में लगी संयुक्त पूंजी वाली कम्पनियों का ऋण प्राप्त करने का गर्भित अधिकार प्राप्त हैं। यदि कोई कम्पनी बैंक से ऋण लेने के लिए आवेदन करती है तो बैंक को कम्पनी के दस्तावेजों के अध्ययन से निश्चित करना चाहिए कि कम्पनी के संचालकों को ऋण लेने की सीमा क्या है? कम्पनी के अध्यक्ष, सचिव अथवा किसी संचालक से यह प्रमाण-पत्र ले लेना चाहिए कि अमुक ऋण संचालक विशेष के अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं है।

(6) बैंक द्वारा ऋण स्वीकृत करते समय कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 293 (1) द को भी ध्यान में रखना चाहिए जिसमें संचालक मण्डल द्वारा ऋण लेने के अधिकार पर प्रतिबन्ध दिये गये हैं। इस धारा के अन्तर्गत किसी सार्वजनिक कम्पनी या सार्वजनिक कम्पनी की किसी सहायक निजी कम्पनी का संचालक मण्डल कम्पनी की कुल चुकता पूंजी एव सामान्य संचित कोष की कुल राशि से अधिक ऋण नहीं ले सकती है जब तक की साधारण सभा में ऐसा प्रस्ताव पारित नहीं किया गया हो।

ऋण देते समय बैंक को ध्यान रखना चाहिए कि कुल ऋण राशि कम्पनी की सीमा में ही हो।

कम्पनी अधिनियम की धारा 292 में स्पष्ट है कि कम्पनी का संचालक मण्डल ऋणपत्रों की छोड़कर अन्य ऋणों के लिए प्रस्ताव पारित करके ही ऋण लेने के अधिकार का उपयोग कर सकता है तथा संचालक मण्डल प्रस्ताव पारित करके ऐसे हस्तान्तरण किसी संचालक समिति, प्रबन्ध संचालक, कोषाध्यक्ष, सचिव या अन्य वरिष्ठ अधिकारियों को किया जा सकता है।

प्रतिनिवेशक अधिकार

आपको यहाँ एक बात विशेष रूप से जाननी चाहिए कि बैंक की पर्याप्त सावधानी के उपरान्त भी कम्पनी को कोई अनाधिकृत ऋण स्वीकृत हो गया तथा कम्पनी ने उस राशि का बैंक से आहरण कर लिया हो लेकिन अभी तक उस राशि का उपयोग नहीं किया गया। ऐसी स्थिति में बैंक न्यायालय में प्रतिवेदन देकर उक्त राशि के प्रयोग को रूकवाने का अधिकार रखता है। इसे ही प्रतिनिवेशन अधिकार कहते हैं।

यदि अनाधिकृत ऋण कम्पनी के संचालकों के मिथ्या कथन के आधार पर दिये गये हैं तो उन्हें इसके लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

(7) **बन्धक रजिस्ट्रेशन-** जब कोई कम्पनी अपनी अचल सम्पत्ति की जमानत के आधार पर ऋण लेती है तो बैंक को यह देख लेना चाहिए कि उक्त अचल सम्पत्ति जो बन्धक के रूप में रखी गयी है उसका कम्पनी रजिस्ट्रार से पंजीयन कराया है या नहीं। यह रजिस्ट्रेशन निर्धारित अवधि में नहीं कराती है तो यह अनुबन्ध व्यर्थ माना जायेगा तथा बैंक को तुरन्त ऋण राशि वापिस लेने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि वह असुरक्षित ऋण माना जायेगा।

(8) **प्रभारों की रजिस्ट्री-** कम्पनी अधिनियम की धारा 125 के अनुसार प्रभारों की रजिस्ट्री कराना आवश्यक है-

प्रभारों की रजिस्ट्री नहीं कराने से ये वैधानिक रूप से निष्प्रभावी या शून्य हो जाते हैं। प्रभार के आधार पर ऋण देते समय बैंक को सावधानी रखनी चाहिए के उक्त प्रभारों का

रजिस्ट्रेशन निर्धारित समय अवधि में करा लिया है या नहीं। उन सम्पत्तियों पर कोई पूर्व प्रभार तो नहीं है। इसके साथ ही बैंक को संचालक की व्यक्तिगत गारन्टी भी ले लेनी चाहिए।

(9) **संचालकों के व्यक्तिगत खाते-** यदि बैंक में कम्पनी के खाते के साथ-साथ उसके संचालकों के व्यक्तिगत खाते खुले हुए हैं तो बैंक को विशेष सावधानी रखने की जरूरत हैं। ऐसा कोई भी संचालक जिसे कम्पनी की ओर से चैक लिखने, पृष्ठांकित करने का अधिकार है या अधिकृत संचालक है। यदि वह कम्पनी के नाम से आये चैकों को अपने व्यक्तिगत खाते में जमा कराता है तो बैंक को सर्वप्रथम उसके इस उद्देश्य का पता लगाना चाहिए जिसके लिए वह चैक अपने व्यक्तिगत खाते में जमा कराने का पर्याप्त आधार. नहीं है तो बैंक को इस तरह की जमा राशि कम्पनी को लौटानी पड़ेगी।

(10) **प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी-** ऐसी कम्पनियां जो एकल स्वामित्व वाले व्यवसाय से बदलकर प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के रूप में स्थापित हो जाती है। ऐसी कम्पनियों को ऋण देते समय बैंक को अत्यधिक सावधानी रखनी चाहिए। ऐसे एकल व्यवसायी जो लेनदारों को धोखा देने तथा सीमित दायित्व वाली कम्पनी के लाभों को उठाने के उद्देश्य से निजी कम्पनी का निर्माण कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में सम्पतियों के इस प्रकार अन्तरण को दिवालिया ही माना जाता हैं। ऐसे व्यवसायी दिवालिया अधिनियम के अन्तर्गत आने से अनुबन्ध के योग्य नहीं होते। अत: बैंक को उनसे वित्तीय व्यवहारों तथा ऋण स्वीकृत करने में विशेष सावधानी रखनी चाहिए।

7.5.3 सहकारी समितियों के खाते

आप इस तथ्य से सहमत होंगे कि सहकारी समितियां ऐसे स्वैच्छिक संगठन होते हैं जिनका गठन समाज के कमजोर वर्ग के व्यक्ति अपने आर्थिक हितों की रक्षा व विकास के उद्देश्य से आपस में मिलकर व समानता के आधार पर करते हैं। सहकारी समितियों का पंजीयन राज्य सहकारी समिति अधिनियम के अन्तर्गत होता है। इनके कुछ उप-नियम होते हैं। इनमें समिति का नाम, कार्यक्षेत्र, उद्देश्य, प्रबन्ध, ऋण लेने तथा बैंक में खाता खोलने सम्बन्धी विस्तृत व्यवस्थायें होती हैं। बैंक ऐसी समितियों के आवश्यकतानुसार खाते खोल सकता है। लेकिन खाते खुलवाने की समस्त औपचारिकताओं को पूरा करना होता है।

सावधानियां: इन समितियों का खाता खोलते समय बैंक को निम्नांकित सावधानियाँ रखनी चाहिए।

(1) सहकारी समितियों का पंजीकरण राज्य सहकारी समिति अधिनियम के अन्तर्गत होता है जो कि सहकारी विभाग के उपरजिस्ट्रार द्वारा प्रमाणित किया जाता है। खाता खोलने से पूर्व बैंक का पंजीकरण की प्रमाणित प्रति प्राप्त कर लेनी चाहिए एवम् उनकी गहनता से जांच करनी चाहिए।

(2) समिति का खाता खोलते समय बैंक को नियम तथा उपनियमों की प्रमाणित प्रति भी ले लेनी चाहिए क्योंकि इसमें समिति का नाम, उद्देश्य, कार्य क्षेत्र, प्रबन्ध पदाधिकारी, ऋण लेने तथा बैंक में खाता खोलने से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी मिल जाती है। बैंक को नियम तथा उपनियमों को गहराई में अध्ययन करना चाहिए।

(3) खाता खोलने से पूर्व बैंक को प्रबन्ध समिति द्वारा खोलने के प्रस्ताव की प्रति भी प्राप्त कर लेनी चाहिए जिसमें निम्न बातों का उल्लेख हो -

(i) बैंक को समिति का बैंकर बनाने का निर्णय।

(ii) बैंक में खाता संचालित करने वाले व्यक्तियों के नाम।

(iii) खाता संचालन के लिए उपयोगी निर्देश।

(4) बैंक को प्रबन्ध समिति द्वारा पारित प्रस्ताव की प्रति प्राप्त कर लेनी चाहिए जिसमें स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए कि समिति को ऋण लेने का अधिकार है तथा किन-किन कार्यों के लिए समिति ऋण ले सकती है आदि। ऋणों की सुरक्षा की दृष्टि से बैंक को यथासम्भव पर्याप्त प्रतिभूति प्राप्त कर लेना उचित रहता है।

(5) समिति को ओर से ऐसा अधिकृत व्यक्ति जिसे बैंक खाता संचालित करने का अधिकार है, उसका समिति से त्यागपत्र देने अथवा मृत्यु हो जाने की दशा में बैंक को समिति के खाते का संचालन स्थगित कर देना चाहिए। जब तक कि समिति द्वारा अन्य व्यक्ति को अपनी वैधानिक प्रक्रिया द्वारा नामांकित किया जाता है।

(6) जिस व्यक्ति को समिति के खाते का संचालन करने का अधिकार दिया है, उसका उसी बैंक में व्यक्तिगत खाता भी है तो बैंक को अधिक सर्तकता से कार्य करना चाहिए। क्योंकि कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह समिति के नाम से प्राप्त चैकों को अपने व्यक्तिगत खाते में जमा करा रहा हो। ऐसे तथ्यों की जानकारी होते ही बैंक को इसकी सूचना अन्य पदाधिकारियों को दे देनी चाहिए अन्यथा विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 131 के अन्तर्गत बैंक को वैधानिक संरक्षण प्राप्त नहीं होगा -

7.5.4 संयुक्त हिन्दु परिवार खाते

आप इस बात से सहमत होंगे कि भारत में संयुक्त परिवारों का विशेष महत्व है। संयुक्त हिन्दु परिवार से आशय एक ऐसे हिन्दु परिवार से लिया जाता है जिसमें परिवार से सम्बन्धित सभी व्यक्ति एक साथ रहते हो तथा उन सभी के भोजन, वस्त्र तथा रहने की व्यवस्था आदि एक साथ ही होती हो। संयुक्त हिन्दु परिवार का पैतृक सम्पत्ति तथा व्यवहार पर अधिकार होता है। परिवार के सदस्यों को पैतृक सम्पत्ति के स्वामित्व का हस्तान्तरण हिन्दु विधि के अनुसार होता है। इसमें दो प्रकार के सिद्धान्त शामिल है -

1. मितक्षरा- इस विधि के अनुसार संयुक्त हिन्दु परि वार की वंशानुगत (पैतृक) सम्पत्ति पर उस परिवार के सभी सदस्यों का अधिकार होता है।

2. दाँया भाग- इस विधि के अनुसार पिता के जीवित रहने तक पुत्र को पैतृक सम्पत्ति का कोई अधिकार नहीं मिलता। पिता की मृत्यु के पश्चात् ही पुत्र को पिता की सम्पत्ति पर अधिकार मिलता है। हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम 1956 के लागू हो जाने के पश्चात से यह व्यवस्था प्रारम्भ हो गयी है कि मृत व्यक्ति जो कि संयुक्त परिवार का सदस्य था, का हिस्सा उसकी पत्नी व पुत्रियों में विभाज्यनीय होता है।

बैक संयुक्त हिन्दु परिवार की आवश्यकतानुसार खाता खोल सकता है एवम् नियमानुसार उन खातों का संचालन करने का अधिकार भी प्रदान करता है। खाते खुलवाने में भी बैंक को नियमानुसार सभी औपचारिकताओं को पूरा भी करना होता है।

सावधानियां- संयुक्त परिवार की वैधानिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए बैंक को ऐसा खाता खोलने व संचालन के समयनिम्नांकित सावधानियाँ बरतनी चाहिए

1. संयुक्त हिन्दु परिवार का ज्येष्ठ सदस्य कर्ता या मुखिया होता है। इसी के नाम से बैंक में खाता खोला जाना चाहिए।
2. व्यवस्थापक के नाम से बैंक में खाता खुलवाना चाहे तब बैंक उसी दशा में खाता खोल सकती हैं जबकि हिन्दु परिवार के व्यवसाय की अनेक स्थानों पर शाखाएँ होती है तथा कर्ता उन समस्त स्थानों पर खातों का संचालन नहीं कर सकता है। बैक को इसमें सावधानियाँ रखनी चाहिए।
3. सुरक्षा की दृष्टि से बैंक को चाहिए कि ऋण देते समय संयुक्त हिन्दु परिवार के सभी सदस्यों के ऋण दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करा ले।
4. संयुक्त परिवार का खाता खोलने से पूर्व बैंक को पारिवारिक व्यवसाय की प्रकृति एवं स्वामित्व के बारे में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए तथा परिवार के सभी सहस्वामियों की सहमति भी जरूरी है जिससे संयुक्त परिवार के सभी सदस्यों का दायित्व निर्धारित किया जा सके।
5. संयुक्त हिन्दु परिवार के व्यवसाय के निम्न वैधानिक गर्भित अधिकार होते हैं-
   (i) पारिवारिक व्यवसाय के संचालन के लिए ऋण ले सकता है।
   (ii) पारिवारिक सम्पत्ति को गिरवी रख सकता है।
   (iii) परिवार के नाम से भुगतान कर सकता है तथा भुगतान प्राप्त कर सकता है।
   (iv) विनियम साध्य विलेखों के संबंध में परिवार के सभी सदस्यों को दायी बना सकता है।
   (v) परिवार की ओर से विवादों का निपटारा कर सकता है।

कर्ता या व्यवस्थापक परिवार के समस्त सदस्यों की सहमति के बिना पारिवारिक सम्पत्ति से नया व्यवसाय प्रारम्भ नहीं कर सकता और न ही उसके संचालन के लिए ऋण ले सकता है।

अतः बैंक को इन गर्भित अधिकारों को ध्यान में रखते हुए खाते का संचालन करना चाहिए।

6. बैक को ध्यान रखना होगा कि संयुक्त हिन्दु परिवार में सट्टा उद्देश्य या नये व्यवसाय के लिए ऋण नहीं लिया जा सकता अन्यथा कर्ता व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा। लेकिन आप को यह भी ध्यान में रखना होगा कि

निम्न उद्देश्यों के लिए स्वीकृत ऋणों को पारिवारिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु लिया गया ऋण माना जाता है-

(i) पारिवारिक सदस्यों के भरण-पोषण।
(ii) सरकारी ऋणों तथा करों का भुगतान।
(iii) पारिवारिक उत्पन्न संस्कार या मृतक संस्कार।
(iv) कर्ता अथवा पारिवारिक सदस्यों की फौजदारी मुकदमों से सुरक्षा।
(v) पारिवारिक व्यवसाय का संचालन।

7. कर्ता या व्यवस्थापक द्वारा लिए गये ऋणों के भुगतान के लिए सभी सदस्यों का अपनी-अपनी सम्पत्ति के अनुपात में दायित्व होता है। लेकिन कर्ता का दायित्व असीमित होता है। ऋण

अनुबन्ध पर कर्ता या व्यवस्थापक के साथ जो सदस्य हस्ताक्षर करते है, ऋणों के भुगतान के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होते हैं।

8. संयुक्त परिवार का कोई सदस्य स्वेच्छा से बिना अन्य सदस्यों की सहमति के किसी साझेदारी फर्म में शामिल हो जाता है तो साझेदारी फर्म के दायित्वों के भुगतान के लिए उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति को ही उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, लेकिन यदि वह परिवार के सभी सदस्यों की सहमति से शामिल हुआ हो तो सम्पूर्ण परिवार की सम्पत्ति को साझेदारी फर्म के दायित्वों के भुगतान के लिए उपयोग किया जा सकता है। अवयस्क पर यह नियम लाग नहीं होता।

9. इकलौते पुत्र द्वारा नवीन व्यवसाय- यदि किसी संयुक्त हिन्दु परिवार में पिता तथा उसका अकेला पुत्र होता है और पिता द्वारा किसी नये व्यवसाय का संचालन किया जाता है वह व्यवसाय संयुक्त परिवार का ही व्यवसाय माना जायेगा। ऐसे व्यवसाय के संचालन में लिये गये ऋणों का शोधन संयुक्त परिवार की सम्पति से होगा।

7.5.5 क्लब, स्कूल, तथा अन्य संस्थाओं के खाते

बैंकों में व्यवसायियों को तो खाते खोलने ही होते हैं पर सैर-व्यापारिक संस्थाओं जैसे क्लब, धर्मार्थ संस्था, स्कूल, यूनियन आदि को भी सुविधा के कारण तथा अपने नियमों के अधीन बैंक में खाता खोलना आवश्यक होता है। ये संस्थायें पंजीयत और अपंजीयत दोनों ही हो सकती हैं। क्योंकि अपंजीयत संस्थाओं को वैधानिक मान्यता नहीं होती अत: उन्हे प्रसंविदा करने का भी अधिकार नही होता, इसलिए लगभग सभी ऐसी संस्थाएं पंजीयत ही होती है।

ऐसी संस्थाओं द्वारा जब सम्पूर्ण औपचारिकताओं को पूरा करते हुए बैंक के पास खाता खोलने का आवेदन किया जाता है तब बैंक उनके आवेदन को जाँचने के बाद खाता खोल कर उसके संचालन की अनुमति प्रदान कर देता है। कोई भी बैंक बिना किसी आधारभूत कारण के खाता खोलने से मना नहीं कर सकता है। ऐसी संस्थाओं के खातों के संचालन केवल अधिकृत व्यक्ति द्वारा ही हो सकता है।

सावधानियाँ: इन संस्थाओं के खाते खोलने एवम् उनके संचालन में निम्नांकित सावधानियाँ रखनी चाहिए:

1. ऐसी संस्थाओं के खाता खोलने से पूर्व बैंक को सर्वप्रथम उसके पंजीयन की जाँच कर लेनी चाहिए क्योंकि ऐसी संस्थाओं का गठन बिना पंजीयन के भी हो सकता है। आप जानते हैं कि पंजीयन के अभाव में ऐसी संस्थाओं पर कानून के अन्तर्गत मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। अत: अपंजीयन संस्थाओं के खाते खोलने में बचना चाहिए।

2. ऐसी संस्थाएँ जब खाता खोलने के लिए बैंक में आवेदन करती हैं, तब ही बैंक को इनके नियम तथा उपनियमों की प्रमाणित प्रति प्राप्त कर लेनी चाहिए। इससे स्पष्ट हो सके की संस्था का उद्देश्य, कार्य, कार्यक्षेत्र व संचालकों के अधिकार तथा कर्त्तव्य क्या हैं, जिसमें लेनदेन में नियमों का उल्लंघन न हो सके।

3. बैंक को खाता खोलने तथा संचालन सम्बन्धी प्रस्ताव की अधिकृत प्रति संस्था से ले लेनी चाहिए। जिन व्यक्तियों को खाता संचालन का अधिकार दिया गया है, उनके नमूने के हस्ताक्षर प्राप्त कर लेने चाहिए।

4. बैंक को ध्यान रखना चाहिए कि संस्थाओं का खाता संस्था के नाम से ही खोला जाये, संचालकों के व्यक्तिगत नाम से नहीं।

5. ऐसी संस्थाओं की प्रकृति व्यावसायिक नहीं होती है अतः इन्हें ऋण लेने का गर्भित अधिकार भी नहीं होता फिर भी ऋण देते समय बैंक को इनके नियम व उपनियमों का विस्तृत अध्ययन कर लेना उचित रहेगा।

6. अधिकारियों के परिवर्तन की सूचना- संस्था के अधिकारियों में किसी तरह का परिवर्तन होता है तो उसकी सूचना बैंक को तुरन्त दी जानी चाहिए।

7. यदि ऐसी संस्था के अधिकृत व्यक्ति का बैंक में पृथक व्यक्तिगत खाता भी है तो बैंक को उस खाते में चैक अथवा बिल संग्रह करते समय इस बात का ध्यान रखना होगा कि संस्था की कोई राशि अनधिकृत रूप में व्यक्तिगत खाते में हस्तांतरित नही हो जाये। यदि ऐसा होता है तो बैंकर इस लापरवाही को दोषी होगा और उसे धारा 131 का संरक्षण नही मिलेगा।

7.5.6 सरकारी विभाग के खाते

आप जानते ही हो कि अर्थव्यवस्था में सरकार की क्रियाशीलता एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी है। आज अर्थव्यवस्था में सरकार का स्थान एक बड़े उपभोक्ता एवम् उत्पादक के रूप में गिना जाता है। अतः सरकार को बड़े स्तर पर भुगतान करना एवम् प्राप्तियों को प्राप्त करना होता है। इसके लिए बैंक में खाता होना अति आवश्यक है। केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के भिन्न भिन्न विभागों द्वारा भी सरकार द्वारा अधिकृत बैंकों में खाता खोला जाता है। बैंकर को नियमानुसार सरकार के खाते खोलने हेतु एवम् उन्हे संचालित करने होते हैं।

सावधानियाँ: सरकारी विभागों के खातों को खोलने एवम् उन्हे संचालित करने में बैंकर को निम्नांकित सावधानियाँ रखनी चाहिए:-

1. बैक को सरकारी विभाग का खाता खोलने के पूर्व सम्बन्धित सरकारी विभाग के विभागाध्यक्ष के उस अधिकार-पत्र की एक प्रमाणित प्रतिलिपि ले लेनी चाहिये जिसके द्वारा विभागाध्यक्ष ने किसी विशिष्ट अधिकारी को विभाग के खाता संचालन का अधिकार दिया है।

2. सम्बन्धित विभागाध्यक्ष से बैंक को उन वित्तीय नियमों एवं उपनियमों की एक प्रमाणित प्रतिलिपित भी ले लेना जरूरी है जिनके अन्तर्गत सरकारी विभाग के खाता संचालन के लिये अधिकृत अधिकारी को चैक जारी करने, पृष्ठांकन करने अथवा बैंक से अधिविकर्ष का अधिकार दिया है तथा बैंक खाते के परिचालन में उन नियमों एवं उपनियमों का पूर्णतः पालन करना चाहिये।

3. बैंक को बैक खाता संचालन में सम्बन्धित विभागाध्यक्ष के द्वारा समय-समय पर जारी दिशा-निर्देशों का भी पूर्णतः होशियारी से पालन करना चाहिये।

4. बैंक को सरकारी विभाग के खाते के संचालन में यह भी पूर्ण सावधानी रखनी चाहिये कि किसी भी अधिकारी को उसको अधिकृत राशि से अधिक भुगतान नहीं करना चाहिये अन्यथा बैंक लापरवाही का दोषी ठहराया जा सकता है।

7.5.7 स्थानीय संस्थाएं

ऐसी संस्थाओं के अन्तर्गत नगरपालिका, नगरपरिषद, नगर निगम, ग्राम पंचायत, जिला परिषदें आदि शामिल की जाती हैं। ये जनहित में कार्य करने वाली स्थानीय संस्थाएं होती हैं।

उक्त संस्थाएं बैंक में अपना खाता खोल सकती हैं। बैंक को ऐसी संस्थाओं के खाते खोलने एवं संचालित करने में विशेष सावधानी रखनी चाहिए क्योंकि ये जनता के प्रन्यासी होते हैं। ऐसी संस्थाओं का निर्माण किसी अधिनियम के अन्तर्गत होता है तथा इनके सदस्यों का चुनाव मतदान द्वारा किया जाता है।

बैंक को जब ऐसी संस्थाओं का खाता खोलने का प्रार्थना-पत्र प्राप्त होता है तो उसे खाता खोलने के प्रस्ताव की प्रति, तथा अधिनियम की प्रति ले लेनी चाहिए तथा यह भी देखना चाहिए कि खाते के संचालन के लिए किसको अधिकृत किया गया है। अधिकृत संचालक के हस्ताक्षर भी प्राप्त कर लेना चाहिए। समस्त नियमों की अनुपालना पर बैंक को खाता खोलना ही होता है। बैंक को इन संस्थाओं के उप नियमों का अध्ययन कर यह पता लगा लेना चाहिए कि ये किस सीमा तक ऋण ले सकती है। सामान्य रूप से इन संस्थाओं को ऋण लेने से पूर्व राज्य सरकार की अनुमति लेनी होती है। अत: बैंक को ऋण देने से पूर्व यह देख लेना चाहिए कि संस्थाओं ने आवश्यक व्यवस्थाओं का पालन किया हैं। साथ ही बैंक का यह भी देखना चाहिए कि संस्था की और से अधिकृत व्यक्ति अपने व्यक्तिगत खाते में संस्था के नाम से प्राप्त चैक, जमा तो नही करा रहे हैं।

7.6 सारांश

उपर्युक्त विवेचना से आप समझ गये होंगे कि बैंक अपनी बैंकिंग क्रियाओं का विस्तार करने एवम् वित्तीय और आर्थिक क्रियाओं के संचालन के लिए अनेक प्रकार के खाते खोलता है जिन्हें व्यक्तिगत खाते एवम् संस्थागत खाते के नाम से जाना जाता है। विवेचना से यह भी स्पष्ट हुआ है कि प्रत्येक खाते खोलने के कुछ सामान्य नियम होते हैं तो कुछ विशिष्ट नियम होते हैं जिनकी खाता खोलने में अनुपालना करनी होती है। बैंकर मे खातों को खोलने एवम् उनके संचालन में अनेक सावधानियां भी रखनी होती है अन्यथा बैंक को भारी नुकसान हो सकता है। देश के शीर्ष बैंक रिजर्व बैक एवम् सरकार द्वारा प्राप्त दिशानिर्देशों की भी खाते खोलते समय अनुपालना करनी होती है। ज्यादातर खाते को खोलने एवम् उनके संचालन के सम्बन्ध में स्पष्ट नियम बने हुये होते हैं।

आप यहाँ यह भी समझ गये होंगे कि बैंकों की स्वयं की लाभदायक एवम् कार्य कुशलता का परीक्षण भी खातों की संख्या से ही होता है। अधिकतम खातों को खोलने एवम् उनका कुशलता से संचालन पर बैंक की लाभदायकता में वृद्धि होती है। अत: उपर्युक्त ढंग से खातों को खोलना एक उनका संचालन करना बैंकों के लिए अति आवश्यक होता हैं।

7.7 अभ्यास प्रश्न

1 एक अवयस्क पर्दानशीन महिला तथा शराबी व्यक्ति के नाम खाता खोलते समय क्या क्या सावधानियाँ रखनी चाहिए।

2 निम्नलिखित पक्षकारों का खाता खोलते समय बैंक उनसे कौन कौन से दस्तावेज मांगता है।

(i) संयुक्त पूंजी कम्पनी

(ii) साझेदारी फर्म

(iii) धर्मार्थ ट्रस्ट

3 संयुक्त खाता किसे कहते हैं। संयुक्त खाते में व्यवहार करते समय दो सावधानियाँ बताइये।

4 संयुक्त हिन्दु परिवार के खातों के संचालन में बरती जाने वाली मुख्य सावधानियाँ बताइये।

5 अवयस्क एवम् निरक्षर व्यक्ति के खाते खोलते समय क्या-क्या सावधानियाँ रखनी चाहिए।

7.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. M.L. Tandon: Banking Law Practice
2. H.C. Sharma: बैंकिंग विधि एवं व्यवहार
3. B.L. Nigam: Banking Law & Practice
4. बी.एल.औझा: बैंकिंग विधि एवं व्यवहार
5. डॉ मलीराम,शर्मा,वशिष्ठ: बैंकिंग विधि एवं व्यवहार
6. त्रिवेदी एवम् शर्मा : बैंकिंग विधि एवं व्यवहार
7. सिंह, गुप्ता, स्वामी: बैंकिंग विधि एवं व्यवहार

इकाई-8

भुगतान करने वाला एवं संग्राहक बैंकर - विभिन्न कानूनी प्रावधान, रखी जाने वाली सावधानियाँ, अनादरण, रेखांकन, पृष्ठांकन इत्यादि।

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 भुगतान करने वाला / भुगतानकर्ता बैंक का अर्थ

8.3 भुगतानकर्ता बैंक के सम्बन्ध में कानूनी प्रावधान

8.3.1 भुगतानकर्ता बैंक के दायित्व एवं जोखिम

8.3.2 भुगतानकर्ता बैंक को वैधानिक संरक्षण

8.4 भुगतानकर्ता बैंक द्वारा रखी जाने वाली सावधानियाँ

8.5 संग्राहक बैंकर का अर्थ

8.6 संग्राहक बैंकर के सम्बन्ध में प्रावधान

8.6.1 संग्रहण की प्रक्रिया

8.6.2 संग्राहक बैंक को प्राप्त वैधानिक संरक्षण

8.7 संग्राहक बैंक के ग्राहक के प्रति कर्त्तव्य

8.8 ग्राहक के बिलों के संग्रहण में सावधानियाँ

8.9 अनादरण

8.10 रेखांकन

8.11 पृष्ठांकन

8.12 सारांश

8.13 शब्दावली

8.14 अभ्यास प्रश्न

8.15 संदर्भ ग्रंथ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेगे कि -

- भुगतानकर्ता एवं संग्राहक बैंकर के अर्थ, विभिन्न कानूनी प्रावधानों तथा उनके द्वारा रखी जाने वाली सावधानियों की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सके।
- विनिमय साध्य विलेखों के अनादरण सम्बन्धी विभिन्न पहलूओं से अवगत हो सकें।
- रेखांकन एवं पृष्ठांकन के अर्थ, प्रकार तथा प्रभावों के संबंध में विस्तृत जानकारी हासिल कर सके।

8.1 प्रस्तावना

बैंक द्वारा ग्राहकों एजेंट बतौर विभिन्न कार्य किये जाते है जिनमें ग्राहक के चैकों, विनियम बिलों तथा प्रतिज्ञा पत्रों आदि विनिमय साध्य विलेखों का भुगतान करना बैंक का अन्तनिर्हित दायित्व है। इसी प्रकार से बैंक अपने ग्राहकों को सेवायें प्रदान करते हुए ग्राहक के लिए चेकों एवं अन्य विलेखों की राशि वसूल कर उनके खाते में जमा करने संबंधी संग्रहण कार्य करते हैं। विनिमय साध्य विलेखों के संग्रहण एवं भुगतान के संबंध में संग्राहक एव भुगतानकर्ता बैंकों को विभिन्न सावधानियां का पालन करना होता है।

8.2 भुगतान करने वाला / भुगतानकर्ता बैंक का अर्थ

जिस बैंक ग्राहक द्वारा चैक लिखा जाता हे और जो चैक का भुगतान करता है उसे भुगतान व वाला अथवा भुगतानकर्ता बैंक या शोधी बैंकर कहा जाता है। जब भुगतानकर्ता बैंक द्वारा विलेख का भुगतान कर दिया जाता है तो वह उस चैक को भुगतान के प्रमाण स्वरूप अपने पास रख लेता है और यदि यथोचित कारणों से चैक का अनादरण कर देता है तो कारण बताते हुए चैक वापस लौटा देता है।

8.3 भुगतानकर्ता बैंक के संबंध में कानूनी प्रावधान

8.3.1 भुगतानकर्ता बैंक के दायित्व एवं जोखिम (Liabilities and Risk of Paying Bank)

भुगतानकर्ता बैंक का दायित्व है कि वह ग्राहक के द्वारा उचित रीति से लिये गये चैक का भुगतान करे। किन्तु यह दायित्व तभी होता है जब ग्राहक के खाते में पर्याप्त जमा राशि हो अथवा ग्राहक को अधिविकर्ष की पूर्व अनुमति दी गई हो। इन दोनों बातों के अभाव में बैंक को ग्राहक द्वारा जारी चैकों के अनादरण का अधिकार होता है। परन्तु यदि भुगतानकर्ता बैंक असावधानी के कारण चैक का अनादरण कर दे तो ग्राहक को हुई हानि के लिए बैंक को उत्तरदायी होना पड़ता है। इसलिए भुगतान करने में भुगतानकर्ता बैंक को विशेष सतर्कता अपनानी चाहिए। अनुचित अनादरण की दशा में ग्राहक उस पर त्रुटिपूर्ण अनादरण के कारण होने वाली क्षति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। इस सम्बन्ध में भुगतानकर्ता बैंक को निम्नलिखित जोखिमों का सामना करना पड़ सकता है -

1. **गलत व्यक्ति को चैक का भुगतान** - यदि बैंक ने चैक का भुगतान किसी गलत व्यक्ति को कर दिया है तो ऐसी स्थिति में बैंक ग्राहक के खाते में उस राशि को नाम नहीं लिख सकता और यह हानि उसे स्वयं वहन करनी पड़ेगी।
2. **ग्राहक के चैक का गलती से अनादरण कर देने पर** - यदि भुगतानकर्ता बैंक असावधानी या गलती से ग्राहक के चैक का अनादरण कर देता है तो ऐसे गलत अनादरण से ग्राहक को होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति करनी पड़ेगी।
3. **संग्राहक बैंक को क्षतिपूर्ति** - भुगतानकर्ता बैंक द्वारा अनादरित चैक को तुरन्त सं संग्राहक बैंक को वापिस नहीं लौटाया जाता है और इस कारण संग्राहक बैंक को क्षति

होती है तो हैदराबाद स्टेट बैंक बनाम रघुनाथ राही विवाद के निर्णयानुसार उसे संग्राहक बैंक को भी क्षतिपूर्ति करनी पड़ेगी।

8.3.2 भुगतानकर्ता बैंक को वैधानिक संरक्षण (Statutory Protection to the Paying Bank)

भुगतान बैंकर को विभिन्न प्रकार के चैकों के सम्बन्ध में निम्न वैधानिक संरक्षण प्राप्त हैं -

1. **रेखांकित चैक के सम्बन्ध में संरक्षण -** विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 188 व की धारा 128 के अन्तर्गत रेखांकित चैक पर शोधी बैंक को वैधानिक संरक्षण प्राप्त है। धारा 128 के अनुसार जब किसी बैंकर ने उस पर लिखे रेखांकित चैक का यथाविधि भुगतान कर दिया हो तो शोधी बैंकर तथा इसका लेखक उन सभी अधिकारों को प्राप्त कर लेंगे जो वास्तविक स्वामी को भुगतान करने पर उपलब्ध होते हैं।

उपर्युक्त प्रावधान से स्पष्ट है कि भुगतानकर्ता बैंकर को वैधानिक संरक्षण तभी प्राप्त होगा जब निम्न दो शती पूरी हो

(i) भुगतान रेखांकित चैक का हो तथा

(ii) यथाविधि भुगतान किया गया हो।

यदि भुगतानकर्ता बैंकर ऐसे किसी रेखांकित चैक का भुगतान कर देता है जिस पर -

(i) अनियमित पृष्ठांकन किया गया हो,

(ii) जिसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हों,

तथा जिस पर आहरणकर्ता के जाली हस्ताक्षर किये गये हों तो बैंक की ओर से की गई लापरवाही के कारण अधिनियम की धारा 128 के अन्तर्गत संरक्षण प्राप्त नहीं हो सकेगा।

2. **आदेशानुसार चैक के संबंध में संरक्षण -** अधिनियम की धारा 85(1) के अनुसार "जब किसी आदेशानुसार देय चैक पर आदाता द्वारा अथवा आदाता की ओर से पृष्ठांकन किया जाना प्रतीत हो तो यथाविधि भुगतान हो जाने पर ऐसे चैक का शोधी बैंक अपने दायित्व से मुआ हो जाता है। परन्तु इस संरक्षण हेतु निम्न दो शर्तो का पूरा होना आवश्यक है -

1. पृष्ठांकन नियमित होना चाहिए तथा
2. यथाविधि भुगतान किया जाना चाहिए।

3. **वाहक चैक के सम्बन्ध में संरक्षण** - वाहक चैक के सम्बन्ध में भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 85(2) के अनुसार "जब किसी चैक का निर्गमन वाहक के रूप में किया गया हो तो उसके वाहक को यथाविधि भुगतान कर देने पर भुगतानकर्ता बैंक अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है, चाहे इस प्रकार के चैक पर सामान्य पृष्ठांकन या विशिष्ट पृष्ठांकन किये गये हों।" उदाहरण के लिए यदि ऐसा चैक चुरा लिया गया है और बैंकर ऐसी चोरी की जानकारी के बिना उस चैक का भुगतान कर देता है तो उस बैंकर को धारा 85(2) के अन्तर्गत संरक्षण प्राप्त होगा तथा यह शोधी बैंकर अपने दायित्व से मुक्त माना जायेगा।

8.4 भुगतानकर्ता बैंक द्वारा रखी जाने वाली सावधानियाँ

भुगतानकर्ता बैंकर को ग्राहक के चैकों का भुगतान करते समय निम्न सावधानियाँ रखनी चाहिए -

1. **चैक उपयुक्त प्रारूप में हो -** हालांकि भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम में चैक का कोई निश्चित प्रारूप निर्धारित नहीं किया गया है परन्तु व्यवहार में सभी बैंकों द्वारा निश्चित प्रारूप में छपे हुए चैक फार्मों का प्रयोग किया जाता है। अत: इस संबंध में बैंक को चैक फार्मो के बारे में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए-

(i) छपे हुये निर्दिष्ट फार्मो का ही प्रयोग किया गया हे।

(ii) चैक सम्पूर्ण हो अर्थात् बैंक को चैक फार्म की जांच करते समय यह देखना चाहिए कि चैक पर सभी आवश्यक बातों की पूर्ति कर दी गई है।

2. **चैक पर अंकित तिथि देखना -** यह देखना कि चैक 6 माह पुरानी तारीख का तो नहीं है, ऐसे चैक को बैंक बिना भुगतान के वापस लौटा देता है। ऐसे चैक कालतिरोहित चैक (Stale Cheque) कहलाते हैं। चैक का लेखक ऐसे चैक पर नई तारीख डालकर अपने हस्ताक्षर करके चैक को पुन: भुगतान योग्य बना सकता है। साथ ही यह भी ध्यान रखा जाये कि चैक उत्तरतिथिय (Post Dated) न हो।

3. **चैक की राशि -** चैक की राशि निश्चित होनी चाहिए तथा अंकों एवं शब्दों में अन्तर नहीं होना चाहिए। यदि दोनों में अन्तर है तो बैंकर द्वारा चैक का भुगतान करने से मना किया जा सकता है। परन्तु परिवर्तन की दशा में लेखक के हस्ताक्षर होने पर मान्य होगा।

4. **लेखक के हस्ताक्षर -** ग्राहक के नमूने के उन हस्ताक्षरों से चैक के हस्ताक्षरों का मिलान करना चाहिए जो बैंक प्रत्येक ग्राहक का खाता खोलते समय फार्म पर कराता है। हस्ताक्षर में भिन्नता पाई जाने पर भुगतानकर्ता बैंक चैक का भुगतान रोकने का अधिकारी है। जाली हस्ताक्षरों में बैंक का दायित्व है, अत: पर्याप्त सावधानी की आवश्यकता है।

5. **प्रापक का नाम -** बैंक को भुगतान करते समय चैक में प्रापक का नाम सावधानीपूर्वक देखना चाहिए।

6. **पर्याप्त जमा शेष -** विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा-3 1 के अनुसार ग्राहक के चैक का भुगतान करने का दायित्व बैंक पर तभी होता है जब ग्राहक के खाते में पर्याप्त जमा राशि हो। पर्याप्त जमा शेष के अभाव में बैंकर को चैक का भुगतान नहीं करना चाहिए तथा इस सम्बन्ध में बैंक को भुगतान रोकने का अधिकार है। यहां जमा राशि से तात्पर्य केवल खाते में जमा शेष ही नहीं बल्कि अधिविकर्ष के लिए बैंकर व ग्राहक के मध्य पूर्व समझौता हो चुका हो तो भुगतान करने की अधिविकर्ष की सीमा भी जमा राशि में शामिल मानी जायेगी। यहां यह भी महत्वपूर्ण है कि बैंक द्वारा चैक की आशिक राशि का भुगतान नही करना चाहिए।

7. **चैक भुगतानकर्ता बैंक की उसी शाखा के नाम होना चाहिए -** बैंक को भुगतान करने से पूर्व यह देख लेना चाहिए कि चैक उसी शाखा पर लिखा गया है, जहाँ वह प्रस्तुत किया गया है। दूसरी शाखा के नाम होने पर भुगतान करने से मना कर देना चाहिए। यदि किसी चैक पर बैंक शाखा का नाम नहीं है तो भी बैंक को भुगतान से मना कर देना चाहिए।

8. **चैक की प्रकृति -** चैक का भुगतान करने से पूर्व बैंक को यह देखना चाहिए कि चैक रेखांकित है या फिर खुला/अरेखांकित है। उल्लेखनीय है कि रेखांकित चैक का भुगतान किसी बैंक के माध्यम से ही किया जाना चाहिए। जबकि अरेखित या खुले चैक का भुगतान बैंक की भुगतान खिड़की पर किया जाता है।

9. **चैकों का भुगतान समय क्रम के अनुसार करना चाहिए -** शोधी बैंकर को चैकों का भुगतान उसी क्रम में करना चाहिए जिस क्रम में प्राप्त होते हैं। कई बार बैंक को डाक या समाशोधन गृह से एक साथ कई चैक प्राप्त हो जाते हैं। यदि ग्राहक के खाते में पर्याप्त जमा शेष हो तो सभी चैकों का भुगतान करने में कोई समस्या नहीं होगी परन्तु चैकों के भुगतान हेतु पर्याप्त जमा शेष नहीं है तो बैंकर निम्न में से कोई भी निर्णय ले सकता है -

(i) पर्याप्त जमा शेष न होने के कारण सभी चैकों का अनादरण कर दे।

(ii) जब तक ग्राहक के खाते में जमा शेष रहे तब तक बैंकर अधिकाधिक राशि वाले चैकों का भुगतान करता रहे।

(iii) आयकर या कर अधिकारियों या सरकारी चैकों का भुगतान प्राथमिकता क्रम में करना चाहिए।

10. **चैक के भुगतान का समय -** बैंक चैकों के भुगतान के लिए तभी बाध्य है जब बैंकर की कार्यवधि में भुगतान हेतु प्रस्तुत किये गये हैं। कार्यविधि के व्यावसायिक कार्यशील घंटों के बाद प्रस्तुत किये गये चैकों का भुगतान करने से बैंक मना कर देता है।

11. **महत्वपूर्ण परिवर्तन (Material Alteration)** - यदि किसी चैक में किये गये परिवर्तन के फलस्वरूप उसके परिचालन पर कोई प्रभाव पड़ता है और संबंधित पक्षकारों के दायित्व में अन्तर आ जाता है अथवा विलेख के वैधानिक स्वरूप या प्रकृति में ही बदलाव आ जाये तो ऐसे परिवर्तन को 'महत्वपूर्ण परिवर्तन' कहते हैं। महत्वपूर्ण परिवर्तनों के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं-

(i) चैक की तारीख में परिवर्तन

(ii) भुगतान के स्थान का नाम बदलना,

(iii) पक्षकारों के नाम बदलना

(iv) विलेख की राशि में परिवर्तन

(v) आदेश शब्द की जगह वाहक शब्द लिखना एवं

(vi) रेखांकन में परिवर्तन करना।

परन्तु कुछ परिवर्तन ऐसे हैं जिन्हें महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं माना जाता है,- जैसे -

(i) कोरे पृष्ठांकन को पूर्ण पृष्ठांकन में बदलना,

(ii) साधारण रेखांकन को विशेष रेखांकन में बदलना,

(iii) वाहक बैक को आदेशित कर देना एवं

(iv) अरेखांकित चैक को रेखांकित कर देना आदि।

विनियम साध्य विलेख पर महत्वपूर्ण परिवर्तन किये जाने की दशा में परिवर्तनकर्ता को छोड़कर शेष सभी पक्षकार दायित्वमुक्त हो जाते हैं। चैक पर तो महत्वपूर्ण परिवर्तन केवल लेखक की अनुमति से ही किया जा सकता है।

बैंकर का दायित्व - यदि बैंक किसी ऐसे चैक का भुगतान कर देता है जिसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन किया गया है, किन्तु इस परिवर्तन पर लेखक के पूर्ण हस्ताक्षर नही हैं अथवा जाली हस्ताक्षर हैं तो शोधी बैंकर असावधानीपूर्ण भुगतान का दोषी ठहराया जा सकता है। परन्तु बैंक को दायी ठहराने हेतु आवश्यक है कि परिवर्तन प्रत्यक्ष रूप से चैक स्पष्ट होना चाहिए अन्यथा बैंक निर्दोष ही माना जायेगा।

बैंकर को संरक्षण - विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 10 एवं 89 के अन्तर्गत बैंकर को संरक्षण प्राप्त है जिसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन के अस्पष्ट होने, पूर्ण सावधानी एवं सद्भाव में भुगतान करने तथा यथाविधि भुगतान करने पर भुगतानकर्ता बैंक सभी दायित्वों से मुक्त हो जाता है।

8.5 संग्राहक बैंकर का अर्थ

बैंक द्वारा' अपने ग्राहकों से प्राप्त विनिमय साध्य विलेखों का देनदार बैंकों से भुगतान प्राप्त करके ग्राहक के खाते में जमा करने की क्रिया को संग्रहण (Collection) कहा जाता है तथा जो बैंक ग्राहक के लिए आदेशित देनदार बैंक से भुगतान संग्रह करता है उसे संग्रहणकर्ता बैंक अथवा संग्राहक बैंकर (Collecting Banker) कहते हैं। स्थानीय चैकों के अतिरिक्त बाहर के चैकों के संग्रहण हेतु संग्राहक बैंक जो शुल्क वसूल करते हैं, वह संग्रहण शुल्क (Collection Charges) कहलाता है। जहाँ तक संग्रहण के सम्बन्ध में संग्राहक बैंक के वैधानिक दायित्व का प्रश्न है, तो विनिमय साध्य विलेखों के संग्रहण के लिए बैंकों का वैधानिक दायित्व तो नहीं है परन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से आजकल यह बैंकों का एक अनिवार्य कार्य बन गया है और रेखांकित चैकों का भुगतान तो केवल बैंकों के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है।

8.6 संग्राहक बैंकर के सम्बन्ध में प्रावधान

8.6.1 संग्रहण की प्रक्रिया (Process of Collection)

संग्रहण का कार्य आधुनिक व्यापारिक बैंकों का प्रमुख कार्य है। इससे ग्राहकों को सेवा एवं सुविधा उपलब्ध कराने के साथ-साथ बैंकों की जमाओं में वृद्धि तथा संग्रहण शुल्क के रूप में आय प्राप्ति भी होती है। चैकों एवं विलेखों का संग्रहण निम्न दो रूपों में किया जाता है -

1. **बैंक द्वारा ग्राहक के प्रतिनिधि के रूप में संग्रहण -** जब बैंक अपने ग्राहकों के लिए उनके एजेन्ट के रूप में चैकों एवं विलेखों की राशि के संग्रहण का कार्य करता है तो देनदार बैंकों से भुगतान प्राप्त कर संग्राहक बैंक उसे ग्राहकों के खाते में जमा कर देते हैं तथा ग्राहकों को अपने खाते में से राशि निकालने का अधिकार दे देते हैं। इस रूप में बैंक का चैकों एवं विलेखों पर ग्राहक से अच्छा अधिकार नहीं होता है। यदि ग्राहक द्वारा संग्रहण हेतु सौंपे गये चैक पर ग्राहक का स्वामित्व दोषपूर्ण है तो संग्राहक बैंक का अधिकार भी दोषपूर्ण माना जायेगा तथा बैंक का ग्राहक के समान ही दायित्व रहेगा, अत: बैंक को चैक संग्रहण में सावधानी बरतनी चाहिए।

2. **बैंक द्वारा मूल्य के धारक के रूप में संग्रहण -** जब कोई संग्राहक बैंक चैक की राशि संग्रह होने से पूर्व ही धारक को भुगतान कर दे तो ऐसी स्थिति में संग्राहक बैंक उस चैक का 'मूल्य के लिए धारक' बन जाता है। लेकिन इस प्रकार की सुविधा देते समय बैंक ग्राहक से

समझौता कर लेता है कि यदि चैक अनादरित हो जाये तो ग्राहक बैंक को उक्त राशि की क्षतिपूर्ति कर देगा। निम्न दशाओं में संग्राहक बैंक मूल्य के लिए धारक बन जाता है -

(i) चैक जमा कराते ही बैंक ग्राहक को चैक की राशि नकद में भुगतान कर दे।

(ii) चैक जमा कराते ही चैक की राशि ग्राहक के खाते में जमा कर दी जाये और ग्राहक को निकालने की सुविधा दे दी जाये।

(iii) चैक की राशि संग्रहण से पहले ही ग्राहक को चैक के आधार पर उधार दे दी जावे।

(iv) चैक प्राप्त होते ही ग्राहक के अधिविकर्ष की राशि में कमी कर दी जावे।

यदि संग्राहक बैंकर मूल्य के धारक के रूप में चैकों का संग्रहण करता है और यदि चैक अनादरित हो जाये तो बैंकर अनादरण की सूचना देकर उसके सभी पूर्व पक्षकारों पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।

8.6.2 संग्राहक बैंक को प्राप्त वैधानिक संरक्षण (Statutory Protection to the Collection Bank)

संग्राहक बैंक को संरक्षण देने के लिए भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 की धारा 131 में निम्न प्रकार व्यवस्था की गई है

"वह बैंकर, जिसने अपने ग्राहक के लिए किसी साधारण अथवा विशेष रेखांकित चेक का भुगतान सद्भावना में और बिना किसी लापरवाही के प्राप्त किया है, चैक के वास्तविक स्वामी के प्रति इस प्रकार भुगतान प्राप्त करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा, यदि उस चैक पर बैंकर के ग्राहक का अधिकार दोषपूर्ण प्रमाणित हो जाता है।"

वैधानिक संरक्षण प्राप्त करने के लिए निम्न आवश्यक शर्तों का पूरा होना जरूरी है -

1. चैक का रेखांकित होना जरूरी है।
2. चैक का संग्रहण केवल ग्राहक के लिए किया जाये, किसी अन्य व्यक्ति के लिए चैक का संग्रहण किया जाता है तो संग्राहक बैंकर को वैधानिक संरक्षण प्राप्त नहीं होगा।
3. चैक का भुगतान सद्भाव एवं बिना किसी लापरवाही के प्राप्त किया गया हो। सद्भाव से तात्पर्य है कि बैंक को चैक के स्वामित्व के बारे में दूषित अधिकार का संदेह न हो तथा बिना किसी लापरवाही से अभिप्राय चैक के संग्रहण में यथासंभव पूर्ण सावधानी बरती गई हो। पूर्ण सावधानी में खाता खोलने में सावधानी, स्वामित्व से संतुष्टि, पृष्ठांकन की जांच, संदिग्ध मामलों में पर्याप्त छानबीन करना, चैक पर दिये गये आदेशों की अक्षरश: पालना करना आदि शामिल है। सद्भाव एवं पूर्ण सावधानी के अभाव में धारा 131 के अधीन संरक्षण प्राप्त नहीं होगा।

8.7 संग्राहक बैंक के ग्राहक के प्रति कर्त्तव्य

ग्राहकों के हितों की रक्षा के लिए संग्राहक बैंक को निम्न कर्तव्यों का पालन करना चाहिए -

1. **यथोचित समय में चैकों को प्रस्तुत करना (Presentation of Cheques in reasonable time)-** ग्राहकों से संग्रहण हेतु प्राप्त चैकों को यथोचित समय में उचित स्थान पर

भुगतान के लिए प्रस्तुत करना चाहिए ताकि ग्राहक को किसी प्रकार की हानि न हो। यदि संग्राहक बैंक इसमें असमर्थ रहता है तो ग्राहक को होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होगा। भारत में प्राय: बैंकों की यही परम्परा है कि स्थानीय चैक यथासम्भव उसी दिन समाशोधन गृह में भेज देते हैं जिस दिन चैक संग्रहण हेतु बैंक में जमा कराये जाते हैं जबकि निश्चित समय बाद में स्वीकार किये गये चैकों का प्रस्तुतीकरण अगले दिन ही किया जाता है। बाहर के चैकों को डाक द्वारा संग्रहण हेतु दूसरे दिन तो भेज ही देना चाहिए। यदि बैंक संग्रहण के लिए प्रस्तुतीकरण उचित समय में एवं उचित स्थान पर नहीं करता है और इस असावधानी के कारण ग्राहक को क्षति होती है तो बैंक त्रुटिपूर्ण' प्रस्तुतीकरण के कारण ग्राहक को क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होता है। यहाँ पर पंजाब नेशनल बैंक बनाम ईश्वरभाई लालभाई पटेल एण्ड कम्पनी (1972) विवाद में बम्बई उच्च न्यायालय का निर्णय इस तथ्य की पुष्टि करता है। इस संबंध में उल्लेखनीय है कि यदि डाक अव्यवस्था के कारण चैक देरी से पहुंचे तो इसके लिए संग्राहक बैंक दायी नहीं होगा बशर्ते कि संग्राहक बैंक ने डाक लिफाफे पर पर्याप्त डाक टिकिट लगा दिया हो और उचित समय पर डाक में डाल दिया हो।

2. **अनादरण की सूचना (Notice of Dishonour) -** किसी कारणवश चैक अनादरित हो गया है तो संग्राहक बैंक द्वारा अपने ग्राहक को अनादरण की सूचना तुरन्त देनी चाहिए। यह सूचना पत्र, डाक, तार या टेलिफोन आदि से किसी भी प्रकार से दी जा सकती है। यदि बैंक यह सूचना ग्राहक को यथोचित समय में नहीं देता है तो बैंक चैक के धारक को होने वाली क्षति के लिए दायी ठहराया जायेगा। जब बैंकर मूल्य के लिए चैक का धारक है तो चैक अनादरण की सूचना बैंक को उन सभी पूर्व पक्षकारों को देनी चाहिए ताकि उन सभी को चैक की राशि के भुगतान के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सके।

3. **प्रचलित परम्पराओं का पालन (Compliance of Prevailing Traditions) -** संग्राहक बैंक को अपने ग्राहक से प्राप्त होने वाले चैकों या विलेखों के संग्रहण के लिए प्रचलित परम्पराओं का पालन करना चाहिए। यदि प्रचलित परम्पराओं का पालन नहीं करने पर ग्राहक को कोई क्षति होती है तो संग्राहक बैंक उस क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होगा। फोरमैन बनाम बैंक ऑफ इंग्लैण्ड विवाद में संग्राहक बैंक को परम्पराओं का पालन नहीं करने के कारण चैक के गलत अनादरण का दोषी ठहराया गया।

4. **बाहरी चैकों का संग्रहण (Collection of Out Station Cheques) -** बाहरी चैकों से अभिप्राय उन चैकों से है जिनका संग्रहण स्थानीय न होकर किसी अन्यत्र स्थान पर स्थित बैंक से होना है। ऐसे चैकों के सन्यथ में संग्राहक बैंक का कर्त्तव्य है कि यथोचित समय में उचित स्थान पर संग्रहण हेतु प्रमाणित डाक से प्रेषित कर दे। अन्यथा विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 72 की अवहेलना पर धारा 84 के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति के लिए दायी होगा। आजकल संग्रहण में विलम्ब पर बैंक ग्राहकों को 6 प्रतिशत की दर से ब्याज देते हैं।

8.8 ग्राहक के बिलों के संग्रहण में सावधानियाँ

रेखांकित चैकों का संग्रहण तो किसी बैंक के माध्यम से होना अनिवार्य है किन्तु बिलों का संग्रहण करने का बैंक पर कोई वैधानिक दायित्व नहीं है। फिर भी बैंक ग्राहकों को सुविधा प्रदान करते हुए बिलों के संग्रहण का कार्य करते हैं तथा बैंक संग्रहण शुल्क वसूल करके अपनी

आय भी बढ़ाते हैं। धारा 131 के अधीन प्राप्त संरक्षण बिलों के संग्रहण पर नहीं मिलता है। अत: बैंकों को ऐसे संग्रहणार्थ प्राप्त बिलों के संग्रहण के सम्बन्ध में निम्न सावधानियाँ रखनी चाहिए

1. **ग्राहक के अधिकार की जांच (Verification of Customer's Right)** - बिलों के संग्रहण से पूर्व बैंक को ग्राहक के बिल सम्बन्धी अधिकार की पर्याप्त जांच करनी चाहिए। ग्राहक के अधिकार में दोष होने पर बैंक को संग्रहित राशि वास्तविक स्वामी को लौटानी पड़ेगी। यद्‌यपि बैंक यह राशि ग्राहक से अवश्य वसूल कर सकता है किन्तु ग्राहक की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण यह राशि वसूल नहीं की जा सके तो हानि बैंक को ही भुगतनी पड़ेगी।

2. **स्वीकृति के लिए प्रस्तुति (Presentation for Acceptance)** - यदि वह बिल पहले से स्वीकृत नही है तो बैंक को चाहिए कि बिल को उचित अवधि में देनदार के सम्मुख स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करे। ग्राहक की अनुमति के बिना बैंक को देनदार से मर्यादित स्वीकृति या शर्तपूर्ण स्वीकृति प्राप्त नहीं करनी चाहिए।

3. **भुगतान के लिए प्रस्तुति (Presentation of Bill for Payment)** - बिल को देय तिथि पर देनदार के सम्मुख भुगतान के लिए प्रस्तुत करना चाहिए। धारा 64 के अनुसार भुगतान के लिए प्रस्तुतीकरण में त्रुटि करने पर उस विपत्र से संबंधित अन्य सभी पक्षकार दायित्व मुक्त हो जायेंगे तथा बैंक स्वयं ही ग्राहक की क्षति के लिए उत्तरदायी होगा। बिल के अनादरण की सूचना भी यथासम्भव तुरन्त देनी चाहिए अन्यथा ऐसी दशा में भी बैंक ग्राहक को होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति का उत्तरदायी माना जायेगा।

8.9 अनादरण

अर्थ (Meaning) - जब कोई विनिमय साध्य विलेख बिना स्वीकृत किये अथवा बिना भुगतान किये ही वापस लौटा दिया जाता है तो यह उस विलेख का अनादरण कहलाता है। विनिमय बिल का अनादरण दो प्रकार से हो सकता है। प्रथम - देनदार द्‌वारा स्वीकृति न देने के कारण तथा द्‌वितीय - परिपक्वता तिथि पर भुगतान के लिए प्रस्तुत करने पर भुगतान न करने के कारण अनादरण। जबकि चैक तथा प्रतिज्ञा पत्र का केवल भुगतान न किये जाने के कारण ही अनादरण होता है।

अनादरण की दशायें (Circumstance of Dishonour) - भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम 1881 में विनिमय साध्य विलेखों का अनादरण निम्न दशाओं में हो सकता है-

1. **अस्वीकृति के कारण अनादरण (Dishonour Due to Non Acceptance) -** जब विनिमय बिल का लेखक बिल को स्वीकृति हेतु उसके देनदार के समक्ष प्रस्तुत करता है और वह उसको बिना स्वीकृति के ही लौटा देता है तो ऐसी दशा में अधिनियम की धारा 91 के अन्तर्गत बिल को अस्वीकृति के कारण अनादरित माना जायेगा। सामान्यत: निम्न दशाओं में विपत्र को अस्वीकृति के कारण अनादरित माना जा सकता है -

   (i) देनदार द्‌वारा यदि स्वीकृति निर्धारित अधिकतम अवधि 48 घण्टे में नहीं दी जावे।

   (ii) यदि देनदार द्‌वारा मर्यादित स्वीकृति दी गई हो, परन्तु लेखक ने इस पर सहमति न दी हो।

   (iii) जब विपत्र में देनदार में अनुबंध करने की क्षमता नहीं हो।

(iv) यदि विपत्र काल्पनिक व्यक्ति के नाम लिखा गया जिसको प्रस्तुत किया जाना ही संभव न हो।

(v) विनिमय बिल एक से अधिक व्यक्तियों पर लिखा गया हो परन्तु उनमें से कोई भी स्वीकृति देने से मना कर दे।

(vi) पर्याप्त खोज करने के बावजूद भी देनदार का पता नहीं लगे तो धारा 61 के अनुसार विपत्र अनादरित माना जायेगा।

(vii) विनिमय बिल के देनदार की मृत्यु हो जाये या दिवालिया हो जाये और उसका उत्तराधिकारी स्वीकृति से मना कर दे।

(viii) यदि देनदार बिल पर स्वीकृति देने के बजाय उस पर स्पष्ट रूप से 'अस्वीकृति शब्द लिख दे।

2. **भुगतान न करने के कारण अनादरण (Dishonour Due to Non Payment) -** विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 92 के अनुसार "एक विनिमय साध्य विलेख भुगतान न होने के कारण अनादरित तब कहा जाता है जब प्रतिज्ञा पत्र का लेखक, बिल का स्वीकारक तथा चैक का आहार्ती उसका यथोचित भुगतान चाहे जाने पर भी भुगतान करने में असमर्थ रहे।" निम्न दशाओं में विनियम साध्य विलेख भुगतान न होने के कारण अनादरित माने जाते हैं -

(i) जब किसी विलेख के भुगतान के लिए प्रस्तुतीकरण में जानबूझकर बाधा डाली जावे।

(ii) जब प्रतिज्ञा पत्र का लेखक, बिल का स्वीकारक अथवा चैक का आहार्ती बैंक यथोचित भुगतान चाहे जाने पर भुगतान करने से मना कर दे या भुगतान में असमर्थ हो।

(iii) पर्याप्त खोजबीन के बावजूद भी निर्दिष्ट स्थान अथवा निर्दिष्ट समय पर देनदार उपलब्ध न हो।

(iv) जब किसी विलेख का लेखक या स्वीकारक या देनदार विलेख के भुगतान के लिए व्यापारिक स्थान का उल्लेख करता है परन्तु भुगतान की देय तिथि पर सामान्य कार्यकारी अवधि में उस स्थान को बन्द रखता है।

(v) यदि विलेख पर भुगतान के स्थान विशेष का उल्लेख नहीं किया गया हो तथा भुगतान तिथि पर देनदार या स्वीकारक का कोई अता-पता नहीं हो।

(vi) जब देनदार विलेख की प्रस्तुतीकरण की कमियों के कारण प्राप्त अधिकारों का परित्याग कर देता है तथा बाद में देय तिथि पर विलेख का भुगतान करने से मना कर दे।

(vii) देय तिथि पर प्रस्तुत न किये जाने की जानकारी होते हुए भी आशिक भुगतान कर देता है तथा बाद में शेष राशि के भुगतान के लिए मना कर दे।

चैकों का अनादरण (Dishonour of Cheques) - जब चैक का धारक, चैक का भुगतान प्राप्त करने के लिए बैंक के समक्ष प्रस्तुत करता है और बैंक उसका भुगतान करने से मना कर देता है तो इसे चैक का अनादरण कहते हैं। अनादरित चैक लौटाते समय बैंक चैक पर एक पर्ची लगा देता है जिस पर अनादरण का कारण उल्लेखित कर दिया जाता है। किसी भी दशा में चैक का अनादरण हो जाने पर चैक का धारक चैक के लेखक या पृष्ठांकक से इसकी राशि की मांग कर सकता है।

चैक के अनादरण की दशाएं (Circumstances of Dishonour of Cheque)- निम्न दशाओं में बैंक चैक का भुगतान करने से मना कर सकता है -

1. जब ग्राहक की चैक भुगतान से पूर्व मृत्यु हो जाये या ग्राहक पागल या दिवालिया हो जाये।
2. जब ग्राहक ने चैक का भुगतान रोक दिया हो।
3. ग्राहक के खाते पर कुर्की आदेश हो जाने पर।
4. न्यास भंग की स्थिति में।
5. लेखक ने अपने खाते की राशि किसी अन्य व्यक्ति को अभिहस्तांकित कर दी हो।
6. चैक के धारक का स्वामित्व दोषयुक्त हो।
7. जब रेखांकित चैक खिड़की पर प्रस्तुत किया गया हो।
8. जब ग्राहक के खाते में अपर्याप्त जमा शेष हो।
9. जब चैक पर ग्राहक के हस्ताक्षर जाली हों।
10. जब चैक पर महत्वपूर्ण परिवर्तन किया गया हो तथा लेखक ने हस्ताक्षर करके पुष्टि न की हो।
11. जब उत्तरतिथिय चैक पहले ही प्रस्तुत किया हो या चैक कालतिरोहित हो चुका हो।
12. जब आदेशित चैक पर पृष्ठांकन अनियमित हो।
13. जब चैक को अनियमित ढंग से प्रस्तुत किया हो।
14. जब चैक बुरी तरह कट-फट गया हो या विकृत हो गया हो।
15. जब ग्राहक ने अपना खाता बन्द कर दिया हो।
16. जब बैंक अथवा ग्राहक दोनों में से किसी ने खाता बंद करने का नोटिस दे दिया हो।
17. जब चैक बैंक की व्यावसायिक समयावधि के बाद प्रस्तुत किया गया हो।
18. चैक प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति का व्यवहार संदिग्ध हो।

अनादरित चैक का बैंक द्वारा उपयुक्त जवाब (Suitable Reply of Dishonoured Cheque)- जब बैंक द्वारा किसी चैक का अनादरण कर दिया जाता है तो अनादरण का उचित कारण बताना बैंक की एक वैधानिक जिम्मेदारी है। सामान्यत: बैंक इन कारणों की एक छपी हुई पर्ची (Cheque Returning Memo) रखते हैं, जिस पर अनादरण के संबंधित उचित कारण को टिक मार्क (√) करके चैक के साथ संलग्न कर देते हैं। बैंक को अनादरण के कारण बताने में बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए अन्यथा गलत कारण बताने पर चैक के लेखक की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंच सकता है और चैक का लेखक बैंक के विरूद्ध हानि की क्षतिपूर्ति का दावा कर सकता है। अनादरण का कारण स्पष्ट एवं पूर्ण होना चाहिए। अनादरण के कुछ प्रमुख संकेत इस प्रकार हैं-

1. आहार्ता से पूछें,
2. पूरी राशि प्राप्त नहीं हुई
3. व्यवस्था से अधिक है
4. राशि अब तक प्राप्त नहीं हुई, कृपया पुन: प्रस्तुत करें,

5. चैक उत्तरदिनांकित है।

चैक के अनुचित अनादरण पर बैंक का दायित्व (Liability of Bank for Wrongful Dishonour of Cheque) - विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 31 में बैंक का दायित्व है कि वह ग्राहक के खाते में यथेष्ट जमा राशि उपलब्ध होने पर उसके द्वारा लिखे गये चैकों का भुगतान कर दे। यदि वह भुगतान नहीं करता है तो अनुचित अनादरण के लिए बैंक दायी ठहराया जायेगा। 'योलिन बनाम स्टीवार्ड' विवाद में यह निर्णय दिया गया था कि चाहे चैक का अनादरण सामान्य भूल से ही क्यों न हुआ हो अथवा उसी चैक का पुन: पेश करने पर भुगतान कर भी दिया गया हो तो भी बैंक को अपने ग्राहक की साख की क्षतिपूर्ति करनी ही पड़ती है। अनुचित अनादरण की दशा में चैक की राशि जितनी कम होती है, साख की क्षति उतनी ही ज्यादा हो सकती है। खाते में अपर्याप्त कोषों के कारण चैक अनादरण को विनिमय साध्य विलेख (संशोधन) अधिनियम, 1988 के तहत धारा 138(i) के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध माना है। ऐसी दशा में लेखक को अपराधी माना जावेगा तथा न्यायालय द्वारा निम्न प्रकार से दण्डित किया जा सकता है -

1. एक वर्ष तक का कारावास, अथवा
2. चैक की राशि से दुगुनी राशि तक का जुर्माना, अथवा
3. उपरोक्त दोनों दण्ड एक साथ

अनादरण की सूचना (Notice of Dishonour) - जब कोई विलेख अनादरित हो जाये तो धारक को चाहिए कि वह समय पर अनादरण की सूचना सभी पूर्व पक्षकारों को दे दे ताकि उन्हें उत्तरदायी बनाया जा सके। विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा-93 के अनुसार "विलेख के धारक का यह कर्त्तव्य है कि वह विलेख के सभी पूर्व पक्षकारों को विलेख के अनादरण की सूचना दे ताकि उन्हें ज्ञात हो जाये कि उनका अपने से आगे वाले पक्ष के प्रति दायित्व समाप्त नहीं हुआ है और उन्हें विलेख की राशि चुकानी है।" सूचना देना इतना आवश्यक है कि इसके अभाव में देनदार के अतिरिक्त सभी पक्ष दायित्वमुक्त हो जाते हैं। प्रतिज्ञा पत्र में लेखक को, विनिमय बिल में स्वीकारक को तथा चैक में आहार्ती बैंक को अनादरण की सूचना देना आवश्यक नहीं होता, वे स्वयं ही अनादरण करने वाले होते हैं। अनादरण की सूचना यथोचित समय में दे देना आवश्यक है। यथोचित समय क्या होगा यह विलेख की प्रकृति तथा स्थान विशेष पर प्रचलित व्यापारिक परम्पराओं पर निर्भर करता है। जैसे स्थानीय व्यक्ति को पहली डाक से या संदेशवाहक द्वारा, बाहरी व्यक्ति को अनादरण के तुरन्त बाद वाली डाक से सूचित करना चाहिए। विदेशी बिल के सम्बन्ध में जिसका भुगतान विदेश में देय है तो धारा 135 के अनुसार अनादरण की सूचना का यथोचित समय का निर्धारण उस देश के नियमों द्वारा किया जाता है। अनादरण की सूचना सदैव लिखित में दी जानी चाहिए यद्यपि अधिनियम में लिखित सूचना देने की बाध्यता नहीं होती है परन्तु प्रमाण के लिए धारक की सुविधा हेतु सूचना लिखित में ही देनी चाहिए। धारक के पास सूचना भेजने का ही प्रमाण नहीं बल्कि साथ ही इस बात का प्रमाण भी होना चाहिए कि सूचना प्रेषित व्यक्ति को मिल गई है। धारा 98 के अनुसार निम्न परिस्थितियों में अनादरण की सूचना देना आवश्यक नहीं है -

1. सूचना पाने के अधिकारी पक्षकार ने अनादरण की सूचना की छूट दे दी हो।

2. जब लेखक ने स्वयं ही भुगतान रोकने का आदेश जारी कर दिया हो।
3. जब उत्तरदायी पक्ष को सूचना के अभाव में हानि की आशंका न हो।
4. जब प्रतिज्ञा पत्र अविनिमय साध्य हो।
5. जब स्वीकर्ता स्वयं आहरणकर्ता भी हो।
6. सूचना प्राप्ति का पक्षकार समुचित खोजबीन के पश्चात भी उपलब्ध न हो।
7. विलेख के प्रमाणन के पश्चात उसके अनादरण की सूचना देना आवश्यक नहीं है।

टिप्पणी तथा प्रमाणन (Noting and Protesting) - प्रतिज्ञा पत्र या विनिमय बिल का अनादरण हो जाता है तो उसका धारक यथोचित सूचना देने के बाद अपने हितों की रक्षार्थ अनादरित लेख पत्र का टिप्पणी एवं प्रमाणन कराता है। इसके लिए अधिनियम में निम्न प्रावधान है -

टिप्पणी (Noting) - टिप्पण से आशय अनादरित विलेख के धारक की उस क्रिया से है जिसमें वह अनादरित विलेख को सम्पूर्ण विवरण सहित नोटेरी पब्लिक के रजिस्टर में अंकित करवाता है। जब नोटेरी पब्लिक विलेख के अनादरण के तथ्यों की पुष्टि करने के बाद अनादरण के तथ्य उस विलेख पर अंकित कर देता है और अपने रजिस्टर में दर्ज कर लेता है तो वह अनादरण का टिप्पण कहलाता है। नोटेरी पब्लिक विलेख तथा अपने रजिस्टर में विलेख के अनादरण की तारीख, कारण तथा टिप्पण शुल्क की राशि लिखकर प्रविष्टियों पर अपने हस्ताक्षर कर देता है, जो एक प्रमाणित दस्तावेज बन जाता है।

प्रमाणन (Protesting) - जब कोई प्रतिज्ञा पत्र अथवा विनिमय बिल अस्वीकृति द्वारा अथवा भुगतान न करने के कारण अनादरित हो जाता है तो उसका धारक यथोचित समय में ऐसे अनादरण का नोटेरी पब्लिक से टिप्पण कराकर जो प्रमाण पत्र प्राप्त करता है उसे ही प्रमाणन कहते हैं। धारा 100 के अनुसार यह प्रमाण पत्र टिप्पण के आधार पर जारी किया जाता है। इस प्रकार नोटेरी पब्लिक द्वारा विलेख के अनादरण का प्रमाण-पत्र जारी करना ही वैधानिक भाषा में प्रमाणन कहलाता है।

8.10 रेखांकन

रेखांकन का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Crossing) - चैक, बैंक ड्राफ्ट अथवा पोस्टल आर्डर के मुख पृष्ठ पर दो तिरछी समानान्तर रखायें खींच देना ही रेखांकन कहलाता है। भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 की धारा 123 और 124 में रेखांकन को इस प्रकार परिभाषित किया गया है-

"जब किसी चैक के मुख पृष्ठ पर दो तिरछी समानान्तर रेखायें अथवा 'एण्ड कम्पनी' या इसमें किसी संक्षिप्त रूप के साथ तिरछी समानान्तर रेखायें खींची हो, चाहे इनके बीच 'अपराक्रम्य (Not Negotiable) शब्द लिखा हो अथवा नहीं, तो यह रेखांकन कहलाता है और ऐसा रेखांकन सामान्य रेखांकन कहलायेगा।"

रेखांकन की विशेषतायें -

1. **रेखांकन मुख पृष्ठ पर -** चैक, ड्राफ्ट तथा पोस्टल ऑर्डर का रेखांकन केवल उसके मुख पृष्ठ पर ही होता है। चैक की पीठ पर किया गया रेखांकन अवैध एवं व्यर्थ होता है।

2. **दो तिरछी समानान्तरण रेखाएं -** रेखांकन के लिए यह आवश्यक है कि दो तिरछी समानान्तर रेखायें खींची जानी चाहिए। किसी अन्य प्रकार से खींची रेखाओं को रेखांकन नहीं कहा जा सकता है।

3. **रेखांकन केवल चैक का -** विनिमय साध्य विलेखों में केवल चैक का ही रेखांकन किया जा सकता है अन्य विनिमय साध्य विलेख यथा प्रतिज्ञा पत्र तथा विनिमय बिल आदि का रेखांकन नहीं किया जाता है। यदि प्रतिज्ञा पत्र व विनिमय बिल का रेखांकन कर भी दिया जाये तो भी बैंक इस बात पर बिना ध्यान दिये इनका भुगतान खिड़की पर नकद रूप में कर सकता है। परन्तु बैंक ड्राफ्ट एवं पोस्टल आर्डर का रेखांकन मान्य है।

4. **निश्चित शब्दों का प्रयोग -** रेखांकन करते समय दो तिरछी समानान्तर रेखाओं के बीच & CO. अथवा Not Negotiable अथवा Payee's A/c Only आदि शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु इन शब्दों का लिखना अनिवार्य नहीं है।

रेखांकन के प्रकार (Types of Crossing) - रेखांकन दो प्रकार के होते हैं -

1. **सामान्य रेखांकन (General Crossing) -** विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 123 के अनुसार जब किसी चैक के मुख पृष्ठ पर दो समानान्तर तिरछी रेखायें खींची गई हों तथा उनके बीच में '& Co.' अथवा 'Not Negotiable' आदि शब्द लिखे हों अथवा न हों तो ऐसे रेखांकन को सामान्य रेखांकन कहते हैं। सामान्य रेखांकन के नमूने निम्नानुसार हैं -

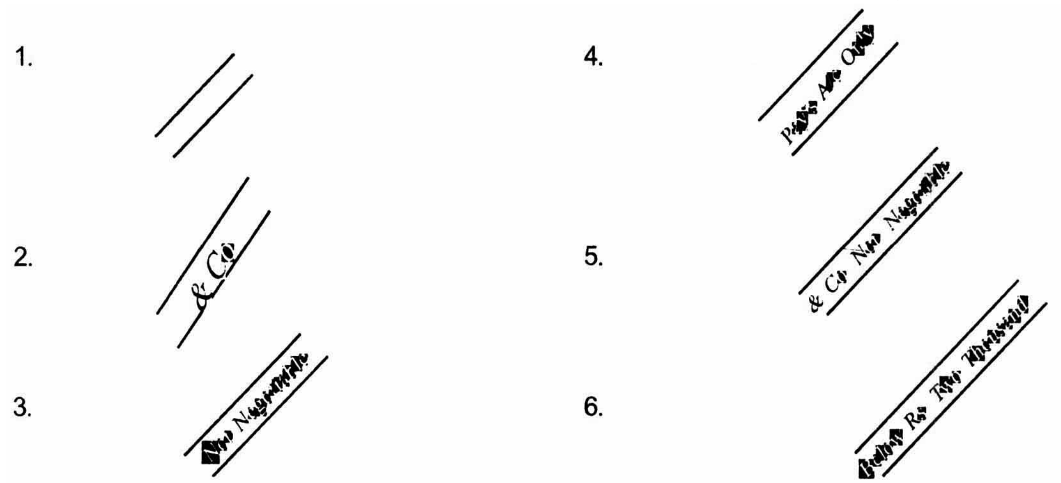

सामान्य रेखांकन का प्रभाव - अधिनियम की धारा 126 के अनुसार सामान्य रेखांकित चैक का भुगतान बैंक की खिड़की पर न होकर किसी बैंक के माध्यम से खाते में जमा द्वारा ही हो सकता है। यदि रेखांकित चैक बैंक की खिड़की पर भुगतान हेतु प्रस्तुत किया जाता है तो बैंक ऐसे चैक का भुगतान करने से मना कर देगा। ऐसे चैक का भुगतान प्राप्त करने हेतु लेनदार या तो चैक को देनदार बैंक में अपने खाते में जमा करवा दे और यदि देनदार बैंक में उसका खाता नहीं है तो जिस बैंक में उसका खाता है, उसे संग्रह के लिए दे दे। स्पष्ट है कि रेखांकित चैक का भुगतान बैंक खाते में जमा द्वारा दी सम्भव है, न कि बैंक की खिड़की पर।

2. **विशेष रेखांकन (Special Crossing) -** विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 124 के अनुसार "जब किसी चैक के मुख पृष्ठ पर खींची गई समानान्तर रेखाओं के बीच किसी

बैंक विशेष का नाम अंकित हो, चाहे इसके साथ & Co. अथवा Not Negotiable शब्द जुड़ा हो या नहीं, तो ऐसा रेखांकन विशेष रेखांकन कहलायेगा और उस बैंक विशेष के नाम ही रेखांकन कहलायेगा।"

विशेष रेखांकन के लिए किसी चैक के मुख पृष्ठ पर किसी बैंक विशेष का नाम लिखा होना अनिवार्य है। इसमें दो समानान्तर रेखाओं का खींचना आवश्यक नहीं है। व्यवहार में परम्परा के कारण ये रेखायें खींच दी जाती हैं।

विशेष रेखांकन के नमूने निम्नानुसार हैं -

1.

2.

3.

4.

विशेष रेखांकन का प्रभाव - विशेष रेखांकन कर देने से चैक और ज्यादा सुरक्षित हो जाता है क्योंकि संग्राहक बैंक का यह दायित्व हो जाता है कि वह चैक का भुगतान केवल चैक के वास्तविक स्वामी के लिए प्राप्त करे और देनदार बैंक का भी यह कर्त्तव्य है कि वह उसी बैंक विशेष को भुगतान करे जिसका नाम विशेष रेखांकन में अंकित है। परन्तु देनदार बैंक का यह कर्त्तव्य नहीं होता है कि वह भुगतान करने से पूर्व यह जांच करें कि संग्रहकर्ता बैंक इसे किसके लिए संग्रहित कर रहा है।

दोहरा रेखांकन (Double Crossing) - जब एक विशेष रेखांकित चैक में अंकित बैंक यदि चैक का संग्रहणार्थ अपने एजेन्ट के रूप में दूसरे बैंक के नाम पुन: रेखांकन करता है तो ऐसा रेखांकन दोहरा रेखांकन कहलाता है। यदि किसी चैक पर एक से अधिक बैंकों का नाम लिखकर रेखांकित किया जाता है तो धारा व 27 के अनुसार ऐसा विशेष रेखांकन अवैध माना जाता है। परन्तु धारा 125 के अनुसार यह वैध होगा यदि पुन: रेखांकित करने वाले बैंक ने रेखांकन में यह स्पष्ट कर दिया है कि चैक का रेखांकन भुगतान संग्रहण के लिए दूसरे बैंक को एजेन्ट के रूप में किया गया है। दोहरे रेखांकन का नमूना निम्न प्रकार है -

रेखांकन रद्द करना (Cancellation of Crossing) - चैक पर रेखांकन को रद्द करने का अधिकार केवल उस चैक के लेखक को ही है। यदि प्रापक का खाता बैंक में नहीं है अथवा चैक का खिड़की पर नकद भुगतान चाहता है तो वह रेखांकित चैक को वापस लेखक के पास ले जाकर

रेखांकन को रद्द करवा सकता है। चैक का लेखक रेखांकन को काटकर वहाँ "Pay Cash" लिखकर अपने पूरे हस्ताक्षर कर देता है। इससे चैक रेखांकित चैक से खुले चैक में परिवर्तित हो जायेगा और इसकी राशि का भुगतान बैंक की खिड़की पर प्रस्तुत करके प्राप्त किया जा सकता है।

रेखांकन को मिटाना या नष्ट करना (Obliteration of Crossing) - यदि चैक के धारक ने चैक पर रेखांकन को मिटा दिया है जिससे यह आसानी से दिखाई नहीं देता कि चैक रेखांकित था और बैंक उसका भुगतान खिड़की पर नकद में कर देता है तो विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 89 के अन्तर्गत उस भुगतानकर्ता बैंक को संरक्षण प्राप्त होगा। इस प्रकार मिटाये हुये रेखांकन के संबंध में भुगतानकर्ता बैंक द्वारा यथाविधि भुगतान किये जाने पर वह बैंक उस चैक के बारे में अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। बैंक द्वार किये गये भुगतान को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि वह चैक रेखांकित था।

8.11 पृष्ठांकन

विनिमय साध्य विलेख का पराक्रमण (Negotiation) / हस्तान्तरण किया जा सकता है। यह पराक्रमण या तो सुपुर्दगी से या पृष्ठांकन एवं सुपुर्दगी द्वारा किया जा सकता है। विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 48 के अनुसार आदेश पर देय विलेख का पराक्रमण धारक द्वारा पृष्ठांकन करके सुपुर्दगी द्वारा किया जा सकता है। वाहक को देय विलेख का हस्तान्तरण केवल सुपुर्दगी मात्र से ही हो जाता है।

अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition) - सामान्य अर्थों में परक्रामण के उद्देश्य से किसी विनिमय साध्य विलेख की पीठ पर या मुख पृष्ठ पर हस्ताक्षर करना अथवा किसी व्यक्ति का नाम लिख कर हस्ताक्षर करना पृष्ठांकन अथवा बेचान कहलाता है। भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 की धारा 15 के अनुसार पृष्ठांकन अथवा बेचना की परिभाषा निम्न प्रकार दी गई है -

"जब किसी विनिमय साध्य विलेख का लेखक या धारक लेखक के रूप में नहीं बल्कि हस्तान्तरण के आशय से उसकी पीठ पर, मुख पृष्ठ पर अथवा उसके साथ संलग्न किसी कागज की पर्ची पर हस्ताक्षर करता है, जोकि बाद में एक विनिमय साध्य विलेख के रूप में पूरा किया जाता हो तो इसे विलेख का पृष्ठांकन कहते हैं और वह उस लेख का पृष्ठांकनकर्ता कहलाता है।"

वैध पृष्ठांकन के आवश्यक तत्व (Essentials of Valid Endorsement) - एक वैध पृष्ठांकन के निम्न आवश्यक तत्व होते हैं

1. **पृष्ठांकन सदैव लिखित एवं हस्ताक्षरयुक्त होना चाहिए -** मौखिक पृष्ठांकन वैध नहीं माना जाता है। पृष्ठांकन पर पराक्रमण के उद्देश्य से लेखक या धारक के हस्ताक्षर होने आवश्यक है। एक अनपढ़ व्यक्ति प्रमाणित अंगूठा निशानी से पृष्ठांकन कर सकता है। ये हस्ताक्षर विलेख के मुख पृष्ठ या पीठ पर अथवा संलग्न कागज की पर्ची पर कहीं भी हो सकते हैं। संलग्न पर्ची पर हस्ताक्षर करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पृष्ठांकक अपने हस्ताक्षर का कुछ भाग विलेख पर और शेष भाग पृष्ठांकन पर्ची पर करे।
2. **पृष्ठांकन की अवधि -** अधिनियम की धारा 60 के अनुसार विनिमय साध्य विलेख का पृष्ठांकन विलेख के लिखने के बाद तथा भुगतान से पूर्व वैध माना जाता है।

3. **पृष्ठांकन की तिथि -** यद्यपि विलेख का पृष्ठांकन करते समय तिथि लिखना वैधानिक दृष्टि से आवश्यक नहीं है परन्तु फिर भी पृष्ठांकक उचित लेखा-जोखा रखने की दृष्टि से हस्ताक्षर करके नीचे तिथि अंकित कर देता है।

4. **पृष्ठांकन की क्रमबद्धता -** अधिनियम की धारा 118(E) के अनुसार यदि किसी विनिमय साध्य विलेख पर एक से अधिक पृष्ठांकन किये गये हैं तो यह माना जायेगा कि उन्हें उसी क्रम में किया गया है जिस क्रम में ये दर्शाये गये हैं।

5. **सम्पूर्ण राशि का पृष्ठांकन -** अधिनियम की धारा 56 के अनुसार पृष्ठांकन विलेख में अंकित सम्पूर्ण राशि का होना चाहिए। अन्यथा आशिक राशि के लिए पृष्ठाकंन अनियमित होगा। परन्तु धारा 56 में यह भी उल्लेखित है कि यदि विलेख की राशि में से आशिक राशि का पहले ही भुगतान कर दिया गया है तो शेष बची सम्पूर्ण राशि के लिए पृष्ठांकन किया जा सकता है।

6. **पृष्ठांकन अधिकृत व्यक्ति द्वारा होना चाहिए -** पृष्ठांकन करने का अधिकार उस विलेख के लेखक या आहर्ता, धारक तथा आदाता को होता है। अधिनियम की धारा 27 के अनुसार पृष्ठांकन का अधिकार एजेन्ट को भी दिया जा सकता है। अव्यस्क, पागल एवं अन्य अनाधिकृत व्यक्तियों द्वारा किया गया पृष्ठांकन वैध नहीं माना जाता है।

7. **सुपुर्दगी अनिवार्य -** पृष्ठांकन तभी पूरा माना जायेगा जबकि विलेख के पृष्ठाकीकी या उसके एजेन्ट को सुपुर्दगी कर दी जाये।

8. **विलेख पूर्ण होना चाहिए -** सुपुर्दगी से पूर्व विलेख पूर्ण होना चाहिए अन्यथा उसे अवैध माना जाता है लेकिन धारा 20 के अनुसार अपूर्ण विलेख का पृष्ठांकन किया जा सकता है यदि उस पर आवश्यक स्टेम्प लगा हुआ हो।

9. **पृष्ठांकन एक ही व्यक्ति के पक्ष में हो -** किसी एक विलेख का दो व्यक्तियों के पक्ष में अलग-अलग पृष्ठांकन नहीं किया जा सकता। परन्तु यदि संयुक्ता नाम से पृष्ठांकन किया गया है तो उरने वैध माना जायेगा।

10. **पृष्ठांकन की प्रकृति -** यदि किसी विलेख पर स्पष्ट रूप से यह अंकित कर दिया गया हो कि इसका पृष्ठांकन और आगे नहीं किया जा सकता है तो ऐसे विलेख का आगे पृष्ठांकन करना अवैध होगा।

11. **पृष्ठांकक की मृत्यु की दशा में -** यदि पृष्ठांकक की सुपुर्दगी देने से पूर्व ही मृत्यु हो जाती है तो उसका वैधानिक प्रतिनिधि केवल सुपुर्दगी मात्र से उसका पृष्ठांकन नहीं कर सकता। उसे भी मृत व्यक्ति के प्रतिनिधि के रूप में पुन: पृष्ठांकन करना होगा तथा विलेख की सुपुर्दगी देने पर पृष्ठांकन पूर्ण होगा।

पृष्ठांकन के प्रकार (Types of Endorsement) - पृष्ठांकन के निम्न प्रकार होते हैं-

1. **कोरा या सामान्य पृष्ठांकन (Blank or General Endorsement) -** अधिनियम की धारा 16 के अनुसार जब विलेख पर पृष्ठांकक केवल अपने हस्ताक्षर करता है और जिस व्यक्ति के नाम वह पृष्ठांकन करता है उसके नाम का उल्लेख नहीं करता है तो ऐसे पृष्ठांकन को कोरा/खाली या सामान्य पृष्ठांकन कहते हैं। धारा 54 के अनुसार यह विलेख वाहक विलेख बन जाता है और इसकी राशि वाहक प्राप्त कर सकता है। चाहे वह विलेख अथवा चैक आदेश पर देय था।

उदाहरण - Ram Babu Jain

10-9-2009

2. **पूर्ण या विशेष रेखांकन (Full or Special Endorsement) -** अधिनियम की धारा 16 के अनुसार यदि विलेख पर पृष्ठांकक अपने हस्ताक्षर करने के साथ-साथ विलेख की रकम को किसी व्यक्ति विशेष को अथवा उसके द्वारा किसी आदेशित व्यक्ति को देने का निर्देश भी करता है तो ऐसे पृष्ठांकन को पूर्ण या विशेष कहा जायेगा।

उदाहरण - Pay to Shyam Sunder

Ram Babu Jain

10-9-2009

कोरे पृष्ठांकन से पूर्ण पृष्ठांकन में बदलना - धारा 49 के अनुसार खाली या कोरे पृष्ठांकन को पूर्ण पृष्ठांकन में परिवर्तित किया जा, सकता है। जब कोरे पृष्ठांकन में हस्ताक्षर के ऊपर किसी व्यक्ति का नाम लिख दिया जाये तो यह पूर्ण या विशेष पृष्ठांकन हो जायेगा। जैसे कोरे पृष्ठांकन के उदाहरण में - राम बाबू जैन के ऊपर **'Pay to Manohar Lal'** लिख दिया जाये। परिवर्तन का एक तरीका और भी है। धारा 55 के अनुसार यदि कोई ऐसा विलेख जिस पर कोरा या सामान्य पृष्ठांकन है, बाद में पूर्ण पृष्ठांकन कर दिया जाता है तो पूर्ण पृष्ठांकन करने वाला पक्षकार केवल उसी व्यक्ति के प्रति दायी होता है जिसको कि वह पूर्ण पृष्ठांकन करता है।

उदाहरण - Ram Babu Jain

10-9-2009

Pay to Mohan

Shri Krishna

11-9-2009

इस उदाहरण में राम बाबू जैन ने तो साधारण पृष्ठांकन किया है किन्तु श्रीकृष्ण ने मोहन के पक्ष में विशेष पृष्ठांकन करके इसे पूर्ण या विशेष पृष्ठांकन में परिवर्तित कर दिया है।

3. **प्रतिबंधित पृष्ठांकन (Restrictive Endorsement) -** अधिनियम की धारा 50 के अनुसार यदि विलेख का लेखक चाहे तो विलेख के आगे हस्तान्तरण पर प्रतिबन्ध लगा सकता है। इससे पृष्ठांकिती का विलेख के आगे पृष्ठांकन का अधिकार समाप्त हो जाता है तो ऐसे पृष्ठांकन को प्रतिबंधित पृष्ठांकन कहते हैं। वसुदेव रामचन्द्र बनाम नेशनल सेविंग्स बैंक लिमिटेड, 1951 विवाद में यह निर्णय दिया गया था कि प्रतिबंधित पृष्ठांकन में पृष्ठांकिकी के अधिकारों पर स्पष्ट शब्दों में प्रतिबंध लगाया जाना आवश्यक है। आज्ञा पर देय लेख पत्र पर निम्न तरीके से किया गया पृष्ठांकन प्रतिबंधित पृष्ठांकन कहलायेगा -

(i) Pay to B only

(ii) Pay B or order for A/C of M

(iii) Pay B or order for Collection

(iv) Pay the Contents to B only

लेकिन निम्न पृष्ठांकनों में B के हस्तान्तरण के अधिकार पर रोक नहीं है -

(i) Pay to B

(ii) Pay the contents to B, being part of the consideration in a certain deed of agreement executed by B to the endorser and others.

ये पृष्ठांकन प्रतिबंधित नहीं हैं, केवल भुगतान के कारगा की तगख्या की गई है।

4. **शर्त सहित पृष्ठांकन (Conditional Endorsement) -** अधिनियम की धारा 52 के अनुसार जब कोई विलेख का धारक पृष्ठांकन में स्पष्ट रूप से अपने दर्गयेत्व को मुआ कर लेता हे या पृष्ठांकिकी को किये जाने वाले भुगतान को किसी द्व्नेश्चित घटना के घटित होने पर निर्भर बना देता है तो ऐसें पृष्ठांकन को सशर्त अथवा शर्त सहित पृष्ठांकन कहते हैं। शर्त सहित पृष्ठांकन निम्न प्रकार रो किया जा सकता हैं -

I. **दायित्व रहित पृष्ठांकन (Sans Recourse Endorsement) -** धारा 52 के अनुसार यदि विनिमय साध्य विलेख का लेखक या पृष्ठांकक विलेख का पृष्ठांकन करते -समय यह स्पष्ट कर देता है कि विलेख के अनादरण की दशा में वह धारक के प्रति दायी नहीं होगा तो इस प्रकारत् का पृष्ठांकन दायित्व रहित पृष्ठांकन कहलाता है।

उदाहरण -

i. Pay to Ram Sans Recourse

Shyam Lal

ii. Pay to Ram or orders Sans Recourse

Shyam Lal

iii. Pay to Ram without Recourse to me

Shyam Lal

iv. Pay to Ram order at his own risk

Shyam Lal

ऐसे पृष्ठांकन करते समय दायित्व से मुक्ति संबंधी शब्दों को जोड़ना आवश्यक है। यदि पृष्ठाकनकर्ता की जानकारी में पृष्ठांकन से पूर्व कोई जालसाजी की गई है तो पृष्ठांकनकर्ता को भी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

II. **घटना के घटित होने पर आधारित -** जब विलेख का पृष्ठांकन करने में पृष्ठांकक अपने दायित्व को किसी घटना के घटित होने पर आधारित बना लेता है तो यह भी शर्तपूर्ण प्रत्तांकन ही कहलायेगा। जैसे -

i. Pay to Ram or order on his marrying Lata

Shyam Lal

ii. Pay to Ram on arrival of his brother

Shyam Lal

ऐसे पृष्ठांकन में पृष्ठांकक तभी दायी होगा जब निर्दिष्ट घटना घटित हो जाये। अन्यथा पृष्ठांकक अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

5. **ऐच्छिक पृष्ठांकन (Facultative Endorsement) -** विनिमय साध्य विलेख की धारा 93 के अनुसार जब पृष्ठांकक पृष्ठाकंन में विलेख के अनादरण की सूचना प्राप्त करने के अधिकार का परित्याग कर देता है और बिना सूचना पाये भी अपने दायित्व को बनाये रखने को तैयार है तो ऐसा पृष्ठांकन ऐच्छिक पृष्ठांकन कहलाता है। उदाहरण -

Pay to Ram or order, Notice of dishonor waived

Shyam Lal

6. **आशिक पृष्ठांकन (Partial Endorsement) -** अधिनियम की धारा 66 के अनुसार पृष्ठांकन पूर्ण राशि के लिए ही होना चाहिए। आशिक राशि का पृष्ठांकन अवैध माना जाता है, किन्तु विलेख की राशि में से कुछ आशिक राशि धारक द्वारा पूर्व में प्राप्त की जा चुकी है तो शेष राशि के लिये इसका पृष्ठांकन किया जा सकता है। उदाहरण के लिए एक विलेख 10,000 रूपये का था उसमें से 2,000 रूपये नकद भुगतान किया जा चुका था तो शेष 8,000 रूपये की राशि के लिए आशिक पृष्ठांकन इस प्रकार होगा -

Pay Ram or order Rs. 8,000 being the unpaid residue of the bill.

Shyam Lal

10-9-2009

7. **संग्रहण के लिए पृष्ठांकन (Endorsement for Collection) -** विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 50 के अनुसार जब विलेख का लेखक अपनी ओर रो किसी व्यक्ति को इसलिए एजेन्ट बनाता है कि वह - (i) उसकी ओर से या निर्दिष्ट व्यक्ति के लिए विलेख में वर्णित राशि प्राप्त करे अथवा (ii) लेखक की ओर से विलेख का पृष्ठांकन करे, तो इस प्रकार के पृष्ठांकन को संग्रहण के लिए पृष्ठांकन कहते हैं। उदाहणार्थ-

Pay to Ram without recourse to me on behalf of Shyam & Co.

Ankit Kumar- Agent

इस प्रकार का पृष्ठांकन करते समय एजेन्ट को अपनी स्थिति के बारे में स्पष्ट कर देना चर्महेए कि वह अमुक पक्ष के एजेन्ट के रूप में पृष्ठांकन का कार्य कर रहा है अन्यथा वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जायेगा।

पृष्ठांकन की मान्यतायें (Assumptions of Endorsement) - भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 की धारा 118 के अनुरगर पृा!ठांत्कृन की निम्नलिखित मान्यतायें हैं -

1. पृष्ठांकक को विलेख पर पूर्ण एवं दोषरहित अधिकार - पृष्ठांकिकी को यह मानने का पूर्ण अधिकार है कि पृष्ठांकित विलेख के संबंध मैं पृष्ठांकक का. अधिकार सर्वथा दोषरहित एवं पूर्ण है।

   वासुदेव रामचन्द्र बनाम नेशनल सेविंग्स बैंक लिमिटेड, 1951 विवाद के निर्णय से इसी मत की पुष्टि होती

2. दोषरहित विलेख संबंधी मान्यता - पृष्ठांकन करते समय विलेख दोषरहित था। इसके लिखने या स्वीकृति देने में किसी तरह की जालसाजी नहीं की गई है।

3. प्रत्येक पृष्ठांकन प्रतिफल के बदले में किया गया है।
4. विनिमय साध्य विलेख की सुपुर्दगी देय तिथि से पूर्व की गई है।
5. विलेख का पृष्ठांकन जिस क्रम में है उसी क्रम में उन्हें पृष्ठांकित किया गया माना जाता है।
6. विलेख का प्रत्येक धारक यथाविधि धारक माना जाता है।

पृष्ठांकन के प्रभाव (Effects of Endorsement) - उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर विलेख के पृष्ठांकन के निम्न प्रभाव होते हैं

1. भुगतान प्राप्त करने का अधिकार - पृष्ठांकन से लेख पत्र की राशि प्राप्त करने का अधिकार पृष्ठांकन से पृष्ठांकिकी को हस्तान्तरित हो जाता है।
2. अपने नाम में वाद प्रस्तुत करने का अधिकार - पृष्ठांकन के बाद पृष्ठांकिकी को विलेख के संबंध में अपने नाम में वाट प्रस्तुत करने के अधिकार मिल जाते हैं।
3. पुन: पृष्ठांकन का अधिकार -पृष्ठांकन के शुद्ध अधिकार की मान्यता पर पृष्ठांकिकी को यथाविधि धारक होने का अधिकार प्राप्त हो जाता है, अत: वह इस लेख पत्र का पुन: पृष्ठांकन कर सकता है।
4. विलेख के अनादरण हो जाने पर पृष्ठांकिकी प्रत्येक पूर्व धारक पर विलेख की राशि के लिए दावा कर सकता है।

पृष्ठांकनकर्ता/पृष्ठांकक के दायित्व (Liabilities of the Endorser) - भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 की धारा 35 में पृष्ठांकनकर्ता के दायित्व का स्पष्टत: इस प्रकार उल्लेख किया गया है-

"विपरीत आशय के अभाव में, जो कोई भी परिपक्वता के पूर्व किसी विनिमय साध्य विलेख पर पृष्ठांकन कर सुपुर्दगी देता है, किन्तु ऐसे पृष्ठांकन में स्पष्टत: अपने दायित्व का परित्याग नहीं करता, वह देनदार, स्वीकर्ता या लेखक द्वारा अनादरण की दशा में ऐसे धारी को उस हानि की क्षतिपूर्ति करने के लिए प्रत्येक बाद वाले धारी के प्रति उत्तरदायी होता है जो ऐसे अनादरण द्वारा उसे होती है बशर्ते कि उसे अनादरण की सूचना प्राप्त हो गई हो अथवा दे दी गई हो।"

इस धारा के अन्तर्गत पृष्ठांकनकर्ता के प्रमुख दायित्व निम्न प्रकार हैं -

1. **अनादरण की सूचना आवश्यक (Notice of Dishonour) -** विलेख के अनादरण हो जाने पर पृष्ठांकनकर्ता को तभी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है जबकि उसे अनादरण की यथोचित सूचना दे दी गई हो अथवा उसे अन्य अधिकृत स्त्रोतों से सूचना प्राप्त हो गई हो। अन्यथा उसे दायी नहीं ठहराया जा सकता है। मुहम्मद रफी बनाम मुजफ्फर हुसैन, 1936 के विवाद में न्यायालय का निर्णय था कि अनादरण की सूचना के अभाव में पृष्ठांकनकर्ता अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा।

2. **कालतिरोहित पृष्ठांकन (Time-barred Endorsement) -** यदि किसी कालतिरोहित विलेख का पृष्ठांकन कर दिया जाता है तो पृष्ठांकनकर्ता उसमें लिखित राशि के भुगतान के लिए उसी प्रकार दायी ठहराया जायेगा जैसाकि मांग पर देय विलेख के लिए कोई व्यक्ति दायी होता है।

3. **जाली पृष्ठांकन (Forged Endorsement) -** विलेख का अनादरण होने पर यदि किसी भी पक्षकार को यह पता लग जाये कि उसके पूर्व धारकों में से किसी के भी हस्ताक्षर जाली हैं तो भी पृष्ठांकनकर्ता अपने पृष्ठांकिकी तथा बाद के सभी धारकों के प्रति उत्तरदायी बना रहेगा।

4. **बैंक द्वारा दावा करने पर क्षतिपूर्ति का दायित्व (Liability for compensating Banker's Claim) -** यदि विलेख का धारक मग्न विलेख को संग्रहणार्थ बैंक को सौंपता है और बैंक संग्रहण से पूर्व ही ग्राहक को लेख पत्र की राशि निकालने की अनुमति दे देता है तथा इसके पश्चात लेख पत्र का अनादरण हो जाता है तो ऐसी दशा में बैंक उस लेख पत्र का 'मूल्य के लिए धारक' (Holder for Value) बन जाता है। अत: बैंक लेख पत्र की राशि प्राप्त करने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है और पृष्ठांकनकर्ता को उसकी क्षतिपूर्ति के लिए दायी ठहराया जा सकता है।

5. **भुगतान तक दायी (Liable Upto Payment) -** किसी विलेख का भुगतान न हो जाने तक पृष्ठांकनकर्ता उसके यथाविधि धारक के प्रति उत्तरदायी बना रहता है। भुगतान के बाद पृष्ठांकक स्वत: दायित्व मुक्त हो जाता है।

पृष्ठांकनकर्ता की दायित्व मुक्ति की दशायें (Conditions of Discharge from Liability of Endorser) - विनिमय साध्य विलेख का लेखक या पृष्ठांकनकर्ता निम्न दशाओं में अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है -

1. विलेख का भुगतान कर दिये जाने पर (धारा 82C)
2. लेखक या पृष्ठांकनकर्ता द्वारा पर लगाई गई शर्त के पूरा न होने पर (धारा 35)
3. धारक द्वारा विलेख में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये जाने पर (धारा 85)
4. दायित्वरहित पृष्ठांक की दशा में भी अनादरण हो जाने पर लेखक दायी नहीं होता है (धारा 52)
5. विलेख में धारक द्वारा स्वीकारक या पृष्ठांकनकर्ता के नाम काट देने पर (धारा 82A)
6. विलेख के धारक द्वारा अन्य विधिसम्मत कारणवश विलेख के लेखक, स्वीकारक या पृष्ठांकक को मुक्त कर दिया जावे (धारा 82B)

पृष्ठांकन रद्द करना (Cancellation of Endorsement) - किसी भी विलेख के धारक को यह अधिकार होता है कि वह लेख पत्र में अंकित पृष्ठांकनों में से किसी एक अथवा अधिक को काट कर रद्द कर सकता है। विनिमय साध्य विलेख अधिनियम 1881 की धारा 82 के अनुसार "न केवल इस प्रकार काटा हुआ पृष्ठांकक ही लेख पत्र के दायित्व से मुआ हो जाता है अपितु इस पृष्ठांकक के प्रति अधिकार रखने वाले बाद के सभी पृष्ठांकक भी अपने दायित्व से मुक्त हो जायेंगे।" इस संबंध में विद्वान लेखक डेनियल ने बहुत ही रोचक ढंग से स्पष्ट किया है - "सभी पृष्ठांककों के अनुबंध एक लटकती हुई श्रृंखला की कड़ियों के समान हैं। यदि धारक प्रथम कड़ी को काट दे तो इससे सभी कड़ियां भी गिर जाती हैं और यदि वह बीच की कड़ी को काट दे तो इसके बाद वाली समस्त कड़ियां गिर जाती हैं। किन्तु अन्तिम कड़ी को काट दे तो कोई क्षति नहीं होती।" इससे स्पष्ट है कि धारक विलेख की पृष्ठांकन श्रृंखला में जहां भी किसी पृष्ठांकक का

नाम काटकर पृष्ठांकन रह करता है तो वह स्वयं तथा उसके बाद के सभी पृष्ठांकक दायित्व मुक्त हो जायेंगे।

8.12 सारांश

बैंकों द्वारा ग्राहक के विभिन्न विनिमय साध्य विलेखों की राशि के संग्रहण का कार्य तथा भुगतान संबंधी कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। यह कार्य बैंक संग्राहक बैंक एवं भुगतानकर्ता बैंक की हैसियत से करते हैं। संग्रहण व भुगतान के संबंध में इन बैंकों को कई कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है तथा अनेक सावधानियाँ बरतनी चाहिये। इन्हें वैधानिक संरक्षण भी प्राप्त होते हैं। विनिमय साध्य विलेखों का अनादरण अस्वीकृति के कारण अथवा भुगतान न किये जाने के कारण हो सकता है। व्यक्ति विशेष को भुगतान दिलाने के उद्देश्य से चैक ड्राफ्ट, पोस्टर ऑर्डर आदि का रेखांकन किया जाता है जो सामान्य या विशेष प्रकार का हो सकता है तथा लेखक दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरण के उद्देश्य से लेख पत्र पर अपने हस्ताक्षर करता है, जिसे पृष्ठांकन या बेचान कहा जाता है। पृष्ठांकन कई प्रकार का हो सकता है।

8.13 शब्दावली

1. **भुगतानकर्ता/शोधी बैंक (Paying Bank) -** ग्राहक द्वारा जारी किये गये चैक का भुगतान करने वाला बैंक भुगतानकर्ता बैंक या शोधी बैंक कहलाता हैं।
2. **यथाविधि भुगतान (Payment in Due Course) -** यथाविधि भुगतान से आशय ऐसे भुगतान से है जो विलेख की स्पष्ट अवधि के अनुसार, विलेख पर अधिकार रखने वाले किसी भी व्यक्ति को सद्विश्वास तथा बिना लापरवाही के ऐसी परिस्थितियों में किया जाये जिससे यह संदेह उत्पन्न न हो कि वह व्यक्ति विलेख का भुगतान प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है।
3. **महत्वपूर्ण परिवर्तन (Material Alteration) -** जिस परिवर्तन से विलेख के वैधानिक स्वरूप या प्रकृति में बदलाव आ जाये तो उसे महत्वपूर्ण परिवर्तन कहते हैं।
4. **संग्राहक बैंक (Collecting Bank) -** जो बैंक ग्राहक के लिए आदेशित देनदार बैंकों से भुगतान संग्रह करता है उसे संग्राहक बैंक कहते हैं।
5. **मूल्य के लिए धारक (Holder for Value) -** जब कोई संग्राहक बैंक धारक के किसी विलेख की राशि संग्रह होने से पूर्व ही उसे वह राशि निकालने की अनुमति प्रदान कर देता है तो ऐसी स्थिति में संग्राहक बैंक उस विलेख का मूल्य के लिए धारक बन जाता है।
6. **अनादरण (Dishonour) -** जब कोई विलेख बिना स्वीकृत किये अथवा बिना भुगतान किये वापस लौटा दिया जाता है तो उसे अनादरण कहते हैं।
7. **टिप्पण एवं प्रमाणन (Noting and Protesting) -** अनादरित विलेख को सम्पूर्ण विवरण के साथ नोटेरी पब्लिक के रजिस्टर में दर्ज करवाना टिप्पण कहलाता है तथा टिप्पण के आधार पर नोटेरी पब्लिक द्वारा जारी किया गया विलेख के अनादरण का प्रमाण पत्र प्रमाणन कहलाता है।
8. **रेखांकन (Crossing) -** चैक, बैंक ड्राफ्ट अथवा पोस्टल ऑर्डर के मुख पृष्ठ पर दो तिरछी समानान्तर रेखायें खींच देना रेखांकन कहलाता है।

9. **पृष्ठांकन या बेचान (Endorsement) -** हस्तान्तरण के उद्देश्य से विनिमय साध्य विलेख की पीठ पर या मुख पृष्ठ पर हस्ताक्षर करना अथवा किसी व्यक्ति का नाम लिखकर हस्ताक्षर करना पृष्ठांकन या बेचान कहलाता है।

8.14 अभ्यास प्रश्न

1. भुगतानकर्ता बैंक एवं संग्राहक बैंक का अर्थ बताइये।
2. भुगतानकर्ता बैंक द्वारा भुगतान करते समय रखी जाने वाली सावधानियों का वर्णन कीजिये।
3. संग्राहक बैंक को प्राप्त वैधानिक संरक्षणों एवं ग्राहक के प्रति कर्तव्यों की विवेचना कीजिए।
4. अनादरण से आप क्या समझते हैं? चैक के अनादरण की विभिन्न दशाओं का वर्णन कीजिए।
5. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिये -
   (i) टिप्पण एवं प्रमाणन
   (ii) महत्वपूर्ण परिवर्तन
   (iii) रेखांकन रह करना
   (iv) अनुचित अनादरण
6. रेखांकन को परिभाषित कीजिये। सामान्य एवं विशेष रेखांकन को स्पष्ट कीजिये।
7. दोहरा रेखांकन किसे कहते हैं?
8. वैध पृष्ठांकन के आवश्यक तत्व बताइये तथा पृष्ठांकन के विभिन्न प्रकारों की विवेचना कीजिये।

8.15 संदर्भ ग्रन्थ

1. बी.एल. ओझा - बैंकिंग विधि एवं व्यवहार, रमेश बुक डिपो, जयपुर, 2009
2. मालीराम, जी.एन. शर्मा एवं वी.के. वशिष्ठ - बैंकिंग विधि एवं व्यवहार, रमेश बुक डिपो, जयपुर, 2009
3. S.K. Mathur-Banking Law and Practice in India, Shivam Book House (Pvt.) Ltd., Jaipur.

इकाई-9

विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 - प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय बिल, चैक एवं विनिमय साध्य विलेखों से संबंधित विभिन्न प्रावधान

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 विनिमय साध्य विलेख.

- 9.2.1 विनिमय साध्य विलेख का अर्थ एवं परिभाषा'
- 9.2.2 विनिमय साध्य विलेख की मुख्य विशेषताएं
- 9.2.3 विनिमय साध्य विलेख की मान्यतायें
- 9.2.4 विनिमय साध्यता एवं हस्तातरणशीलता में अन्तर
- 9.2.5 विनिमय साध्य विलेख के पक्षकार

9.3 विनिमय साध्य विलेखों के प्रकार

- 9.3.1 प्रतिज्ञा पत्र
- 9.3.2 विनिमय बिल
- 9.3.3 चैक

9.4 चैक तथा विनिमय बिल में अन्तर

9.5 प्रतिज्ञा पत्र तथा विनिमय बिल में अन्तर

9.6 सारांश

9.7 शब्दावली

9.8 अभ्यास प्रश्न

9.9 संदर्भ ग्रन्थ

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 व विनिमय साध्य विलेख की अवधारणा के बारे में जान सकें।
- विनिमय साध्य विलेखों के प्रकार यथा प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय बिल तथा चैक के सम्बन्ध में विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर सकें।
- अन्य संबंधित प्रावधानों जैसे देय तिथि की गणना, धारकों, यथाविधि धारक, स्वीकृति आदि के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें।
- विभिन्न विनिमय साध्य विलेखों में परस्पर अन्तर स्पष्ट कर सकें।

9.1 प्रस्तावना

विकास के साथ-साथ व्यापारिक जगत मे विनिमय साध्य विलेखों का महत्व निरन्तर बढता जा रहा है। आधुनिक युग में विनिमय साध्य विलेख व्यापारिक भुगतान दायित्वों को निपटाने तथा सुपुर्दगी मात्र से सम्पत्ति अधिकार अन्तरण का लोकप्रिय साधन बनते जा रहे हैं। भारत में सर्वप्रथम सन् 1867 में विधि आयोग द्वारा विनिमय साध्य विलेख से संबंधित विधेयक तैयार किया गया जिसमें अनेक संशोधनों के बाद यही विधेयक सन् 1881 में विनिमय साध्य विलेख अधिनियम के नाम से पारित किया गया जो 1 मार्च 1882 से लागू हुआ।

9.2 विनिमय साध्य विलेख

9.2.1 विनिमय साध्य विलेख का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Negotiable Instrument)

विनिमय साध्य विलेख दो शब्दों से मिलकर बना है। प्रथम विनिमय साध्य व द्वितीय विलेख। अत: विनिमय साध्य से आशय सुपुर्दगी द्वारा हस्तान्तरण से है जबकि विलेख का अर्थ विधिवत् कानूनी दस्तावेज से है। इस प्रकार सामान्य शब्दों में विनिमय साध्य विलेख से अभिप्राय: एक ऐसे कानूनी दस्तावेज से है जिसकी सुपुर्दगी द्वारा हस्तान्तरण मात्र से हस्तांतरित को तत्संबंधी संपति का स्वामित्व संबंधी अधिकार प्राप्त हो जाता है। भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 की धारा 13(1) के अनुसार "विनिमय साध्य विलेख का अभिप्राय प्रतिज्ञापत्र, बिल अथवा चैक से है जो वाहक अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को देय है।" (A Negotiable Instrument means a Promissory Note, bill of exchange or cheque payable either to order or the bearer).

उपर्युक्त परिभाषा में केवल तीन लेख पत्रों - प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय बिल तथा चैक को ही विनिमय साध्य विलेख माना गया है। इसके अन्तर्गत बॉण्ड, कूपन, लाभांश एवं अंश अधिपत्रों आदि को विनिमय साध्य विलेख पत्र नहीं माना गया है।

1. **न्यायाधीश के.सी. विलिस के अनुसार -** "विनिमय साध्य विलेख वह सम्पत्ति है जो सद्विश्वास में एवं मूल्य के प्रतिफल में प्राप्त करने वाले व्यक्ति को उन दोषों से मुक्त रखती है जो हस्ताक्षरकर्ता के स्वामित्व में है।"
2. **न्यायाधीश थॉमस (Thomas) के अनुसार -** "विनिमय साध्य विलेख का तात्पर्य उन विलेखों से है जिनका विधि अथवा विधि द्वारा मान्यता प्राप्त व्यापारिक प्रथाओं द्वारा सुपुर्दगी एवं पृष्ठांकन द्वारा इस प्रकार से स्वामित्व हस्तान्तरण हो जाता है कि धारक अपने नाम से इन विलेखों का दावा प्रस्तुत कर सकता है तथा मूल्य के प्रतिफल एवं सद्विश्वासपूर्वक प्राप्त करने पर धारक इन विलेखों में निहित सम्पत्ति का स्वामी बन जाता है, चाहे हस्तान्तरणकर्ता का उस पर अधिकार दूषित ही क्यों न हो।"
3. **अमेरिका में समरूप वाणिज्य संहिता (Uniform Commercial Code, USA) की धारा 3-104 के अनुसार -** किसी भी लिखित दस्तावेज को विनिमय साध्य विलेख कहलाने के लिए निम्न शर्तों का पूरा करना होता है -

(i) यह विपत्र निर्माता अथवा आहर्ता द्वारा हस्ताक्षरित हो।

(ii) इसमें निश्चित राशि के भुगतान के लिए शर्त रहित आदेश अथवा प्रतिज्ञा हो।

(iii) इस अनुच्छेद द्वारा अधिकृत के अलावा कोई अन्य प्रतिज्ञा आदेश, बंधन निर्माता या आहर्ता द्वारा दी गई शक्ति न हो।

(iv) यह विलेख निर्धारित समय अथवा मांग पर देय हो तथा

(v) यह विलेख वाहक अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को देय हो।

इंग्लैण्ड में विनिमय साध्य विलेख का व्यापक अर्थ लगाया जाता है। इसमें चैक, प्रतिज्ञा पत्र एवं विनिमय बिलों के अलावा गश्ती नोट, ट्रेजरी बिल, बैंक ड्राफ्ट, लाभांश एवं अंश अधिपत्र, वाहक क्या पत्र तथा बॉण्ड आदि को भी सम्मिलित किया जाता है।

9.2.2 विनिमय साध्य विलेख की मुख्य विशेषताएं (Main Characteristics of Negotiable Instrument)

1. **लिखित होना (Written) -** विनिमय साध्य विलेख सदैव लिखित दस्तावेज होता है। मौखिक आदेश या प्रतिज्ञा को विनिमय साध्य विलेख नहीं माना जा सकता। अत: विलेख के सम्बन्ध में मौखिक शब्दों का कोई महत्व नहीं होता है।

2. **स्वामित्व परिवर्तन (Transfer of Title) -** यदि विनिमय साध्य विलेख वाहक को देय है तो सुपुर्दगी मात्र से ही स्वामित्व परिवर्तन हो जाता है और यदि विलेख आदेश पर देय है तो पृष्ठांकन / बेचान एवं सुपुर्दगी के द्वारा स्वामित्व परिवर्तन होता है। स्वामित्व का वैधानिक हस्तान्तरण-विनिमय साध्यता का प्रमुख लक्षण माना जाता है।

3. **लेखक/वचनदाता के हस्ताक्षर (Signature) -** विनिमय साध्य विलेख तभी विधि मान्य होगा, जबकि उस पर लेखक या वचनदाता के हस्ताक्षर हों।

4. **वैधानिक स्वामित्व (Lawful Ownership) -** विलेख का धारक या प्राप्तकर्ता उसका वैधानिक स्वामी बन जाता है तथा वह न्यायालय में अपने नाम से तत्सम्बन्धी दावा प्रस्तुत कर सकता है।

5. **श्रेष्ठतर स्वामित्व अधिकार (Better Title) -** सद्विश्वास एवं मूल्य प्रतिफल के बदले प्राप्त विनिमय साध्य विलेखों के सम्बन्ध में हस्तांतरित (Transferee) को उसके हस्तान्तरक (Transferer) से भी श्रेष्ठतर स्वामित्व अधिकार मिलता है, चाहे उसके हस्तान्तरक का स्वामित्व अधिकार दूषित ही क्यों न हो।

6. **शर्त रहित प्रतिज्ञा या आदेश (Unconditional Promise or Order) -** विनिमय साध्य विलेख शर्त रहित प्रतिज्ञा या आदेश होते हैं अर्थात् शर्त सहित विलेख को विनिमय साध्य विलेख नहीं कहा जा सकता।

7. **निश्चित राशि (Certain Amount) -** विनिमय साध्य विलेख के द्वारा एक निश्चित राशि के भुगतान की प्रतिज्ञा की जाती है या आदेश दिया जाता है। वस्तुओं एवं सेवाओं के आदेश को विनिमय साध्य विलेख की श्रेणी में नहीं रखा जाता है। यही कारण है कि जहाजी बिल्टी या रेल्वे रसीद को विनिमय साध्य विलेख नहीं माना जाता, क्योंकि ये वस्तुओं एवं सेवाओं की सुपुर्दगी आदेश देते हैं।

8. **हस्तान्तरणशीलता (Transferability) -** विनिमय साध्य विलेख हस्तान्तरणशील होते हैं। इनका स्वामित्व वैधानिक रूप से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरण किया जा सकता है।

9. **मांग अथवा निर्धारित अवधि पर देय. (Payable on Demand or at Certain Time) -** विनिमय साध्य विलेख या तो आदेशिति के सम्मुख प्रस्तुत करने पर या उसमें उल्लेखित अवधि के पश्चात् देय होते हैं। जिन विलेखों में भुगतान का समय निर्धारित नहीं किया जाता है तो वह मांग पर देय होता है।

10. **प्रसंविदा का सम्बन्ध सिद्धान्त लागू न होना (Principal of Privity of Contract not Applicable)-** विनिमय साध्य विलेख पर प्रसंविदा का सम्बन्ध सिद्धान्त लागू नहीं होता है क्योंकि विनिमय साध्य विलेख का अप्रत्यक्ष स्वामी भी उस पर अपना अधिकार रखता है और उसके द्वारा बाध्य होता है।

11. **यथाविधि धारक के अधिकार (Right of Holder in Due Course) -** विलेख के यथाविधि धारक को ऋणी पर अपने नाम से वाद प्रस्तुत करने का अधिकार मिल जाता है।

9.2.3 विनिमय साध्य विलेखों की मान्यताएँ (Assumptions of Negotiable Instruments)

भारत में विनिमय साध्य विलेखों की मुख्य मान्यताएँ निम्न प्रकार हैं -

1. प्रतिफल के बदले - प्रत्येक विनिमय साध्य विलेख के सम्बन्ध में यह मान्यता है कि वह प्रतिफल के भुगतान में लिखा गया है अथवा स्वीकार या पृष्ठांकित किया गया है।
2. तिथि - जो तिथि उस विलेख पर अंकित है, उस विनिमय साध्य विलेख को उसी तिथि को लिखा हुआ माना जाता है।
3. उचित समय पर स्वीकृति - प्रत्येक विनिमय बिल पर अंकित स्वीकृति के सम्बन्ध में यह माना जाता है कि विनिमय बिल की स्वीकृति बिल लिखने की तारीख के बाद किन्तु निर्धारित भुगतान अवधि के पूर्व दी गई है।
4. परिपक्वता से पूर्व अन्तरण - जो विलेख मांग पर देय नहीं होते हैं, उनका प्रत्येक अन्तरण विलेख में लिखित परिपक्वता भुगतान अवधि से पूर्व किया माना जाता है।
5. पृष्ठांकन का क्रम - विलेख में जिस क्रम में पृष्ठांकन किये गये हैं, उन्हें उसी क्रम में मान लिया जाता है।
6. **यथाविधिधारक** - प्रत्येक विलेख धारक यथाविधिधारक माना जाता है जब तक कि उसके विरूद्ध अन्यथा सिद्ध न हो जाये।
7. **अनादरण के सम्बन्ध में** - किसी विनिमय साध्य विलेख पर नोटेरी पब्लिक द्वारा नोटिंग (Noting)करवा लिया गया है तो न्यायालय द्वारा विलेख का अनादरण किया हुआ मान लिया जायेगा।
8. **स्टाम्प लगे होने की मान्यता** - यह मान्यता है कि खोये हुए विनिमय साध्य विलेखों पर विधिवत् स्टाम्प लगा हुआ था।

9.2.4 विनिमय साध्यता एवं हस्तान्तरणशीलता में अन्तर (Difference between Negotiability and Transferability)

प्रत्येक विनिमय साध्य विलेख के लिए हस्तातरणशीलता एक सामान्य विशेषता होती है। परन्तु किसी लेख पत्र में हस्तान्तरणीय होने का यह कदापि अर्थ नहीं है कि वह विनिमय साध्य भी है। क्योंकि विलेख में विनिमय साध्यता के लिए तीन तत्वों का होना जरूरी है, प्रथम - स्वामित्व हस्तान्तरण, द्वितीय - श्रेष्ठ स्वामित्व अधिकार तथा तृतीय - वैधानिक स्वामित्व। इन तीन तत्वों के अभाव में कोई भी विलेख विनिमय साध्य नहीं कहला सकता। इन तत्वों के कारण ही विनिमय साध्य विलेख के हस्तान्तरी (Transferee) को उसके हस्तान्तरण की तुलना में दोषरहित श्रेष्ठ अधिकार मिलते हैं चाहे हस्तान्तरणकर्ता का अधिकार दूषित ही क्यों न हो। यह अधिकार विनिमय साध्य विलेख के यथाविधिधारक को ही प्राप्त होता है अन्य को नहीं। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति चुराई हुई वस्तु किसी अन्य व्यक्ति को बेच देता है तो क्रेता का अधिकार भी दूषित ही होगा क्योंकि विक्रेता का अधिकार भी ऐसा ही था परन्तु यदि कोई किसी चुराये हुए चैक का बेचान अन्य व्यक्ति को कर देता है जो इसे प्रतिफल के स्वरूप एवं सद्विश्वास से प्राप्त करता है तो प्राप्तकर्ता का अधिकार श्रेष्ठ माना जायेगा, भले ही हस्तान्तरणकर्ता का अधिकार दूषित था। अत: इससे स्पष्ट है कि हस्तान्तरणीयता में विनिमय साध्यता शामिल नहीं है।

यदि किसी लेख पत्र पर अविनिमय साध्य' (Not Negotiable) शब्द लिख दिया जाये तो उससे लेख पत्र हस्तान्तरणीय तो अवश्य बना रहेगा परन्तु उसका प्रभाव यह होगा कि उस लेख पत्र के धारक को उसके हस्तान्तरणकर्ता से श्रेष्ठ अधिकार नहीं मिल सकेगा। परन्तु यदि विनिमय साध्य लेख पत्र पर अहस्तान्तरणीय (Not Transferable) शब्द लिख दिया जाये तो उस विलेख के हस्तान्तरण का अधिकार ही समाप्त हो जाता है तथा इस तरह के विलेख का भुगतान केवल उस पर लिखे नाम वाले व्यक्ति को ही मिलेगा, अन्य को नहीं।

9.2.5 विनिमय साध्य विलेख के पक्षकार (Parties of Negotiable Instrument)

एक विनिमय साध्य विलेख के प्रमुख पक्षकार निम्न प्रकार हो सकते हैं -

1. **आहर्ता (Drawer) -** विलेख लिखने वाले को लेखक या आहर्ता कहते हैं। चैक अथवा विनिमय बिल के लेखक को आहर्ता तथा प्रतिज्ञा पत्र लिखने वाले को लेखक कहते हैं।

2. **आहर्ती (Drawer) -** विनिमय साध्य विलेख में लिखी राशि जिसको भुगतान करने का आदेश या निर्देश दिया जाता है वह आहर्ती कहलाता है। चैक के सम्बन्ध में सदैव बैंक ही आहर्ती होता है।

3. **स्वीकारक (Acceptor) -** प्रतिज्ञा पत्र एवं चैक के लिए स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती। जबकि विनिमय बिल के लिए स्वीकृति आवश्यक होती है। विनिमय बिल में जब आहर्ती बिल को स्वीकार कर 'स्वीकृत' शब्द लिखकर अपने हस्ताक्षर करता है तो वह बिल का स्वीकारक या स्वीकारकर्ता कहा जाता है।

4. **पृष्ठांकनकर्ता (Endorser) -** विलेख को किसी अन्य व्यक्ति के नाम से पृष्ठांकन या बेचान करने वाला व्यक्ति पृष्ठांकनकर्ता कहलाता है।

5. **पृष्ठांकिती (Endorsee) -** जिसके नाम से विलेख को पृष्ठांकित किया गया है वह पृष्ठांकिती कहलाता है।

6. **आदाता (Payee) -** विनिमय साध्य विलेख में जिस व्यक्ति को राशि भुगतान प्राप्त करने अथवा करवाने का अधिकार होता हे, उसे आदाता कहा जाता है।

7. **धारक (Holder) -** भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 8 के अनुसार जिस व्यक्ति को विलेख अपने अधिकार में रखने तथा उसकी देय राशि का भुगतान प्राप्ति का वैधानिक अधिकार होता है, वह धारक कहलाता है।

8. **यथाविधिधारक (Holder of Due Course) -** विनिमय साध्य विलेख में यथाविधिधारक वह व्यक्ति होता है, जो विलेख को सदविश्वास एवं मूल्य के प्रतिफल के बदले में देय तिथि से पूर्व प्राप्त करता है, उल्लेखनीय है कि यथाविधिधारक के सदैव श्रेष्ठ स्वामित्व अधिकार प्राप्त होता है, चाहे उसके हस्तान्तरणकर्ता का अधिकार दूषित ही क्यों न रहा हो।

9.3 विनिमय साध्य विलेखों के प्रकार

भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 की धारा 13 के अनुसार भारत में विनिमय साध्य विलेखों के मुख्य तीन प्रकार हैं -

1. प्रतिज्ञा पत्र (Promissory Note)
2. विनिमय बिल (Bill of Exchange)
3. चैक (Cheque)

9.3.1 प्रतिज्ञा पत्र (Promissory Note)

विनिमय साध्य विलेखों में प्रतिज्ञा पत्र एक महत्वपूर्ण लिखित विलेख होता है जिसमें लेखक (ऋणी) द्वारा किसी अन्य व्यक्ति (ऋणदाता) या उसके आदेशित व्यक्ति अथवा उसके वाहक को अपने हस्ताक्षरों से युक्त शर्त रहित प्रतिज्ञा करता है कि वह एक निश्चित धनराशि मांग पर अथवा एक निश्चित अवधि के बाद भुगतान कर देगा। भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम 1881 की धारा 4 में प्रतिज्ञा पत्र की परिभाषा इस प्रकार दी गई है - "प्रतिज्ञा पत्र एक लिखित विलेख है (बैंक नोट या करेन्सी नोट नहीं) जिस पर उसका लेखक अपने हस्ताक्षर कर एक शर्त रहित प्रतिज्ञा करता है कि वह किसी व्यक्ति विशेष या उसके आदेशित व्यक्ति को अथवा उस विपत्र के वाहक को एक निश्चित रकम का भुगतान करेगा।"

इससे स्पष्ट है कि प्रतिज्ञा पत्र एक लिखित शर्तरहित हस्ताक्षरयुक्त प्रतिज्ञा होती है जिसमें लेखक किसी व्यक्ति अथवा उसके आदेशित व्यक्ति अथवा उसके वाहक को एक निश्चित रकम भुगतान का वचन देता है या वादा करता है।'

प्रतिज्ञा पत्र के पक्षकार -

1. लेखक (Maker) - प्रतिज्ञा करने वाले व्यक्ति जो लेखक कहलाता है।
2. आदाता (Payee) - जिस व्यक्ति के प्रति वचन दिया जाता है, उसे आदाता कहते हैं।

प्रतिज्ञा पत्र की विशेषताएँ (Characteristics of Promissory Note) - प्रतिज्ञा पत्र की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं-

1. **प्रतिज्ञा पत्र लिखित हो (Written) -** प्रतिज्ञा पत्र सदैव लिखित होना चाहिए अर्थात् मौखिक या सांकेतिक प्रतिज्ञा पत्र नहीं हो सकता। यह छपा हुआ या टाइप किया हुआ हो सकता है। पेन या पेन्सिल से भी लिखा जा सकता है। पेन्सिल से लिखा हुआ प्रतिज्ञा पत्र वैधानिक रूप से मान्य है परन्तु इसमें परिवर्तन की आशंका बनी रहती है। अतः इसे पक्की स्याही से लिखना ही बेहतर माना जाता है जिसे आसानी से मिटाया जाना सम्भव न हो। प्रतिज्ञा पत्र किसी भी भाषा में एवं किसी भी सामग्री यथा कागज, वस्त्र, भोज पत्र आदि किसी पर भी लिखा जा सकता है, लेकिन फिर भी सुविधा की दृष्टि से दोनों पक्षों को चाहिए कि वे प्रचलित भाषा में कागज पर लिखे प्रतिज्ञा पत्र का ही प्रयोग करें ताकि भविष्य में किसी प्रकार के विवाद की आशंका न रहे।

2. **बैंक नोट एवं करेंसी नोट के अतिरिक्त (Other than the Bank Note and Currency) -** भारत में करेंसी नोट भारत सरकार या रिजर्व बैंक द्वारा जारी किये जाते हैं जोकि पूर्णतः विधि ग्राह्य होते है जबकि बैंक नोट केवल बैंक विशेष की अपनी साख के अनुसार जारी किये जाते हैं। प्रतिज्ञा पत्र में दोनों प्रकार के नोटों को शामिल नहीं किया गया है। विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 की धारा 4 में प्रतिज्ञा पत्र की दी गई परिभाषा में ही उक्त दोनों प्रकार के नोटों को स्पष्ट रूप से अलग कर दिया गया है।

3. **भुगतान करने की शर्तरहित प्रतिज्ञा (Unconditional Promise for Payment) -** प्रतिज्ञा पत्र में एक निश्चित राशि के भुगतान करने की स्पष्ट एवं शर्तरहित प्रतिज्ञा होती है। हालांकि यह अनिवार्य नहीं कि प्रतिज्ञा शब्द का प्रयोग किया जाये परन्तु लेख पत्र का अर्थ भुगतान करने का वचन जरूर होना चाहिए। किसी ऋण की स्वीकृति मात्र प्रतिज्ञा नहीं कही जा सकती। जैसे -

(i) "मैं श्री श्याम का 5,000 रूपये से ऋणी हूँ।"

(ii) "मुझे श्री श्याम को 5,000 रूपये लौटाने हैं।"

(iii) "मैंने श्री श्याम से 5,000 रूपये लिये हैं।"

आदि उदाहरणों वाले विलेखों को प्रतिज्ञा पत्र नहीं कहा जा सकता। साथ ही प्रतिज्ञा स्पष्ट रूप से शर्तरहित भी होनी चाहिए। यदि प्रतिज्ञा में कोई शर्त लगा दी जाये तो वह प्रतिज्ञा पत्र नहीं होगा। जैसे -

(i) "मेरी लाटरी खुल जायेगी तो मैं आपको 1000 रूपये चुकाने का वचन देता हूँ।"

(ii) "मैं 'व' की मृत्यु के 7 दिन बाद 1000 रूपये चुकाने का वचन देता हूँ बशर्ते कि 'ब' भुगतान के लिए पर्याप्त धनराशि छोड़ जाये।"

(iii) "मैं 'ब' को 500 रू. 100-100 रूपये की किश्तों में चुकाने का वचन देता हूँ।

आदि उदाहरण शर्तसहित प्रतिज्ञा मानी जायेगी तथा यह प्रतिज्ञा पत्र की श्रेणी में नहीं माना जायेगा। परन्तु धारा-5 में उल्लेखित है कि यदि प्रतिज्ञा पत्र में राशि के भुगतान करने का समय लिख दिया जावे या किसी निश्चित एवं अवश्यम्भावी घटना के घटित होने पर भुगतान करने का वचन दिया जाये तो यह शर्तरहित प्रतिज्ञा ही मानी जायेगी। उदाहरण के लिए 'अ' प्रतिज्ञा पत्र में 'व' को लिखता है कि "मैं 'स' की मृत्यु के 5 दिन बाद आपको 5,000 रूपये

भुगतान करने का वचन देता हूँ।' तो यह शर्तरहित प्रतिज्ञा मानी जायेगी क्योंकि यहाँ मृत्यु निश्चित एवं अवश्यम्भावी घटना है।

4. **निश्चित धनराशि (Certain Amount) -** प्रतिज्ञा पत्र में देय धनराशि निश्चित होनी चाहिए, सामान्यत: भुगतान देश की मुद्रा में ही होना चाहिए। परन्तु भारत में देय प्रतिज्ञा पत्र विदेशी मुद्रा में हो सकते हैं, लेकिन इनकी राशि देय तिथि पर प्रचलित विनिमय दर पर भारत की मुद्रा में निश्चित कर ली जायेगी। राशि अंकों एवं शब्दों में समान होनी चाहिए परन्तु दोनों में अन्तर होने पर धारा 18 के अनुसार शब्दों में लिखी राशि ही मान्य होगी।

5. **लेखक निश्चित हो (Certain Maker) -** प्रतिज्ञा पत्र में यह स्पष्ट होना चाहिए कि भुगतान का दायित्व किसका है? इस हेतु हस्ताक्षरकर्ता को यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि विलेख के लिए वह स्वयं दायी है या वह किसी अन्य व्यक्ति की ओर से हस्ताक्षर कर रहा है। यदि प्रतिज्ञा करने वाले व्यक्ति एक से ज्यादा हों तो यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि प्राथमिक दायित्व किसका है या सभी संयुक्त रूप से दायी हैं। लेखक की निश्चितता के अभाव में प्रतिज्ञा पत्र व्यर्थ होगा।

6. **लेखक के हस्ताक्षर (Signed by the Maker) -** प्रतिज्ञा पत्र पर लेखक के हस्ताक्षर होने चाहिए, क्योंकि हस्ताक्षर के बिना किसी भी व्यक्ति पर दायित्व नहीं डाला जा सकता। अत: ऐसी स्थिति में प्रतिज्ञा पत्र व्यर्थ माना जायेगा। हस्ताक्षर स्वयं लेखक के ही होने चाहिए परन्तु यदि उसके अभिकर्ता को भी प्रतिज्ञा पत्रों पर मालिक या नियोक्ता की ओर से हस्ताक्षर करने का अधिकार दिया गया है तो अभिकर्ता भी हस्ताक्षर कर सकता है (धारा 27)। तार द्वारा भुगतान का वादा करने पर भी हस्ताक्षरयुक्त न होने के कारण यह प्रतिज्ञा पत्र नहीं कहा जा सकता है।

7. **निश्चित प्राप्तकर्ता (Certain Payee) -** प्रतिज्ञा पत्र में लेखक की भांति उसके अदाता या प्रापक का भी स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। यह व्यक्ति नाम व पद के अनुसार निश्चित हो सकता है। यदि प्रापक या अदाता के स्थान पर लेखक स्वयं का नाम लिख देता है तो यह लेख पत्र व्यर्थ माना जाता है क्योंकि कोई व्यक्ति स्वयं अपने आपको भुगतान नहीं कर सकता लेकिन यदि उस लेख पत्र को किसी अन्य व्यक्ति को बेचान कर दिया जाये तो वह 'वाहक को देय' वैध विलेख बन जायेगा।

8. **भुगतान का समय (Time of Payment) -** प्रतिज्ञा पत्र में लिखी धनराशि का भुगतान मांग पर या एक निश्चित अवधि के पश्चात देय होता है।

9. **मूल्य प्राप्त लेख पत्र (Value Received)** - सामान्यत: प्रतिज्ञा पत्र के लिखने में 'मूल्य प्राप्त हुआ शब्द लिख दिया जाता है। यद्यपि इन शब्दों का कोई वैधानिक महत्व नहीं है। केवल प्रचलन के अनुसार इन शब्दों को लिख दिया जाता है। यदि ये शब्द न भी जोड़े जायें तो प्रतिज्ञा पत्र व्यर्थ नहीं माना जायेगा।

10. **स्टाम्प (Stamp) -** भारतीय स्टैम्प अधिनियम के अनुसार सावधि प्रतिज्ञा पत्रों पर नियमानुसार आवश्यक राशि का स्टैम्प लगाना आवश्यक है अन्यथा इसकी वैधता को चुनौती दी जा सकती है।

प्रतिज्ञा पत्र के प्रारूप (Specimen of Promissory Note) - यद्यपि विनिमय साध्य विलेख अधिनियम में प्रतिज्ञा पत्र का कोई निर्धारित प्रारूप नहीं है। यह किसी भी रूप में लिखा जा

सकता है। परन्तु यह अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिए कि उपर्युक्त सभी बातों को समाविष्ट किया जा सके। यह व्यक्तिगत अथवा संयुक्त रूप में लिखा जा सकता है।

व्यक्तिगत प्रतिज्ञा पत्र का प्रारूप/नमूना -

5,000/-	जयपुर
	सितम्बर 15, 2009
आज से 3 माह बाद 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज से मैं मांगने पर श्री बाबूलाल को या उनके आदेशानुसार पाँच हजार रुपये देने की प्रतिज्ञा करता हूँ।	
श्री बाबूलाल	ह. नन्द किशोर
सिविल लाईन्स, जयपुर	स्टाम्प

संयुक्त प्रतिज्ञा पत्र का नमूना -

5,000/-	जयपुर
	सितम्बर 15, 2009
आज से 6 माह बाद 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज से मैं मांगने पर श्री बाबूलाल को या उनके आदेशानुसार पाँच हजार रुपये देने की प्रतिज्ञा करता हूँ।	
	ह. नन्द किशोर
श्री बाबूलाल	ह. जगदीश प्रसाद
सिविल लाईन्स, जयपुर	स्टाम्प

9.3.2 विनिमय बिल (Bill of Exchange)

भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 की धारा 5 के अनुसार "विनिमय बिल एक लिखित एवं शर्तरहित आदेश है जिसमें बिल का लेखक अपने हस्ताक्षर करके किसी व्यक्ति को एक निश्चित धनराशि किसी निश्चित व्यक्ति अथवा उसके आदेशित व्यक्ति अथवा वाहक को भुगतान का आदेश देता है।"

इस परिभाषा से स्पष्ट है कि विनिमय बिल एक ऐसा विलेख है जिसमें ऋणदाता अपने ऋणी को एक लिखित शर्तरहित आदेश देता है कि वह एक धनराशि किसी निश्चित व्यक्ति या उसके आदेशित व्यक्ति या वाहक को भुगतान कर दे।

विनियम बिल के पक्षकार (Parties of Bill of Exchange) - विनिमय बिल के तीन पक्षकार होते हैं-

1. **लेखक (Drawer)** - बिल को लिखने वाला अर्थात् लेखक को आहर्ता कहते हैं।
2. **आहर्ती (Drawee)** - जिस व्यक्ति को बिल में लिखित राशि के भुगतान का आदेश दिया जाता है उसे आहर्ती कहते हैं।
3. **आदाता (Payee)** - बिल में लिखित राशि के भुगतान प्राप्तकर्ता को आदाता कहते हैं, यदि लेखक स्वयं ही आदाता हो तो केवल दो ही पक्षकार होते हैं।

विनिमय बिल की विशेषताएँ (Characteristics of Bill of Exchange) - विनिमय बिल की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. **लिखित होना (Written)** - विनिमय बिल भी प्रतिज्ञा पत्र की भांति लिखित होना चाहिए। यह छपा हुआ या टाइप किया हुआ हो सकता है जिसमें रिक्त स्थानों की पूर्ति पेन या पेन्सिल से कर दी जाती है। लेकिन पेन्सिल से लिखने में परिवर्तन द्वारा कपट की सम्भावना रहती है अत: सामान्यत: पेन्सिल के बजाय पेन का ही प्रयोग किया जाता है।

2. **शर्तरहित आदेश (Unconditional Order)** - यह विलेख एक शर्तरहित आदेश होता है जिसमें बिल का लेखक देनदार को यह आदेश देता है कि वह अमुक व्यक्ति को अमुक राशि का भुगतान कर दे। यह आदेश या आज्ञा आदरसूचक शब्दों में दिया जा सकता है। जैसे "कृपया मांग करने पर श्याम को सात सौ रूपये दे दीजिये।" तो यह प्रार्थना नहीं मानी जायेगी बल्कि कृपया शब्द लिखने पर भी आदेश ही माना जायेगा। यह आदेश शर्तरहित भी होना चाहिए। यदि भुगतान किया जाना किसी निश्चित घटना के घटित होने से संबंधित हो तो उसे शर्तरहित ही माना जायेगा। परन्तु यदि भुगतान का आदेश किसी अनिश्चित घटना या किसी शर्त की पूर्ति से जुड़ा हुआ है तो विनिमय बिल व्यर्थ हो जायेगा। जैसे -

"माल के बिकने पर 2000 रूपये दे देना।"

"अगर लाटरी खुल जाये तो 1000 रूपये दे देना।

आदि, ऐसी दशा में बिल शर्तपूर्ण कहलायेगा व व्यर्थ माना जायेगा।

3. **लेखक के हस्ताक्षर (Signature of Drawer)** - बिल पर लेखक के हस्ताक्षर होने चाहिए अन्यथा बिल अवैध माना जायेगा। यदि किसी बिल पर लेखक के हस्ताक्षर न होने पर भी देनदार द्वारा उस पर स्वीकृति दे दी जाती है तो ऐसा बिल अमान्य एवं अनियमित होगा। परन्तु यही पर यह प्रावधान है कि यदि देनदार की स्वीकृति के बाद भी यदि लेखक उस पर हस्ताक्षर कर देता है तो वह बिल वैध माना जायेगा तथा ऐसी दशा में स्वीकर्ता लेखक एवं अन्य किसी धारक के प्रति दायी हो जाता है।

4. **लेखक निश्चित व्यक्ति गे (Drawer must be certain)** - विनिमय बिल का लेखक निश्चित व्यक्ति होना चाहिए ताकि बिल के अनादरण की दशा में उसे पुन: लेखक को लौटाया जाना सम्भव हो सके।

5. **देनदार निश्चित हो (Drawee must be certain)** - विनिमय बिल में लिखी राशि के भुगतान के लिए किसी व्यक्ति को उत्तरदायी ठहराने के लिए देनदार का निश्चित होना आवश्यक है। इस हेतु बिल में देनदार का नाम व पता निश्चित होना चाहिए। यदि किसी बिल पर देनदार का नाम व पता नहीं लिखा हुआ है और किसी अन्य व्यक्ति ने उसे स्वीकार कर लिया है तो इसे विनिमय बिल न मानकर प्रतिज्ञा पत्र माना जायेगा। यदि बिल ऐसा है जिसमें वैकल्पिक तरीके से उत्तरदायित्व डाला जा सके जैसे बिल की राशि राम से, राम से नही तो श्याम से, श्याम से नहीं तो मोहन से वसूल की जाये तो यह व्यर्थ होगा।

6. **आदाता निश्चित होना चाहिए (Payee must be certain)** - आदाता का नाम व पता स्पष्ट होना चाहिए ताकि राशि का प्राप्तकर्ता निश्चित किया जा सके। यदि किसी आदाता का नाम सही नहीं लिखा हो पर आदाता निश्चित किया जा सकता हो तो यह लेख पत्र वैध माना जायेगा। आदाता पद या विभाग से भी निश्चित किया जा सकता है। जैसे बिल में आदाता के

नाम की जगह 'आयकर लिखा हो तो यहाँ 'आयकर विभाग', आदाता माना जायेगा व यह बिल वैध होगा।

7. **निश्चित राशि (Certain Amount)** - प्रतिज्ञा पत्र की भांति विनिमय बिल में भी देय धनराशि निश्चित तथा देश की प्रचलित मुद्रा में देय होनी चाहिए। यदि बिल विदेशी मुद्रा में हो तो देय तिथि पर प्रचलित विनिमय दर के आधार पर परिवर्तन करके देय धनराशि निश्चित कर ली जाती है।

8. **मांग या अवधि पश्चात देय (Payable on Demand or after certain period)**- विनिमय बिल या तो मांग पर देय बिल होता है या सावधि बिल होता है। सावधि बिल में लिखने की तिथि का होना आवश्यक है क्योंकि इसी तिथि से देय तिथि की गणना की जाती है।

9. **स्टाम्प लगाना (Stamp)** - भारतीय स्टेम्प अधिनियम के अनुसार सावधि विनिमय बिलों पर आवश्यक राशि का स्टाम्प लगाना आवश्यक है अन्यथा यह लेख पत्र व्यर्थ माना जायेगा। दर्शनी विनिमय बिल पर स्टाम्प लगाना आवश्यक नहीं है।

विनिमय बिलों के प्रकार (Tyeps of Bill of Exchange) - विनिमय बिल निम्न प्रकार के होते हैं-

1. **देशी बिल (Inland Bill)** - भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 11 के अनुसार "देशी बिल उसे कहते हैं जो भारत में लिखा गया हो तथा भारत में भुगतान योग्य हो अथवा किसी भारतवासी पर लिखा गया हो" इससे यह स्पष्ट है कि देशी बिल होने के लिए उसका भारत में लिखा जाना आवश्यक है।

उदाहरण - यदि जयपुर के निवासी रामलाल ने पाली के निवासी श्याम मोहन पर एक बिल लिखा तो यह देशों बिल कहा जायेगा चाहे इसका भुगतान भारत के किसी भी स्थान पर हो। इसी प्रकार यदि जयपुर निवासी रामलाल ने एक बिल लन्दन निवासी साइमन पर लिखा जिसका भुगतान भारत में किया जाना है तो भी यह देशी बिल ही कहलायेगा।

देशी बिल का नमूना -

Rs. 6,000	Jaipur
Stamp	15^{th} Sep., 2009
One month after Sight pay to me or my order the sum of Rupees Six Thousand only, for value received.	
To,	Sd/-
Sh. Shyam Mohan	Ram Lal
Pali	

2. **विदेशी बिल (Foreign Bill of Exchange)** - भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 12 में बताया गया है कि जो बिल उपर्युक्त धारा 11 की शर्तों को पूरा नहीं करते हों, वे विदेशी बिल कहलाते हैं। उदाहरण के लिए जयपुर के रामलाल ने लन्दन के साईमन पर बिल लिखा और जिसका भुगतान लन्दन में किया जाना है तो वह विदेशी बिल कहलायेगा।

विदेशी बिल प्राय: तीन प्रतियों में तैयार किये जाते हैं। प्रत्येक प्रति को via कहते हैं तथा सामूहिक रूप से इन्हें set कहते हैं। प्रत्येक प्रति पर संख्या डाल दी जाती है और प्रत्येक पर यह लिखा होता है कि इसका भुगतान तभी किया जायेगा जबकि अन्य दो प्रतियों में से किसी का भुगतान नहीं किया गया हो। किसी एक प्रति का भुगतान हो जाने पर अन्य दोनों प्रतियां निर्मूल्य हो जाती हैं। यदि कोई व्यक्ति इन तीनों प्रतियों को अलग-अलग व्यक्तियों को बेचान कर दे तो स्वीकर्ता तो एक ही प्रति के भुगतान के लिए दायी होगा परन्तु बेचानकर्ता इन दो अतिरिक्त प्रतियों के लिए भी दायी होगा।

कभी-कभी विदेशी बिल की एक प्रति ही तैयार की जाती है तो उसे एकल बिल (Sole Bill) कहा जाता है। विदेशी बिल में दो बार स्टाम्प लगाया जाता है। प्रथम बार लेखक के देश में तथा दूसरी बार विदेश में।

विदेशी विनिमय बिल का नमूना -

Rs, 30,000	London (U.K.)
Stamp	15th Sep., 2009

Sixty days after the Sight of this first bill of exchange (Second and third of the same tenor and data unpaid) pay to the order of M/s Roshan Lal & Sons, jaipur the sum of Rs. Thirty Thousand only, value received.

To,	Sd/-
M/s Roshan Lal & Sons	For Johnson
Jaipur	

3. **सहायतार्थ बिल या अनुग्रह बिल (Accommodation Bill)** - विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 की धारा 59 में सहायतार्थ या अनुग्रह बिल के लिए प्रावधान है। ये बिल प्रतिफल के बदले न लिखे जाकर परस्पर सहायता के लिए लिखे जाते हैं। उदाहरण के लिए किशोर को 20 हजार रूपये की आवश्यकता है। वह अपने मित्र राधेश्याम पर एक बिल लिखता है जिसे राधेश्याम स्वीकार कर लेता है तथा किशोर इस बिल को बैंक से भुनाकर अपनी आवश्यकता पूरी कर लेता है। अब देय तिथि से पूर्व किशोर इस राशि को राधेश्याम को लौटा देता है जिससे कि राधेश्याम बैंक को बिल का भुगतान कर सके। इस प्रकार के बिल एक-दूसरे पर सहायतार्थ अलग-अलग भी लिखे जा सकते हैं या फिर एक बिल की राशि को भी परस्पर आवश्यकतानुसार दोनों बांट सकते हैं।

4. **सावधि एवं मांग पर देय बिल (Time and Demand Bill)** - जिस बिल का भुगतान मांग पर देय न होकर एक निश्चित अवधि के पश्चात् देय हो तो उस बिल को सावधि बिल कहते हैं। ऐसे बिल का भुगतान कुछ समय बाद होने के कारण आदाता उन बिलों की बैंक से कटौती करवाकर समय से पूर्व ही भुगतान प्राप्त कर लेता है और बैंक इस बिल का भुगतान आहर्ती से निश्चित देय तिथि पर प्राप्त कर लेता है।

सावधि बिल का नमूना

Rs, 10,000	Jaipur
Stamp	18^{th} Sep., 2009
Three months after date, pay to Sumit Kumar or his order a sum of Rs. Ten Thousand, value received.	
To,	Sd/-
M/s Ramesh Brothers,	For Rama Enterprises
Alwar	Ajay Kumar
	Partner

मांग बिल वह बिल होता है जिसका भुगतान मांग करने पर देय हो जाये। ऐसे बिल को दर्शनी बिल भी कहते हैं क्योंकि इस प्रकार के बिल को दिखाने पर ही या प्रस्तुत करने पर ही भुगतान देय हो जाता है।

5. **प्रलेख सहित एवं प्रलेख रहित बिल (Documentary Bill and Clean Bill)** - जब विनिमय बिल के साथ माल के स्वामित्व सम्बन्धी दस्तावेज जैसे रेलवे रसीद, जहाजी बिल्टी, बीजक आदि संलग्न रहते हैं तो उसे प्रलेखीय बिल कहते हैं तथा जिन बिलों के साथ इस प्रकार के दस्तावेज संलग्न नहीं होते तो वे प्रलेख रहित या गैर प्रलेखीय बिल कहलाते हैं।

विनिमय बिलों की देय तिथि की गणना (Maturity Date of Bills) - जिस तिथि पर बिल की राशि देय हो जाती है वह बिल की परिपक्वता/देय तिथि कहलाती है। इस तिथि की गणना बिलों की प्रकृति के आधार पर निम्न प्रकार से की जाती है

1. **मांग पर देय बिलों के सम्बन्ध में** परिपक्वता तिथि की गणना करने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि ऐसे बिलों का भुगतान मांग करते ही या प्रस्तुत करने पर ही देय हो जाता है।
2. **तिथ्योपरान्त बिल (After Date Bill)** - ये बिल सावधि बिल होते हैं जो लिखने की तिथि से कुछ समयावधि बाद देय होते हैं ऐसे बिलों की देय तिथि निकालते समय इसमें 3 तीन अनुग्रह दिवस (Days of Grace) और जोड़ दिये जाते हैं। उदाहरण के लिए राम ने श्याम पर 1 दिसम्बर, 2008 को दो माह बाद देय बिल लिखा तो इसकी देय तिथि 4 फरवरी, 2009 होगी।
3. **दर्शन के पश्चात् देय बिल (Payable After Sight Bill)** - ये बिल भी सावधि बिल ही होते हैं परन्तु इनमें एक यह अन्तर पाया: जाता है कि इनकी देय तिथि लेखन तिथि से न गिनकर स्वीकृति की तिथि से गिनी जाती है। उदाहरण के लिए राम ने श्याम पर एक बिल 4 दिसम्बर, 2008 को लिखा जो स्वीकृति की तिथि से 2 माह बाद देय हो और यह बिल 15 दिसम्बर, 2008 को स्वीकृत हुआ तो इसकी देय तिथि 3 दिन अनुग्रह दिवस जोड़ते हुए 18 फरवरी, 2009 होगी।

यदि देय तिथि को सार्वजनिक छुट्टी हो तो विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 25 के अनुसार छुट्टी के पहले दिन ही बिल देय हो जायेगा। साथ ही उल्लेखनीय है कि देय तिथि

निकालने में अनुग्रह दिवस के रूप में 3 दिन जोड़ना अनिवार्य है। इन तीन दिनों की रियायत का अधिकार आपसी समझौते द्वारा भी देनदार से नहीं छीना जा सकता है। अनुग्रह दिवस जोड़ बिना विनिमय बिल का प्रस्तुतीकरण व्यर्थ माना जायेगा। यदि बिल की रकम एक साथ देय न होकर किस्तों में देय हो तो अनुग्रह के ये तीन दिन प्रत्येक किस्त की देय तिथि निकालने में जोड़ जायेंगे।

विनिमय बिलों की स्वीकृति (Acceptance of Bill of Exchange) -जब विनिमय बिल स्वीकृति हेतु देनदार के सामने प्रस्तुत किया जाता है और वह देनदार उस पर प्राय सामने की ओर स्वीकृति शब्द लिखकर उसके नीचे अपने हस्ताक्षर कर देता है तो उसे विनिमय बिल की स्वीकृति कहते हैं। स्वीकृति देने वाला स्वीकारक या स्वीकार कर्ता कहलाता है। विनिमय बिल पर स्वीकृति सदैव लिखित ही होती है, मौखिक नहीं हो सकती।

वैध स्वीकृति के लिए आवश्यक तत्व -

1. **स्वीकृति लिखित हो** - सामान्यत: स्वीकृति लिखित ही होनी चाहिए। भारत में व्यापारिक प्रचलन के अनुसार पन्नालाल बनाम हरगोविन्द विवाद में न्यायालय ने हुण्डियों पर मौखिक स्वीकृति को भी वैध माना है।
2. स्वीकृति शब्द लिखकर नीचे देनदार के या उसके अधिकृत प्रतिनिधि के हस्ताक्षर हों।
3. स्वीकृति मूल विनिमय बिल पर ही होना जरूरी है अन्यथा स्वीकृति अमान्य होगी। विदेशी विनिमय बिल की दशा में अलग पत्र द्वारा दी गई स्वीकृति भी वैध मानी जाती है।
4. विनिमय बिल धारक या उसके प्रतिनिधि को सौंप दिया गया हो अथवा स्वीकृति की सूचना दे दी गई हो।
5. **केवल मुद्रा में भुगतान की स्वीकृति वैध** - विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 5 में यह स्पष्ट प्रावधान है कि विनिमय साध्य विलेख केवल मुद्रा की एक निश्चित राशि के भुगतान का आदेश होते हैं। (रसेल बनाम फिलिप्स विवाद 1880 के निर्णय में पुष्टि)

स्वीकृति के प्रकार (Kinds of Acceptance) - स्वीकृति दो प्रकार की हो सकती है -

1. साधारण स्वीकृति　　　　2. मर्यादित स्वीकृति

1. **साधारण स्वीकृति (General or Absolute Acceptance)** - जब विनिमय बिल का देनदार बिना किसी शर्त के स्वीकृत शब्द लिखकर अपने हस्ताक्षर कर देता है तो इसे साधारण स्वीकृति कहते हैं।

2. **मर्यादित स्वीकृति (Qualified Acceptance)** - जब देनदार विनिमय बिल पर स्वीकृति देते समय अपनी ओर से कुछ शर्तें लगा देता है तो ऐसी स्वीकृति मर्यादित स्वीकृति कहलाती है। धारा 88 के अनुसार मर्यादित स्वीकृति निम्न प्रकार की हो सकती है -

(i) **शर्तपूर्ण स्वीकृति** - जब स्वीकृति किसी घटना के घटित होने पर आधारित होती है तो उसे शर्तपूर्ण स्वीकृति कहते हैं जैसे - माल के बिकने पर भुगतान किया जायेगा।

(ii) **आंशिक स्वीकृति** - जब विनिमय बिल की सम्पूर्ण राशि के लिए स्वीकृति न होकर उसके किसी अंश के लिए स्वीकृति दी जाये तो इसे आशिक स्वीकृति कहते हैं। जैसे 8,000 रूपये के लिए लिखा गया विपत्र केवल 5,000 रूपये के लिए ही स्वीकृत किया जाये।

(iii) **स्थानीय स्वीकृति** - जब स्वीकृति में भुगतान का कोई विशेष स्थान नियत कर दिया जाये या विपत्र में लिखे गये स्थान को बदल दिया जाये तो यह स्थानीय स्वीकृति कहलाती है। जैसे - केवल स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर की रामनगर, जयपुर, शाखा पर भुगतान के लिए स्वीकृत।"

(iv) **सामयिकी स्वीकृति** - विनिमय बिल में दिये गये समय के अलावा किसी अन्य समय के लिए दी गई स्वीकृति सामयिकी स्वीकृति कहलाती है। जैसे 3 माह पश्चात देय विपत्र पर "5 माह पश्चात् भुगतान हेतु स्वीकृत" लिखा जाये तो यह सामयिकी स्वीकृति होगी।

(v) **कुछ देनदारों द्वारा स्वीकृति** - जब किसी विपत्र में एक से अधिक देनदार हों तो उन सभी द्वारा स्वीकृति होनी चाहिए। यदि उनमें से कुछ देनदारों द्वारा स्वीकृति दी गई हो तो इसे कुछ देनदारों द्वारा स्वीकृत कहते हैं।

मर्यादित स्वीकृति का प्रभाव - मर्यादित स्वीकृति के अन्तर्गत देनदार/स्वीकर्ता विनिमय बिल की शर्तों को मूल रूप में न स्वीकार करके अपनी ओर से कुछ नई शर्ते जोड़कर स्वीकृति देता है। यदि विनिमय बिल का लेखक या धारक इन परिवर्तित शर्तों से सहमत हो जाता है और उनकी पुष्टि कर देता है तब तो यह विपत्र नियमित मान लिया जायेगा अन्यथा बिल व्यर्थ हो जायेगा अर्थात् बिल का अनादरण माना जायेगा। यदि मर्यादित स्वीकृति से धारक सहमत हो जाता है तो धारा 86 के अनुसार उसके प्रति समस्त पूर्व पक्षकार अपने दायित्वों से मुक्त हो जाते है क्योंकि उनकी इस शर्तपूर्ण स्वीकृति में सहमति नहीं थी।

विनिमय साध्य विलेख का धारक (Holder of a Negotiable Instrument) - भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 8 के अनुसार किसी विनिमय साध्य विलेख (प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक) के धारक से अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से है जो उसे अपने नाम में रखने तथा सम्बन्धित पक्षकारों से देय धन प्राप्त करने का अधिकारी है। जब ऐसा लेख पत्र खो जाता है अथवा नष्ट हो जाता है तो उसका धारक वही व्यक्ति होता है जो इस प्रकार खोने या नष्ट होने के समय इसका अधिकारी था।

धारक के आवश्यक लक्षण

1. धारक से आशय किसी विनिमय साध्य विलेख के धारक से है।
2. विलेख को अपने नाम में रखने का अधिकार होना चाहिए। विलेख पर अपने अधिकार (Possession) में ही रखना पर्याप्त नहीं वरन स्वत्व के अन्तर्गत अधिकार (Possession under a Title) होना चाहिए।
3. धारक को अपने नाम में लेख पत्र को राशि इसके सम्बन्धित पक्षकारों से प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए।
4. विलेख के खो जाने या चोरी चले जाने पर विलेख को पाने वाला धारक नहीं बन सकता। खोने, नष्ट हो जाने या चोरी चले जाने के बावजूद भी उस व्यक्ति को ही धारक माना जायेगा जो खोने या नष्ट होने के समय उसका अधिकारी था।

यथाविधिधारक (Holder in Due Course) - यथाविधिधारक से तात्पर्य उस व्यक्ति से होता है जो प्रतिफल के बदले किसी विनिमय साध्य लेख पत्र का परिपक्वता से पूर्व और इस विश्वास

का पर्याप्त कारण न रखते हुए कि देने वाले के अधिकार में कोई दोष था, उसका अधिकार प्राप्त करता है (यदि वह वाहक को देय हो) अथवा यदि वह आदेशानुसार देय हो तो उसके नाम से बेचान हो जाता है।

विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 9 के अनुसार यथाविधिधारक को निम्न शर्तें पूरी करनी होती है -

1. **आदाता होना (Payee)** - विलेख का यथाविधिधारक होने की पहली शर्त यह है कि वाहक लेख पत्र की दशा में वह उसका अधिकारी हो तथा आदेशानुसार देय लेख पत्र की दशा में पृष्ठांकिती अथवा आदाता होना चाहिए।

2. **परिपक्वता से पूर्व विलेख की प्राप्ति (Receipt before Maturity)** - परिपक्वता की तिथि से पूर्व यथाविधिधारक को विपत्र प्राप्त होना आवश्यक है। धारा 59 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति लेख पत्र को परिपक्वता के पश्चात प्राप्त करता है तो उसे यथाविधिधारक जैसे नहीं बल्कि हस्तान्तरक जैसा ही अधिकार प्राप्त होता है।

3. **प्रतिफल के बदले की प्राप्ति (For Consideration)** - प्रतिफल के अभाव में प्राप्त विलेख के सम्बन्ध में प्राप्तकर्ता केवल धारक कहलायेगा न कि यथाविधिधारक। अत: जिस व्यक्ति ने प्रतिफल स्वरूप विलेख प्राप्त किया है वही यथाविधिधारक हो सकता है।

4. **सद्विश्वास में प्राप्ति (Receipt in Good Faith)** - विलेख का धारक बनते समय उसे ऐसे विश्वास करने का कोई आधार नहीं था कि हस्तान्तरणकर्ता के स्वत्व में कोई दोष था। अर्थात् उसने सद्विश्वास में बिना किसी दोष की जानकारी के प्राप्त किया है।

9.3.3 चैक (Cheque)

भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881 की धारा 6 के अनुसार "चैक एक ऐसा विनिमय विपत्र है जो किसी बैंक विशेष पर लिखा जाता है और जिसका शगतान स्पष्ट रूप से मांग किये जाने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से देय नहीं है।"

चैक के आवश्यक तत्व एव विशेषताएँ (Essential Elements and Characterstics of a cheque) - चैक के आवश्यक तत्व एवं विशेषताएँ निम्नानुसार हैं -

1. **लिखित विलेख (Written Instrument)** - चैक सदैव लिखित विलेख होता है। इस सम्बन्ध में विद्वान एच.पी. शेल्डन ने लिखा है कि "चैक पेन्सिल से या स्याही से लिखा हुआ, टाइप किया हुआ या छपा हुआ हो सकता है।" यद्यपि बैंक स्याही से लिखे चैकों को ही अधिक मान्यता देता है क्योंकि पेन्सिल से लिखे चैकों में जालसाजी की सम्भावना बनी रहती है।

2. **शर्तरहित आदेश (Unconditional Order)** - चैक ग्राहक द्वारा किसी बैंक को किसी निश्चित राशि के भुगतान हेतु दिया गया शर्तरहित आदेश होता हे। यदि ग्राहक अपने आदेश के साथ कोई शर्त जोड़ देता है तो बैंक ऐसे चैक का भुगतान करने के लिए बाध्य नहीं होता है।

3. **बैंक को ही आदेश (On a Specified Bank Only)** - चैक सदैव एक बैंक विशेष पर ही लिखा जाता है। जिस बैंक को चैक के भुगतान का आदेश दिया जाता है उसका पूरा पता भी चैक पर लिखा जाना आवश्यक है।

4. **निश्चित राशि (Certain Amount)** - चैक किसी निश्चित राशि के भुगतान हेतु आदेश पत्र होता है। चैक केवल रकम के भुगतान का ही आदेश होता है। अन्य किसी वस्तु के भुगतान के लिए दिया गया आदेश चैक नहीं कहलायेगा।

5. **निश्चित प्रापक या आदाता (Certain Payee) -** चैक में उल्लेखित राशि का किसे भुगतान किया जाये, इसका चैक में स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। इसका भुगतान उस व्यक्ति को करने का आदेश होना चाहिए जिसका नाम प्रापक के स्थान पर लिखा हो अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को या फिर उसके वाहक को। यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि चैक की प्रकृति आदेशित है या वाहक। यह आवश्यक नहीं है कि चैक का प्रापक कोई व्यक्ति ही हो, बल्कि एक कम्पनी, सोसायटी, क्लब या संस्था भी हो सकती है जिसे वैधानिक मान्यता प्राप्त है। चैक में प्रापक के स्थान पर नाम के बजाय पद का संकेत दिया जाता है तो भी चैक मान्य होगा। जैसे प्रापक के स्थान पर "Pay to the Principal, Govt. College, Ajmer" तो चैक सही लिखा हुआ माना जायेगा। कभी-कभी चैक का लेखक स्वयं भुगतान लेना चाहता है तो चैक पर प्रापक के स्थान पर "Pay to Self" लिखता है। ऐसी स्थिति में चैक का लेखक प्रापक या आदाता भी बन जाता है। इसी प्रकार यदि चैक पर "Pay to Bearer" लिखा है तो यह भी मान्य होगा।

6. **प्रतिबन्धित प्रापक या आदाता (Restrictive Payee)** - यदि चैक का लेखक यह चाहता है कि चैक का भुगतान केवल आदाता को ही प्राप्त हो, अन्य किसी को नही तो उसे आदाता के नाम के आगे "Only" शब्द जोड़ देना चाहिए तथा "Bearer or Order" शब्दों को काट देना चाहिए।

7. **मांगने पर भुगतान (Payable on Demand)** - जब भी धारक चैक को बैंक के समक्ष प्रस्तुत कर दे तो बैंक को इसका भुगतान करना होगा अर्थात् चैक का भुगतान मांग पर देय होता है। इसमें "On Demand" शब्द लिखने की आवश्यकता नहीं होती है।

8. **चैक पर लेखक के हस्ताक्षर (Signature of Drawer)** - चैक पर स्वयं खातेदार के या उसके अधिकृत व्यक्ति के हस्ताक्षर लेखक के रूप में होने आवश्यक हैं। चैक पर हस्ताक्षर करने का अधिकार तभी होता है जब ग्राहक के खाते में पर्याप्त जमा राशि हो या फिर बैंक ने उसे अधिविकर्ष की सुविधा दे रखी हो।

9. **सुपुर्दगी आवश्यक (Delivery Essential)** - चैक का लिखना, पृष्ठांकन करना तभी पूरा होता है जब चैक की सुपुर्दगी कर दी जाती है।

10. **छपे हुए चैक फार्मो का प्रयोग (Use of Printed Cheque Forms)** - प्रायः बैंक में खाता खोलने पर ग्राहक की मांग पर बैंक छपी हुई चैक बुक जारी करते हैं जिसमें 10, 20 या अधिक फार्म होते हैं। व्यावसायिक फर्मो को 50 या 100 फार्मो वाली चैक बुक जारी करते हैं। इन चैक फार्मो के अलावा अन्य कागज पर भुगतान की मांग की जाती है तो बैंक भुगतान से मना कर सकता है।

चैक के पक्षकार (Parties of Cheque) - चैक के निम्न पक्षकार होते हैं -

1. **लेखक या निर्माता (Drawer)** - चैक को लिखने वाला एवं उस पर हस्ताक्षर करने वाला व्यक्ति लेखक या निर्माता कहलाता है। यह बैंक का, ग्राहक या उसका अधिकृत एजेन्ट हो सकता है।
2. **आहर्ती (Drawee)** - यह वह बैंक शाखा है जिसको ग्राहक ने चैक लिखकर भुगतान का आदेश दिया है। चैक का आहर्ती सदैव बैंक ही होता है।
3. **आदाता (Payee)** - जिसके पक्ष में चैक लिखा गया है उसको आदाता कहते हैं।

9.4 चैक तथा विनिमय बिल में अन्तर

अन्तर का आधार	**चैक**	**विनिमय बिल**
1. भुगतानकर्ता	चैक सदैव किसी बैंक पर लिखा जाता है।	विनिमय बिल किसी व्यक्ति या बैंक पर लिखा जा सकता है।
2. स्वीकृति	चैक मे किसी भी प्रकार की पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती है।	विनिमय बिल पर देनदार की स्वीकृति अनिवार्य होती है। स्वीकृति के अभाव में राह के लिए बाध्य नहीं है।
3. देयता	चैक का भुगतान सदैव मांग पर देय होता है।	विनिमय बिल का भुगतान मांग पर होता है। या निश्चित अवधि पश्चात दोनों प्रकार से हो सकता है।
4. भुगतान का क्षेत्र	चैक का उपयोग प्राय: देशी भुगतानों मे ही किया जाता है।	विनिमय बिलों का उपयोग देशी एवं विदेशी दोनों प्रकार के भुगतानों में हो सकता है।
5. लेखक	चैक देनदार द्वारा लिखा जाता है।	विनिमय बिल लेनदार लिखता है।
6. अनुग्रह दिवस	चैक पर अनुग्रह दिवस नहीं दिये जाते हैं।	सावधि विनिमय बिलों के भुगतान में तीन दिन अनुग्रह दिवस के रूप में दिये जाते हे।
7. रेखांकन	चैक का रेखांकन किया जा सकता है।	विनिमय बिलों का रेखांकन नहीं किया जाता है।
8. स्टाम्प	चैक पर कोई स्टांप नहीं लगाना पड़ता है।	विनिमय बिल पर नियमानुसार स्टाम्प का लगा होना आवश्यक है।
9. लेखक की मृत्यु की दशा में	चैक के लेखक की मृत्यु की सूचना मिलते ही बैंक चैक का भुगतान रोक देता है।	विनिमय बिल के लेखक की मृत्यु हो जाने की दशा में पर उसके उत्तराधिकारी उत्तरदायी होते हैं।
10. अनादरण की सूचना	चैक के अनादरण की दशा में पूर्व पक्षों को सूचना देना आवश्यक नहीं होता है।	विनिमय बिल के अनादरण पर उसके पूर्व पक्षों को सूचना देना अनिवार्य होता है।

11. नोटिंग एवं प्रोटेस्टिंग	चैक के अनादरित होने पर नोटिंग एवं प्रोटेस्टिंग की आवश्यकता नहीं होती है ।	विनिमय बिल के अनादरण की दशा में नोटिंग होती है एवं प्रोटेस्टिंग भी जरूरी है।

9.5 प्रतिज्ञा पत्र तथा विनिमय बिल में अन्तर

अन्तर का आधार	**प्रतिज्ञा पत्र**	**विनियम बिल**
1. प्रकृति	प्रतिज्ञा पत्र में लेखक द्वारा भुगतान की प्रतिज्ञा होती है।	विनियम बिल में लेनदार द्वारा देनदार को भुगतान का आदेश होता है।
2. पक्षकार	प्रतिज्ञा पत्र में केवल दो ही पक्षकार होते हैं - लेखक तथा लेनदार।	विनिमय बिल में तीन पक्षकर - लेखक, स्वीकर्ता तथा लेनदार होते हैं।
3. आदाता	प्रतिज्ञा पत्र में लेखक स्वयं आदाता नहीं हो सकता।	इसमें लेखक व आदाता एक ही व्यक्ति हो सकता है।
4. स्वीकृति	प्रतिज्ञा पत्र में स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती।	विनिमय बिल में देनदार की स्वीकृति अनिवार्य होती है।
5. दायित्व	प्रतिज्ञा पत्र में लेखक पर ही भुगतान का दायित्व होता है।	विनिमय बिल में भुगतान का दायित्व स्वीकर्ता का होता है परन्तु इसके भुगतान न करने पर लेखक पर दायित्व आ जाता है।
6. अनादरण की सूचना	प्रतिज्ञा पत्र में अनादरण की सूचना देना धारक के लिए जरूरी नहीं है।	विनिमय बिल के अनादरण की सूचना सभी पूर्व पक्षकारों को दिया जाना आवश्यक होता है।
7. नोटिंग एवं प्रोटेस्टिंग	प्रतिज्ञा पत्र के अनादरण होने पर 'नोटिंग एवं प्रोटेस्टिंग' की जरूरत नहीं रहती है।	विनिमय बिल की दशा में इनकी आवश्यकता होती है।
8. प्रतियाँ	प्रतिज्ञा पत्र की प्राय: एक ही प्रति बनाई जाती है।	विदेशी विनिमय बिल की दशा में प्राय: यह तीन प्रतियों में बनाये जाते हैं।

9.6 सारांश

विकास के साथ विनिमय साध्य विलेखों का महत्व बढ़ता जा रहा है। अत: विभिन्न प्रकार के विनिमय साध्य विलेखों यथा चैक, विनिमय बिल तथा प्रतिज्ञा पत्र से सम्बन्धित विभिन्न प्रावधानों का सविस्तार वर्णन किया गया है प्रतिज्ञा पत्र में ऋणी द्वारा ऋणदाता को निश्चित धनराशि भुगतान करने की प्रतिज्ञा की जाती है तथा विनिमय बिल लेनदार द्वारा देनदार

को एक निश्चित राशि भुगतान करने का आदेश होता है जबकि चैक भुगतान हेतु लिखा गया बैंक पर एक आदेश है जो मांग पर देय होता है।

9.7 शब्दावली

1. **विनिमय साध्य (Negotiable)** - जिस विलेख में तीन तत्व - स्वामित्व हस्तान्तरण, श्रेष्ठ स्वामित्व तथा वैधानिक स्वामित्व के गुण पाये जाते हैं, उरने विनिमय साध्य कहते हैं।
2. **आहर्ता (Drawer)** - विलेख लिखने वाले को आहर्ता या लेखक कहते है।
3. **आहर्ती (Drawee)** - विलेख में उल्लेखित राशि जिसको भुगतान करने का आदेश या निर्देश दिया जाता है, वह आहर्ती कहलाता है।
4. **प्रापक / आदाता (Payee)** - जिस व्यक्ति को भुगतान प्राप्त करने का अधिकार होता है, वह आदाता / प्रापक कहलाता है।
5. **अनादरण (Dishonour)-** बैंक द्वारा चैक को भुगतान के बिना वापस लौटाना चैक का अनादरण कहलाता है।
6. **धारक (Holder) -** जिस व्यक्ति को विलेख अपने अधिकार में रखने तथा देय राशि का भुगतान प्राप्ति का वैधानिक अधिकार होता है, वह धारक कहलाता है।
7. **यथाविधिधारक (Holder in Due)** -वह व्यक्ति होता है जो विलेख को सद्विशवास एवं मूल्य के प्रतिफल के बदले में परिपक्व तिथि से पूर्व प्राप्त करता है।
8. **अनुग्रह बिल (Accommodation Bill)** - ऐसे विनिमय बिल जो प्रतिफल के बदले न लिखे जाकर परस्पर सहायतार्थ लिखे जाते हैं।
9. **स्वीकृति (Acceptance)** - विनिमय बिल पर देनदार द्वारा 'स्वीकृति' शब्द अंकित करके अपने हस्ताक्षर करना।

9.8 अभ्यास प्रश्न

1. विनिमय साध्य विलेख का अर्थ बताइये।
2. विनिमय साध्यता एवं हरत्तान्तरणशीलता में अन्तर बताइये।
3. धारक एवं यथाविधिधारक का अर्थ समझाइये।
4. स्वीकृति का अर्थ एवं प्रकारों को संक्षेप में समझाइये।
5. चैक एवं विनिमय बिल की परिभाषा दीजिये तथा इनकी विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
6. प्रतिज्ञा पत्र की परिभाषा एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
7. निम्न में अन्तर स्पष्ट कीजिये-
   (i) चैक तथा विनिमय बिल
   (ii) प्रतिज्ञा पत्र एवं विनिमय बिल

9.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. बी.एल.ओझा - बैंकिंग विधि एवं व्यवहार, रमेश बुक डिपो, जयपुर, 2009

2. मालीराम जी.एन. शर्मा एवं वी.के. वशिष्ठ - बैंकिंग विधि एवं व्यवहार, रमेश बुक डिपो, जयपुर, 2009
3. S.K. Mathur-Banking Law and Practice in India, Shivam Book House (Pvt.) Ltd., Jaipur.

इकाई10

नवोन्मेजी बैंकिंग : ए.टी.एम. बैंकिंग, टेली बैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग, ई. बैंकिंग, विभिन्न नवाचार, बैंकिंग का बदलता परिवेश तथा नये प्राइवेट क्षेत्र के बैंक

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 नवोन्मेशी बैंकिंग का अभिप्राय

10.3 नवोन्मेशी बैंकिंग की आवश्यकता

10.4 ई. बैंकिंग - इलेक्ट्रोनिक धन स्थानान्तरण, ए.टी.एम. क्रेडिट कार्ड, डेबिट कार्ड

10.5 मोबाइल बैंकिंग

10.6 इन्टरनेट बैंकिंग

10.7 टेली बैंकिंग

10.8 अन्य विभिन्न नवाचार

10.9 बैंकिंग का बदलता हुआ परिवेश

10.10 प्राइवेट क्षेत्र के बैंक

10.11 सारांश

10.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.13 अभ्यास प्रश्न

10.14 संदर्भ ग्रन्थ

10.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि

- बैंकिंग नवोन्मेशी की अवधारणा का वर्णन कर सकें।
- बैंकिंग नवोन्मेशी की आवश्यकता को समझ सकेंगें।
- बैंकिंग नवोन्मेशी में सम्मिलित विभिन्न सेवाओं तथा उनको उपयोग में लेने की प्रकिया से अवगत हो सकेंगे।
- बैंकिंग नवोन्मेशी के उपकरण यथा ए.टी.एम., टेली बैंकिंग, ई. बैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग आदि के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों की समीक्षा करने में समर्थ हो सकेंगे।
- भारतीय बैंकिंग के नवीनतम परिवेश से परिचित हो सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

विगत वर्षो में ज्ञान एवं तकनीक में हुए विकास ने अर्थव्यवस्था के लगभग प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। स्वाभाविक रूप से बैंकिंग क्षेत्र में भी ज्ञान एवं तकनीक के विकास ने अपनी छाप छोड़ी। बैंकिंग एक सेवा अभिकेन्द्रित उद्योग है। परम्परागत रूप से बैंक धन जमा करने तथा उधार देने का कार्य करते रहे हैं। परन्तु अब ग्राहक को इन परम्परागत सेवाओं के साथ उच्च क्वालिटी की मूल्यवर्द्धित सेवाओं की आवश्यकता है। दूरसंचार तथा कम्प्यूटर तकनीक के द्वारा अब ग्राहक को बैंक द्वारा कहीं भी किसी भी समय अर्थात हर समय हर स्थान पर सेवा प्रदान करना संभव हो गया है। अब बैंक ग्राहक को नेट बैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग और फोन बैंकिंग की सुविधा प्रदान कर अपने कार्य को सरल और लागत कुशल बना रहे हैं तथा साथ ही ग्राहक के लिए बैंकिंग को आसान और उसकी आवश्यकता के अनुकूल बना रहे हैं। बैंकिंग क्षेत्र में प्रक्रियात्मक तथा सेवागत हुए ये सब परिवर्तन बैंकिंग नवोन्मेश हैं। इन सबके परिणामस्वरूप भारत में भी बैंकिंग का परिवेश आज एकदम बदल गया है। परिवेश में हुआ यह बदलाव एक और बैंकिंग की लागत में कमी का कारक बना है तो दूसरी और ग्राहक के लिए सुविधा का खजाना।

10.2 नवोन्मेश बैंकिंग अभिप्राय

पिछले वर्षा में बैंकिंग प्रकिया के संचालन तथा बैंक द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं में अनेक गुणात्मक परिवर्तन हुए हैं। ये परिवर्तन बैंकिंग के प्रत्येक क्षेत्र-कार्य और व्यवहार, सिद्धान्त और अवधारणा तथा प्रकिया और प्रविधि में इतनी तीव्र गति से हुए हैं कि अब किसी बैंक का परिदृश्य बिल्कुल बदला हुआ दिखाई देता है। बैंकिंग में बदलाव लाने वाले इन्हीं नये प्रयोगों को नवोन्मेशी बैंकिंग कहा जाता हैं। दूसरे शब्दों में बैंकिंग के क्षेत्र में नये विचार, नई तकनीक और नवीन प्रविधियों का प्रयोग ही नवोन्मेशी बैंकिंग है। बैंकिंग प्रकिया के संचालन में काउण्टर बैंकिंग से इन्टरनेट, टेलीफोन और मोबाइल बैंकिंग की ओर बढ़ना तथा बैंक सेवाओं तथा उत्पादों की दृष्टि से सामान्य जमा और साख सुविधा से ए. टी. एम, क्रेडिट और डेबिट कार्ड की और बढ़ना बैंकिंग नवोन्मेश के उदाहरण कहे जा सकते हैं।

10.3 नवोन्मेश बैंकिंग आवश्यकता

वैश्वीकरण तथा उदारीकरण के कारण सम्पूर्ण विश्व में आर्थिक गतिविधियाँ तेज गति से बढ़ी है। विश्व में तकनीक एवं ज्ञान के विकास ने भी आर्थिक गतिविधियों का विस्तार किया है। आर्थिक क्रियाकलापों में वृद्धि होने के कारण स्वाभाविक रूप से बैंकिंग सेवाओं की मांग तथा आवश्यकताओं में भी वृद्धि हुई। बैंकिंग सेवाओं की इस बढती हुई मांग की पूर्ति बैंकिंग के परम्परागत तंत्र में संभव नही थी। इसलिए बैंकिंग प्रकिया में नवोन्मेश की आवश्यकता हुई। बैंकिंग में अपनाये गये नये उपायों से किसी सौदे का तुरन्त भुगतान, धन का एक शहर के किसी ग्राहक के खाते से दूसरे शहर के अन्य ग्राहक के खाते में हस्तान्तरण, 24 घण्टे बैंकिंग की सुविधा आदि संभव हो पाये हैं। इन सब सेवाओं के कारण आर्थिक व्यवहार आसान और सुविधाजनक हुए हैं तथा अर्थव्यवस्था को गति देना संभव हुआ है। जब विश्व में बैंकिंग संचालन में नवीन तकनीकों का उपयोग प्रारम्भ हो गया तो स्वाभाविक रूप से विदेशी बैंकों की प्रतिस्पर्धा

से मुकाबला करने के लिए भारतीय बैंकों को भी तकनीकी प्रविधियों का उपयोग करना आवश्यक हो गया।

आर्थिक गतिविधियाँ बढ़ने के साथ ही प्रत्येक ग्राहक की व्यस्तता भी बढ़ी है। ग्राहक को बैंकिंग सेवा हर स्थान पर, हर समय उपलब्ध हो इस हेतु भी बैंकिंग प्रकिया में नवीनतम तकनीक का प्रयोग अर्थात नवोन्मेश आवश्यक हो गया।

इस प्रकार बैंकिंग नवोन्मेश आज समय की मांग है। जो बैंक इन परिवर्तनों के साथ अपने को सम्मिलित करेंगे, वे ही अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में अपना अस्तित्व बचा सकेंगे और विकास कर सकेंगे।

10.4 ई. बैंकिंग - इलेक्ट्रोनिक धन स्थानान्तरण, ए.टी.एम., क्रेडिट कार्ड डेबिट कार्ड

बैंकिंग नवोन्मेश का विवरण:

बैंकिंग क्षेत्र में जो नवोन्मेश नवीन परिवर्तन हुए हैं वे न केवल बहुआयामी, संरचनात्मक तथा अवधारणात्मक है, वरन संख्यात्मक तथा गुणात्मक भी है। इनमें से कुछ का विवरण निम्न प्रकार है :-

ई. बैंकिंग - बैंकिंग सौदों को पूर्ण करने में इलेक्ट्रोनिक उपकरणों तथा प्रकिया का उपयोग करना ही ई बैंकिंग कहलाता है। बैंकिंग सेवाओं को आसान बनाने एवं सेवा की गति को बढ़ाने में इलेक्ट्रोनिक बैंकिंग बहुत सहायक होती है। भारत में भी अनेक बैंकों यथा आई. सी. आई. सी. आई. बैंक, ग्लोबल ट्रस्ट बैंक, भारतीय स्टेट बैंक आदि ने इलेक्ट्रोनिक बैंकिंग का उपयोग शुरू कर दिया है। ई. बैंकिंग का उपयोग मुख्य रूप से निम्न सेवाओं के लिए किया जाता है -

1. **इलेक्ट्रोनिक धन स्थानान्तरण प्रविधि** - इस प्रविधि में बैंक के एक खाते से दूसरे खाते में धन का स्थानान्तरण तुरन्त संभव हो जाता है। इसका उपयोग मुख्य रूप से कम्पनी के खाते से कर्मचारियों के व्यक्तिगत खातों में स्थानान्तरण, कम्पनी से अंशधारियों को लाभांश व ऋणपत्र धारकों के ब्याज का संबंधित धारकों के खातों में स्थानान्तरण या किसी सौदे के भुगतान में धन का हस्तान्तरण तुरन्त संभव हो जाता है। धन का स्थानान्तरण करने की यह प्रकिया बहुत आसान और सुरक्षित है। प्रारम्भ में यह सुविधा केवल छोटे भुगतानों के स्थानान्तरण के लिए ही उपलब्ध थी किन्तु 1 अक्टूबर 2001 से 2 करोड रूपये तक का धन स्थानान्तरण इस प्रविधि से किया जा सकता है।

केन्द्रीकृत कोष प्रबन्धन प्रणाली - (Centralized Fund Management System-CFMS) - इरा प्रविधि से व्यापारिक बैंक रिजर्व बैंक में अपने सभी प्रकार के खातों का एकीकृत शेष अलग-अलग तथा समूह वार ज्ञात करके अपने कोष का बेहतर प्रबन्धन करने तथा समुचित लाभ उठाने में सफल हुए है। रिजर्व बैंक ने यह सुविधा नवम्बर 2001 से प्रारम्भ की है।

ए. टी. एम. (Automated Teller Machines) - ए.टी.एम. एक 24 घण्टे धन निकाले जाने व जमा कराये जाने की सुविधा का नाम है। अब से कुछ समय पहले तक यह सुविधा केवल धन निकाले जाने के लिए उपलब्ध थी परन्तु अब कुछ बैंकों जैसे आई. सी. आई. सी. आई. ने धन जमा करने के लिए भी ए.टी.एम. की सुविधा प्रदान की है। ए. टी. एम. सुविधा को प्राप्त करने के

लिए बैंक के ग्राहक को ए.टी.एम. कार्ड के लिए आवेदन देकर एक कार्ड प्राप्त करना होता है। ग्राहक इस कार्ड को ए.टी.एम. मशीन में अन्दर डालकर अपनी व्यक्तिगत पहचान संख्या (PIN) को प्रविष्ट करता है। फिर मशीन ग्राहक के निर्देशानुसार धन निकालने, जमा करने, शेष बताने आदि की कार्यवाही सम्पन्न करती है। वर्तमान में किसी भी बैंक के ए.टी.एम. से किसी अन्य बैंक का ग्राहक भी अपने ए.टी.एम. कार्ड से ये सेवाएँ ले सकता है। इस प्रकार ए.टी.एम. के उपयोग से ग्राहक 24 घण्टे ए.टी.एम. टर्मिनल पर जाकर धन निकालने, जमा करने, खाते का शेष ज्ञात करने, खाते का विवरण प्राप्त करने आदि सेवाएँ प्राप्त कर सकता है।

ए.टी.एम. से बैंक की सेवाएँ लेने में ग्राहक की व्यक्तिगत पहचान संख्या एक प्रकार से उसके हस्ताक्षर के समान ही कार्य करती है। अत: अपने बैंक खाते की सुरक्षा की दृष्टि से ग्राहक को अपना पिन किसी को नहीं बताना चाहिये और न ही कहीं लिखकर रखना चाहिये। ग्राहक को नियमित अंतराल पर अपना पिन बदलते भी रहना चाहिये। यदि कभी ए.टी.एम. कार्ड खो जाता है तो इसकी सूचना तुरन्त अपने बैंक को देकर अपने कार्ड को ब्लॉककरवाना चाहिये। यह कार्य बैंक द्वारा प्रदत्त टॉल फ्री फोन नं0 पर संदेश भेजकर भी किया जा सकता है।

विश्व में सर्वप्रथम ए.टी.एम. मशीन का अविष्कार स्कॉट जॉन शैकर्ड-बैरन के द्वारा 1960 में किया गया था जिसका उपयोग 1967 में बार्कलेज बैंक द्वारा किया गया था। प्रारम्भ में व्यक्तिगत पहचान संख्या 6 अंको में होती थी जो अब चार अंकों की होती है। ए.टी.एम. में निरन्तर सुधार होता रहा है और उसके फलस्वरूप ही आज नवीनतम स्वरूप में सब जगह प्रचलित है। भारत में ए.टी.एम. की शुरूआत आई. सी. आई. सी. आई. बैंक द्वारा की गई और वर्तमान में लगभग सभी सरकारी तथा निजी क्षेत्र के बैंक एटीएम. की सुविधा प्रदान कर रहे हैं। दिसम्बर 2007 तक भारत में कुल 32342 ए.टी.एम. टर्मिनल स्थापित किये जा चुके थे और इसकी बढ़ती हुई आवश्यकता के कारण वर्ष 2012 तक यह संख्या लगभग 250000 तक बढ़ने का अनुमान है।

क्रेडिट कार्ड - यह कार्ड धारक को कभी भी और कहीं भी धन खर्च करने को सक्षम बनाने की सुविधा है। यह एक प्लास्टिक का कार्ड होता है जिसका उपयोग कर धारक यात्रा कर सकता है, एयर व रेल टिकिट क्रय कर सकता है, सामान क्रय कर सकता है। सामान्यत: बैंक और अन्य कई संस्थान इस प्रकार के कार्ड जारी करते हैं। कार्ड का प्रयोगकर्ता इसके लिए कार्ड देने वाले बैंक को वार्षिक शुल्क चुकाता है तथा सामान्यत: कार्ड द्वारा खर्च की गई राशि को 45 दिन की अवधि के अन्तर्गत वापस भुगतान करता है। जिस संस्थान से कार्ड द्वारा सामान क्रय किया गया है उसे बैंक द्वारा तुरन्त भुगतान कर दिया जाता है। कार्ड धारक के भुगतान में दोषी हो जाने पर जोखिम भी बैक को ही उठानी होती है। बैंक इस सेवा के लिए ग्राहक से ऊंची दर पर कमीशन, प्रशासनिक व्यय, ब्याज आदि की वसूली करता है।

क्रेडिट कार्ड धारक को धन खर्च कर उसका भुगतान करने के लिए समयान्तर मिल जाता है। कार्ड देने वाली संस्था द्वारा निर्धारित समयावधि में खर्च कर दी गई राशि का भुगतान कर देने पर ग्राहक को कोई व्याज भी नहीं देना पड़ता है। परन्तु यदि निर्धारित समय पर भुगतान में चूक हो जाती है तो खर्च की तिथि से ही ऊँची दर पर व्याज का भुगतान करना पड़ता है। बैंक द्वारा क्रेडिट कार्ड पर निर्धारित समयावधि तक बिना व्याज के यह सुविधा देना इसलिए संभव हो

पाता है क्योंकि ग्राहक द्वारा क्रय किये गये सामान के विक्रेता द्वारा प्रत्येक सौदे के लिए बैंक को ऊंची दर पर शुल्क भुगतान किया जाता है। विक्रेता यह शुल्क बैंक को इसलिए दे देता है क्योंकि इस सुविधा के कारण उसे तुरन्त भुगतान मिल जाता है तथा उसकी बिकी भी इस सुविधा के कारण बढ़ती है।

विश्व में पहली बार 195 व में अमेरिका में डिनर क्लब द्वारा 200 ग्राहकों को क्रेडिट कार्ड जारी किये गये थे जिसका उपयोग केवल न्यूयार्क के 27 रेस्टोरेन्टस में किया जा सकता था। तब से अब तक क्रेडिट कार्ड के स्वरूप और संख्या में लगातार विकास होता गया है। भारत में यद्यपि 1961 में अमेरिका के डिनर क्लब की , शाखा द्वारा यह कार्ड प्रारम्भ किये गये परन्तु वास्तव में 1980 में सेत्रल बैंक द्वारा मास्टर कार्ड के सहयोग से यह कार्ड भारत में शुरू हुए। विश्व के दो लोकप्रिय क्रेडिट कार्ड मास्टर कार्ड और वीसा कार्ड (VISA Card) 1966 में शुरू हुए थे। वर्तमान में भारत में कई बैंक केडिट कार्ड जारी कर रहे हैं।

केडिट कार्ड के लाभ - केडिट कार्ड आने जाने में धन नकद ले जाने की जोखिम से बचाता है। कार्ड धारक अच्छे होटल व रेस्टोरेन्ट की सेवाएँ, विभागीय स्टोर से सामान्य क्रय करने की सुविधा बिना नकद धन के भी प्राप्त करता है। जिन संस्थानों में कार्ड के आधार पर विक्रय की सुविधा प्रदान की है उनकी बिकी में वृद्धि होती है तथा बैंक को कमीशन एवं ब्याज के रूप में आमदनी प्राप्त होती है। बैंक के ग्राहकों की संख्या बढ़ती है तथा ग्राहक को वर्तमान में धन न होते हुए भी सामान क्रय करने व यात्रा करने की सुविधा प्राप्त होती है।

केडिट कार्ड के दोष - यदि ग्राहक कार्ड के माध्यम से खर्च की गई राशि बैंक को समय पर नहीं चुकाता है तो बैंक के लिए भुगतान प्राप्त करने की समस्या एवं हानि उत्पन्न होने की समस्या हो जाती है। इस सुविधा के कारण ग्राहक का अनावश्यक खर्च बढ़ता है तथा अनेक ग्राहक ऋण के संजाल में फंस जाते हैं।

भारत में क्रेडिट कार्ड बाजार की संभावना - 1995 में भारत में कुल 19 लाख कार्ड थे जो 2005 में बढ़कर 1 करोड़ 30 लाख हो गये। इससे स्पष्ट है कि हमारे बाजार में क्रेडिट कार्ड की मांग लगातार बढ़ रही है।

डेबिट कार्ड - यह कार्ड मध्यम आय वर्ग के लोगों के लिए उपयोगी है। यह किसी बैक द्वारा जारी किया जाता है। इसमें कार्ड धारक अपने खाते में जमा धन तक ही कार्ड के द्वारा राशि खर्च कर सकता है। इस प्रकार यह एक प्रकार से पूर्व भुगतान कार्ड है तथा धारक के खर्च करने की सीमा पर नियंत्रण रहने से वह अनावश्यक खर्च करने से बच जाता है। यह एक प्रकार का ए.टी.एम. कार्ड होता है। जब ग्राहक विकेता को भुगतान में कार्ड प्रस्तुत करता है तो वह उसे अपने ए.टी.एम. जैसे टर्मिनल 'में रगड़ता है जिससे कार्ड ग्राहक के खाते से जुड़ जाता है, ग्राहक द्वारा अपनी व्यक्तिगत पहचान संख्या प्रविष्ट करने पर ग्राहक का खाता डेबिट हो जाता है ओर विकेता के खाते में भुगतान क्रेडिट हो जाता है।

डेबिट और क्रेडिट कार्ड मे अन्तर

डेबिट कार्ड	क्रेडिट कार्ड
1. यह तुरन्त भुगतान उत्पाद है।	1. यह भविष्य में भुगतान उत्पादन है।
2. इसमें कोई उधार सुविधा नहीं है।	2. इसमें 45 दिन तक की उधारी सुविधा है।
3. यह प्रत्यक्ष रूप से ग्राहकों के बैंक खाते से संबद्ध होता है, अत: ग्राहक का बैंक खाता होना आवश्यक है।	3. प्रत्यक्ष रूप से बैंक खाते से संबद्ध न होने के कारण बैंक मे खाता आवश्यक नहीं है।
4. विक्रेता के यहाँ ए.टी.एम. जैसा टर्मिनल होना आवश्यक है।	4. इसकी आवश्यकता है।
5. धोखाधड़ी की कोई संभावना नहीं होती है।	5. धोखाधड़ी की संभावना रहती है।
बोध प्रश्न क	

प्रश्न 1. नवोन्मेश बैंकिंग किसे कहते हैं

प्रश्न 2. विश्व में सर्वप्रथम ए.टी.एम. मशीन का अविष्कार किसके द्वारा किया गया था ?

प्रश्न 3. वर्तमान में ए.टी.एम. कार्ड के उपयोग के लिए व्यक्तिगत पहचान संख्या कितने अंकों की बनाई जाती है?

प्रश्न 4. विश्व में पहली बार क्रेडिट कार्ड कब और किसके द्वारा जारी किये गये थे ?'

प्रश्न 5. क्रेडिट कार्ड पर दी गई उधारी की सुविधा के लिए बैंक ग्राहक से व्याज क्यों नहीं लेता है ?

प्रश्न 6. बताइये कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं या असत्य

(i) ए.टी.एम. पिन 6 अंकों में होता है।

(ii) एक बैंक द्वारा जारी ए.टी.एम. कार्ड केवल उसी बैंक के ए.टी.एम. टर्मिनल में सेवाएँ प्रदान करता है।

(iii) क्रेडिट कार्ड द्वारा खर्च की गई राशि को निर्धारित समयावधि में बैंक में जमा कर देने पर कोई ब्याज नहीं देना होता है।

(iv) क्रेडिट कार्ड धारक द्वारा कार्ड का उपयोग कर क्रय किये गये सामान पर विक्रेता सौदे के लिए बैंक को फीस चुकाता है।

(v) डेबिट कार्ड केवल बैंक के खाता धारक को ही जारी किया जाता है।

10.5 मोबाइल बैंकिंग

भारत में मोबाइल बैंकिंग की शुरूआत भारतीय स्टेट बैंक, आई. सी. आई. सी. आई. बैक, एच डी एफ सी बैंक आदि के द्वारा की जा रही है। भारतीय रिजर्व बैंक का लक्ष्य देश के 18 करोड मोबाइल उपभोक्ताओं को बैंकिंग से जोड़ने का लक्ष्य है। इस सुविधा में अशिक्षित लोगों को भी कोई दिक्कत नही होगी।

मोबाइल फोन पर महज बोलकर या एसएमएस भेजकर भी ग्राहक बैंक से पैसे का लेन-देन कर सकते हैं। इस प्रकिया के तहत न तो मोबाइल कंपनी को कोई शुल्क चुकाना होगा और न ही बैंक को फीस देनी होगी। रिजर्व बैंक ने मोबाइल बैंकिंग के जरिए देश के करीब 18 करोड़

से अधिक सेलफोन धारकों को जोड़ने का लक्ष्य रखा है। ये वह लोग हैं जिनका अब तक बैंक से कोई लेन देन नहीं है।

मोबाइल उपभोक्ताओं को इस सुविधा का लाभ लेने के लिए पहले बैंक में अपना और जिसे पैसे भेजने है उसका खाता खुलवाना होगा। उन्हें इसके बाद मोबाइल पर 'एम चेक' सुविधा का रजिस्ट्रेशन करवाना होगा। इस सुविधा के लिए अनुबंधित कम्पनी के अनुसार यह प्रकिया काफी आसान है। यह प्रकिया ग्राहकों को आसानी से समझ में आ जाएगी। इस प्रकिया में कम पढ़े लिखे तथा अशिक्षित लोग भी बैंकिंग का आसानी से लाभ उठा सकेंगे। इसके लिए एक सॉफ्टवेयर विकसित किया गया है जिससे बोलकर ही धन राशि का स्थानान्तरण और अन्य देन हो जायेंगे। सॉफ्टवेयर में ग्राहक की आवाज रिकॉर्ड हो जाएगी। ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ बिजली उपलब्ध नहीं है सौर ऊर्जा से मोबाइल चार्ज करने की प्रविधि विकसित की जावेगी।

10.6 इन्टरनेट बैंकिंग

बैंक के ग्राहक द्वारा अपने कम्प्यूटर पर बैठकर इन्टरनेट सम्बद्धता का प्रयोग करके बैंक खाते का संचालन करना इन्टरनेट बैंकिंग कहलाता है। इसे ऑन लाइन बैंकिंग कहा जाता है। इन्टरनेट बैंकिंग एक ग्राहक के लिए उसकी व्यस्त दिनचर्या में बैंकिंग व्यवहार करने की सबसे आसान क्रिया है। वर्तमान में लगभग सभी बैंक अपने ग्राहकों को इन्टरनैट बैंकिंग की सुविधा प्रदान कर रहे हैं।

इन्टरनेट बैंकिंग में बैंक की वैबसाइट पर उसकी सम्पूर्ण जानकारी व ग्राहकों के खातों का विवरण लोड कर दिया जाता है। बैंक द्वारा इन्टरनेट पर उपयोग ली जा सकने वाली सभी सेवाओं को मीनू पर प्रदर्शित किया जाता है। ग्राहक को जिस सेवा की आवश्यकता है उसका चयन करके तथा आवश्यक कम्प्यूटर प्रकिया का प्रयोग करके व्यवहार को पूर्ण कर लिया जाता है। इन्टरनेट बैंकिंग के लिए ग्राहक के पास अपना निजी कम्प्यूटर तथा इन्टरनेट कनेक्शन होना आवश्यक है।

नेट बैंकिंग में ग्राहक को बैंक की किसी शाखा या काउण्टर पर जाने की आवश्यकता नहीं होती है। ग्राहक को अपने निजी कम्प्यूटर पर बैंक की वेबसाइट खोलकर अपने खाते का कोड नं. प्रविष्ट करके अपने बैंक व्यवहार की उसमें प्रविष्टी करके ओके करना होता है। बाकी सब कार्यवाही बैंक द्वारा स्वत: पूर्ण की. जायेंगी। इस प्रकार नेट बैंकिंग से बैंक खाते का संचालन बहुत ही सुविधा जनक हो गया है।

भारत में नेट बैंकिंग की शुरूआत अभी ज्यादा पुरानी नहीं है किन्तु अमेरिका और यूरोप में लगभग 20 वर्षो से यह सुविधा ग्राहकों को उपलब्ध है। भारत में आई. सी. आई. सी. आई., आई. डी. बी. आई., एच. डी. एफ. सी., भारतीय स्टेट बैंक जैसे कई बैंक अपने ग्राहकों को इन्टरनेट बैंकिंग की सुविधा प्रदान कर रहें है।

इन्टरनेट बैंकिंग के लाभ

(1) इन्टरनेट बैंकिंग बहुत अधिक सुविधाजनक है। इसके माध्यम से आप अपने बिलों का भुगतान कहीं से भी तुरन्त कर सकते हैं। ग्राहक कभी भी कहीं भी अपने खाते की पूरी जानकारी प्राप्त कर सकता है। नेट बैंकिंग में ग्राहक के लिए बैंक सदैव खुला रहता है क्योंकि वह कभी भी अपने कम्प्यूटर से बैंकिंग व्यवहार सम्पन्न कर सकता है।

(2) नेट बैंकिंग से बैंकिंग सेवा बहुत तीव्रगामी, कुशल तथा प्रभावी हो गई है। नेट पर ग्राहक अपने बैंक व्यवहार को ए. टी. एम. से भी तीव्र गति से पूर्ण कर लेता है। आप एक ही स्थान पर बैठकर अपने अलग-अलग बैंकों के सभी खातों को संभाल सकते है, उनमें व्यवहार कर सकते हैं।

(3) नेट बैंकिंग ने ग्राहक और बैंकर की बैंक व्यवहार लागत को बहुत कम कर दिया है। बैंकर के लिए फाइलिंग और कागजी कार्यवाही न्यूनतम हो जाने के कारण लागत में कमी आई है, वहीं ग्राहक के लिए बैंक आने जाने में लगने वाला व्यय तथा समय की बचत हुई है।

(4) नेट बैंकिंग ने ग्राहक के लिए बिजली, पानी आदि सेवाओं के बिलों का भुगतान, धन के एक स्थान से दूसरे स्थान पर एक खाते से दूसरे खाते में स्थानान्तरण सुविधाजनक एवं तुरन्त हो जाता है। ग्राहक इसके माध्यम से यात्रा के टिकट क्रय कर सकता है तथा निवेश योजनाओं में अपना धन निवेश कर सकता है।

दोष

जहाँ नेट बैंकिंग से ग्राहक एवं बैंक के लिए बैंकिंग किया आसान एवं सुविधाजनक हुई है वहीं ग्राहक के बैंक खाते की सुरक्षा की समस्या बढ़ी है। किसी भी कारण से ग्राहक का पासवर्ड, व्यक्तिगत पहचान संख्या (पिन) तथा यूजर नेम की जानकारी किसी अन्य को पता लग गई तो आपके बैंक खाते से छेड़ छाड़ संभव है और ग्राहक को बड़ी राशि की चपत लग सकती है। इससे बचाव के लिए ग्राहक को अपना

पासवर्ड तथा पिन नं0 समय समय पर बदलते रहना चाहिये तथा कभी भी इन जानकारियों को किसी को भी नहीं बताना चाहिये।

जिन ग्राहकों को कम्पयूटर प्रयोग में लेने की सामान्य जानकारी नहीं है, उनके लिए नेट बैंकिंग का उपयोग प्रारम्भ में कठिन लगता है। ऐसे ग्राहकों को कम्प्यूटर प्रयोग की सामान्य जानकारी ग्रहण कर विश्वास के साथ व्यवहार करना चाहिये।

कुल मिलाकर आज इन्टरनेट बैंकिंग ने बैंकिंग सेवाओं को आसान, सुविधाजनक, त्वरित एवं लागत कुशल बनाया है। सुरक्षित नेट बैंकिंग के लिए ग्राहक को अपने बैंक खाते की प्रत्येक जानकारी को पूर्णतः गोपनीय रखना चाहिये तथा समय समय पर पासवर्ड तथा पिन को बदलते रहना चाहिये।

10.7 टेली बैंकिंग

ऐसे ग्राहक जिनके पास समय की कमी है तथा इन्टरनेट सम्बद्धता नही है या नेट सेवा की गति धीमी रहती है उनके लिए बैंक सेवाओं के लिए टेली बैंकिंग सर्वोत्तम विकल्प है। इस प्रविधि में स्पर्श ध्वनि फोन (टच टोन फोन) का उपयोग करके ग्राहक अपने बैंकिंग व्यवहार को सम्पन्न करता है। इस प्रकिया में ग्राहक को अपना टेली बैंकिंग नम्बर डायल करने पर दूरभाष पर प्राप्त निर्देशों की अनुपालना करते हुए अपना व्यवहार पूर्ण करना होता है। इस प्रकिया द्वारा ग्राहक अपनी सेवाओं के बिलों कर, केबल आदि के भुगतान कर सकता है। ग्राहक अपने खाते की सम्पूर्ण जानकारी तथा शेष, ऋण पर आगामी किस्त की जानकारी, धन का एक स्थान व खाते से दूसरे स्थान व खाते में स्थानान्तरण, किसी चेक का भुगतान रूकवाना आदि सेवाएँ प्राप्त कर सकता है। टेली बैंकिंग की सेवा ऐसे ग्राहकों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है जो अपने बैंकिंग

व्यवहार में बैंकर की आवाज इसे व्यक्तिगत सन्तुष्टि प्राप्त करते हैं। इनके लिए नेट बैंकिंग की तुलना में टेली बैंकिंग अधिक उपयुक्त रहती है।

यद्यपि टेली बैंकिंग में भी खाते में धोखाधड़ी की संभावना बन सकती है पर आधुनिक तकनीक तथा कोड नं. व पासवर्ड की कठोरता के कारण यह धोखाधड़ी सामान्यत: संभव नहीं होती है।

टेली बैंकिंग में सामान्यत: बैंक काल सेन्टर की सेवाओं का उपयोग करते हैं तथा ग्राहक को बैंक आने की आवश्यकता नहीं होती है अत: ग्राहक एवं बैंक दोनों के लिए खर्चे की बचत होती है।

सामान्य रूप से टेली बैंकिंग से ग्राहक के खाते में धन जमा करने या धन निकालने की सुविधा के अतिरिक्त अन्य सभी सेवाएं प्रदान की जाती है, परन्तु अब कुछ बैंक खाते से धन निकालने व जमा कराने के लिए फोन पर निर्देशानुसार राह बैंकिंग की सुविधा भी प्रदान करने लगे हैं। इसमें बैंक का कर्मचारी ग्राहक के निर्देशानुसार धन देने या लेने के लिए ग्राहक के घर जाकर सेवा प्रदान करता है।

10.8 बैंकिंग में अन्य विभिन्न नवाचार उत्पाद एवं सेवाएँ

भारतीय बैंकिंग प्रणाली में अपनाये गये उपरोक्त विभिन्न नवोन्मेश के अतिरिक्त और भी कई नवाचार उत्पाद एवं सेवाएं प्रदान की जा रही है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण निम्नलिखित हैं :-

1. **एक प्रकार के खाते में दो प्रकार के खातों की सुविधा** - कई बैंकों में खाता धारक को सावधि जमा युक्त बचत खाते की सुविधा प्रदान की जाती है। इस सुविधा में बचत खाते में एक निश्चित राशि के बाद की राशि पर ग्राहक को स्थाई जमा का ब्याज प्राप्त होता है। यदि ग्राहक द्वारा जारी चैक या उसके द्वारा निकाली जाने वाली राशि बचत खाते के शेष से अधिक है तो अतिरिक्त राशि सावधि जमा खाते से उसके बचत खाते में स्वत: स्थानान्तरित हो जाती है। इस प्रकार ग्राहक के लिए अधिक ब्याज का लाभ भी मिलता है और आवश्यकतानुसार पर्याप्त तरलता भी बनी रहती है।

2. **इलेक्ट्रॉनिक क्लीयरिंग सुविधा** - यह सुविधा जमा और नाम (Credit & Debit) दोनों कार्यों के लिए प्रदान की जाती है। बैंकिंग प्रणाली द्वारा शुरू की गई इस सुविधा का सर्वाधिक लाभ क्लीयरिंग में लगने वाले समय और दबाव को कम करने के रूप में हुआ है। इस प्रकिया के अन्तर्गत अब कम्पनी लाभांश वितरण के लिए अपने अंशधारियों से बैंक खाते की सूचना प्राप्त करके उनकी एक सूची तैयार कर लेती है। सभी अंशधारियों को देय कुल लाभांश का एक चैक और वह सूची अपने बैंक के पास जमा कर देती है। कम्पनी का बैंक उस कुल राशि के योग से कम्पनी के खाते को डेबिट कर देता है तथा कम्पनी से प्राप्त सूची जो स्थानीय केन्द्र तथा अन्य केन्द्रों के अनुसार बनी होती है, को क्लीयरिंग हाउस भेजता है। क्लीयरिंग हाउस सूची को बैंक अनुसार विभक्त करके तुरन्त ही केन्द्र अनुसार बैंकों को इलेक्ट्रोनिक माध्यम से प्रेषित करके भुगतान प्राप्त कर्ताओं के खातों में उनके लाभांश की राशि जमा हो जाती है तथा इसी माध्यम से बैंक भी अपने खातों में आपसी समायोजन भी कर लेते हैं। इस प्रकार इस प्रकिया में कम्पनी के लिए लाखों की संख्या में लाभांश वारण्ट बनाने की तथा उनके भेजने में होने वाली लागत की

बचत हुई तथा साथ ही अंशधारकों के लिए वारण्ट खोने की समस्या व क्लीयरिंग में लगने वाले समय की बचत हुई। बैंकिंग प्रणाली को लाखों चैकों को क्लीअर करने में लगने वाले समय की बचत हुई है।

यही प्रकिया सेवाएँ प्रदान करने वाली संस्थाएँ उन्हें प्राप्त चैकों का भुगतान प्राप्त करने के लिए अपनाती है। इससे संस्था के खाते में राशि तुरन्त जमा हो जाती है और संस्था को अलग अलग बैंक वार क्लीअरिंग के लिए चैक भेजने की समस्या से मुक्ति मिल जाती है।

3. **वैकल्पिक बैंकिंग चैनल्स का बढ़ता हुआ प्रयोग** - दूरसंचार तथा कम्प्यूटर तकनीक के बढ़ते हुए प्रयोग ने बैंकिंग सेवाओं के लिए कई वैकल्पिक चैनल्स खोल दिये। इसके फलस्वरूप पहले जहाँ सभी बैंक सेवाएँ केवल बैंक की शाखा पर ही उपलब्ध थी, अब लगभग 70 प्रतिशत सेवाएँ शाखा के बाहर के चैनल्स पर मिल रही है। इसके फलस्वरूप ग्राहक के लिए बैंक सेवा प्रत्येक दिन 24 घण्टे उपलब्ध हुई है तथा साथ ही बैंक सेवा की लागत बैंक और ग्राहक दोनों के लिए कम हुई है। फलतः बैंकों के लाभ में तथा ग्राहकों की सन्तुष्टि में वृद्धि हुई है। भारत में शाखा के अतिरिक्त चैनल के रूप में ए टी एम, नेट बैंकिंग और मोबाइल बैंकिंग का प्रयोग लिया जा रहा है।

4. **डिमेट खाता खोलने की सुविधा** - 1996 तक कम्पनियों द्वारा जारी किये जाने वाले अंश भौतिक प्रमाण पत्र के रूप में रखे जाते थे। कम्पनियों की बढ़ती हुई संख्या तथा बढ़ते हुए अंश प्रमाण पत्रों के रखरखाव को सुविधाजनक बनाने के लिए अंशों के भौतिक स्वरूप के स्थान पर उन्हें 1996 से खाते में प्रविष्टी के रूप में रखने की प्रकिया प्रारम्भ की गई। दूसरे शब्दों में विनियोक्ता बचत खाते की तरह अपना एक डिमेट अंश खाता खुलवाता है। इस प्रकिया के संचालन के लिए देश में दो संस्थाएँ - (i) नेशनल सिक्योरिटी डिपोजिटरी लिमिटेड तथा (ii) सेंन्ट्रल डिपोजिटरी सर्विसेज लिमिटेड बनाई गई। इन संस्थाओं को डिपोजिटरी कहा जाता है।

ये संस्थाएँ बैंक, वित्तीय कम्पनियों तथा शेयर ब्रोकर्स को अपनी सहभागी बनाकर उनके माध्यम से विनियोक्ताओं के डीमेट खातों का संचालन करती है। चूंकि बैंकों का ग्राहकों से सीधा सम्पर्क रहता है अत: विनियोक्ताओं केअधिकांश डीमेट खाते बैंकों में ही खुले हुए हैं। जो बैंक व संस्थाएं डिपोजिटरी के आधार पर ग्राहकों के डीमेट खातों का संचालन करती हैं, उन्हे डिपोजिटरी सहभागी (Depositery Particpant-DP) कहते हैं। इस प्रकार बैंक ग्राहकों के लिए बचत खातों की तरह शेयर डीमेट खातों का संचालन करती है। जब कोई ग्राहक किसी कम्पनी के अंश बेचता है तो उसके निर्देशानुसार उसके डीमेट खाते में उस कम्पनी के बेचे गये अंश डेबिट कर दिये जाते है, तथा उसी निर्देश में खरीदने वाले व्यक्ति के डीमेट खाते में संबंधित बैंक द्वारा क्रेडिट कर दिये जाते हैं। इस प्रकार बैंक द्वारा ग्राहकों को डीमेट खातों के संचालन की सुविधा प्रदान कर उनके लिए अंशों में निवेश को सुविधाजनक बनाया है।

जनता के लिए प्रामाणिक स्वर्ण सिक्कों की बिक्री - प्रारम्भ में भारत में बैंक स्वर्ण आयात करके ज्वेलरी निर्माताओं को स्वर्ण विक्रय का कार्य किया करते थे। यही यह उल्लेखनीय है कि बैंक विधिक रूप से स्वर्ण के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु में व्यापार नहीं कर सकते। सन् 2000 से आई. सी. आई. सी. आई. बैंक ने सर्वप्रथम आम जनता के स्वर्ण सिक्कों के प्रति रुझान को देखते हुए स्वर्ण सिक्कों को बेचने की योजना प्रारम्भ की, वर्तमान में देश के निजी क्षेत्र के बैंक ही नहीं

वरन् सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक भी सोने के सिक्के बेचने की प्रकिया में संलग्न हैं। बैंकों द्वारा बेचे जाने वाले स्वर्ण सिक्के 99.9 प्रतिशत शुद्धता वाले तथा उच्च क्वालिटी के हालमार्क युक्त होते हैं 1 इन सिक्कों की शुद्धता 99. 5 प्रतिशत से अधिक होने के कारण इनका विक्रय मूल्य अधिक होता इस प्रकार बैंकिंग क्षेत्र में अनेक नवाचार प्रयोग प्रकिया तथा सेवा उत्पादों के रूप में हुए हैं जिनके फलस्वरूप ग्राहकों को भी लाभ हुआ है तथा बैंकों की लागत में कमी आई है तथा लाभदायकता में वृद्धि हुई है।

10.9 बैंकिंग का बदलता परिवेश

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात और विशेष रूप रो पिछले दो दशकों में भारतीय बैंकिंग व्यवस्था में व्यापक बदलाव हुए हैं। इन बदलावों के फलस्वरूप भारत में बैंकिंग का परिवेश भी परिवर्तित हुआ है। इस परिवर्तन को हम निम्न बिन्दुओं से समझ सकते हैं :

1. **शाखा विस्तार** -बैक शाखाएँ जो आजादी के समय 4000 के लगभग थी आज 70,000 हो गई है। 1969 में 64,000 जनसंख्या पर एक बैंक शाखा थी, आज लगभग 15,000 जनसंख्या पर एक बैंक शाखा है। पहले अधिकांश बैंक शाखाएँ केवल शहरी क्षेत्र में खुलती थी, आज कुल शाखाओं का आधे से अधिक भाग ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित है।

2. **सामाजिक बैंकिंग की अवधारणा का विकास** - 1969 तथा 1960 में बैंक राष्ट्रीयकरण के बाद बैंकिंग प्रणाली में ग्रामीण अर्थव्यवस्था और जरूरतमंद को बैंक ऋण देने की प्रकिया आसान हुई है। यह प्रकिया बैंकिंग में नवीनतम तकनीक के प्रवेश के बाद और अधिक सफल हुई है। बैंगलोर में स्वयं सहायता समूह की महिलाएँ मोबाइल बैंकिंग का प्रयोग कर अपने बैंक खाते का संचालन कर रही है। इससे उनके बैंक आने जाने में लगने वाले समय में कार्य करके वे अपनी आय को और बढ़ाने में सफल होती हैं।

3. **अभिनय साख योजनाएँ** - आज बैंक व्यावसायिक उद्देश्यों के साथ टिकाऊ उपभोक्ता सामग्री क्रय करने, यात्रा करने आदि के लिए भी ऋण उपलब्ध करवा रही हैं। इससे एक और लोगों के जीवन स्तर में सुधार आया है, साथ ही उपभोक्ता मांग बढ़ने के कारण देश में उत्पादन, आय एवं रोजगार में भी वृद्धि हुई है।

4. **चलिष्णु बैंक तथा चलिष्णु ए टी एम** - ग्राहकों को विशेष रूप से विद्यार्थियों, कामगारों आदि की सुविधा के लिए मोबाइल बैंक तथा ए टी एम की सुविधा कुछ बैंकों द्वारा कुछ शहरों में प्रदान की जाती है। इस दृष्टि से जयपुर में राजस्थान बैंक की मोबाइल बैंक तथा कोटा में स्टेट बैंक की मोबाइल ए टी एम सुविधा उल्लेखनीय है।

5. **ग्राहक सेवा** - आज बैंकिंग में बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा के चलते प्रत्येक बैंक ग्राहक को सर्वश्रेष्ठ सेवा प्रदान करने लगा है। ग्राहक की रूचि और आवश्यकता के अनुसार बैंक सेवाएँ व उत्पाद -बनाये जा रहे हैं।

6. **बैंकिंग में विविधता** - आज के बैंक सामान्य बैंकिंग कार्य के साथ अन्य सेवाएँ जैसे म्यूचूअल फण्ड, बीमा उत्पाद, मर्चेन्ट बैंकिंग जैसी सेवाएँ भी ग्राहकों को उपलब्ध करा रहे हैं।

7. **बैंकिंग सुविधा 24 X 7** - बैंकिंग में नवीनतम तकनीकों का उपयोग होने से 24 घण्टे सातों दिन तथा सात दिनों घण्टे बैंकिंग की सुविधा ग्राहक को उपलब्ध हो रही है। आज 70

प्रतिशत से अधिक बैंक सेवाएँ ग्राहक को शाखा अतिरिक्त बैंकिंग के अन्य चैनल्स के द्वारा मिल रही है।

इस प्रकार भारत में बैंकिंग का परिवेश एकदम बदल गया है। अब बैंक लाभान्मुखी से सेवा उन्मुखी, शहर उन्मुखी से ग्राम उन्मुखी, विशेष वर्ग उन्मुखी से समाज उन्मुखी हो रही है।

अब भविष्य में बैंकों द्वारा ऋण आवेदनों का परीक्षण भी उनकी साख के स्थान पर परियोजना की कुशलता तथा प्रवर्तक की तकनीकी कुशलता के आधार पर किया जावेगा।

10.10 भारत में निजी क्षेत्र के बैंक

भारत में आजादी से पूर्व आधुनिक बैंकिंग का विकास निजी क्षेत्र में ही प्रारम्भ हुआ था। देश में शुरूआती बैंकिंग संस्थान 1809 में प्रेसीडेन्सी बैंक आफ बंगाल, 1840 में प्रेसीडेन्सी बैंक ऑफ बॉम्बे तथा 1643 में प्रेसीडेन्सी बैंक आफ मद्रास निजी क्षेत्र में ही स्थापित हुए थे। ये ही बैंक आगे चलकर मिलाकर इम्पीयरियल बैंक ऑफ इण्डिया के रूप में तथा 1955 में इम्पीयरियल बैंक सार्वजनिक क्षेत्र में शामिल होकर भारतीय स्टेट बैंक के रूप में परिवर्तित हुए। इस प्रकार 1969 के 14 बैंकों तथा 1980 में 6 बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पूर्व देश में बैंकिंग क्षेत्र में निजी क्षेत्र मे निजी बैंक व्यवस्था ही प्रभावी थी। परन्तु इन बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद देश का लगभग 90 प्रतिशत बैंकिंग व्यवसाय राष्ट्रीयकृत बैंकों के हाथ में आ गया। परन्तु 1990 में आर्थिक सुधार की प्रकिया और उदारीकरण की नीति के बाद अब फिर से देश में निजी क्षेत्र में बैंकिंग संस्थानों की संख्या, उनके महत्व तथा व्यवसाय में वृद्धि की प्रवृति शुरू हुई है। निजी क्षेत्र के बैंक से अभिप्राय उस बैंक से लगाया जाता है जिसकी स्थापना संयुक्त पूंजी कम्पनी के रूप में भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत हुई है तथा जिनका संचालन बैंकिंग नियमन अधिनियम 1949 के अनुसार होता है। 1990 में आर्थिक सुधार की नीति लागू होने के बाद स्थापित निजी क्षेत्र के बैंकों में उच्च तकनीक का अधिकता से प्रयोग करने तथा नवोन्मेशी बैंकिंग सेवाएँ प्रदान करने के कारण इन्हें नवोन्मेशी बैंक भी कहते हैं। आई सी आई सी आई बैक, एक्सीस बैंक, आई डी बी आई बैंक आदि निजी क्षेत्र के प्रमुख बैंक हैं। आई सी आई सी आई निजी क्षेत्र का सबसे बड़ा बैंक है।

आई. सी. आई. सी. आई. बैंक लिमिटेड

बैंकिंग क्षेत्र में सुधारों की प्रकिया के अन्तर्गत आधुनिक तकनीक से संचालित बैंकों की स्थापना के कम में भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम द्वारा आई. सी. आई. सी. आई. बैंक की स्थापना 5 जनवरी 1994 को की गई। इस बैंक की पहली शाखा चैन्नई में जून 1994 में खोली गई। यह बैंक तथा इसकी सभी शाखाएँ पूर्णतया कम्प्यूटरीकृत तथा तकनीकी पद्धति पर आधारित है। यह बैंक घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय बैंकिंग सेवाएँ उपलब्ध करवाता है। सामान्य मजदूर से लेकर कारपोरेट तक इसकी पहुँच है। देश में इन्टरनेट बैंकिंग तथा ए. टी. एम. की सुविधा प्रदान करने में इस बैंक की भूमिका अग्रणी रही है। अपनी स्थापना के 15 वर्षो में ही बैंक ने देश के बैंकिंग क्षेत्र में अपना ऊँचा मुकाम हासिल कर लिया है। यह 'बैंक ग्राहकों को सबसे आधुनिक सुविधाएँ प्रदान करता है।

बोध प्रश्न ख -

1. इन्टरनेट बैंकिंग का अर्थ बताइये।

2. पिन का विस्तारित रूप लिखिए।
3. होम बैंकिंग से क्या अभिप्राय है?
4. डीमेट खाता किस कार्य के लिए खोला जाता है?
5. भारत में सबसे पहले किस बैंक ने स्वर्ण सिक्कों की बिकी का कार्य प्रारम्भ किया ?
6. बैंकों द्वारा बेचे जाने वाले स्वर्ण सिक्कों का मूल्य बाजार से ऊँचा क्यों रहता है ?
7. इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण कब हुआ थ?
8. बताइये कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं या असत्य
   (i) ऑनलाइन बैंकिंग बिना इन्टरनेट के उपयोग में ली जा सकती है।
   (ii) टेली बैंकिंग का प्रयोग करके ग्राहक अपने खाते से तुरन्त धन निकाल सकता है।
   (iii) भारत में डी मेट खातों का संचालन डिपोजिटरीज के द्वारा सहभागी संस्थाओं के सहयोग से किया जाता है।
   (iv) भारत में बैंक स्वर्ण तथा अन्य वस्तुओं के क्रय विक्रय कार्य करने के लिए अधिकृत है।
   (v) आई सी आई सी आई बैंक भारत में निजी क्षेत्र का सबसे बड़ा बैंक है।
   (vi) भारतीय स्टेट बैंक का 1955 से पूर्व नाम इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया था।

10.11 सारांश

विश्व में ज्ञान एवं तकनीक में हुए विकास ने बैंकिंग सहित अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। बैंकिंग क्रियाकलापों में नवीन विचार तथा तकनीक के प्रयोग से ग्राहकों के लिए बैंकिंग प्रकिया सरल, सुगम तथा हर समय उनकी पहुँच के अन्दर आ गई। बैंकिंग में हुए नवीन परिवर्तनों को समग्र रूप में बैंकिंग नवोन्मेश कहते हैं।

वैश्वीकरण तथा उदारीकरण के कारण बैंकिंग उद्योग में प्रतिस्पर्धा बढ़ी है, ऐसे में केवल वे बैंक ही विकास कर सकेंगे जो ग्राहकों को सर्वोच्च क्वालिटी सेवा देते हुए नवोन्मेश के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहेंगे। बैंकिंग नवोन्मेश में मुख्य रूप से ई. बैंकिंग, नेट बैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग, टेली बैंकिंग आदि को बैंकिंग प्रक्रियात्मक परिवर्तन के रूप में सम्मिलित करते हैं। इनके साथ ही ए. टी. एम, क्रेडिट कार्ड, डेबिट कार्ड आदि बैंकिंग तंत्र द्वारा प्रदत्त ऐसे नये सेवा उत्पाद हैं जिन्होंने ग्राहक के जीवन को आसान और सुविधाजनक बना दिया।

ई. बैंकिंग के द्वारा धन का स्थानान्तरण आसान हो गया है। ए. टी. एम. कार्ड की सुविधा से 24 घण्टे धन निकालने एवं जमा करने की सुविधा सुलभ हुई है। डेबिट और क्रेडिट कार्ड ने बिना ब्याज के ग्राहक को साख सुविधा उपलब्ध करवाई है.। इन्टरनेट और मोबाइल बैंकिंग से ग्राहक अपने कार्य स्थल से ही अपने बैंक खाते का संचालन कर सकता है। टेली बैंकिंग उन ग्राहकों के लिए उपयोगी है जिनके पास इन्टरनेट कनेक्टीविटी नहीं है तथा जो बैंककर्मी से वार्ता कर के ही सन्तुष्टि अनुभव करते हैं।

आज बैंक ग्राहक को सावधि जमा युक्त बचत खाते की सुविधा उपलब्ध करवा रहे हैं, टिकाऊ उपभोक्ता सामग्री के लिए ऋण मिल रहा है, विनियोग के लिए डिमेट खाते की सुविधा बैक द्वारा दी जा रही हैं।

इन सब नवोन्मेशी परिवर्तनों से भारत में बैंकिंग परिवेश एकदम बदल गया है। बैंकिंग क्षेत्र मे सुधारों के पश्चात आधुनिक तकनीक से युक्त निजी क्षेत्र में नये बैंक - आई. सी. आई. सी. आई. बैंक, आई. डी. बी. आई. बैंक जैसे नवोन्मेशी बैंक स्थापित हुए है।

10.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न क

प्रश्न 6. -

(i). असत्य (ii). असत्य (iii). सत्य

(iv). सत्य (v). सत्य

बोध प्रश्न ख

प्रश्न 8. -

(i). असत्य (ii). असत्य (iii). सत्य

(iv). असत्य (v). सत्य (vi). सत्य

10.13 अभ्यास प्रश्न

लघुउत्तरात्मक प्रश्न

1. इन्टरनेट बैंकिंग संचालन की प्रकिया समझाइये।
2. सुरक्षित इन्टरनेट बैंकिंग के लिए ग्राहक को क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिये?
3. टेलीफोन बैंकिंग किन ग्राहकों के लिए विशेष उपयोगी है?
4. डी मेट खाते के संचालन की प्रकिया पर एक टिप्पणी लिखिये?
5. सामाजिक बैंकिंग से क्या अभिप्राय है?
6. 1980 में कितने बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ था?
7. नवोन्मेशी बैंक किन बैंकों को कहा गया है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. इन्टरनेट बैंकिंग ग्राहकों तथा बैंकों के लिए किस प्रकार लाभदायक है?
2. इलेक्ट्रोनिक क्लीयरिंग सुविधा की कार्यप्रणाली किस प्रकार सम्पादित होती है? समझाइये। न इससे बैंकिंग प्रणाली को क्या लाभ होता है?
3. भारत में बैंकिंग के बदलते परिवेश पर एक लेख लिखिये?

10.14 संदर्भ ग्रन्थ

गुप्ता, वशिष्ठ एवं स्वामी – बैंकिंग एवं वित्त

त्रिवेदी, सिंह, नागर, भण्डारी – भारतीय बैंकिंग प्रणाली

एस. गुरूस्वामी – बैंकिंग इन दी न्यू मिलेनियम

सी. एस. वी. मुर्थी – ई. कामर्स

इकाई - 11

बैंक अग्रिम- विनियोजन के सिद्धान्त, सुरक्षित एवं असुरक्षित अग्रिम

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 बैंक कोषों का विनियोजन

11.3 बैंक विनियोजन के सुदृढ़ सिद्धान्त

11.4 बैंक ऋण तथा प्रतिभूतियाँ

11.5 गारन्टी, रहन, बन्धक एवं दृष्टि बंधक

11.8 प्रभार एवं पंजीयन सम्बन्धी प्रावधान।

11.7 गैर निष्पादित आस्तियाँ

11.8 सारांश

11.9 शब्दावली

11.10 अभ्यास प्रश्न

11.11 संदर्भ ग्रन्थ

11.0 उद्देश्य

इस इकाई व अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं:-

- बैंक कोषों के विनियोजन की प्रारम्भिक जानकारी प्रदान करना।
- बैंकों द्वारा प्रदत्त सुरक्षित एवं असुरक्षित श्रमिकों की प्रक्रिया से अवगत कराना।
- बैंक विनियोजन के सुदृढ़ सिद्धान्तों की जानकारी प्रदान करना।
- बैंक अग्रिम व गारन्टी रहन, गिरवी इत्यादि के प्रावधानों का ज्ञान प्रदान करना।
- बैंकों की गैर निष्पादित आस्तियों के बारे में बताना।

11.1 प्रस्तावना

बैंकों के दो प्रमुख कार्य हैं जनता से निक्षेप ग्रहण करना तथा उसका लाभकारी विनियोजन करना। बैंकों का दायित्व है कि वह जनता के धन की सुरक्षा करें तथा राष्ट्र हित में उसका कुशल विनियोजन कर देश के विकास में सहभागी बनें। अत: बैंकों द्वारा अपने कोषों का बड़ी सावधानी एवं चातुर्यता से अग्रिमों के रूप में पुन: जनता में वितरित कर व्याज के रूप में आय अर्जित की जाती है। बैंकिंग विनियम अधिनियम 1949 के प्रावधानों के अनुरूप ही बैंकों द्वारा ऋण एवं अग्रिम प्रदान किये जाते हैं। बैंक द्वारा सामान्यत: लाभकारी एवं अलाभकारी दोनों तरह के विनियोजन किये जाते हैं। अलाभकारी विनियोजन में निष्क्रिय स्कन्ध अथवा बिना आय अर्जन करने वाला विनियोजन, बैंक में नकद रखे गये कोष तथा वैधानिक रिजर्व सम्मिलित किये

जाते हैं। लाभकारी विनियोजन मुख्यत: ऋण एवं अग्रिम के रूप में होते हैं जो अल्पकालिक एवं मध्यम अवधि के होते हैं। बैंक सुरक्षित एवं असुरक्षित दोनों प्रकार के ऋण प्रदान करते हैं। बैंकों द्वारा विविध योजना में जनता की आवश्यकता, आम जनता एवं व्यापारी वर्ग की जरूरतों के आधार पर बैंकें अग्रिमों व विविध स्वरूप देखने को मिलते हैं। बैंकों का विनियोजन सुदृढ़ सिद्धान्तों पर आधारित होता है। बैंकों द्वारा अग्रिम प्रदान करते समय तीन सिद्धान्तों - तरनता सुरक्षा एवं लाभदायी में संतुलन बनाए रखने का प्रयास किया जाता है। बैंक अग्रिम का मूल आधार ये तीन सिद्धान्त होते हैं। तीनों सिद्धान्तों में कुशल संतुलन स्थापित करना ही बैंकों की अग्रिम नीति के मूल तत्व पर निर्भर करती करता है।

11.2 बैंक कोषों का विनियोजन

बैंकों द्वारा प्राप्त कोषों का विनियोजन बैंकिंग विनिमय अधिनियम 1949 के प्रावधानों के अनुरूप किया जाता है। सामान्यत: बैंक अपने कोषों का विनियोजन निम्नानुसार करता है:-

1. -अलाभकारी विनियोजन (Non Profitable Investment)
2. -लाभकारी (Profitable Investment)

दोनों प्रकार के विनियोजनों का संक्षिप्त ज्ञान विद्यार्थियों के लिए आवश्यक हो जाता है। अत: इसका संक्षिप्त विवरण विद्यार्थियों की जानकारी के लिए दिया जा रहा है।

1. -अलाभकारी विनियोजन

बैंकों के अलाभकारी विनियोजनों में बैंक स्थापना के समय आधारभूत संरचना में विनियोजित धनराशि यथा फर्नीचर, भवन, उपकरणों पर एक बड़ी राशि व्यय की जाती है। यह निष्क्रिय स्वरूप आवश्यक, किन्तु अलाभकारी विनियोग होता है। इसी प्रकार बैंकों द्वारा बेसिक मांग की पूर्ति हेतु नकद कोष रखा जाता है। इस प्रकार बैंक की तिजोरी में पड़ी धनराशि भी अप्रत्यक्षत: अलाभकारी विनियोजनों की श्रेणी में आती है। इसी प्रकार बैंकों को बैंकिंग विनिमय अधिनियम 1949 के अनुसार रिजर्व बैंक के निर्देशानुसार एक बड़ी धनराशि वैधानिक आवश्यकता पूरी करने हेतु कोष के रूप में रखती होती है। जिसे नकद कोषानुपात तथा वैधानिक तरल कोषानुपात कहते हैं।

बैंकों के अलाभकारी निवेश उनकी वैधानिक आवश्यकता पर निर्भर करते हैं। साथ ही जनता की बैंकिंग आदत, बैंक खातों की प्रकृति बैंकिंग संरचना पर निर्भर करती है। साथ ही बैंकों के प्रति जनता का विश्वास भी महत्वपूर्ण होता है।

2. -लाभकारी विनियोजन

बैंक व्यवसायिक सेवा प्रदान करने वाली संस्थान है। अत: कोषों के विनियोजन से लाभ अर्जित करना ही बैंकों की सफलता का मूल ध्येय है। बैंकों का मुख्य उद्देश्य अपने लाभों का अधिकतम करना है। इस दृष्टि से बैंक अपनी वैधानिक आवश्यकता पूरी करने के पश्चात सम्पूर्ण धनराशि का विनियोजन लाभ के उद्देश्य से करता है जो ऋण एवं अग्रिम के रूप से किये जाते हैं। अति अल्प काल के लिए उधार दी गई राशि याचना राशि कहलाती है। यह ऐसा अग्रिम है जो बैंकों द्वारा बहु त अल्प समय के लिए उधार दिया जाता है। इसके अतिरिक्त व्यापारिक बिलों को कटौती तथा डेयरी बिल इत्यादि प्रतिभूतियों में बैंकों द्वारा विनियोजन किया जाता है जो अल्पकाल जो 90 से 150 दिन के लिए होता है।

बैंक एक बड़ी धनराशि कार्यों के लिए जनता को अग्रिम के रूप में प्रदान करता है जो, एक वर्ष से 20 वर्ष तक की अवधि के लिए हो सकता है। बैंक द्वारा अग्रिम कई प्रकार से दिया जाता है। इसके प्रत्यक्ष अग्रिम, नकद कोष, अधिविकर्ष इत्यादि प्रमुख हैं। बैंक सामान्यत: ग्राहक की पुनर्भुगतान क्षमता को ध्यान में रखते हुए अग्रिम प्रदान करता है। अग्रिमों के पीछे बैंक द्वारा मर्यादा सुरक्षा के उपाय किये जाते हैं। प्रस्तुत अध्याय में विद्यार्थियों को बैंक अग्रिमों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्रदान की जा रही है।

11.3 बैंक विनियोजन के सुदृढ़ सिद्धान्त

बैंकों का गुरूतर दायित्व जनता से प्राप्त बचतों का कुशलतापूर्वक विनियोजन कर लाभ प्राप्त करना है। उनके लिए बैंक को बैंकिंग विधान का पालन करते हुए उचित बैंकिंग नीति अपनानी होती है। बैंक की श्रेष्ठ विनियोजक नीति सुदृढ़ सिद्धान्तों पर आधारित होती है। उन सिद्धान्तों का ध्यान रखते हुए बैंक अपनी विनियोजन नीति तैयार करता है। सामान्यत: बैंकों द्वारा निम्नांकित सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए विनियोग नीति तैयार की जाती है -

1- अस्थिरता का सिद्धान्त
2- तत्परता का सिद्धान्त
3- लाभदायकता का सिद्धान्त
4- उत्पादकता का सिद्धान्त
5- जोखिम की विविधता का सिद्धान्त
6- विक्रयतता का सिद्धान्त
7- सामाजिकता का सिद्धान्त
8- विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त

उपर्युक्त सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर बैंकों द्वारा विनियोग नीति तैयार की जाती है। इन्हें बैंकों की विनियोजन नीति के प्रमुख तत्व भी कह सकते हैं। सुरक्षा का सिद्धान्त बैंकों के लिए अति महत्वपूर्ण है। बैंक जनता के धन का संरक्षक है। अत: उसकी सुरक्षा को ध्यान में रखना बैंक का कर्तव्य है। अत: धन विनियोजित करते समय बैंकों को उसकी वापसी व सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए विनियोजित करना होता है। इसी प्रकार बैंक को अपने ग्राहकों को मांगने पर धनराशि लौटानी होती है। अत: आवश्यकता पड़ने पास बैंकों के पर ग्राहकों की मांग को पूरा करने के लिए। पर्याप्त कोष उपलब्ध होना चाहिए। अत: तरलता का सिद्धान्त अपनाते हुए बैंक अपनी विनियोजित नीति में पर्याप्त तरलता का ध्यान रखते हैं। बैंक एक व्यावसायिक संस्थान है। अत: लाभ कमाना उसका प्रथम अधिकार है। अत: बैंकों के विनियोग नीति का मूल आधार ही लाभ कमाना होता है। अत: लाभ का सिद्धान्त है। यद्यपि लाभ बैंकों के लिए आवश्यक है तथापि अधिक लाभदायकता के स्थान पर स्थायी आय अर्जन पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये। इसे ही उत्पादकता का सिद्धान्त कहा जाता है। बैंक के लिए यह आवश्यक है कि वे लाभदायकता के साथ-साथ उत्पादन को भी महत्व देवें। धन की सुरक्षा बैंकों के अस्तित्व के लिए आवश्यक है। अत: विशेषज्ञों का यह कहना है कि बैंक विनियोग नीति जोखिम की विविधता के सिद्धान्त पर आधारित होनी चाहिए। अर्थात् विनियोजित करते समय विविधता का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए। एक ही परियोजना में अधिक विनियोजित नहीं करना चाहिए। कहावत भी है कि ''डोन्ट

पुट ऑल द एग्ज इन सेम बास्केट'' अर्थात् एक ही डलिया में सारे अण्डे नहीं रखने चाहिये क्योंकि डलिया के गिरने पर सभी अण्डे फूटने का खतरा है। इसी प्रकार एक ही उद्‌योग में अधिकांश धन को विनियोजित करना भी खतरनाक है।

अत: जोखिम का बैंकों द्‌वारा बंटवारा किया जाना चाहिए। थोड़ा-थोड़ा धन अलग-अलग कार्यों में विनियोजित किया जाना चाहिए।

बैंकों को अपना धन विनियोजित करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसी प्रतिभूति में वह धन विनियोजित करें जो बाजार में आसानी से विक्रयशीलता रखते हो ताकि आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग किया जा सके। बैंक सेवा उद्‌योग होने के कारण विशेषज्ञ यह मानते हैं कि बैंकों पर सामयिक उत्तरदायित्व भी है। अत: बैंक की विनियोजन नीति व्यावसायिक दृष्टिकोण के साथ सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी करें यथा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों को ऋण प्रदान करना, कमजोर एवं सर्वहारा वर्ग के उत्थान हेतु संचालित योजनाओं में धन विनियोजित करना। यह सामाजिकता के सिद्धान्त के अंतर्गत आता है। बैंकों की विनियोग नीति भौगोलिक विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित होती है। इसका महत्वपूर्ण लाभ रहता है कि किसी क्षेत्र विशेष में प्राकृतिक आपदा के कारण कोई संकट उत्पन्न होता है तो भी बैंक को एक क्षेत्र में नुकसान हो तो दूसरे क्षेत्र से पूरा कर सकता है।

इस प्रकार बैंकों की सुदृढ़ विनियोग नीति कुछ प्रमुख सिद्धान्तों पर आधारित रहती है। इसमें तरलता, सुरक्षा तथा लाभदायक के सिद्धान्त अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। तीनों सिद्धान्त आपस में विरोधाभासी हैं यदि बैंक तरलता के सिद्धान्त का पूर्णरूपेण पालन करें तो लाभदायकता कम प्राप्त होगी तथा यदि लाभदायकता को महत्व दिया जाय तो धन तरल कम होगा। यदि ज्यादा सुरक्षित विनियोजन किया जाता है तो तरलता एवं लाभदायकता कम प्राप्त होगी।

अत: बैंकों के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी विनियोजन नीति तैयार करते समय इन तीनों सिद्धान्तों में संतुलन बनाये रखे। इनमें जितना संतुलन होगा बैंक उतना ही प्रगति करेगा।

11.4 बैंक ऋण एवं प्रतिभूतियाँ

बैंक समाज के विभिन्न वर्गो को धन की आवश्यकता पूर्ति करने हेतु ऋण एवं अग्रिम प्रदान करता है। वे व्यक्ति, संगठन, व्यवसाय जिन्हें अपने लिए उधार लेने की आवश्यकता होती है वे बैंक में निर्धारित प्रावधान के अनुसार आवेदन करते हैं। बैंक द्‌वारा उनके आवेदनों पर विचार कर निर्धारित संविदा ऋण स्वीकृत किया जाता है। बैंक ऋण स्वीकृत करते समय ग्राहक की भुगतान क्षमता का अध्ययन करता है। साथ ही अपने ऋण को सुरक्षित करने हेतु गारन्टी अथवा धरोहर के रूप में प्रपत्र रखता है। इस प्रकार बैंक अपने अग्रिमों को पूरी तरह सुरक्षा प्रदान करता है। बैंक द्‌वारा ग्राहक का चरित्र, उसकी साख, अग्रिम लेने का उद्देश्य, उसकी पर्याप्तता पुनर्भुगतान क्षमता का पूरा-पूरा आकलन करने के पश्चात् ही बैंकों द्‌वारा अग्रिम प्रदान दिया जाता है। बैंकों द्‌वारा ऋण स्वीकृति हेतु प्रक्रिया को अपनाया जाता है तथा उसके समर्थन मैं प्रतिभूतियों का प्रयोग भी होता है। इस सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा किया जाना सामयिक होगा।

बैंकों की ऋण स्वीकृति की प्रक्रिया

सामान्यत: बैंकों द्वारा ऋण अथवा अग्रिम स्वीकृति हेतु प्रिन्टेड आवेदन पत्रों का प्रयोग किया जाता है। जिसमें विस्तार पूर्वक ऋण की शर्तों का उल्लेख होता है। साथ ही इसी आवेदन पत्र में ग्राहक नाम, पूर्ण पता व्यवसाय, आय, आवेदित ऋण की राशि, ऋण का प्रकार तथा भुगतान अवधि इत्यादि का उल्लेख होता है। आवेदक निर्धारित आवेदन पत्र पर सम्पूर्ण पूर्तियाँ कर आवेदन करता है। साथ ही चाहे गये दस्तावेज भी लगाये जाते हैं। यदि ऋण व्यवसायिक प्रतिष्ठान के लिये लिया जा रहा है तो उसके अंकेक्षित लेखों का अध्ययन किया जाता है। आवेदन पत्र प्राप्त होने पर बैंक के 'लोन ऑफिसर' द्वारा आवेदन पत्र की जांच की जाती है। उल्लेखित तथ्यों तथा संलग्न दस्तावेजों का अध्ययन किया जाता है। तत्पश्चात ग्राहक की साक्ष्य एवं चरित्र की जानकारी प्राप्त की जाती है। संतुष्ट होने पर ऋण स्वीकृत किया जाता है तथा ग्राहक के खाते में चेक द्वारा भुगतान किया जाता है।

प्रतिष्ठित व्यवसायियों को बैंक के द्वारा अग्रिम देने की प्रक्रिया का सरलीकरण किया जाता है। बैंक द्वारा अच्छी साख रखने वाले ग्राहक को **अधिविकर्ष** के माध्यम से भी अल्पकालीन अग्रिम प्रदान किया जाता है। इसके अन्तर्गत बैंक द्वारा ग्राहक को उसके चालू खाते में जमा से अधिक राशि निकालने की छूट दी जाती है। इसके लिए बैंक ग्राहक की आर्थिक स्थिति एवं व्यवसाय के स्तर के आधार पर धनराशि निकालने की छूट प्रदान करता है। जिसे ''ओडी लिमिट" कहा जाता है। यह अग्रिम सुविधा बैंक की इच्छा पर निर्भर करती है। इस पर दैनिक आधार पर बैंक द्वारा ब्याज वसूल किया जाता है। कई बार बैंक द्वारा अपने प्रतिष्ठित ग्राहकों को ऋण स्वीकृत करने में बार-बार औपचारिकताओं से बचाने हेतु एक साख सीमा निर्धारित कर देता है जिसे "नकद साख" कहा जाता है तथा "नकद साख खाता" खोला जाता है। जब भी ग्राहक को धनराशि की जरूरत होती है वह उस साख सीमा के अंतर्गत खाते में से धनराशि आहरित करता है। अतिरिक्त धनराशि पर निर्धारित दर से व्याज लगाया जाता है। बैंक द्वारा इस सुविधा के लिए ग्राहक की मूर्त सम्पत्तियां जमानत के रूप में रखी जाती है। प्रत्यक्ष ऋण का अग्रिम बैंकों द्वारा उधार देने का परम्परागत तरीका है।

बैंकों द्वारा ग्राहक को एक मुश्त राशि स्वीकृत कर प्रदान की जाती है। यह राशि निर्धारित उद्देश्य के लिए दी जाती है तथा निश्चित अवधि के लिए दी जाती है। बैंक द्वारा लिखित दर से ब्याज भी लिया जाता है। बड़े - बड़े व्यवसायियों द्वारा लिखे गये विनियम बिलों की कटौती कर ग्राहक को खास सुविधा उपलब्ध कराता है। विनिमय बिल एक व्यवसायी द्वारा दूसरे व्यवसायी पर लिखा जाता है। ऐसे विनिमय बिलों को धनराशि की आवश्यकता पड़ने पर बैंक द्वारा कटौती करायी जाती है। अर्थात बैंक बिल में उल्लेखित राशि से कुछ कम राशि का भुगतान करता है। निर्धारित अवधि पूरी होने पर बैंक बिल का पूर्ण भुगतान बिल के स्वीकारकर्ता से प्राप्त कर लेता है।

बैंक प्रतिभूतियाँ (Bank Securities)

बैंक अपने ऋणों के पुनर्भुगतान को सुनिश्चित करने हेतु ऋण स्वीकृति पूर्व प्रतिभूति लेता है जो साख के रूप में बैंक द्वारा रखी जाती है। प्रतिभूति भौतिक एवं अभौतिक हो सकती है। अच्छी ख्याति रखने वाले ग्राहक को व्यक्तिगत प्रतिभूति पर भी अग्रिम स्वीकृत किया जाता है। ऐसे अग्रिमों को असुरक्षित अग्रिम कहा जाता है। इसके अतिरिक्त बैंक जब भौतिक प्रतिभूति के आधार पर ऋण प्रदान करता है तो वह सुरक्षित ऋण कहलाते हैं। इसमें बैंक द्वारा वस्तुओं की

रहन, बंधक, अथवा दृष्टि बंधक रखा जाता है। साथ ही विक्रय योग्य प्रतिभूति के आधार पर भी ऋण अथवा अग्रिम प्रदान किया जाता है। विपणन योग्य प्रतिभूति के आधार पर ऋण प्रदान करते समय बैंक द्वारा प्रतिभूति की विपणनशीलता एवं वास्तविक बाजार मूल्य को ध्यान में रखा जाता है। बैंक द्वारा अधिकांशत: सुरक्षित अग्रिम ऋण प्रदान किया जाता है। किन्तु ग्राहक की ख्याति के आधार पर एक निश्चित राशि पर व्यक्तिगत जमानत पर ऋण प्रदान किये जाते हैं।

11.5 रहन (गिरवी) गारन्टी, बंधक एवं दृष्टि बंधक

बैंक सामान्यत: ग्राहकों को ऋण प्रदान करते समय उनके पुनर्भुगतान को सुनिश्चित करता है। पुनर्भुगतान को सुनिश्चित करने हेतु प्रभार उत्पन्न किया जाता है। इस हेतु बैंक द्वारा प्रतिभूतियां ली जाती है। उनके माध्यम से बैंक के पक्ष में प्रभार उत्पन्न किया जाता है। प्रमुख रूप से रहन, गारन्टी, बंधक एवं दृष्टि बंधक के माध्यम से प्रभार उत्पन्न किया जाता है। इनका इस प्रकार है:-

रहन (गिरवी)

भारतीय संविदा अधिनियम 1872 की धारा 172 में रहन अथवा गिरवी को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि किसी ऋण के भुगतान को पूरा करने की प्रतिभूति के रूप में माल की सुपुर्दगी करना रहन अथवा गिरवी रखना कहलाता है। इसके अन्तर्गत बैंक ऋण के बदले ऋण के पुनर्भुगतान होने तक माल अथवा वस्तु को अपनी सुरक्षा में रखता है। पुनर्भुगतान होने पर माल अथवा वस्तु पुन: ग्राहक को लौटाई जाती है। जहाँ माल की सुपुर्दगी बैंक द्वारा अपनी ऋण राशि की सुरक्षा हेतु दी जाती है। गिरवी के अन्तर्गत माल की वास्तविक अथवा सांकेतिक सुपुर्दगी होना आवश्यक होता है। अर्थात् ग्राहक (ऋणी) अपना माल बैंक को सुपुर्द करें या माल गोदाम की चाबी बैंक को समर्पित कर देवें एवं बैंक अधिकारी से अपने अधिकार में ले लेवें। गिरवी में बैंक का यह कर्तव्य होता है कि ऋण का पुनर्भुगतान होते ही माल ग्राहक (को सुपुर्द कर देवें।) संविदा अधिनियम की धारा 161 के अनुसार बैंक यदि माल की सुपुर्दगी समय पर नहीं करता है तो हानि के लिए ग्राहक के प्रति उत्तरदायी हो जाता है। यदि गिरवी रखी वस्तु से बैंक को कोई आय प्राप्त होती है तो धारा 163 के अन्तर्गत उस पर ऋणी का अधिकार होता है। यदि ऋण का पुनर्भुगतान नहीं होता है तो बैंक धारा 176 के अनुसार ऋणी को आवश्यक सूचना देकर माल अथवा वस्तु को बेच सकते है। वस्तु विक्रय के पश्चात् भी पूर्ण वसूली नहीं होती है तो बैंक शेष राशि के लिए ऋणी पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।

गारन्टी

भारतीय संविदा अधिनियम 1872 की धारा 126 के अनुसार गारन्टी से अभिप्राय ऐसे अनुबन्ध से है जिसमें एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को तीसरे व्यक्ति द्वारा त्रुटि करने पर उसके वचन के निष्पादन का दायित्व लेता है। इस प्रकार बैंक द्वारा ग्राहक (ऋणी) के ऋण के समय पर भुगतान की दो व्यक्तियों द्वारा गारन्टी ली जाती है। अर्थात् वचन दिया जाता है कि ऋणी द्वारा ऋण भुगतान नहीं किये जाने पर गारन्टीदाता द्वारा ऋण का भुगतान किया जायेगा। इस प्रकार बैंक की शर्तों के अनुसार गारन्टीदाता भी ऋणी ग्राहक की तरह ऋण भुगतान हेतु व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है तथा बैंक ऋणी की तरह ही गारन्टीदाता पर मुदकमा चलाकर ऋण राशि वसूल कर सकता है। यद्यपि संविदा अधिनियम के अनुसार ऋणी का ऋण

भुगतान का प्राथमिक दायित्व होता है तथा गारन्टी दाता का द्वितीयक दायित्व होता है। किन्तु बैंक ऋण के सम्बन्ध में दोनों का समान दायित्व निर्धारित किया गया है। अत: बैंक ऋणों के लिए गारन्टी भी एक सुरक्षित एवं ठोस प्रभार है। गारन्टी का प्रमुख लाभ यह है कि ग्राहक को व्यवसाय वृद्धि हेतु अतिरिक्त ऋण प्राप्त होता है तथा बैंक को यह लाभ है कि उसका प्रदत्त ऋण अधिक सुरक्षित हो जाता है।

बंधक

सम्पत्ति हस्तान्तरण अधिनियम 1882 की धारा 58 के अनुसार ऋणी द्वारा ऋण की सुरक्षा के लिए स्थायी सम्पत्ति के हित का हस्तांतरण ऋणदाता के नाम करना बंधक कहलाता है। इसके अन्तर्गत बैंक द्वारा दीर्घकालीन ऋणों को सुरक्षित करने हेतु बंधक प्रभाव का उपयोग किया जाता है। इसमें बंधक विलेख तैयार कर सशर्त सम्पत्ति का हस्तान्तरण बैंक के पक्ष में किया जाता है। ऋण एवं व्याज के भुगतान के पश्चात् ऋणी को सम्पत्ति के सम्बन्ध में समस्त अधिकार प्राप्त हो जाता है। सामान्यत: वैधानिक रूप से सम्पत्ति का हस्तान्तरण वैधानिक बंधक कहलाता है। इसके अतिरिक्त सरल बंधक, सशर्त बंधक, इत्यादि कई रूप इसमें दिखाई देते है। बंधक की विधिवत रजिस्ट्री की जाती है। बिना रजिस्ट्री के बंधक वैद्य नहीं होता है।

बंधक एवं गिरवी में अन्तर

बंधक एवं गिरवी प्रभार ऋण की सुरक्षा हेतु बैंक द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। दोनों में मूलभूत अन्तर यह है कि गिरवी चल सम्पत्ति की रखी जाती है जबकि बंधक अचल सम्पत्ति को रखा जाता है। गिरवी में ऋण का पुनर्भुगतान करने की दशा में बिना न्यायालय की अनुमति के वस्तु बेचने का अधिकार ऋणदाता (बैंक) को प्राप्त हो जाता है। जबकि बंधक में न्यायालय की अनुमति लेना आवश्यक है। गिरवी में कोई प्रथक अनुबन्ध नहीं बनाई जाती। जबकि बंधक में बंधक प्रलेख तैयार कर रजिस्ट्री कराई जाती है। गिरवी में सामान्यतया वस्तु की वास्तविक सुपुर्दगी आवश्यक होती है। जबकि बंधक में सुपुर्दगी वास्तविक एवं रचनात्मक हो सकती है।

दृष्टि बंधक

गिरवी अथवा रहन के अतिरिक्त चल सम्पत्ति पर प्रभार उत्पन्न करने की दूसरी विधि दृष्टि बंधक या प्राधीयन है। इसके अन्तर्गत ऋणी द्वारा बैंक को यह वचन दिया जाता है कि बैंक द्वारा मांगने पर सम्पत्ति बैंक को सौंप दी जायेगी। वास्तव में सम्पत्ति का उपयोग ऋणी द्वारा किया जाता है। अत: उसके अधिकार पत्र बैंक के पास सुरक्षित रखे जाते हैं। बंधक रखी गई सम्पत्ति के उपर इस तथ्य का नोटिस अंकित किया जाता है कि वह सम्पत्ति बैंक के पास बंधक हैं। दृष्टि बंधक में बैंक को ऋणी के विरूद्ध ऋण भुगतान न होने पर वाद दायर करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। न्यायालय के आदेश से सम्पत्ति के विक्रय का अधिकार भी प्राप्त हो जाता है। ऋणी को यह लाभ है कि वह सम्पत्ति का उपयोग यथावत जारी रखकर आय अर्जन करके ऋण का भुगतान कर सकता है। सामान्यतया मशीन, उपकरण, वाहन एवं दुकान इत्यादि के ऋणों में बैंक द्वारा दृष्टिबंधक प्रभार का उपयोग किया जाता है।

रहन एवं दृष्टिबंधक में यह अन्तर है कि रहन में वस्तु की वास्तविक सुपुर्दगी अवश्य होती है जबकि दृष्टि बंधक में वास्तविक सुपुर्दगी जरूरी नहीं होती है। केवल अधिकार पत्र ही ऋणी द्वारा बैंक में समर्पित किये जाते हैं। गिरवी में ऋण भुगतान न होने की दशा में बिना

न्यायालय की अनुमति के माल विक्रय का अधिकार बैंक को प्राप्त हो जाता है। जबकि दृष्टि बंधक में विक्रय हेतु न्यायालय की अनुमति आवश्यक होती है।

11.6 प्रभार एवं पंजीयन सम्बन्धी प्रावधान

प्रभार ऐसी व्यवस्था है जिसमें ऋणी की वर्तमान में भावी सम्पत्ति ऋण के भुगतान हेतु प्राप्त हो जाती है। इसमें वास्तविक रूप से सम्पत्ति का हस्तांतरण नहीं होता है। वरन् बैंक को ऋण का भुगतान नहीं किया जाता है तथा सम्पत्ति भारित हो जाती है एवं बैंक उसका उपयोग ऋण के पुनर्भुगतान हेतु कर सकता हे। कम्पनी अधिनियम की धारा 125 के अनुसार बैंक द्वारा प्रभार उत्पन्न करने पर उसका रजिस्ट्रेशन कराया जाना आवश्यक होता है। इसके प्रावधानानुसार -

- अल्प अवधि पर देय बकाया राशि पर प्रभार।
- चल सम्पत्ति पर प्रभार
- ऋण पत्रों के निर्गमन पर सुरक्षार्थ उत्पन्न प्रभार।
- देनदारियों पर प्रभार
- व्यापारिक वस्तुओं के साख पर प्रभार।
- अस्थायी सम्पत्ति पर प्रभार।

प्रभार की रजिस्ट्री, रजिस्ट्रार कार्यालय में कराई जाती है। प्रभार में जो भी परिवर्तित किया जाता है तो उसकी सूचना रजिस्ट्रार कार्यालय को देनी होती है। प्रभार के अन्तर्गत भुगतान हो जाता है तो प्रभार समाप्ति की सूचना भी रजिस्ट्रार कार्यालय को दी जाती है। रजिस्ट्रेशन के बिना प्रभार वैद्य नहीं माना जाता है।

11.7 गैर निष्पादित आस्तियाँ

जहाँ एक ओर बैंकों द्वारा साज-सुविधाओं का किया जी रहा है। आज बैंक ऋण सरल सस्ते व आसानी से स्वीकृत होने लगे हैं। बैंकों द्वारा भी लाभकारी ऋणों को महल दिये जाने के कारण ऋण एवं अग्रिमों का विस्तार तेजी से हो रहा है। जहां एक ओर ऋण एवं अग्रिमों की मात्रा में बढ़ोतरी हुई है वहीं दूसरी ओर ग्राहकों के समक्ष ऋण के पुनर्भुगतान की समस्या उत्पन्न हो गई है। बैंकों में तेजी से गैर निष्पादित आस्तियों की राशि बढ़ती जा रही है। यद्यपि ऋण भुगतान हेतु बैंकों द्वारा कठोर कदम उठाये जा रहे हैं। ऋण वसूली की प्रक्रिया को तेज किया जा रहा है। किन्तु फिर भी गैर निष्पादित आस्तियाँ बैंकों के लिए नई चुनौती पैदा कर रही है। गैर निष्पादित ऋण वे ऋण होते हैं जिनकी किश्त का भुगतान पूर्ववर्ती किश्त से बारह सप्ताह से अधिक समय हो चुका हो तथा ऋण का भुगतान समय पर नहीं किया जा रहा हो ऐसे सभी ऋण अलाभकारी निवेश की श्रेणी में लिये जाते हैं। इस प्रकार हमारे अग्रिम और भी अधिक जटिल हैं तथा ऐसे प्रयास किये जाने चाहिये कि गैर निष्पादित आस्तियों का की मात्रा धीरे-धीरे न्यूनतम हो जावे।

11.8 सारांश

उद्देश्य:

प्रस्तुत इकाई का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों को बैंकों द्वारा प्रदत्त अग्रिमों की प्रक्रिया से अवगत कराना है। सुरक्षित एवं असुरक्षित अग्रिमों की जानकारी प्रदान करना है। बैंक विनियोजन के सिद्धान्त एवं ऋणों के प्रभार उत्पन्न करने की विधियों से अवगत कराना है।

प्रस्तावना:

बैंकों का दूसरा प्रमुख कार्य ऋण एवं अग्रिम प्रदान करना है। बैंक द्वारा अपने धन का विनियोजन बड़ी सावधानी एवं चातुर्यता से किया जाता है। बैंक जनता एवं व्यवसायिक वर्ग की आवश्यकताओं को देखते हुए विविध ऋण एवं अग्रिम प्रदान करते हैं। बैंकों की विनियोजन नीति सुदृढ़ सिद्धान्तों के आधार पर होती है। सामान्यतया बैंक तरलता, सुरक्षा एवं लाभदायकता के सिद्धान्त को आधार मानते हुए विनियोजन करते हैं।

बैंक कोषों का विनियोजन

बैंक के द्वारा अलाभकारी एवं लाभकारी विनियोजन किया जाता है। अलाभकारी विनियोजन में आधारभूत संरचना पर किया गया व्यय, नकद कोष, वैधानिक कोष, इत्यादि पर विनियोजित की गई राशि सम्मिलित की जाती है।

बैंक विनियोजन के सुदृढ़ सिद्धान्त

निम्नांकित सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए बैंक द्वारा विनियोग नीति का निर्माण किया जाता है:-

– सुरक्षितता का सिद्धान्त
– तरलता का सिद्धान्त
– लाभदायकता का सिद्धान्त
– उत्पादकता का सिद्धान्त
– जोखिम की विविधता का सिद्धान्त
– विक्रयशीलता का सिद्धान्त
– सामाजिकता का सिद्धान्त
– विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त

बैंक ऋण एवं प्रतिभूतियाँ

बैंकों द्वारा प्रदत्त ऋणों को सुरक्षित करने तथा उसका पुनर्भुगतान सुरक्षित करने हेतु प्रतिभूतियों के रूप में प्रभार उत्पन्न किया जाता है। बैंक ऋण आवेदन करने के पश्चात् ग्राहक के आवेदन की जांच पर आवश्यकता अनुसार अधिकतम सीमा का ध्यान रखते हुए ऋण प्रदान किया जाता है।

11.9 शब्दावली

रहन (गिरवी), गारन्टी, बंधक एवं दृष्टिबंधक

बैंक ऋण के भुगतान को सुनिश्चित करने हेतु ग्राहक (ऋणी) द्वारा माल की सुपुर्दगी गिरवी कहलाती है। गारन्टी दो व्यक्तियों द्वारा दी जाती है। इसमें व्यक्ति बैंक को ग्राहक के ऋण के भुगतान का वचन देते हैं। बंधक में सम्पत्ति का हित बैंक के नाम हस्तान्तरित किया जाता है। सामान्यतया बंधक अचल सम्पत्ति को ही रखा जाता है। बंधक एवं गिरवी में मूलभूत

अन्तर यह है कि गिरवी चल सम्पत्ति की रखी जाती है। जबकि बंधक अचल सम्पत्ति का रखा जाता है। दृष्टि बंधक में माल के अधिकार पत्र बैंक को समर्पित किये जाते हैं।

प्रभार एवं पंजीयन सम्बन्धी प्रावधान

प्रभार ऋणी के वर्तमान एवं भावी ऋणों पर उत्पन्न करने हेतु उपयोग में लिया जाता है। प्रभार उत्पन्न करने हेतु रजिस्ट्रीकरण आवश्यक होता है।

गैर निष्पादित आस्तियाँ

बैंक ऋणों की वृद्धि के साथ-साथ बैंकों में गैर निष्पादित आस्तियाँ की मात्रा भी बढ़ती जा रही है। ये वे ऋण होते हैं जिनकी किश्तों का भुगतान 12 सप्ताह से भी नहीं हो रहा होता है।

11.10 अभ्यास प्रश्न

1- बैंक कोषों के विनियोजन की प्रक्रिया को समझाइये।

2- बैंकों द्वारा प्रदत्त ऋणों पर प्रभार उत्पन्न करने की विधि का वर्णन कीजिए।

3- निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये -

अ- रहन (गिरवी)

ब- गारन्टी

4- बंधक एवं दृष्टिबंधक में अन्तर स्पष्ट करते हुए बंधक की सम्पूर्ण प्रक्रिया समझाइये।

11.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - पी एन वार्ष्णेय
2. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - बी एल ओझा
3. बैंक विधि एवं व्यवहार - डा एच सी शर्मा
4. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - स्वामी व गुप्ता

इकाई - 12

साख पत्र : अर्थ, परिभाषा, महत्व, प्रकार एवं पक्षकार

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 साख पत्र का अर्थ एवं परिभाषा
12.3 साख पत्र की विशेषताएं एवं प्रकृति
12.4 साख पत्र के प्रकार
12.5 साख पत्र के पक्षकार
12.6 साख पत्र खोलने की विधि
12.7 साख पत्रों का महत्व अथवा लाभ
12.8 सारांश
12.9 अभ्यास प्रश्न
12.10 संदर्भ ग्रन्थ

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

- साख पत्र के अर्थ, परिभाषा एवं महत्व से अवगत कराना।
- विभिन्न प्रकार के साख पत्र तथा साख पत्र के पक्षकारों की जानकारी प्रदान कराना।
- साख पत्रों के महत्व एवं लाभों की जानकारी प्रदान कराना।
- साख पत्र खोलने की विधि के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान कराना।
- साख पत्र के सम्बन्ध में छोटी-छोटी क्रियात्मक जानकारियों से अवगत कराना।

12.1 प्रस्तावना

वर्तमान वैश्विक युग में साख पत्रों का विशेष महत्व है। वर्तमान में बैंकों द्वारा साख अथवा ऋण प्रदान करने हेतु सुदृढ़ व्यवस्था का संचालन किया जा रहा है। बैंक अपनी ख्याति अर्थात साख के आधार पर जब दूसरे बैंक को यह अनुरोध करता है कि वह तीसरे व्यक्ति (व्यवसायी) को उल्लेखित राशि का भुगतान कर देवें। ऐसा अनुरोध पत्र साख पत्र कहलाता है। लेटिन भाषा के क्रेडो (CREDO) शब्द से अंग्रेजी भाषा का क्रेडिट (CREDIT) शब्द बना है। जिसे हिन्दी भाषा में साख कहते है। इसका अर्थ विश्वास एवं भरोसे से लगाया जाता है। व्यापारिक एवं बैंकिंग जगत में इस क्रेडिट या साख शब्द का अर्थ शोधन क्षमता में विश्वास से लगाया जाता है।

इस प्रकार जब बैंक द्वारा किसी व्यक्ति के पक्ष में उधार देने हेतु दूसरे बैंक को निवेदन किया जाता है। वह निवेदन पत्र बैंक साख पत्र कहलाता है। साख पत्रों की संकल्पना साख शब्द से

होती है। साख पत्र एक व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक रुप से लिखा हुआ पत्र होता है जो किसी व्यक्ति के पक्ष में अधिकार का निर्माण करता है तथा व्यापारिक व्यवहारों में भुगतान के निपटारे में प्रयुक्त होता है। अधिकांशत: अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इसका अधिक प्रचलन है।

12.2 साख पत्र का अर्थ एवं परिभाषा

साख पत्र का अर्थ सामान्यत: किसी व्यक्ति अथवा बैंक द्वारा लिखित में जारी किए गए उस प्रपत्र से होता है जिसमें जारी करने वाला बैंक अथवा व्यक्ति अन्य बैंक या संस्था से निवेदन करता है कि पत्र में लिखी राशि का उल्लेखित व्यक्ति को भुगतान कर दिया जाये। स्पष्ट है कि साख पत्र ऐसा लिखित पत्र है जिसमे लिखने वाला व्यक्ति अथवा बैंक अन्य व्यक्ति अथवा बैंक से उल्लेखित व्यक्ति को निर्दिष्ट धनराशि का भुगतान करने का अनुरोध करता है। इस प्रकार साख पत्र वह विपत्र है जो व्यक्ति विशेष के पक्ष में भुगतान का अधिकार सृजित करता है।

साख पत्र को विभिन्न विद्वानों द्वारा परिभाषित किया गया है कुछ प्रमुख परिभाषाएं इस प्रकार है :- स्टोरी (STORY) के अनुसार "साख पत्र एक व्यक्ति - सामान्यत: एक व्यापारी अथवा बैंक द्वारा किसी अन्य व्यक्ति के नाम लिखित निवेदन पत्र है। जिसमें वह निर्दिष्ट व्यक्ति को निश्चित राशि तक धन प्रदान करने अथवा साख प्रदान करने का निवेदन कहता है तथा यह वचन देता है कि इस पत्र के आधार पर दी गयी राशि का वह भुगतान करेगा अथवा उस राशि के लिये अपने पर जारी बिलों को स्वीकार करेगा।"

स्टोरी की परिभाषा से स्पष्ट होता दे- कि साख पत्र ऐसा पत्र है जो तीसरे व्यक्ति को धन अथवा साख प्रदान करने का अनुरोध करता है तथा उस राशि के भुगतान का वचन देता है।

मारिस मेगरा के अनुसार साख पत्र एक लिखित वचन' होता है जिसके द्वारा बैंक माल के विक्रेता से यह प्रतिज्ञा करता है कि वह उस पर साख पत्र की शर्तानुसार लिखे गये विपत्रों का भुगतान कर देगा बशर्ते कि ऐसे विपत्रों के साथ खरीदे गये माल के अधिकार पत्र संलग्न करे गये हो। "

स्पष्ट है मारिस मेगरा के अनुसार साख पत्र ऐसा लिखित दस्तावेज होता है जो बैंक द्वारा इस वचन के साथ जारी किया जाता है साख पत्र की शर्तानुसार विपत्रों का भुगतान कर देगा।

12.3 साख पत्र की विशेषताएं एवं प्रकृति

साख पत्र व अर्थ एवं परिभाषा को समझने एवं -उसके विश्लेषण से साख पत्र में निम्नांकित विशेषताएं प्रकट होती है :-

- साख पत्र एक लिखित विपत्र होता है जिसमे निवेदन एवं वचन दोनो समाहित है।
- साख पत्र किसी व्यक्ति संस्था एवं बैंक द्वारा जारी किया जा सकता है किन्तु प्राय: चलन में बैंक ही साख पत्र जारी करती है।
- साख पत्र अविनिमय साध्य एवं अहस्तांतरणीय विलेख होते है।
- साख पत्र के कम से कम तीन पक्षकार होते है - जारीकर्ता बैंक, भुगतानकर्ता बैंक तथा लाभकारी व्यक्ति, किन्तु और भी पक्षकार हो सकते है।
- साख पत्र सर्वाधिक प्रचलित एवं सस्ती एवं पूर्वरुपेण सुरक्षित भुगतान विधि है।

– साख पत्र को सामान्यत: दो उद्देश्यों को ध्यान में रखकर जारी किया जाता है: प्रथम आयातकर्ता को साख सुविधा उपलब्ध कराना, द्वितीय विदेश यात्रा पर जाने वालों को भुगतान में सुविधा देना।

साख पत्र की प्रकृति :- साख पत्र की प्रकृति सामान्यत: अविनिमयसाध्य प्रपत्र के समान होती है। तथा ये उल्लेखित व्यक्ति के नाम पर लिखे जाते है अत: अहस्तान्तरणीय भी होते हैं। फलस्वरुप भुगतानकर्ता बैंक को पूर्ण सतर्कता एवं सद विश्वास में किये गये भुगतान के लिए उत्तरदायी नहीं कर सकता यदि वह भुगतान जाली हस्ताक्षर द्वारा प्राप्त किया गया हो। इस प्रकार अनाधिकृत व्यक्ति को किये गये भुगतान पर वैधानिक संरक्षण प्राप्त होता है। अत: साख पत्र के आधार पर लेन - देन बहुत सावधानी एवं सावचेती बरत कर किया जाता है।

12.4 साख पत्र के प्रकार

साख पत्र की विशेषताओं एवं प्रकृति के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि साख पत्रों का प्रयोग सामान्यत: दो उद्देश्यों के लिए होता है। प्रथम विदेश यात्रा पर जाने वालों को सुविधा देना तथा द्वितीय आयतकर्ताओं को साख सुविधा उपलब्ध कराना इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हेतु जिन साख पत्रों का प्रयोग किया जाता है उन्हे अध्ययन की दृष्टि से दो भागों में बांटा जा सकता है।

प्रथम व्यक्तिगत साख पत्र अथवा यात्री साख पत्र

द्वितीय व्यापारिक साख पत्र

साख पत्र के प्रकारों का विस्तृत विश्लेषण निम्नांकित चार्ट द्वारा समझा जा सकता है :-

चार्ट नं. 12.1

साख पत्र के प्रकार

व्यक्तिगत साख पत्र

– गश्ती साख पत्र
– गश्ती चैक
– यात्री चैक
– गश्ती नोट

व्यापारिक साख पत्र

– प्रलेखीय साख पत्र
– प्रतिसंहार्य साख पत्र
– अप्रतिसंहार्य साख पत्र
– आवर्ती साख पत्र
– बैंक से बैंक साख पत्र
– लाल वाक्य साख पत्र
– हरा वाक्य साख पत्र
– पुष्टीकृत साख पत्र
– अपुष्टीकृत साख पत्र
– हस्तांतरणीय साख पत्र
– अहस्तांतरणीय साख पत्र

उपर्युक्त सभी का विस्तारपूर्वक विवरण इस प्रकार है :-

व्यक्तिगत साख पत्र

विदेश यात्रा पर जाने वाले व्यक्ति के समक्ष यात्रा व्यय साथ ले जाने की समस्या आती है। विदेश यात्रा के समय धन को साथ रखने का सबसे सुरक्षित एवं उचित उपाय यात्री साख पत्र है। विदेश यात्रा करने वाला व्यक्ति अपनी आवश्यकतानुसार सम्बन्धित बैंक शाखाओं के नाम साख पत्र जारी करवा लेता है। वे साख पत्र सामान्यत: विदेश यात्रियों अथवा व्यक्तियों द्वारा बैंकों से जारी करवाये जाते हैं। अत: ये साख पत्र व्यक्तिगत या यात्री साख पत्र कहलाते हैं।

जो व्यक्तिगत साख पत्र प्रचलन में है उनका वर्णन इस प्रकार है :-

गश्ती साख पत्र (Circular Letter of Credit) - जब कोई बैंक यात्रियों की सुविधा के लिए विदेश में स्थित अपनी एक से अधिक शाखाओं अथवा सम्बद्ध बैंकों के नाम साख पत्र जारी करता है तो ऐसे साख पत्र को गश्ती साख पत्र कहते हैं। ये साख पत्र एक से अधिक बैंकों एवं शाखाओं पर लिखा जाता है, फलस्वरुप विदेश यात्रा पर जाने वाले यात्री को प्रत्येक स्थान पर भुगतान हेतु सुविधा मिल जाती है। इसमें गश्ती साख पत्र जारी करने वाला बैंक इस पत्र के माध्यम से अपने प्रतिनिधि बैंकों से उल्लेखित व्यक्ति को भुगतान का निवेदन करता है। भुगतानकर्ता बैंक द्वारा साख पत्र के पीछे भुगतान राशि का विवरण अंकित किया जाता है ताकि कुल भुगतान की राशि का अनुमान लगाया जा सके। सामान्यत: गश्ती साख पत्र जमा राशि के आधार पर बैंक द्वारा जारी किया जाता है। गश्ती साख पत्र जारी करने पर बैंक द्वारा निर्धारित दर से कमीशन चार्ज किया जाता है। साख पत्र धारक भुगतान प्राप्त करने के लिए प्रमाणित हस्ताक्षर के साथ साख पत्र प्रस्तुत करता है। भुगतानकर्ता बैंक हस्ताक्षर का मिलान कर तथा परिचय से संतुष्ट होकर साख पत्र पर निर्धारित राशि का भुगतान करता है। विशेष सुरक्षा की दृष्टि से जारीकर्ता बैंक द्वारा गश्ती साख पत्र के अतिरिक्त साख पत्र धारक के लिए पृथक से परिचय पत्र भी जारी किया जाता है ऐसी स्थिति में साख पत्र के साथ भुगतान प्राप्त करने हेतु परिचय पत्र भी प्रस्तुत किया जाता है।

गश्ती चैक (Circular Cheque) - गश्ती चैक एक छपे हुए प्रपत्र होते है जो विभिन्न रंगो में भिन्न-भिन्न मुद्रांको में जारी किये जाते है। इसके पृष्ठ भाग पर चैक की राशि का उल्लेख होता है। ये चैक डायरी रुप में उपलब्ध होते है जिन्हें उस देश में यात्रा करने वाला व्यक्ति क्रय करता है। इन चैकों पर ग्राहक के नमूना हस्ताक्षर जारीकर्ता बैंक द्वारा प्रमाणित किये जाते है। भुगतान प्राप्ति के लिए हर चैक ग्राहक को अपने हस्ताक्षर के साथ प्रस्तुत करना होता है। दोनों हस्ताक्षर के मिलान होने पर भुगतान कर दिया जाता है। जैसे ही बैंक द्वारा गश्ती चैक जारी किया जाता है वह बैंक अपने प्रतिनिधि बैंक को जारीकर्ता व्यक्ति की सम्पूर्ण जानकारी भेज देता है ताकि धोखाधडी से बचा जा सके तथा सही ग्राहक ही चैक का भुगतान प्राप्त कर सके।

यात्री चैक (Traveller's Cheque) - यात्री चैक भी व्यक्तिगत साख पत्र का सदृश्य रुप ही है जो लगभग गश्ती चैक के समान ही होते हैं। गश्ती चैक तथा यात्री चैक में इतना ही अंतर होता है कि गश्ती चैक में अधिकतम भुगतान राशि पृष्ठभाग पर अंकित की जाती है। जबकि यात्री चैक में निश्चित राशि अंकित की जाती है जो हाजिर विनिमय पर भी भुनाया जा सकता है। यात्री चैक खुले साख पत्र होते है जिन्हें कोई भी व्यक्ति बैंक में धनराशि भुगतान कर क्रय कर सकता है। बैंक द्वारा क्रेता के हस्ताक्षर प्रमाणित किये जाते है। भुगतानकर्ता बैंक ग्राहक के पूर्व प्रमाणित

हस्ताक्षर का मिलान कर यात्री चैक का भुगतान कर देते है। यात्री चैक के बहुत संभाल कर रखना होता है उनके खोने पर क्षतिपूर्ति बांड भरना पड़ता है। उपयोग में नहीं लिये गये यात्री चैकों को जारीकर्ता बैंक को पुन: लौटा कर जमाराशि वापस प्राप्त की जा सकती है। सामान्यत: जारी चैक के उपयोग हेतु अवधि का निर्धारण नहीं किया जाता। इनको क्रय करने के पश्चात् कभी भी उपयोग में लिया जा सकता है। यात्री चैक बहुत ही सरल एवं प्रचलित प्रपत्र होने के कारण न केवल निर्गमन बैंक की शाखाएँ वरन होटल, रेस्टोरेन्ट एव अन्य संस्थाओं द्वारा भी स्वीकार किये जाते हैं। इन संस्थाओं द्वारा इस आशय का बोर्ड भी लगाया जाता है जैसे "हम ए.बी.सी. बैंक का यात्री चैक स्वीकार करते हैं। (We accept ABC Bank's Traveller's Cheque)"

गश्ती नोट (Circular Note) - गश्ती साख पत्र के साथ भुगतान में सरलता एवं स्पष्टता लाने के लिये बैंक द्वारा गश्ती नोट भी जारी किये जाते है जो निश्चित राशि में छपे हुए होते है तथा गश्ती साख पत्र के साथ जारी किये जाते हैं। बैंक गश्ती साख पत्र पर जारी किये गये गश्ती नोटों की संख्या का विवरण अंकित कर देता है तथा गश्ती नोटों पर ग्राहक के हस्ताक्षर प्रमाणित कर देता है। भुगतान के समय गश्ती नोट गश्ती साख पत्र के साथ प्रस्तुत किये जाते है। ग्राहक आवश्यकतानुसार गश्ती नोट को सम्बन्धित बैंक शाखा में प्रस्तुत कर भुगतान प्राप्त कर सकता है। इस गश्ती नोट निर्गमन से भुगतान योग्य राशि की गणना स्वत: हो जाती है। जिसे गश्ती नोट जारी किये जाते है उतनी राशि ही ग्राहक द्वारा भुगतान में प्राप्त की जा सकती है। उदाहरणार्थ एबीसी द्वारा 5000/ - रुपये के गश्ती साख पत्र के साथ 500-500 रुपये के 10 गश्ती नोट जारी किये जाते है जिन पर ग्राहक के हस्ताक्षर करवा कर प्रमाणित किये जाते है। ग्राहक विदेशों में स्थित बैंक की शाखाओं से अपनी आवश्यकतानुसार जारी किये गये गश्ती नोटो में से प्रस्तुत कर भुगतान प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विदेश यात्रा करने वाले व्यक्तियों का यात्रा को सुगम बनाने, यथेष्ट धनराशि यथा समय उपलब्ध कराने एवं मार्ग में धनराशि के खोने इत्यादि में सुरक्षा हेतु व्यक्तिगत साख पत्र जारी किये जाते हैं जो काफी लोकप्रिय है। नवोन्मेशी बैंकिंग के विकास के साथ अन्तर्राष्ट्रीय डेबिट कार्ड एवं क्रेडिट कार्ड के बढ़ते उपयोग के कारण बैंक कार्ड व्यक्तिगत साख पत्रों का स्थान लेने लगे है। फिर भी इन परंपरागत व्यक्तिगत साख पत्रों का महत्व आज भी बना हुआ है।

व्यापारिक साख पत्र (Commercial L/C) - व्यापारिक साख पत्र सामान्यत: वे साख पत्र होते है जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, उद्योग एवं उत्पादन व विक्रय प्रक्रिया को सरल बनाने हेतु जारी किये जाते है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की एक महत्वपूर्ण कठिनाई यह है कि आयातकर्ता एवं निर्यातकर्ता मे आपस में परिचय का अभाव होता है तथा दोनो एक दूसरे के साथ सुरक्षित व्यापार करना चाहते हैं। वांछित साख एवं ख्याति की जानकारी के अभाव में विक्रेता माल की सुपुर्दगी के साथ ही उसका मूल्य चाहता है, वहीं क्रेता अग्रिम भुगतान के स्थान पर भुगतान के साथ ही माल की सुपुर्दगी चाहता है।

इस प्रकार आयातकर्ता एवं निर्यातकर्ता के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाते हुए आयातकर्ता के देश का बैंक निर्यातकर्ता देश के बैंक पर एक साख पत्र जारी करता है तथा निश्चित राशि के भुगतान की सशर्त गारंटी देता है। ऐसे साख पत्र व्यापारिक, साख पत्र कहलाते

है। बैंक साख पत्र जारी करने से पूर्व ग्राहक से प्रतिभूतियां जमा करवा लेता है या गारंटी पत्र लिखवा लेता है तथा अपने ग्राहक की साख एवं भुगतान क्षमता से संतुष्ट होकर ही ग्राहक के नाम साख पत्र जारी करता है। व्यापारिक साख पत्र के कई प्रकार प्रचलित है जिनका विवरण इस प्रकार है :-

प्रलेखीय साख पत्र (Documentary L/C)

ऐसा साख पत्र जिसे भुगतान के लिए प्रस्तुत करते समय माल से सम्बन्धित प्रलेख संलग्न करना जरूरी होता है ये साख पत्र प्रलेखीय अथवा लेखा साख पत्र कहलाते है। बैंक द्वारा भुगतान से पूर्व साख पत्र के साथ संलग्न दस्तावेजों की जांच की जाती है तथा यह सुनिश्चित किया जाता है कि साख पत्र के साथ सभी आवश्यक दस्तावेज संलग्न कर दिये गये है तथा समस्त आवश्यक शर्तों की पूर्ति की जा चुकी है। यदि बैंक द्वारा संलग्न प्रलेखों की उचित प्रकार से जांच नहीं की जाती है तो बैंक कर्तव्य के प्रति लापरवाही या दोषी ठहराया जा सकता है। उदाहरणार्थ बुटविक बनाम बैंक ऑफ न्यूजीलैण्ड विवाद में साख पत्र के साथ माल का बीमा सम्बन्धी कवर नोट नहीं लगा होने के कारण बैंक को लापरवाही का दोषी माना गया।

प्रतिसंहार्य साख पत्र (Revocable L/C)

प्रतिसंहार्य साख पत्र ऐसा साख पत्र होता है जिसे किसी भी स्तर पर निरस्त करने का अधिकार बैंक को होता है साख पत्र रद्द करने की सूचना पक्षकारों को देना आवश्यक नहीं होता है। किन्तु व्यावहारिकता की दृष्टि से रद्द करने की सूचना बैंक द्वारा सम्बंधित पक्षकारों को दी जाने की परंपरा है।

अप्रतिसंहार्य साख पत्र (Irrevocable L/C)

अप्रतिसंहार्य साख पत्र ऐसा साख पत्र होता है जिसे बिना सम्बन्धित पक्षकारों की सहमति के निरस्त नहीं किया जा सकता इस प्रकार अप्रतिसंहार्य साख पत्र को पूरा किया जाना बैंक का वैधानिक दायित्व बन जाता है। यही कारण कि व्यवहार में अप्रतिसंहार्य साख पत्र ही चलन में पाये जाते है। तारापुर एण्ड कम्पनी बनाम मैसर्स ट्रेक्टरो एक्योर्ट मास्को आदि विवादों में भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय में अप्रतिसंहार्य साख पत्र को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानते हुए इसकी प्रक्रिया रोकने को गम्भीरता से लिया है। उच्चतम न्यायालय के अनुसार अप्रतिसहार्य साख पत्र की स्वायत्तता में न्यायालय को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए तथा इसकी प्रक्रिया बिना बाधा के पूर्ण की जानी चाहिए।

स्थायी एवं आवर्ती साख पत्र (Fixed & Revolving L/C)

स्थायी साख पत्र ऐसा साख पत्र होता है जिसकी जारी रहने की अवधि एवं उसमें निश्चित राशि का उल्लेख होता है जो अवधि समाप्त होने पर एक सौदा पूर्ण होते है। साख पत्र भी स्वत: ही समाप्त हो जाता है। जबकि आवर्ती साख पत्र में एक से अधिक बार सौदा किया जा सकता है अर्थात एक बार एक निश्चित राशि का साख पत्र जारी किए जाने पर निर्धारित अवधि तक एक से अधिक बार भुगतान होते रहने पर भी निर्धारित राशि तक की साख प्रदान की जाती है।

बेक टु बेक साख पत्र (Back To Back L/C)

एक साख पत्र के आधार पर जब दूसरा साख पत्र जारी किया जाता है तो वह साख पत्र बेक टू बेक साख पत्र कहलाता है। सामान्यत: लाभकारी एक बैंक में साधारण साख पत्र प्राप्त कर

उस साख पत्र के आधार पर अपने बैंक से पुन: साख पत्र जारी करने हेतु आग्रह करता है तो यह बैंक से बैंक साख पत्र या बेक टू बेक साख पत्र कहलाता है।

हरा वाक्य एवं लाल वाक्य साख (Green Clause & Red Clause)

लाल वाक्य एवं हरा वाक्य साख ऐसी साख व्यवस्था है जो निर्यातक को माल उत्पादन करने तथा संग्रहित करने हेतु बैंक द्वारा अग्रिम के बतौर प्रदान की जाती है तथा माल बैंक के नाम रखा जाता है। लाल वाक्य साख एवं हरा वाक्य साख में इतना ही अंतर होता है लाल वाक्य साख में माल निर्यातक के नाम रहता है तथा हरा वाक्य साख में माल बैंक के नाम रहता है।

पुष्टिवृत साख एवं अपुष्टिवृत साख

साख पत्र जारी करने वाले बैंक के निवेदन पर सूचित कर्ता बैंक साख पर अपनी पुष्टि अंकित करता है तो वह साख पत्र पृष्टिकृत साख कहलाता है। इसका अर्थ अंकितकर्ता बैंक की बिल भुगतान की गारंटी हो जाती है। जब साख पत्र पर बैंक द्वारा पुष्टि नही की जाती है तो वह साख पत्र अपुष्टिकृत साख पत्र कहलाता है।

अहस्तान्तरणीय साख एवं अहस्तांतरणीय साख

निर्यातकर्ता पर लिखे हुए साख पत्र के आगे हस्तान्तरित करने का अधिकार मिलता हो तो वह साख पत्र हस्तान्तरणीय साख कहलाता है। जब निर्यातकर्ता साख पत्र को अन्य व्यक्ति को हस्तान्तरित नहीं कर सकता हो तो ऐसा साख पत्र अहस्तान्तरणीय साख पत्र कहलाता है।

12.5 साख पत्र पक्षकार

- साख पत्र का आवेदनकर्ता अथवा आयातकर्ता साख पत्र का ओपनर कहलाता है।
- वह बैंक जो आयातकर्ता के निवेदन पर साख पत्र जारी करता है उसे जारीकर्ता बैंक कहते
- जिस व्यवसायिक पक्ष में साख पत्र लिखा जाता है उसे निर्यातकर्ता या लाभप्राप्तकर्ता (beneficiary) कहते है।
- साख पत्र में इन प्रमुख पक्षकारों के अतिरिक्त पक्षक्रमणकर्ता जैसे भुगतानकर्ता बैंक इत्यादि अन्य पक्षकार भी आवश्यकतानुसार हो सकते है।

12.6 साख पत्र खोलने की विधि

साख पत्र खोलने की प्रक्रिया को निम्नलिखित भागो में विभाजित किया जा सकता है :-

साख पत्र हेतु आवेदन - आयातकर्ता जो साख पत्र खुलवाना चाहता है उसे बैंक में निर्धारित प्रपत्र पर आवेदन करना होता है। आवेदन पत्र में सामान्यत: आयातकर्ता एवं निर्यातकर्ता के नाम, धनराशि, साख के प्रकार, विनिमय बिलों का विवरण, साख पत्र, भेजने की विधि एवं हस्ताक्षर मय स्टाम्प अंकित किया जाता है।

साख पत्र खोलने की अनुमति - बैंक में साख पत्र खोलने हेतु आवेदन प्राप्त होता है तो बैंक द्वारा उसका परीक्षण किया जाता है। इसमें आवेदक की वित्तीय स्थिति, व्यवसाय से सम्बन्धित आवश्यक दस्तावेजों की जांच आयात लाइसेन्स की जांच करने के पश्चात् पूर्णत: संतुष्ट होने पर बैंक द्वारा साख पत्र खोलने की अनुमति दी जाती है।

साख पत्र खोलने की सूचना - साख पत्र खोलने की सूचना बैंक द्वारा आवेदक सहित सभी पक्षकारों, निर्यातक, भुगतानकर्ता बैंक को दी जाती है। सूचना के साथ साख पत्रों की शर्तों का भी उल्लेख किया जाता है।

12.7 साख पत्र का महत्व तथा लाभ

साख पत्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अपना विशेष स्थान रखता है। साख पत्र व्यवस्था से न केवल आयातकर्ता वरन् सभी पक्षकार लाभान्वित होते हैं। साख पत्र के महत्व को निम्नांकित बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है :-

- आयातकर्ता एवं निर्यातकर्ता को बैंक साख का लाभ प्राप्त होता है।
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सौदों के भुगतान की निश्चितता हो जाती है।
- अग्रिम भुगतान संभव होता है।
- विनिमय दरों में परिवर्तन से सुरक्षा मिलती है।
- ऋण प्राप्ति में सहायता मिलती है।
- अन्य लाभ यथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि, आयातकर्ता एवं निर्यातकर्ता के देशों के दोनों बैंकों को लाभ प्राप्त होता है इत्यादि।

12.8 सारांश

उद्देश्य - इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्यों के अंतर्गत विद्यार्थियों को साख पत्र का अर्थ, परिभाषा एवं महत्व से अवगत कराना, विभिन्न प्रकार के साख पत्रों की जानकारी प्रदान कराना, साख पत्र के पक्षकारों का ज्ञान कराना, साख के महत्व अथवा लाभों को इंगित करना, साख पत्र खोलने की विधि की जानकारी प्रदान करना है।

प्रस्तावना - वर्तमान युग में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व प्रत्येक देश के लिए है। सुदृढ़ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था हेतु साख पत्र अपना विशेष महत्व रखता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत आयातकर्ता एवं निर्यातकर्ता देश के बैंकों द्वारा आयातकर्ता की साख के आधार पर साख पत्र जारी किया जाता है।

साख पत्र का अर्थ एवं परिभाषा - जब आयातकर्ता देश का बैंक आयातकर्ता की साख के आधार पर निर्यातकर्ता देश के बैंक के नाम पर साख प्रदान करने हेतु अनुरोध पत्र जारी करता है यह अनुरोध पत्र ही सामान्यत: साख पत्र कहलाता है जो तकनीकी भाषा में किसी व्यक्ति के पक्ष में अधिकार का निर्माण करता है।

साख पत्र की विशेषताएं - साख पत्र एक लिखित विपत्र होता है, इसमे निवेदन के साथ ही वचन भी समाहित होता है, साख पत्र बैंक द्वारा दूसरे बैंक पर जारी किया जाता है। यह अविनिमय साध्य एवं अहस्तांतरणीय होता है, इसके कम से कम तीन पक्षकार होते हैं। साख पत्र सामान्यत: दो उद्देश्यों को पूर्ण करने हेतु जारी किये जाते है प्रथम व्यापारिक आवश्यकताओं की पूर्ति, द्वितीय विदेश जाने वाले यात्रियों की धन आवश्यकता पूर्ति। साख पत्र सर्वाधिक प्रचलित, सस्ती एवं सुरक्षित साख व्यवस्था है।

साख पत्र की प्रकृति - साख पत्र की प्रकृति अविनिमय साध्य होती है। यह उल्लेखित व्यक्ति के नाम पर लिखे जाते है। बैंक द्वारा सद्विश्वासपूर्वक साख प्रदान की जाती है। अत:

बैंकों को पूर्ण वैधानिक संरक्षण प्राप्त होता है। अत: साख पत्रों का प्रयोग बहुत सावधानी पूर्वक किया जाना आवश्यक होता है।

साख पत्र के प्रकार - साख पत्र के प्रकारों को अध्ययन की दृष्टि से दो भागों में बांटा जा सकता है :-

प्रथम - व्यक्तिगत या यात्री साख पत्र, द्वितीय - व्यापारिक साख पत्र। व्यक्तिगत साख पत्रों के प्रमुख प्रकार निम्नानुसार है :-

- गश्ती साख पत्र
- गश्ती नोट
- यात्री चैक
- गश्ती चैक

व्यापारिक साख पत्रों के प्रमुख प्रकार निम्नानुसार है :-

- प्रलेखीय साख पत्र
- प्रतिसहार्य एवं अप्रतिसंहार्य साख पत्र
- निश्चित अथवा आवर्ती साख पत्र
- बेक टू बेक साख पत्र
- पुष्टिकृत एवं अपुष्टिकृत साख पत्र
- हरा वाक्य एवं लाल वाक्य साख पत्र
- हस्तांतरणीय एवं अहस्तांतरणीय साख पत्र

साख पत्र खोलने की विधि - साख पत्र खोलने की प्रक्रिया निम्नानुसार है :-

- साख पत्र हेतु आवेदन
- साख खोलने की अनुमति
- साख पत्र खोलने की सूचना

साख पत्र का महत्व - साख पत्र का महत्व निम्नांकित बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है :-

- आयातकर्ता एवं निर्यातकर्ता के लिए महत्व
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सौदों की निश्चितता की दृष्टि से महत्व
- अग्रिम भुगतान संभव
- विनिमय दरों में परिवर्तन से सुरक्षा
- ऋण प्राप्ति एवं बिलों की कटौती में सहायक
- व्यवसाय वृद्धि बैंक के लाभ इत्यादि।

12.9 अभ्यास प्रश्न

1. साख पत्र से आप क्या समझते है? इसकी उचित परिभाषा दीजिए।
2. साख पत्र की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करते हुए इसकी प्रकृति को समझाईये।
3. साख पत्र के विभिन्न प्रकारों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
4. साख पत्र के विभिन्न पक्षकारों को समझाते हुए लाख पत्र खोलने की विधि बताइये।
5. साख पत्र का अर्थ बताते हुए इसके महत्व एव लाभों का वर्णन कीजिए।

12.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - पी एन वार्ष्णेय
2. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार - बी एल ओझा
3. बैंक विधि एवं व्यवहार - डा एच सी शर्मा
4. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार- स्वामी व गुप्ता

इकाई- 13
सहकारी बैंकिंग इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्‌गम एवं विकास
13.3 सहकारी बैंक का अर्थ एवं परिभाषा
13.4 सहकारी साख का उद्देश्य एवं साख का वर्गीकरण
13.5 भारत में सहकारी बैंकिंग की संरचना / ढांचा
13.6 सहकारी साख संरचना की नियामक संस्था - नाबार्ड
13.7 राज्य सहकारी बैंक
13.8 केन्द्रीय सहकारी बैंक
13.9 प्राथमिक सहकारी साख समितियाँ
13.10 दीर्घकालीन साख - भूमि विकास बैंक
13.11 ग्रामीण भारत में सहकारी बैंकों का योगदान
13.12 सहकारी बैंक सम्बन्धी कानूनी प्रावधान
13.13 सारांश
13.14 शब्दावली
13.15 अभ्यास प्रश्न
13.16 संदर्भ ग्रन्थ

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नांकित है:--

- सहकारी बैंकिंग के उद्‌गम एवं विकास की जानकारी प्रदान करना।
- सहकारी बैंक का अर्थ एवं विशेषताओं की जानकारी प्रदान करना।
- सहकारी बैंकिंग का महत्व एवं साख वर्गीकरण से अवगत करवाना।
- भारत में सहकारी बैंकिंग की संरचना से अवगत करवाना।
- विभिन्न सहकारी बैंकिंग संस्थाओं की विशेषताएं, वित्तीय स्त्रोत, कार्य प्रणाली, प्रगति, समस्यायें आदि की जानकारी देना तथा उपाय सुझाना।
- सहकारी बैंकिंग के ग्रामीण अर्थव्यवस्था में योगदान की जानकारी देना।
- सहकारी बैंकिंग सम्बन्धी कानूनी प्रावधानों की जानकारी देना।

13.1 प्रस्तावना

भारत में सम्पन्नता और परस्पर सहयोग अनादिकाल से विद्‌यमान है। विदेशी आकान्ताओ के साम्राज्य स्थापित होने के साथ इसमें गिरावट आती रही है। धन सत्ता के निकट

केन्द्रित होने से शोषण प्रवृति बढ़ने लगी। इन्हीं परिस्थितियों के चरम सीमा पर पहुंचने से सहकारिता का सूत्रपात शोषण के विरूद्ध हुआ है। अर्थशास्त्री, बुद्धिजीवी, समाजसेवी, विचारकों ने आर्थिक शोषण के विरूद्ध सहकारिता को श्रेष्ठ विकल्प के रूप में स्वीकार किया। यहीं से सहकारी संस्थाओं का गठन आरम्भ होने लगा। श्री **ए.डी.गोरवाला** की अध्यक्षता में गठित **'अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति'** ने 1954 में अपने प्रतिवेदन में कहा कि ग्रामीण साख के प्रमुख स्त्रोत साहूकार, व्यापारिक बैंक, सरकार आदि ग्रामीण साख प्रदान करने में पूरी तरह सक्षम नहीं हैं। केवल सहकारी संस्थायें ही अनुकूल दशायें प्रदान करने पर समय पर उचित व्याज दर पर वित्त सुविधा प्रदान करती है।

सहकारी साख संस्थायें मुख्यतया ग्रामीण साख के लिये ही गठित की गई हैं। समय की गति के साथ विकसित होकर नगरीय क्षेत्रों में भी विकसित हुई हैं। वर्तमान में साख समितियों तथा संस्थाओं का देश के प्रत्येक क्षेत्र में विशाल संगठन है। इसमें संख्यात्मक विकास के साथ-साथ गुणात्मक विकास भी हुआ है। सहकारी साख संस्थाओं को सामान्यतया दो भागों में बाँटा जा सकता है:-

1. कृषि साख संस्थायें (Agriculture Credit Institutions)
2. गैर कृषि साख संस्थायें (Non-Agriculture Credit Institutions)

(1) कृषि साख संस्थायें (Agriculture Credit Institutions) -कृषि साख संस्थायें मुख्यतया दो प्रकार की होती हैं

(क) अल्पकालीन और मध्यकालीन साख संस्थायें (Short term and Medium Term Credit Institution)- इस श्रेणी में ग्रामीण स्तर पर प्राथमिक साख संस्थायें एवं जिला स्तर पर केन्द्रीय साख संस्थायें होती हैं।

(ख) गैरकृषि साख संस्थायें (Non-Agriculture Credit Institutions) - गैरकृषि साख समितियों में मुख्यतया कर्मचारी साख समितियाँ, उपभोक्ता सहकारी समितियाँ, नगरीय सहकारी बैंक, प्राथमिक सहकारी बैंक, औद्योगिक सहकारी बैंक, आवास सहकारी बैंक, आवास सहकारी समितियां आदि हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि और गैरकृषि दोनों ही प्रकार की साख की आवश्यकता होती है। इन्हें दोनों ही सहकारी संस्थायें साख उपलब्ध कराती है

(1) प्राथमिक स्तर पर प्राथमिक सहकारी साख समितियाँ है जो अल्पकालीन एवं मध्यमकालीन साख सुविधा प्रदान करती हैं।

(2) खण्ड एवं जिला स्तर पर भूमि विकास बैंक जो दीर्घकालीन साख उपलब्ध कराती हैं। उपर्युक्त दोनो संस्थाऐं ही ग्रामीण साख संस्थाओं के रूप में ग्रामीण साख सुविधा प्रदान करती हैं।

13.2 उद्‌गम एवं विकास

सहकारी बैंकों का जन्म-स्थान जर्मनी है। सबसे पहले साख और ऋण में सहकारिता का प्रयोग यहीं हुआ। जर्मनी में सहकारी साख के विकास के लिए **रैफिसन तथा शुल्जे डेलिश** दो प्रकार की समितियाँ स्थापित की गई थी। रैफिसन समितियाँ ग्रामीण तथा कृषि साख के लिए थी

और शुल्ज डेलिश नगरों तथा औद्योगिक क्षेत्रों के लिए स्थापित की गई थी। ये दोनों प्रकार की सहकारी समितियाँ विश्व के अनेक देशों के लिए आदर्श हो गई। जर्मनी से धीरे-धीरे सहकारी साख दूसरे देशों में फैली।

जर्मनी में ही सर्वप्रथम सहकारी बैंकों की स्थापना हुई। जर्मनी के पश्चात् धीरे-धीरे सहकारी बैंकिंग व्यवस्था सम्पूर्ण विश्व में फैली। भारत मे सहकारी साख व्यवस्था अथवा सहकारी बैंकिंग के माध्यम से सहकारी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। सहकारी अधिनियम, 1904 में केवल सहकारी साख समितियों की व्यवस्था थी, जो तत्कालीन सहकारी बैंक ही थे। देश में सहकारी आन्दोलन की प्रगति के साथ-साथ सहकारी बैंकों की संरचना में भी परिवर्तन हुआ। समय-समय पर सहकारिता के सम्बन्ध में गठित समितियों ने सहकारी साख संरचना को एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया।

13.3 सहकारी बैंक का अर्थ एवं परिभाषा

सहकारी बैंक का अर्थ - सहकारी साख व्यवस्था सहकारी बैंकिंग का आधार है। भारत में सहकारी बैंकिंग व्यवस्था भी बैंकिंग सम्बन्धी कार्य सम्पन्न करती है। यह बैंक सहकारी अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित होते है। जो साख सहकारी बैंकों के माध्यम से प्रदान की जाती है, उसे सहकारी साख कहते हैं। सहकारी बैंक का उद्भव मूल रूप से साख व्यवस्था के विस्तार हेतु ही हुआ है जो सामूहिक स्वामित्व असीमित सदस्यता वाले व्यक्तियों का एक स्वैच्छिक संगठन है, जिनकी स्थापना लोकतान्त्रीय आधार पर होती है, जो अपने सदस्यों की बचते संगृहीत करते हैं तथा उन्हें ऋण प्रदान करते है।

सहकारी बैंक की परिभाषा

डिवाईन के शब्दों में, 'सहकारी बैंक एक पारस्परिक संस्था है जो कार्यशील वर्ग के द्वारा ही निर्मित तथा नियंत्रित होती है तथा जहाँ बचत को प्रोत्साहित किया जाता है एवं व्याज तथा भुगतान की सरल शर्तों पर छोटे ऋण स्वीकार किए जाते हैं।

एन.बरोन के अनुसार 'सहकारी बैंक सदस्यता तथा सामूहिक स्वामित्व साधनों वाले व्यक्तियों का एक ऐच्छिक संगठन है जिसका निर्माण प्रजातान्त्रीय आधार पर किया जाता है। इस संगठन में सदस्यों की बचतों को जमा कर ब्याज तथा भुगतान की सरल शर्तों पर साख दी जाती है: अत्यधिक धन संचित कोष में रख लिया जाता है या उसे जमाकर्ताओं, ऋणियों तथा अंशधारियों में बांट दिया जाता है।'

इन परिभाषाओं से सहकारी बैंकों के दो आवश्यक तत्व प्रकट होते है-

1. इनका निर्माण सहकारिता के सिद्धान्त पर आधारित हो।
2. इनका उद्देश्य साख की सुविधाएं प्रदान करना हो।

13.4 सहकारी साख का उद्देश्य एवं साख का वर्गीकरण

सहकारी साख का उद्देश्य -

कृषि क्षेत्र असंगठित है। कृषकों को ऋण देने के लिए संस्थागत व्यवस्था नहीं है। अत: उसे महाजन व साहूकार पर निर्भर रहना पड़ता है जो उसका शोषण करते हैं। कृषक को शोषण से मुक्त कराने व कृषि उत्पादन बढाने के लिए संस्थागत साख की आवश्यकता है।

हॉरेश बेलशॉ के अनुसार संस्थागत साख का उद्देश्य गतिहीन साख को गतिशील साख में परिवर्तन करना है। संस्थागत साख का उद्देश्य निर्धन किसानों को कम व्याज दर पर पर्याप्त वित्त उपलब्ध करवाना है। यदि हमें कम समय मे कृषि उत्पादन को बढ़ाना है तो किसानों को सस्ती साख सुविधायें उपलब्ध करवानी होगी।

सहकारी साख के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

1. कृषकों में मितव्ययिता की आदत डालना ताकि उनके साधनों में वृद्धि हो तथा वे इन्हे उत्पादन कार्यों में लगा सके।
2. साख का उचित उपयोग करना तथा ऋणों के उपभोग की उचित देखभालन करना अर्थात यह ध्यान रखना कि जिस उद्देश्य के लिए ऋण दिया गया है उसी में उसका प्रयोग हो, ताकि ऋणों के शोधन में कठिनाई न हो। इससे जोखिम कम हो जायेगी।
3. इसके लिए उचित जमानत की व्यवस्था करना ताकि ऋणदाताओं के लिये जोखिम कम हो जाये।
4. साख-प्रबन्धन के व्ययों में कमी लाना ताकि ऋणों की लागतें कम आयें।
5. सहकारी समितियों की साख में वृद्धि करना ताकि वे जनता से अधिकाधिक जमायें प्राप्त कर सकें और अन्य सहकारी समितियों को वित्त प्रदान कर सकें।
6. सहकारी समितियों द्वारा समाज के धन (साधनों) को आकर्षित करना।
7. ऋणदाताओं की व्यक्तिगत जोखिमों को सामूहिक जोखिमों में बदलना।
8. साहूकारों के साख देने सम्बन्धी एकाधिकार को समाप्त करने के लिए उनमें प्रतिस्पर्धा बढ़ाना।

इस प्रकार संस्थागत साख का उद्देश्य ग्रामीण बचतों को एकत्रित कर उन्हें उत्पादन कार्यों में लगाना है। फिर भी विकासशील देशों में इसका अभाव रहा-है।

यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ग्रामीण साख के लिए सहकारी व्यवस्था को उचित क्यों माना गया है। इसका कारण यह है कि ग्रामीण साख समितियाँ किसानों की ही समितियाँ होगी। कृषि साख प्रदान करते समय निकटता, जमानत, सुविधा, सुरक्षा, उत्पादकता एवं बचत को प्रोत्साहित करना आदि मूल सिद्धान्तों को ध्यान में रखना होगा। यह भी आवश्यक है कि साख से उत्पादकता बढ़े, उसमें बचत की आदत विकसित हो तथा भविष्य में वह आत्म निर्भर हो।

सहकारी समितियाँ ही कृषि साख के मूल सिद्धान्तों को पूरा करती हैं। सुविधा का तात्पर्य किसानों को उचित समय पर, कम ब्याज दर पर पर्याप्त साख उपलब्ध होने से है। ऋण लेने के बाद किसान को कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। ऋण कृषि उत्पादन को बढ़ाने में सहायक होना चाहिए, बाधक नहीं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि सहकारी साख समितियाँ ही ग्रामीण साख की आवश्यकता को पूरा करते हुए ऋण प्रदान करने वाली सर्वोतम व्यवस्था है। अतः ग्रामीण साख के लिए सहकारी संस्थायें सर्वाधिक उपयुक्त है। अत: ग्रामीण साख के लिए सहकारी व्यवस्था ही आदर्श व्यवस्था है।

सहकारी साख का वर्गीकरण :- सहकारी साख को निम्नलिखित आधारों पर वर्गीकृत किया गया-

अ. **उद्देश्य के आधार पर वर्गीकरण** :- रिजर्व बैंक ने उद्देश्य के आधार पर साख को निम्नलिखित वर्गो में विभक्त किया है -

1. **कृषि कार्यों के लिए** - यह ऋण प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन कार्यों के लिए लिया जाता है। इस प्रकार की साख खाद व बीज खरीदने, किराया व मजदूरी का भुगतान करने, लगान चुकाने, सिंचाई व्यय देने, पशुधन खरीदने, चारा व कृषि यन्त्र खरीदने तथा भूमि में सुधार करने आदि कार्यों में प्रयुक्त की जाती है।
2. **गैर कृषि कार्यों के लिये** - यह साख प्रत्यक्ष रूप से कृषि कार्यों में प्रयुक्त नहीं की जाती है। यह साख उत्पादन व यातायात उपकरणों की मरम्मत कराने, गैर- कृषि व्ययों की पूर्ति करने, मकान बनाने, मरम्मत करवाने आदि कामों में ली जाती है।
3. **घरेलू व्ययों की पूर्ति के लिए-** इस प्रकार की साख का उपयोग घरेलु व्ययों की पूर्ति के लिए किया जाता है। इनमें शिक्षा व चिकित्सा व्यय, कपड़े व खाद्य सामग्री के व्यय, रिहायशी मकानों का निर्माण व मरम्मत, अन्य सामाजिक व्यय जैसे शादी व मृत्युभोज, पुराने ऋणों का भुगतान करने, मुकदमा आदि के लिए किये जाने वाले व्यय सम्मिलित है। ये अनुत्पादक व्यय कहलाते हैं। अखिल भारतीय ग्रामीण साख समिति की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 28 प्र.श. साख उत्पादन उद्देश्य के लिए, 5० प्र.श. गैर उत्पादन कार्यो के लिए तथा 22 प्र.श. अनुत्पादक कार्यों के लिए की जाती है।
4. **अन्य उद्देश्य-** इसमें मकान व गहने खरीदने, अंश व ऋणपत्र खरीदने, सहकारी समितियों में धन जमा कराने, साहूकारों व कारियों को भुगतान करने पुराने ऋणों को चुकाने आदि कार्यों में साख का उपयोग किया जाता है।

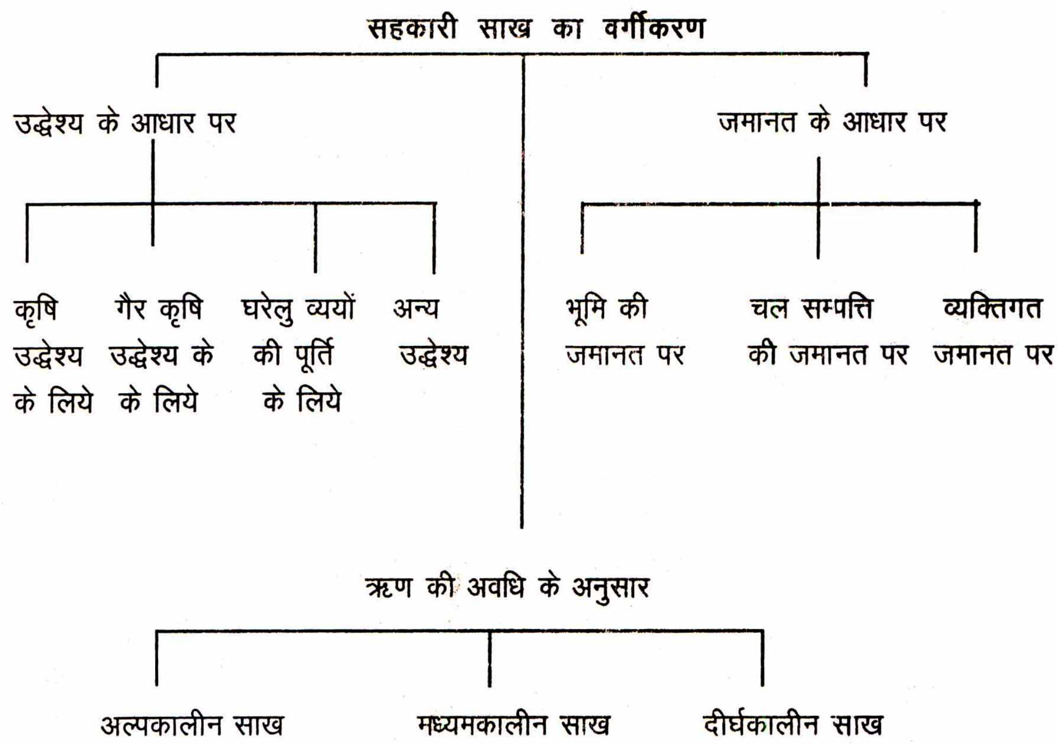

(ब) **ऋण की अवधि के अनुसार साख का वर्गीकरण**- समय की अवधि के आधार पर ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने ऋणों को अग्रलिखित वर्गो में विभक्त किया है-

1. **अल्पकालीन साख** - अल्पकालीन साख की अवधि 3 माह से 15 माह तक की होती है।

2. **मध्यमकालीन साख** - जो साख 15 माह से 5 वर्ष की अवधि की प्रदान की जाती है, उसे मध्यमकालीन साख कहते है।

3. **दीर्घकालीन साख** - दीर्घकालीन साख 5 वर्ष से 15-20 वर्ष तक की अवधि के लिए दी जाती है।

(स) जमानत के आधार पर- जमानत के आधार पर कृषि साख को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है--

1. भूमि की जमानत पर

इस प्रकार का ऋण भूमि तथा अन्य अचल सम्पतियों को बन्धक रखकर दिया जाता है। इस प्रकार के ऋण की मात्रा भूमि की आवश्यकता, भूमि की किस्म व भूमि के स्वाम्त्वि के आधार पर निश्चित की जाती है। इस प्रकार की साख विशिष्ट साख संस्थाओं द्वारा प्रदान की जाती है। इसकी अवधि सामान्यत: अधिक होती है। भारत में भूमि विकास बैंक अचल सम्पति की जमानत पर कृषकों को साख उपलब्ध करवाते हैं।

2. चल सम्पति की जमानत पर -

इस प्रकार का ऋण चल सम्पतियों जैसे पशुधन, फसल, गोदाम की रसीद, अंश पर उपलब्ध है।

3. व्यक्तिगत जमानत पर साख -

इस प्रकार की साख किसान की व्यक्तिगत जमानत पर दी जाती है। इसमें कभी-कभी तीसरे पक्षकार को भी गारन्टर बनाया जाता है। यह साख कृषक के व्यक्तिगत चरित्र, ईमानदारी, परिश्रम, पुनर्भुगतान क्षमता, आय तथा पिछले अनुभव के आधार पर दी जाती है। इसके लिये दृश्य सम्पतियों की जमानत आवश्यक नहीं है। इसका वास्तविक लाभ छोटे किसानों व भूमिहीन मजदूरों को मिलता है, क्योंकि आवश्यक जमानत के अभाव में उन्हें अन्त साख संस्थाओं से ऋण प्राप्त नहीं हो पाता है।

13.5 भारत में सहकारी बैंकिंग की संरचना

सहकारी साख संस्थाओं का ढाँचा - भारत में सहकारी साख का ढाँचा स्तूपाकार है। यह संघीय व्यवस्था पर आधारित है। अत: इसके ढाँचे का आधार भी ग्रामीण प्राथमिक कृषि साख समितियाँ है, जो ग्रामीण जनता को प्रत्यक्ष रूप से साख सुविधायें उपलब्ध करवाती है। जिनका कार्य क्षेत्र एक जिला है। पूरे देश में सहकारी साख को नेतृत्व देने के लिए राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) स्थापित किया गया है। इसकी स्थापना से पूर्व रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया यह कार्य करता था। अब नाबार्ड ही सहकारी बैंकों की वित्त व्यवस्था करने का कार्य करता है। इस प्रकार भारत में अल्पकालीन कृषि साख व्यवस्था का ढाँचा स्तूपाकार है।

भारत में सहकारी साख संस्थाओं के ढाँचे को आगे दी गई तालिकाओं से देखा जा सकता है-

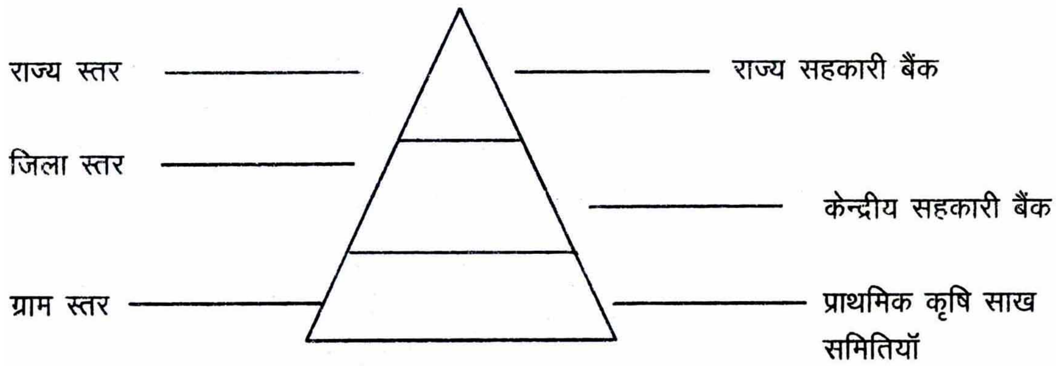

ग्रामीण स्तर पर प्राथमिक साख समितियाँ, जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा राज्य स्तर पर शीर्ष बैंक स्थापित किए गए हैं। कृषि साख के लिए दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध करवाने के लिए प्राथमिक भूमि विकास बैंक व केन्द्रीय भूमि विकास बैंक स्थापित किये गये है। गैर कृषि साख में शहरी क्षेत्रों में साख की व्यवस्था करने वाली समितियाँ आती हैं। ये समितियाँ सदस्यों को उपभोग वस्तुएँ खरीदने, मकान बनाने, छोटे व्यवसाय प्रारम्भ करने व छोटे-छोटे उद्योग लगाने के लिए ऋण प्रदान करती हैं। इस प्रकार भारत में सहकारी साख ढाँचा मुख्य रूप से ग्रामीण व शहरी, निर्धन व कमजोर व्यक्तियों को ऋण उपलब्ध करवाने के उद्देश्य से ही बनाया गया है। उसका उद्देश्य आर्थिक दृष्टि से कमजोर व्यक्तियों को वित्त उपलब्ध करवाना तथा उन्हें स्वावलम्बी बनाने में योगदान देना है। सहकारी साख के ढाँचे को देखने से यह ज्ञात होता है कि विभिन्न स्तरों की साख संस्थायें एक दूसरे से सम्बद्ध है। परन्तु वास्तव में प्रत्येक स्तर की साख संस्थायें वैधानिक तथा वित्तीय मामलों में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हैं। इनका स्वतन्त्र अस्तित्व है। ये अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र इकाई के रुप में कार्य करती हैं। यद्यपि सभी संस्थायें मिलकर ही सहकारी संगठन का निर्माण करती है। ये संस्थायें बाहरी स्त्रोतों से ऋण प्राप्त कर अपने सदस्यों व समितियों को ऋण प्रदान करती है।

तालिका-2

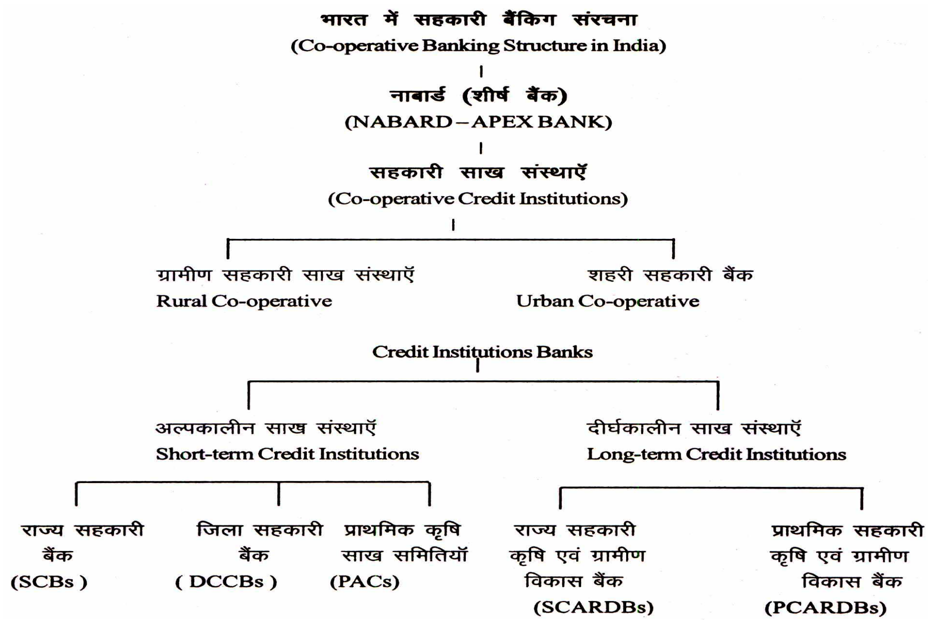

सहकारी बैंक सहकारिता के सिद्धान्तों के आधार पर संचालित होते हैं। इन बैंकों पर व्यापारिक बैंकों की तरह पूर्ण नियन्त्रण रिजर्व बैंक का नहीं होता है। बैंकिंग नियमन अधिनियम, 1949 में सहकारी बैंकों पर रिजर्व बैंक के नियन्त्रण हेतु विशेष उपबन्ध धारा-56 लाग किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त शक्तियों के माध्यम से रिजर्व बैंक द्वारा इन बैंकों को नियन्त्रित किया जाता है।

13.6 राष्ट्र स्तरीय संस्था- नाबार्ड

सहकारी साख संरचना की नियामक संस्था के रूप में 12 जुलाई, 1982 को राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की स्थापना की गई। इस बैंक पर यह उत्तरदायित्व डाला गया कि देश में कृषि एवं ग्रामीण विकास की समस्याओं को दूर करने हेतु सहकारी साख संरचना को सुदृढ़ करे। नाबार्ड की स्थापना कृषि पुनर्वित एवं विकास निगम तथा रिजर्व बैंक के कृषि विभाग को एकीकृत करके की गई। सहकारी बैंकों को आवश्यक सहायता, सलाह एवं परामर्श देने हेतु एक विशेष संस्था के रूप में सन् 1963 में कृषि पुनर्वित निगम (ARDC) की स्थापना की गई थी जो 1975 तक कृषि पुनर्वित एवं विकास निगम के रूप में कार्यरत रहा।

नाबार्ड की पूँजी स्थापना के समय 100 करोड़ रूपये निर्धारित की गई जिसमें 50-50 प्रतिशत अंश भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक द्वारा क्रय किये गये। वर्तमान में नाबार्ड की पूँजी 100 करोड़ रूपये से बढ़ाकर 2,000 करोड़ रूपये कर दी गई है। अंश पूंजी के अतिरिक्त कृषि पुनर्वित एवं विकास निगम की सम्पूर्ण सम्पति नाबार्ड को हस्तान्तरित कर दी गई। नाबार्ड अपने कोष वृद्धि हेतु ऋण-पत्रों का विक्रय बैंकों की दीर्घकालीन जमाऐं प्राप्त करने का अधिकार रखता है। साथ ही केन्द्र एवं राज्य सरकारों से पूंजी की पूर्ति हेतु ऋण का भी प्राप्त कर सकता है।

नाबार्ड की प्रबन्ध व्यवस्था 11 सदस्यों वाले प्रबन्ध-मण्डल के द्वारा की जाती है। प्रबन्ध-मण्डल में भारत सरकार द्वारा विभिन्न विशेषज्ञों, अधिकारियों इत्यादि को मनोनीत किया जाता हे। वर्तमान में एक अध्यक्ष, दो ग्रामीण आर्थिक विशेषज्ञ, तीन भारतीय रिजर्व बैंक के निदेशक, तीन केन्द्र सरकार के अधिकारी तथा विभिन्न राज्यों के दो प्रतिनिधि अधिकारी को मिलाकर प्रबन्ध मण्डल बनाया गया है।

नाबार्ड के प्रमुख कार्य (Main Function of NABARD) -

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की स्थापना मुख्य रूप से कृषि एवं ग्रामीण विकास से सम्बन्धित वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु राष्ट्र-स्तरीय के संस्था के रूप में की गई। राष्ट्र-स्तरीय शीर्ष संस्था होने के नाते नाबार्ड द्वारा निम्नांकित कार्य सम्पादित किये जाते हैं: -

1. सहकारी बैंकों को पुनर्वित सुविधा (Refinance Facilities to Co-operative Banks) -

नाबार्ड का प्रमुख कार्य सहकारी साख संरचना को वित्तीय दृष्टि से सुदृढ़ करना है। नाबार्ड द्वारा राज्य सहकारी बैंकों को अल्पकालीन एवं मध्यमकालीन पुनर्वित सुविधा प्रदान की जाती है। नाबार्ड द्वारा सहकारी बैंकों द्वारा संचालित कृषि एवं ग्रामीण विकास से सम्बन्धित विभिन्न वितीय परियोजनाओं पर आवश्यकतानुसार पुनर्वित्त सुविधा प्रदान की जाती है।

2. ग्रामीण बैंकों को वित्तीयन (Financial to Rural Banks) -

नाबार्ड द्वारा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को कृषि एवं ग्रामीण विकास से सम्बन्धित प्रदत ऋणों पर अल्पकालीन एवं मध्यमकालीन पुनर्वित्त सुविधा प्रदान की जाती है। नाबार्ड ग्रामीण बैंकों को 12 से 18 माह तक की पुनर्वित्त सुविधा सामान्यत: प्रदान करता है। विशेष आवश्यकता होने पर यह अवधि 7 वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है।

3. **अंश क्रय हेतु ऋण सुविधा (Loan Facilities for Purchase of Shares) -**

नाबार्ड द्वारा राज्य सहकारी बैंकों को केन्द्रीय सहकारी बैंक अथवा अन्य सहकारी समितियों के अंश क्रय हेतु ऋण सुविधा प्रदान की जाती है ताकि सहकारी साख संरचना में वित्तीय प्रवाह बाधित न हो। नाबार्ड इन बैंकों को अधिकतम 3० वर्ष की अवधि के लिए ऋण प्रदान कर सकता है।

4. ग्रामीण विकास ऋणों का पुनर्वित्तीयन (Refinance of Rural Development Loans) -

नाबार्ड ग्रामीण विकास की विभिन्न योजनाओं को प्रोत्साहन देने हेतु प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों, लघु एवं कुटीर उद्योगों, दस्तकारों, कलाकारों आदि कमजोर वर्गो के लोगों को विभिन्न बैंकों एवं सहकारी संस्थाओं द्वारा प्रदत्त ऋणों पर पुनर्वित्त की सुविधा उपलब्ध कराता है।

5. दीर्घकालीन ऋण सुविधा (Long-Term Loan Facilities)

नाबार्ड द्वारा अल्पकालीन एवं मध्यमकालीन ऋण सुविधा ही प्रदान नहीं की जाती, वरन यह सहकारी बैंकों, भूमि विकास बैंकों, व्यापारिक बैंकों एवं क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत दीर्घकालीन ऋण सुविधा भी उपलब्ध कराता है। नाबार्ड द्वारा दीर्घकालीन ऋण सामान्यत: 25 वर्ष की अवधि के लिए दिये जाते हैं।

6. तकनीकी सहायता एवं परामर्श (Technical Assistance and advice) -

नाबार्ड द्वारा कृषि एवं ग्रामीण विकास से सम्बन्धित सभी पहलुओं पर तकनीकी जानकारी एवं परामर्श का कार्य भी किया जाता है। इस हेतु नाबार्ड ने अनुसन्धान एवं विकास विभाग की स्थापना की है। इस विभाग के माध्यम से नाबार्ड तकनीकी सहायता एवं परामर्श आदि का कार्य भी सम्पन्न करता है।

इस प्रकार नाबार्ड राष्ट्र-स्तरीय ऐसी शीर्ष संस्था है जो कृषि एवं ग्रामीण विकास हेतु सतत् प्रयत्नशील है। नाबार्ड की स्थापना के फलस्वरूप भारतीय रिजर्व बैक के कृषि एवं ग्रामीण विकास विभाग के समस्त कार्य नाबार्ड द्वारा ही सम्पन्न किये जाते हैं।

13.7 राज्य सहकारी बैंक

सहकारी बैंकिंग व्यवस्था के राज्य-स्तरीय बैंकिंग संस्थान ये बैंक होते हैं। राज्य-स्तर पर इनका सर्वोच्च स्थान होता है। प्रत्येक राज्य में एक राज्य स्तरीय बैंक होता हैं जो राज्य में अल्पकालीन एवं मध्यमकालीन सरकारी साख प्रदान करने वाली बैंकों का नियमन एवं नियन्त्रण करता है।

सदस्यता (Membership) -

राज्य सहकारी बैंकों में द्विरूपी सदस्य होते हैं : प्रथम - प्राथमिक सहकारी साख समितियाँ व केन्द्रीय सहकारी बैंक। द्वितीय - व्यक्ति तथा अन्य संस्थाएँ। इस प्रकार राज्य सहकारी बैंक मिश्रित सदस्यता वाले बैंक होते हैं जिनमें सहकारी बैंकों के साथ-साथ व्यक्तियों के लिए भी सदस्यता खुली रहती हे।

कोष एवं प्रबन्धन (Funds and Management) -

राज्य सहकारी बैंक की पूँजी अंश-पत्रों के विक्रय से प्राप्त की जाती है। इसके अतिरिक्त सदस्यों की जमाऐं नाबार्ड, रिजर्व बैंक, राज्य सरकार तथा अन्य बैंकों से प्राप्त ऋणों को मिलाकर बैंक कोष तैयार किये जाते हैं। इनकी प्रबन्ध व्यवस्था संचालक मण्डल के माध्यम से होती है। संचालक मण्डल के गठन की प्रकिया में राज्यानुसार भिन्नता पाई जाती है। सामान्यत: इनके संचालक मण्डल में केन्द्रीय सहकारी बैंकों के प्रतिनिधि, प्राथमिक सहकारी साख समितियों के प्रतिनिधि, राज्य सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी के अतिरिक्त सदस्यों द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि होते हैं जिनकी संख्या 10 से 30 के बीच होती है।

शीर्ष बैंकों के कार्य (Function of Apex Banks) -

राज्य सहकारी बैंक राज्य विशेष के सहकारी आन्दोलन की सर्वोच्च संस्था है। वह एक जिले के अतिरिक्त कोष दूसरे जिले को हस्तान्तरित करके अर्थात कोषों के प्रेषण हेतु एक नहर के रूप में सेवा उपलब्ध कराके विभिन्न केन्द्रीय बैंकों के लिए निकासी और सन्तुलन केन्द्र का कार्य करता है। केन्द्रीय बैंकों की तुलना में कहीं-कही अधिक व्यापक क्षेत्र में आन्दोलन के लिए नीची दरों पर कोष आकर्षित करता है। यह बैंक केन्द्रीय बैंकों के अतिरिक्त कोषों को आवश्यक होने पर उससे कहीं अधिक सुविधापूर्वक जो कि स्वयं कर पाते, व्यापारिक बाजारों में विनियोग करता है। शीर्ष बैंक राज्यों में प्राथमिक सहकारी समितियों, केन्द्रीय एवं शहरी बैंकों के परिचालन का विशेषत: उधार लेने-देने की दरों, विभिन्न प्रलेखों के संग्रह की दरों आदि के विषय में समन्वय स्थापित कर सकता है और व्यवसाय के कुशल संचालन में सामान्य परामर्श दे सकता है। मैकलेगन समिति के अनुसार शीर्ष बैंकों का प्रमुख कार्य राज्य स्तर पर वित्तीय साधन उपलब्ध कराना है। शीर्ष बैंक केन्द्रीय के कार्य संचालन पर नियन्त्रण रखकर प्रबन्ध में समन्वय का कार्य करते हैं। शीर्ष बैंकों को इनके कार्यों के आधार पर 'केन्द्रीय बैंकों का सन्तुलन केन्द्र' भी कहा जाता है।

इन बैंकों के प्रमुख कार्य संक्षेप में इस प्रकार है:-

1. सहकारी वित्त व्यवस्था में संतुलन -

शीर्ष बैंक राज्य में सहकार वित्तीय व्यवस्था में सन्तुलन स्थापित करता है। यह एक क्षेत्र के केन्द्रीय सहकारी बैंकों के अतिरिक्त कोषों को दूसरे क्षेत्र में केन्द्रीय बैंकों तक पहुँचाता है, जहाँ इनकी आवश्यकता होती है। यह बैंक जमायें स्वीकार करते हैं तथा समाशोधन गृह का कार्य भी करते हैं।

2. सहकारी आन्दोलन को दिशा प्रदान करना -

शीर्ष बैंक राज्य के केन्द्रीय सहकारी बैंकों के कार्यों में समन्वय स्थापित कर सहकारी साख आन्दोलन को एक दिशा प्रदान करता है। यह केन्द्रीय बैंकों को अनुदान व सहायता देकर सहकारी आन्दोलन के विकास में सहायता करता है।

3. मुद्रा बाजार से सम्पर्क

शीर्ष बैंक राज्य की सहकारी संस्थाओं व देश के मुद्रा बाजार में सम्पर्क स्थापित करने वाली कड़ी है। यह बैंक रिजर्व बैंक व राज्य के सहकारी आन्दोलन के मध्य सम्पर्क का कार्य करता है। शीर्ष बैंकों के माध्यम से ही रिजर्व बैंक राज्यों को सहकारी विकास के लिए साधन उपलब्ध करवाता है। इस प्रकार शीर्ष बैंक केन्द्रीय सहकारी बैंकों के बैंक का कार्य करता है।

4. राष्ट्रीय आन्दोलन से समन्वय -

यह बैंक राज्य के सहकारी आन्दोलन को राष्ट्रीय सहकारिता आन्दोलन से जोड़ने का काम करता है।

5. केन्द्रीय बैंकों का नियमन व नियन्त्रण -

शीर्ष बैंक राज्य के केन्द्रीय सहकारी बैंकों के कार्य संचालन को नियन्त्रित, नियमित व समन्वित करता है।

6. सामान्य बैंकिंग कार्य -

शीर्ष बैंक कुछ राज्यों में व्यापारिक बैंकों के कार्य भी करते हैं। जैसे महाराष्ट्र व मद्रास के शीर्ष बैंकों ने सहकारी उपभोक्ता आन्दोलन को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। रिजर्व बैंक के अनुसार शीर्ष बैंकों को व्यापारिक बैंकों के कार्य करने की अपेक्षा सहकारिता के नये क्षेत्रों की खोज कर उनके लिए वित्तीय साधन उपलब्ध कराने का कार्य करना चाहिए।

प्रगति -

भारत में शीर्ष बैंकों की स्थापना सर्वप्रथम महाराष्ट्र व मद्रास में हुई। अन्य राज्यों ने भी इनका अनुकरण करते हुए अपने यही शीर्ष बैंकों की स्थापना की। सन् 1916-47 में देश में 11 शीर्ष बैंक थे। सन् 1951 में रिजर्व बैंक अधिनियम बन जाने के बाद इन बैंकों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। सन् 1951-52 में कुल 16 बैंक थे। नवम्बर, 1956 में राज्यों के पुनर्गठन व एकीकरण हेतु एक सम्मेलन बुलाया गया। 1966-67 तक इन बैंकों की संख्या बढ़कर 25 हो गई थी। वर्तमान में इनकी संख्या 29 है। सन् 1951-52 में बैंकों की सदस्य संख्या 23.232 थी जो 1994-95 में बढ़कर 55000 हो गयी। परन्तु परिस्थितियोंवश बाद के वर्षो में सदस्य संख्या कम होती गई।

शीर्ष बैंक की जमा राशियों, अंशपूँजी व सुरक्षित कोष में वृद्धि हुई हैं। सन् 1951-52 में शीर्ष बैंकों की कार्यशील पूँजी 36.72 करोड़ रुपये थी जो 1966-67 में बढ़कर 402.95 करोड़ रुपये हो गई। वर्ष 1994-95 में शीर्ष बैंकों की कार्यशील पूँजी बढ़कर 27232 करोड़ रुपये हो गई। इस प्रकार बैंकों की संख्या 1994-95 में बढ़कर व हो गयी, जबकि 1973-74 में यह 26 थी। वर्तमान में बैंकों की कार्यशील पूँजी, ऋण, निजी कोष तथा लाभ में आशाजनक प्रगति हो रही है। ये बैंक रिजर्व बैंकनाबार्ड के नियन्त्रण व निर्देशन में कार्य कर रहे हैं। अवधि पार ऋणों की समस्या ने इन बैंकों की आशाओं पर पानी फेर दिया है। वर्ष 1951-52 की तुलना में 1966-67 में अवधि पार ऋणों की मात्रा 5 गुनी हो गई थी। वर्ष 1982-83 में इन बैंकों की जमायें 2,117 करोड़ रूपये थी जो बढ़कर 1994-95 में 11260 करोड़ रूपये हो गयी है। वर्ष 1994-95 में इनकी बकाया ऋणों की राशि 13827 करोड रूपये थी जिनमें से 1140 करोड़ रूपये के अतिदेय ऋण थे।

समस्यायें -

शीर्ष बैंकों की प्रगति का मूल्यांकन करने से यह स्पष्ट होता है कि इनकी प्रगति संतोषजनक रही है। इन बैंकों की पूँजी, जमायें, निजी कोष व लाभ आदि में वृद्धि हुई है। रिजर्व बैंक भी इनकी प्रगति से सन्तुष्ट है। एक ओर जहाँ इनके लाभों में वृद्धि हुई है, वही दूसरी ओर इनके प्रबन्ध-व्ययों में भी वृद्धि हुई है। इन्न बैंकों ने अपने लाभों का उचित विनियोजन किया है। वर्तमान में ये बैंक साख के अतिरिक्त अन्तर्देशीय विनिमय व्यापार, पारस्परिक प्रबन्धित कार्यक्रम, चैकों का भुगतान तथा एजेन्सी सम्बन्धी कार्य भी करने लगे हैं। इस प्रकार इन बैंकों ने अनेक कार्य आरम्भ कर दिये हैं। इतना सब होने के बाद भी इन बैंकों की कुछ प्रमुख समस्याएँ हैं, जो निम्नलिखित है-

1. **व्यक्तिगत ऋण** (Individual Loan) -

समितियों के अतिरिक्त निजी व्यक्ति भी शीर्ष बैंकों के सदस्य होते हैं। अत: शीर्ष बैंकों को व्यक्तियों को भी ऋण देना पड़ता है जबकि यह रिजर्व बैंक की नीतियों के खिलाफ है। रिजर्व बैंक ने शीर्ष बैंकों का कई बार इस ओर ध्यान आकर्षित किया है, फिर भी ये व्यक्तियों को ऋण देना बन्द नहीं करते। उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, असम व तमिलनाडु आदि राज्यों में व्यक्तिगत ऋणों की बकाया राशि बहुत अधिक है।

2. **पुस्तकीय समायोजन** (Book Adjustments) -

शीर्ष बैंक कुछ राज्यों में केन्द्रीय बैंकों को दिये गये ऋणों की झूठी वसूली दिखा देते हैं। इसके लिए वे पुस्तकों में आवश्यक समायोजन कर लेते हैं और इनकी वसूली दिखाकर पुन: ऋण दिया हुआ दिखा देते हैं। जबकि वास्तव में ये ऋण वसूल नहीं कर पाते है केवल उनका नवीनीकरण कर देते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि बैंक अपनी बैंकिंग नैतिकता का पालन नहीं करते हैं। इस प्रकार ये बैंक ईमानदारी से पूंजीकरण की दिशा में कार्य करने के मूल उद्देश्य से वंचित रह जाते हैं।

3. **अवधि पार ऋणों में वृद्धि** (Increasing Overdues) -

शीर्ष बैंकों की ऋण की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ अवधि पार ऋणों की मात्रा में भी बहुत वृद्धि हुई हैं। विगत दस वर्षो में अवधि पार ऋण 5 गुने बढ़ गये हैं। वर्तमान में अदत्त ऋणों की राशि के 12 से 14 प्रतिशत तक अवधि पार ऋण है। अत: शीर्ष बैंकों को केन्द्रीय सहकारी बैंकों से अवधि पार ऋणों की वसूली के लिए कारगर कदम उठाने चाहिए।

4. **जमाओं में अपर्याप्त वृद्धि** (Inadequate Increase in Deposits)

शीर्ष बैंकों की अकुशलता के कारण ये पर्याप्त मात्रा में जमायें आकर्षित करने में सफल नहीं हुए हैं। इन बैंकों की अधिकांश जमा राशि महाराष्ट्र व उत्तरप्रदेश से प्राप्त होती है। इनकी कुल जमाओं में आक प्रदेश, गुजरात, जम्मू-कश्मीर, कर्नाटक, राजस्थान व पश्चिमी बंगाल का 20 प्रतिशत से भी कम भाग है। बैंकों के कुल जमा कोष कार्यशील पूँजी के 50 प्रतिशत है।

5. **अनियोजित विनियोग** (Unplanned Investment) -

बैंकों द्वारा अपनी पूँजी विनियोजित करते समय तरलता, सुरक्षा व लाभदायकता का ध्यान रखा जाना चाहिये। कुछ शीर्ष बैंक इस विनियोग नीति का पालन नहीं करते हैं तथा रिजर्व बैंक के निर्देषों के बावजूद ये बैंक अन्य सहकारी समितियों के अंश खरीदने में धन विनियोजित

कर देते हैं। कुछ राज्यों में इन्होंने प्राथमिक सहकारी समितियों जैसे अवशीतन समिति, सिनेमा समिति आदि को बड़ी मात्रा में अग्रिम ऋण प्रदान किये हैं। इस प्रकार के विनियोगों पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए। इसके लिए बैंक को विनियोग सम्बन्धी सिद्धान्तों का सख्ती से पालन करना चाहिए।

6. **मध्यावधि ऋणों की अपर्याप्तता** (Inadequate Medium Term Loans) -

रिजर्व बैंक द्वारा प्रदत्त मध्यावधि ऋण सुविधाओं का ये बैंक पूरा-पूरा प्रयोग करने में असफल रहे हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि अधिकांश राज्यों में इन्हें केन्द्रीय बैंकों की मध्यावधि ऋणों की आवश्यकता की समुचित जानकारी नहीं है। इसकी समुचित जानकारी के लिए शीर्ष बैंकों द्वारा कोई निश्चित कार्यक्रम भी नहीं बनाया गया है। वास्तव में इन बैंकों ने मध्यावधि ऋण प्रदान करने के कार्यों में उदासीनता बरती है। इसके कुल ऋणों में मध्यावधि ऋणों का अनुपात बहुत कम है।

7. **ऋण नीति में दोष** (Defects in Loan Policy) -

शीर्ष बैंकों की ऋण नीति कुछ राज्यों में दोषपूर्ण रही है। इन बैंकों ने केन्द्रीय बैंकों के निजी कोषों के आधार पर उनकी ऋण सीमायें निर्धारित की है। ऐसा करने से पूर्व बैंक के कार्यकलापों व कुशलता पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। इस प्रकार शीर्ष बैंक केन्द्रीय बैंकों की ऋण आवश्यकताओं का सही विश्लेषण नहीं कर पाते हैं। कुछ केन्द्रीय बैंकों ने शीर्ष बैंकों से आवश्यकता से अधिक?ण प्राप्त किए हैं तथा ऐसे अतिरिक्त धन को वाणिज्यिक बैंकों में जमा कराकर लाभ प्राप्त कर रहे हैं। कुछ बैंक नियमों में निर्धारित अंश पूँजी खरीदे बिना ही ऋण प्राप्त करने में--सफल रहे हैं। शीर्ष बैंक ने ऐसे केन्द्रीय बैंकों को भी ऋण प्रदान किये है, जिनके अदत्त ऋण 20 से 30 प्रतिशत है जबकि ऐसे बैंकों को ऋण नहीं देने चाहिए। निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि शीर्ष बैंकों ने ऋण देते समय निर्धारित ऋण नीति व नियमों का ठीक ढंग से पालन नहीं किया है। इससे अवधि पार ऋणों की राशि बढ़ी है। इन बैंकों के कुशल संचालन में प्रभावशाली नेतृत्व ने राजनीतिक गठबन्धन का सहारा लेकर बाधा पहुंचाई है।

8. **प्रबन्ध एवं संगठन में दोष** (Defect in Management and Organisation) -

शीर्ष बैंकों की प्रबन्ध व्यवस्था में योग्य, कुशल एवं अनुभवी संचालकों का सदैव अभाव रहा है। व्यक्तिगत सदस्यों की संख्या अधिक होने से उनके प्रतिनिधियों का बाहुल्य रहता है। सरकार द्वारा भी सदस्य मनोनीत किये जाते हैं, जो राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कार्य करते हैं। सरकार द्वारा मनोनीत सदस्य साधारण सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं होते हैं, अत: वे अपने नियोक्ता के हित में कार्य करते हैं। राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण निर्णय लेने में देरी हो जाती है, अत: वे सही निर्णय नहीं ले पाते हैं।

9. **निरीक्षण व अंकेक्षण व्यवस्था शिथिल -** (Lack of Regular Inspection & Auditing)

शीर्ष बैंकों को ग्रामीण साख व्यवस्था के सफल संचालन का दायित्व सौंपा गया है। केन्द्रीय बैंक के जाँच व निरीक्षण का कार्य भी शीर्ष बैंकों के जिम्मे किया गया। किन्तु शीर्ष बैंक इसमें असफल रहे, क्योंकि इनके पास जाँच व निरीक्षण के लिए पर्याप्त कर्मचारियों का अभाव है। केन्द्रीय बैंक भी इनकी जांच व निरीक्षण में सहायता नहीं करते। अखिल भारतीय ग्रामीण साख

सर्वेक्षण समिति का सुझाव था कि ऐसे केन्द्रीय बैंक जो कि निरीक्षण व जाँच में सहयोग नहीं देते हैं, की सदस्यता समाप्त कर देनी चाहिए।

10. **प्रशिक्षित व अनुभवी कर्मचारियों का अभाव** - (Lack of Trained Employees)

शीर्ष बैंकों के पास प्रशिक्षित व अनुभवी कर्मचारियों का अभाव है। इनका अभाव होने से बैंक की प्रबन्ध व्यवस्था कमजोर बनती है। इन बैंकों के कर्मचारियों के प्रशिक्षण, विकास तथा कार्यदशाओं को सुधारने के लिए भी कोई उल्लेखनीय प्रयास नहीं किये गये। राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण इनकी प्रबन्ध व्यवस्था शिथिल हुई है।

सुझाव -

1. **रिजर्व बैंक के पर्यवेक्षक की नियुक्ति** (Appointment of the observer by Reserve Bank) -

रिजर्व बैंक को प्रत्येक शीर्ष बैंक के लिए एक पर्यवेक्षक की नियुक्ति करनी चाहिए, जिससे वह संचालक मण्डल की बेठकों में भाग ले सके तथा राज्य में सहकारी साख सुविधाओं के विस्तार के सम्बन्ध में अपने सुझाव दे सके। इसके लिए बैंकिंग कानून में आवश्यक संशोधन किए जा सकते हैं।

2. **संचालक मण्डल का पुनर्गठन** (Reconstitution of Board) -

शीर्ष बैंकों के संचालक मण्डल का पुनर्गठन किया जाना चाहिए। इसके लिए रिजर्व बैंक सलाह दे सकता है। राज्य सरकारें इन बैंकों को अनेक प्रकार की वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाती है। अत: उनका संचालक मण्डल में उचित प्रतिनिधित्व होना चाहिये, ताकि वे अपने हितों को भी सुरक्षित रख सकें। इसके अतिरिक्त कुछ विशेषज्ञों जैसे कृषि विशेषज्ञ, साख विशेषज्ञ आदि को भी संचालक मण्डल में नियुक्त करना चाहिए ताकि निर्णय लेने में आसानी हो।

3. **मुख्य प्रबन्धक की नियुक्ति** (Appointment of the Chief Executive Officer) -

प्रत्येक शीर्ष बैंक में एक मुख्य प्रबन्धक को नियुक्ति की जानी चाहिए। इसकी नियुक्ति करते समय विशेष सावधानी रखनी चाहिए। ऐसा व्यक्ति संस्था के अन्दर से भी लिया जा सकता है तथा संस्था, के बाहर से भी बुलाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक या स्टेट बैंक से किसी व्यक्ति को प्रतिनियुक्ति पर बुलाया जा सकता है। राज्य में सहकारी साख 'व्यवस्था के पुनर्गठन की जिम्मेदारी यही व्यक्ति सम्भालेगा। अत: ऐसा व्यक्ति योग्य, कुशल, ईमानदार, अनुभवी, प्रशिक्षित व उत्तरदायी होना चाहिए। इस व्यक्ति के प्रशिक्षण व विकास की जिम्मेदारी बैंक की होनी चाहिए।

4. **शाखाओं की स्थापना** (Opening in Branches) -

शीर्ष बैंकों को अपनी शाखायें ऐसे स्थानों पर स्थापित करनी चाहिए जहाँ केन्द्रीय बैंकों की स्थिति बहुत कमजोर है तथा वे अपना कर्तव्य निभाने में असमर्थ हैं। ऐसे स्थानों पर शीर्ष बैंकों की शाखा केन्द्रीय बैंक के सभी कार्यों का दायित्व स्वीकार करेगी। वह केन्द्रीय बैंक के स्थापित होने अथवा मजबूत स्थिति में जाने तक प्राथमिक साख समितियों को सहायता उपलब्ध करवाती रहेगी।

5. **राज्य का अंशदान** (State Contribution) -

ऐसे शीर्ष बैंक जिनकी कार्यकुशलता का स्तर निम्न रहा है, राज्य सरकार को इनकी अंश पूँजी में अधिक अंशदान देना चाहिए तथा उनके विकास का दायित्व स्वीकार करना चाहिए। यह अंशदान इतना होना चाहिए जिससे बैंक अपने सदस्यों को ऋण दे सके।

6. **पर्याप्त कर्मचारी** (Adequate Staff) -

शीर्ष बैंकों में कर्मचारी पर्याप्त मात्रा में होने चाहिए। इनकी पर्याप्त मात्रा होने के साथ ही इनकी गुणवत्ता में भी सुधार आवश्यक है। इसके लिए बैंक के कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार कर कर्मचारियों की कार्यकुशलता में वृद्धि की जा सकती है तथा उनको सहकारी, कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था की जानकारी प्रदान की जा सकती है, जिससे उनके व्यावहारिक -ज्ञान में वृद्धि होगी। इसके लिए राज्य सरकार को शीर्ष बैंकों को विशेष अनुदान व सहायता प्रदान करनी चाहिए ताकि योग्य व्यक्ति पर्याप्त मात्रा में चयनित किये जा सकें।

7. **सरकार-द्वारा' विशेष अनुदान** (Special Grants by the State Government) -

शीर्ष बैंकों में योग्य व आवश्यक कर्मचारियों की नियुक्ति, डूबते ऋणों को अपलिखित करने तथा अन्य विशेष व्ययों की पूर्ति के लिए राज्य सरकार द्वारा विशेष अनुदान व सहायता देनी चाहिए। इससे बैंक पर अनावश्यक वित्तीय भार नहीं बढ़ेगा।

8. उचित कर्मचारी संवर्ग का निर्माण -

शीर्ष बैंक व अन्य सहकारी बैंकों में कर्मचारियों के उचित संवर्ग बनाये जाने चाहिए। इससे कर्मचारियों को स्वतन्त्र रूप से काम करने का अवसर उपलब्ध होगा। कर्मचारियों के कार्यों में यदि अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं होगा तो योग्य व कुशल व्यक्तियों को सहकारी सेवाओं की ओर आकर्षित किया जा सकेगा।

9. **मध्यावधि ऋणों के लिए नियोजन** (Planning for Medium Term Loans) -

शीर्ष बैंकों को अपनी मध्यावधि ऋण नीति तैयार करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि नीति छोटी होते हुए भी किसानों की आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए। ये बैंक केन्द्रीय बैंकों के मध्यावधि ऋण हेतु एक उचित सारणी तैयार कर रिजर्व बैंक को भेजे। केन्द्रीय बैंकों को उस सारणी या नियोजन के अनुसार ही कार्य करना चाहिए। शीर्ष बैंक को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि केन्द्रीय बैंक के सहयोग से तैयार सारिणी प्राथमिक साख समितियों की आवश्यकताओं के अनुरूप ही हो। रिजर्व बैंक शीर्ष सहकारी बैंकों को एक बार में दो वर्ष के लिए मध्यावधि ऋण सीमा की स्वीकृति प्रदान कर सकता है।

13.8 केन्द्रीय सहकारी बैंक

सहकारी साख संरचना में केन्द्रीय सहकारी बैंक मध्यस्त्तरीय सहकारी समितियाँ है। यह प्राथमिक सहकारी साख समितियों तथा राज्य सहकारी बैंकों के मध्य सम्पर्क सूत्र का कार्य करते हैं। यह जिला स्तर पर कार्यरत रहते हैं। भारत में सन् 1904 के सहकारी अधिनियम में इन बैंकों को कोई वैधानिक मान्यता नहीं थी। किन्तु सन् 1912 के अधिनियम में केन्द्रीय सहकारी बैंकों से सम्बन्धित प्रावधान रखे गये। कई विद्वानों का यह कहना है कि केन्द्रीय सहकारी बैंक अनेक महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करते हैं अत: इनकी उपयोगिता है। यह जिला स्तर पर सहकारी साख

समितियों में उचित समन्वय बनाए रखते हैं। इन बैंकों को जिला सहकारी बैंक भी कहा जाता है, क्योंकि इनका कार्यक्षेत्र एक जिले तक ही सीमित रहता है।

देश में केन्द्रीय सहकारी बैंक दो प्रकार के पाए जाते हैं। प्रथम - सहकारी बैंकिंग संघ तथा द्वितीय मिश्रित केन्द्रीय सहकारी बैंक। सहकारी बैंकिंग संघों में केवल सहकारी समितियाँ ही सदस्यता प्राप्त कर सकती है। ऐसे केन्द्रीय सहकारी बैंकिंग संघ केरल, उड़ीसा, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान में स्थापित हुए हैं किन्तु वर्तमान में मिश्रित केन्द्रीय सहकारी बैंक ही कार्यरत है जिनकी सदस्यता सहकारी समितियों के साथ-साथ व्यक्ति भी प्राप्त कर सकते हैं।

सदस्यता (Membership) -

सम्बन्धित जिले में कार्यरत सभी पंजीकृत सहकारी साख समितियाँ केन्द्रीय सहकारी बैंक की सदस्य होती हैं। इसके अतिरिक्त अनुबन्ध की योग्यता रखने वाले व्यक्ति भी इसकी सदस्यता प्राप्त कर सकते हैं। जिले के गणमान्य नागरिक, विशेषज्ञ तथा प्रभावशाली व्यक्ति सामान्यत: केन्द्रीय सहकारी बैंक के सदस्य बनाए जाते हैं। बैंकों की सहकारी प्रकृति को बनाए रखने के लिए व्यक्तियों को सीमित मात्रा में सदस्यता दी जाती

कोष एवं प्रबन्ध (Funds and Management) -

केन्द्रीय सहकारी बैंक अपने कोष का संग्रहण अंश पूंजी के माध्यम से करते हैं। अंशों का मूल्य दस रूपये से 500 रूपये प्रति अंश तक हो सकता है। व्यवहार में 100 रूपये के अंश निर्गमित किये जाते हैं। अंश पूँजी के अतिरिक्त संचित कोष तथा जमाओं द्वारा भी कोष संगृहीत किये जाते हैं। सामान्यत: स्थायी जमाएँ तथा बचत जाता भी इन बैंकों द्वारा संचालित किया जाता है। केन्द्रीय सहकारी बैंकों की प्रबन्ध व्यवस्था संचालक मण्डल के माध्यम से होती है जो प्रजातांत्रिक आधार पर चुना जाता है। एक सदस्य एक मत' के सिद्धान्त पर सदस्यों द्वारा वार्षिक साधारण सभा में कार्यकारिणी के संचालक मण्डल के सदस्यों का चुनाव किया जाता है। संचालक मण्डल के सदस्यों की संख्या 10 से 20 के मध्य होती है। दैनिक कार्य सम्पादन हेतु प्रबन्धक तथा अन्य स्टाफ रखा जाता है।

कार्य (Functions) -

केन्द्रीय सहकारी बैंकों द्वारा सहकारी साख व्यवस्था में महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित किये जाते हैं। यह बैंक प्राथमिक सहकारी साख समितियों को धन उधार देती है तो दूसरी ओर राज्य सहकारी बैंकों के साथ इन समितियों का सम्पर्क स्थापित करते हैं। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सहकारी बैंक व्यापारिक बैंकिंग के समस्त कार्य भी सम्पन्न करते हैं। इन बैंकों के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं -

1. प्राथमिक सहकारी साख समितियों को उचित ब्याज दर पर वित्त प्रदान करना।
2. प्राथमिक सहकारी साख समितियों तथा राज्य सहकारी बैंकों के मध्य सहकारी समन्वय स्थापित करना।
3. प्राथमिक सहकारी साख समितियों का पर्यवेक्षण तथा मार्गदर्शन सम्बन्धी कार्य करना।
4. प्राथमिक सहकारी साख समितियों की समस्याओं का निदान करना।
5. व्यापारिक बैंकिंग सम्बन्धित समस्त कार्य, यथा-जमायें स्वीकार करना, ऋण प्रदान करना तथा एजेन्सी सम्बन्धी समस्त कार्य करना।

इस प्रकार स्पष्ट है कि केन्द्रीय सहकारी बैंक अपने कार्य-क्षेत्र प्राथमिक सहकारी समितियों के लिए एक उच्च-स्तरीय संस्थान का कार्य करता है। उनसे निरन्तर सम्पर्क रखकर उनकी आवश्यकताओं तथा कठिनाइयों का निराकरण करता है। कुछ राज्यों में केन्द्रीय सहकारी बैंक को प्राथमिक सहकारी साख समितियों के निरीक्षण का भी अधिकार प्राप्त है।

प्रगति (Process) -

केन्द्रीय सहकारी बैंक की स्थापना सहकारी अधिनियम, 1912 के प्रावधानों के अनुसार की गई। योजना काल में केन्द्रीय सहकारी बैंकों का पर्याप्त विकास हुआ लगभग सभी जिलों में केन्द्रीय सहकारी बैंक स्थापित हो चुके हैं। केन्द्रीय सहकारी बैंकों के सम्बन्ध में सरकार की यह नीति है कि ये बैंक आकार में बड़े हों, चाहे इनकी शाखाएँ कम हो साथ ही इनकी आर्थिक स्थिति भी मजबूत हो। इसी सरकारी नीति के कारण केन्द्रीय सहकारी बैंकों की संख्या में अधिक वृद्धि नहीं हुई है किन्तु इनकी सदस्यता, कार्यशील पूँजी तथा प्रदत्त ऋणों की मात्रा में वृद्धि हुई है। प्रत्येक जिले में एक केन्द्रीय सहकारी बैंक रखने के उद्देश्य से एकीकरण की नीति के रूप में केन्द्रीय सहकारी बैंकों की संख्या 1950-51 में 509 से घटकर 2003 में 343 रह गई। इनके पास जमा राशि 1950-51 में 38 करोड़ रू. से बढ़कर 2002-03 में 72893 करोड़ रू. और इसी अवधि में अग्रिम ऋण 106 करोड़ रू. से बढ़कर 50,482 करोड़ रू. हो गये।

समस्यायें (Problems) -

केन्द्रीय सहकारी बैंक यद्यपि जिला-स्तरीय बैंक होने के कारण अपनी उपयोगिता रखते हैं तथापि एक मध्यस्थ सहकारी बैंक होने के कारण कई समस्याओं से ग्रस्त है। केन्द्रीय सहकारी बैंकों की प्रमुख समस्याएँ इस प्रकार हैः-

1. केन्द्रीय सहकारी बैंकों तथा प्राथमिक सहकारी बैंकों के मध्य समन्वय का अभाव।
2. यह बैंक राजनीतिक प्रभाव से ग्रसित है।
3. कुशल एवं प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव।
4. केन्द्रीय सहकारी बैंकों के समक्ष पर्याप्त कोषों का अभाव।
5. अनुप्रयोज्य आस्तियों की समस्या।
6. ऊँची परिचालन लागत की समस्या।
7. अनियोजित विनियोग नीति की समस्या।
8. व्यापारिक बैंकों के समक्ष जो समस्याऐ है उनके कारण पूर्ण रूपेण विकसित नहीं हो पा रहे हैं। देश में कमजोर केन्द्रीय सहकारी बैंकों की संख्या बहुत अधिक है।

सुझाव (Suggestions) -

केन्द्रीय सहकारी बैंकों की समस्याओं के निदान हेतु निम्नांकित सुझाव उपयोगी हो सकते हैं-

1. केन्द्रीय सहकारी बैंकों की सदस्या संख्या को सीमित किया जाए तथा व्यक्तिगत सदस्यता को समाप्त किया जाए।
2. केन्द्रीय सहकारी बैंकों के वित्तीय संकट को दूर करने हेतु जमाओं को आकर्षित किया जाए। कार्यकुशलता बढ़ाकर लागत को कम किया जाए।

3. प्रबन्ध व्यवस्था सुधारने हेतु केन्द्रीय सहकारी बैंकों में विशेषज्ञों की नियुक्ति हेतु प्रावधान किया जाए।
4. केन्द्रीय सहकारी बैंक अपना शाखा विस्तार करे तथा अधिक-से-अधिक लोगों को बैंकिंग सुविधाऐं प्रदान करे
5. राज्य सहकारी बैंकों द्वारा केन्द्रीय सहकारी बैंकों का समय-समय पर निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण के माध्यम से उनकी कमियों को दूर करे।
6. केन्द्रीय सहकारी बैंकों को राजनैतिक प्रभाव से मुक्त किया जाए ताकि इनकी स्थानीय समस्याओं का निदान किया सके।

इस प्रकार केन्द्रीय सहकारी बैंकों की समस्याओं का निदान कर सहकारी साख संरचना को मजबूती प्रदान की जानी चाहिए।

13.9 प्राथमिक सहकारी साख समितियां

प्राथमिक कृषि संबंधी ऋण समितियां, जिन्हें कृषि संबंधी सहकारी समितियों के रूप में भी जाना जाता है, तात्पर्य इसके सदस्यों में उनकी ऋण और अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के अलावा उनमें सहयोग और पारस्परिक मदद की भावना पैदा करना है।

प्राथमिक कृषि संबंधी ऋण समितियों की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं :

1. अल्पकालीन और मध्यमकालीन ऋण प्रदान करना।
2. बचत की आदतों को प्रोत्साहित करना।
3. उर्वरकों और बीजों का वितरण करना।
4. दुग्ध उत्पादन, अंडा उत्पादन, शर्करा उत्पादन अथवा क्षेत्र के संसाधनों पर आधारित किसी अन्य उत्पाद के उत्पादन में सहायता प्रदान करना।
5. अपने सदस्यों में उपभोक्ता वस्तुएँ वितरित करना।

सदस्यता (Membership) -

प्रारम्भिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों की सदस्यता ग्राम अथवा ग्राम समूहों से जुड़े लोगों तक सीमित होती है, जहां हर व्यक्ति दूसरे को जानता है। दस अथवा इससे अधिक लोग स्थानीय स्तर पर कृषि सम्बंधी सहकारी समिति का गठन कर सकते हैं। कोई भी व्यक्ति न्यूनतम शेयरों की संख्या खरीद कर इसका सदस्य बन सकता है। इसके सदस्यों को देयता असीमित होती है अर्थात समिति के फेल हो जाने पर हुए नुकसान के लिए प्रत्येक सदस्य पूर्णतया जिम्मेवार होता है।

प्रबंधन - (Management)

प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों का प्रबंधन लोकतांत्रिक सिद्धान्तों पर होता है। प्रत्येक सदस्य को एक वोट डालने का अधिकार होता है चाहे उसके पास कितने भी शेयर हों। सभी सदस्य एक सामान्य समिति का गठन करते हैं और यह हर वर्ष प्रबंधन समिति का चुनाव करती है। इस समिति में प्रधान अथवा अध्यक्ष, सचिव एवं सदस्य होते हैं। केवल सचिव को पारिश्रमिक दिया जाता है। अन्य सभी सदस्य अवैतनिक तौर पर कार्य करते हैं।

निधियां -(Funds)

प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों की कार्यशील निधि में शेयर पूंजी, सदस्यता शुल्क, आरक्षित निधि (जो लाभ का 25 प्रतिशत होती है), सदस्यों और गैर सदस्यों की जमा राशि तथा केन्द्रीय सहकारी बैंकों से प्राप्त ऋण होते हैं। वे अनुदान, उपहार और धर्मार्थ राशि भी स्वीकार करते हैं।

ऋण-(Loans)

प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियां केवल अपने सदस्यों को उत्पादक और गैर उत्पादक आवश्यकताओं को पूरा करती है। मध्यम अवधि के ऋण एक निश्चित सीमा तक और विशेष मामलों में दिये जाते हैं। ये ऋण निजी जमानत एवं भूमि या फसल की प्रतिभूति के बदले दिए जाते हैं। इन ऋणों पर ली जाने वाली ब्याज की दर संगठित मुद्रा बाजार में प्रचलित व्याज दर से कम होती है। ऋणों की पुन: अदायगी किश्तों में की जाती है।

प्रगति - (Process)

प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों की सदस्यता समूचे राष्ट्र में व्यापक रूप से फैल गई है। मार्च, 2002 के अंत तक कुल प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियां 98,247 थी और इनके सदस्यों की संख्या लगभग 10 करोड़ थी। इन समितियों की जमा राशि 1950-51 में 4 करोड़ रू. से बढ़कर 31 मार्च 1996 को 3450 करोड़ रू. हो गई। 1995-96 में दिए गए कुल क्या 11805 करोड़ रु. के थे जबकि 1950-51 में यह मात्र 24 करोड़ रू. थे। इन समितियों कुल बकाया ऋण 1950-51 में 6 करोड़ रू. से बढ़कर 2000-01 में 34,522 करोड़ रू. हो गए।

समस्यायें - (Problem)

प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों का ऋण प्रदान करने का कार्य निःसंदेह प्रशंसनीय है, तथापि इन समितियों में कुछ गम्भीर त्रुटियां हैं वे निम्न हैं-

1. ये समितियां जमा जुटाने में असफल रही हैं।
2. अग्रिम दिये गए ऋणों की काली निराशाजनक है। नाबार्ड से संबंधित शर्मा कमेटी ने 1998 में अपनी रिपोर्ट में बताया कि 60 प्रतिशत प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियां ऋणों की वसूली न होने के कारण या तो समाप्त हो गई है या कार्य नहीं कर रही हैं।
3. इन समितियों या अधिकांश गैर-व्यवहार्य है और महाराष्ट्र, गुजरात तथा जग एवं कश्मीर कैसे राज्यों ने इनके पुनर्गठन के लिए कोई कदम नहीं उठाए हैं।
4. ये समितियां ऋण प्रदान करने में काफी लम्बा समय लेती है।
5. अधिकांश प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों की शेयर-पूंजी बहु त कम है।
6. पूर्णतया प्रशिक्षित स्टाफ की कमी है। इनमें से अनेक समितियों में पूर्णकालिक वेतन लेने वाले सचिव नहीं है।
7. प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियाँ छोटे किसानों और काश्तकारों की आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल रही है।

8. इन समितियों के पास पर्याप्त वित्तीय साधन नहीं हैं। ये वित्त के लिए मुख्यत: केन्द्रीय सहकारी बैंक पर निर्भर है क्योंकि ये बैंक स्वयं वित्तीय तौर से सुदृढ़ नहीं हैं इसलिए ये समितियां अधिक ऋण देने में असमर्थ हैं।

सुझाव -(Suggestion)

भारतीय रिजर्व बैंक की कृषि ऋण समीक्षा समिति ने अपनी रिपोर्ट (1989) में प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों की त्रुटियों को दूर करने और इन्हें सुदृढ़ करने की अनेक सिफारिशें की है ताकि वे अपना कार्य प्रभावशाली रूप से करने में समर्थ हो सके। इन उपायों को निम्न रूप से वर्गीकृत किया गया है -

1. व्यवहार्यता (Viability) -

प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों की व्यवहार्यता के न्यूनतम मापदंड को इसकी निम्न समर्थता के रूप में आका जा सकता है। (अ) पूर्णकालिक वेतन प्राप्तकर्ता सचिव की नियुक्ति (ब) भवन में नियमित कार्यालय की स्थापना (स) आवश्यक समझे गये पैमाने पर वैधानिक और अन्य रिजर्व में योगदान करना और (द) उचित लाभांश प्रदान करना। गैर व्यवहार्य प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों को भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित मार्गनिर्देशों के अनुसार पुनर्गठित किया जाना चाहिए।

2. शेयर पूंजी को सुदृढ़ करना (Strengthening of Share Capital)-

अधिकांश मामलों में प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों की शेयर पूंजी को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। इसके लिए (क) राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) द्वारा अतिदेय स्तर पर ध्यान दिए बिना राज्यों की सरकारों को शेयर-पूंजी ऋण की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिये (ख) प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों के लिए केन्द्रीय सहकारी बैंक में शेयर संबंध का अनुपात 5 प्र.श. पर निर्धारित होना चाहिए ताकि वे अपने सदस्यों से प्राप्त शेयर पूंजी का एक भाग अपने पास रख सकें। (ग) प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों को नकद ऋण के संबंध में शेयर संबंध का अनुपात कम करके 2 1/2 प्रतिशत से 1 प्रतिशत कर देना चाहिए।

3. जमा जुटाना (Deposit Mobilisation) -

प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों की भावी वृद्धि और सुदृढ़ता के लिए जमा राशि जुटाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके लिये (1) प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों को सामान्य: कम लागत की जमा राशि जुटानी चाहिए, जैसे कि बचत बैंक जमा। (2) इन समितियों को अपनी जमा का 15 प्र.श. केन्द्रीय सहकारी बैंक के विशेष खाते में रखना चाहिये। प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों की जमा राशि को बीमा कवर प्रदान करने के लिये राज्य सहकारी बैंकों को राज्य सरकारों से तालमेल करके उचित योजनाएं बनानी चाहिए।

4. **फसल ऋण देने के लिए ऋण प्रदान करने की नीतियों और तौर-तरीकों में सुधार** (Improving Lending Policies and Procedures For Crops Loans) -

फसल ऋण के लिए 12 माह से अधिक का ऋण नही दिया जाता। समिति ने सिफारिश की है (क) नकद ऋण व्यवस्था उन क्षेत्रों में शुरू की जानी चाहिए जहां बारहमासी सिंचाई उपलब्ध है और बहुविध फसलें प्रचलित है। (ख) प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों द्वारा व्यक्तिगत फसल

ऋण नियत करने के लिए उन मामलों को छोड़कर जहां फसल को एकड़वार में परिवर्तित किया जाता है, प्रत्येक वर्ष में एक बार ऋण विवरणिकाएं तैयार की जानी चाहिए। (ग) उन क्षेत्रों गे जहां खाद/कीटनाशक का अच्छा इस्तेमाल होता है, वहां प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों द्वारा ऋण के आगत भाग को मद के रूप में वितरित किए जाने पर जोर नहीं देना चाहिए। (घ) जहां संसाधनों की कमी के कारण निर्धारित फसल ऋण की मात्रा को कम करना आवश्यक है वहां बड़े किसानों को उनको कुल ऋण आवश्यकताओं का कम और लघु भाग उपलब्ध कराया जाए।

5. **प्रबंधन** (Management) -

प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों के प्रबंधन की गुणवत्ता में सुधार के लिए प्रत्येक. प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समिति में एक पूर्णकालिक प्रशिक्षित सचिव की नियुक्ति की जानी चाहिए। समिति ने सचिव के लिए विभागीय वेतन ढांचे का सुझाव दिया। एक वेतनमान गे उचित निश्चित वेतन, और बढ़े हुए कार्य के आधार पर एक परिवर्ती भुगतान जैसे कि वसूली, जमा, अतिरिक्त ऋण कारोबार किया गया सौर अतिरिक्त गैर ऋण कारोबार किया गया। यह वेतन प्रतिशत द्वारा अतिरिक्त पारिश्रमिक के रूप में होना चाहिए। इसके अलावा, प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों की प्रबंधन समिति के स्थिति निर्धाराग और शैक्षणिक कार्यकमों के जरिए प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।

6. **कार्यालय परिसर और गोदाम** (Office Premises and God owns) -

सभी कृषि संबंधी सहकारी समितियों द्वारा बहुउद्देशीय समितियों के रूप में अपनी गतिविधियों को करने के लिए सही कार्यालय परिसर और गोदामों की व्यवस्था करनी चाहिए।

7. **गैर-उत्पादक उद्देश्यों के लिए ऋण** (Loan for Non-productive Purposes) -

प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों को यह अनुमति दी जाए कि वे अपने संसाधनों मे से केवल ठोस जमानत के बदले एक निश्चित निर्धारित सीमा तक उपभोक्ता ऋण (जैसे गैर-उत्पादक उद्देश्यों के लिए) दे सके। उन्हें यह अनुमति भी दी जाए कि वे सोने और चाँदी के आभूषणों की जमानत के बदले अपनी जमा राशि का 20 प्र.श. भाग फसल क्या की अपेक्षा उच्चतर व्याज दर पर ऋण के रूप में दे सके। इससे प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों की व्यवहार्यता में वृद्धि होगी।

13.10 दीर्घकालीन साख - भूमि विकास बैंक अथवा राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक

भूमि विकास बैंक, जिन्हें पहले भूमि बंधक बैंकों के रूप में जाना जाता था अब ये राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक बन गये हैं, कृषकों की दीर्घकालीन ऋण आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। देश मे उनकी संरचना एकरूप नहीं है। कुछ राज्यों में यह एकात्मक जबकि अन्य में संघात्मक में है। हिमाचल प्रदेश और पश्चिम बंगाल में यह एकात्मक और संघात्मक संरचना के अन्तर्गत, राज्य-स्तर पर केन्द्रीय भूमि विकास बैंक और जिला स्तर पर प्राथमिक भूमि विकास बैंक है। केन्द्रीय भूमि विकास बैंक, किसानों को प्राथमिक कृषि संबंधी सहकारी समितियों के जरिए ऋण देता है। एकात्मक संरचना के अंतर्गत केन्द्रीय भूमि विकास बैंक विभिन्न जिलों में अपनी शाखाओं के जरिए कार्य करता है।

कार्य-

भूमि विकास बैंक किसानों को 5 से 25 वर्षो की अवधि के दीर्घकालीन ऋण निम्न उद्देश्यों के लिए प्रदान करते हैं -

1. भूमि में सुधार करने के लिए।
2. पुराने ऋणों का पुनर्भुगतान करने के लिए।
3. बंधक भूमि को मुक्त कराने के लिए।
4. नई भूमि खरीदने के लिए।

हाल के वर्षो में उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण कुटीर उद्योगों और लघु उद्यमों जैसे गैर - कृषि उद्देश्यों के लिए भी ऋण देना शुरू किया है।

प्रबंधन -

भूमि विकास बैंक, सहकारी समिति अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत है। भूमि विकास बैंक का प्रबंधन एक निदेशक मंडल द्वारा किया जाता है। इस निदेशक मंडल में प्राथमिक भूमि विकास बैंक द्वारा विधिवत चुने गये 15 से 20 सदस्य और राज्य सरकार द्वारा नामित सदस्य तथा सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार शामिल होते है।

निधियां -

भूमि विकास बैंकों के वित्तीय संसाधनों में शामिल है:

1. ऋण धारक और गैर-ऋण धारक सदस्यों द्वारा प्रदान की गई शेयर पूंजी।
2. सार्वजनिक जमा राशि।
3. डिबेंचर जारी करके। ये डिबेंचर तीन प्रकार के होते हैं : पहला संस्थाओं और लोगों द्वारा खरीदे गए साधारण डिबेंचर, दूसरे, फसल कटाई के समय किसानों को जारी किए गए 7 और 15 वर्षो के लिए ग्रामीण डिबेंचर। तीसरा, भूमि विकास के लिए जारी किए गए विशेष विकास डिबेंचर जिन्हें नाबार्ड, संबंधित राज्य सरकार और केन्द्र सरकार द्वारा खरीदा जाता है।

ऋण -

भूमि विकास बैंक अपने सदस्यों को उसकी भूमि प्रतिभूमि पर ऋण देते हैं जो सामान्यत: बंधक भूमि के मूल्य के 50 प्र.श. तक सीमित होते हैं। ये ऋण उाधिकतम 25 वर्ष की अवधि रहे लिए दिए जाते है। ये ऋण किसानों को दीर्घकालीन आवश्यकताओं, जैसे भूमि विकास, भूमि उद्धरण, नई भूमि खरीदने, लघु सिंचाई कार्यों जैसे कि पंप सैट खरीदने, कुएं, टयूबवेल लगाने या तालाब खोदने, डेयरी, मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन, रेशम के कीड़े पालने, बायोगैस संयंत्र आदि को पूरा करने के दिए जाते हैं। भूमि विकास बैंक ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम, घरेलु और हस्तशिल्प उद्योगों के लिए गैर-किसानों को भी ऋण देते हैं।

प्रगति -

भूमि विकास बैंकों की संख्या 1950-51 के 8 से बढ़कर 2002-03 में 20 हो गई। इस अवधि के दौरान ऋण अग्रिम 2.5 करोड़ रू. से बढ़कर 2631 करोड़ रू. हो गए। उनके बकाया ऋण 8 करोड़ रूपये से बढ़ कर 13870 करोड़ रूपये हो गए।

समस्यायें -

भूमि विकास बैंक अनेक समस्याओं का सामना कर रहे हैं जो उनकी कार्य- प्रणाली को सुचारु ढंग से चलने में बाधा डालते हैं-

1. **अतिदेय** - भूमि विकास बैंक अपने पुराने ऋणों की वसूली नहीं कर पाये हैं जिसके परिणामस्वरूप उनके अतिदेय बढ़ रहे हैं और ये इन बैंकों की कारगर कार्य-प्रणाली में बाधा डालते हैं।
2. **सीमित ऋण देने की पात्रता** - कार्यशील पूंजी की कमी के कारण प्राथमिक भूमि विकास बैंकों और भूमि विकास बैंकों की शाखाओं की क्या देने की पात्रता सीमित कर दी गई हैं। इनमें अधिकतम एक-तिमाही बैंक ही असीमित क्या देने की पात्रता रखते हैं।
3. **गैर-व्यवहार्य** - ऋण देने की सीमित पात्रता के कारण 30 प्र.श. प्राथमिक भूमि विकास बैंक और भूमि विकास बैंकों की शाखाएं व्यवहार्य नहीं हैं।
4. **लाभ में कमी** - गैर-व्यवहार्यता के कारण भूमि विकास बैंकों की हालत खराब होती जा रही है।
5. **डिबेंचर** - लोग इन बैंकों के डिबेंचर खरीदने में कोई दिलचस्पी नही रखते और साधारण डिबेंचर को जुटाने की लागत काफी अधिक है।
6. **विलम्ब** - ऋण प्रदान करने में विलम्ब होता है।
7. **उच्च सीमा** - भूमि विकास बैंक ऋण प्रदान करने के लिए बंधक रखी गई भूमि के मूल्य के 50 प्र.श. तक की ऊँची सीमा बनाए रखते हैं।
8. **पुराने ऋणों का भुगतान** - अधिकांश ऋण पुराने ऋणों का पुनर्भुगतान करने के लिए प्रदान किये जाते हैं जबकि उत्पादक उद्देश्यों के लिए कम ऋण प्रदान किए जाते हैं।
9. **धनी किसानों को लाभ** - धनी किसान इन बैंकों से अधिक लाभ उठाते हैं क्योंकि अन्य किसानों की अपेक्षा वे अधिक भूमि के स्वामी होते हैं।
10. **हस्तक्षेप** - भूमि विकास बैंकों के प्रबंधन में अत्यधिक बाहरी और सरकारी हस्तक्षेप होता है।
11. **अकुशल कार्यकरण** - पर्याप्त और प्रशिक्षित स्टाफ की कमी के कारण भूमि विकास बैंक सही और कारगर ढंग से कार्य नहीं कर पा रहे हैं। स्टाफ की भर्ती, नियुक्ति, पदोन्नति और प्रशिक्षण के बारे में कोई स्पष्ट और निश्चित नीति नहीं है। इन बैंकों के मुख्य कार्यकारी अधिकारी आई ए एस अथवा पी सी एस और सहकारी विभाग से होते हैं।

सुझाव -

देश में भूमि विकास बैंकों की कार्यप्रणाली के दोषों को दूर करने और इनमें सुधार करने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्ता विभिन्न समितियों द्वारा अनेक सुझाव दिए गए हैं। कृषि ऋण संबंधी समीक्षा समिति द्वारा दिए गए कुछ सुझाव निम्न है :

1. भूमि विकास बैंकों को व्यवहार्य बनाने के लिए अपने अतिदेयों की वसूली के लिए इन बैंकों द्वारा प्रभावी कदम उठाये जाने चाहिए।
2. भूमि विकास बैंकों को व्यवहार्य इकाई के रुप में बनाने के लिए संभाव्य गतिविधियों के विधिकरण द्वारा उनकी कारोबार की मात्रा को बढ़ाने के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए।

3. भूमि विकास बैंकों को पात्रता मापदंड की बजाय व्यवहार्यता मापदंड अपनाना चाहिए ताकि वे नाबार्ड से पर्याप्त निधियां प्राप्त कर सकें।
4. डिबेंचरों को रियायती दरों पर जारी करने से पहले ऋणों को जारी करने के लिए नाबार्ड द्वारा पर्याप्त अंतरिम वित्त प्रदान किया जाना चाहिए।
5. राज्य सरकारों और संस्थाओं द्वारा साधारण डिबेंचरों को जारी करने के कार्यक्रम का समर्थन करना चाहिए। जहां तक विशेष विकास डिबेंचरों को जारी करने का संबंध है, नाबार्ड द्वारा विशेष विकास डिबेंचरों में योगदान करने की बजाय सावधिक ऋणों के रूप में पुनर्विता उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
6. ऋणों के राजनीतिकरण को रोका जाना चाहिए और ऐसे ऋण मुख्यतया उत्पादक उद्देश्यों के लिये दिये जाने चाहिए।
7. स्टाफ की भर्ती, नियुक्ति, केरियर, योजना और विकास के लिए भूमि विकास बैंकों की एक सुनिश्चित नीति होनी चाहिए। उनका अपना स्टाफ होना चाहिए और सरकारी स्टाफ को केवल अपवादस्वरूप ही लिया जाना चाहिए। भूमि विकास बैंकों के प्रबंधन में किसी प्रकार का सरकारी हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।
8. ऋण देने में अनावश्यक विलम्ब नहीं होना चाहिए।
9. किसानों के हित के लिए ऋण मंजूर करने के अधिक मार्जिन को कम किया जाना चाहिए।

13.11 ग्रामीण भारत में सहकारी बैंकों का योगदान

एक सबके लिए तथा सब एक के लिये की अवधारणा के साथ देश में सहकारिता का विकास तीव्र गति से हुआ। सहकारी विकास का मूल आधार साख व्यवस्था ही रही है। सहकारी साख व्यवस्था का विस्तृत नेटवर्क तथा ग्रामीण आंचलिक क्षेत्र में साख सुविधाओं के विस्तार को देखते हुए सहकारी साख व्यवस्था को बैंकिंग व्यवस्था के रूप में परिणत किया गया। आज सहकारी बैंकिंग संस्थाएँ आधुनिक बैंकिंग के सभी आधारभूत कार्य सम्पन्न करती है। सहकारी साख समितियाँ इसकी मूल इकाई है जो सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में स्व-वित्त पोषण के आधार पर साख का विस्तार करती है। सहकारी साख व्यवस्था ग्रामीण सामाजिक आर्थिक व्यवस्था का अभिन्न अंग है। सहकारिता का दर्शन परस्पर सहायता के द्वारा आत्म सहायता में निहित है। सहकारी बैंकिंग के अन्तर्गत ग्रामीण जन स्वयं संस्था से जुड़कर एक दूसरे की हित साधना में लग जाते हैं। सब मिलकर एक पारिवारिक वातावरण गे आर्थिक सहायता करते हैं।

देश में सहकारी बैंकिंग व्यवस्था ग्रामीण विकास में आजादी के पूर्व से ही महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन कर रही है। राज्य स्तर पर शीर्ष बैंक, केन्द्रीय सहकारी बैंकों के माध्यम से साख विस्तार का समन्वय करता है। इसी प्रकार जिला स्तर पर छोटी-छोटी ग्रामीण समितियों को परामर्श एवं दिल प्रदान करने का कार्य केन्द्रीय सहकारी बैंकों के माध्यम से किया जाता है। राष्ट्रीय स्तर पर नाबाई कृषि और ग्रामीण विकास के लक्ष्यों को पूरा करने में सहयोग प्रदान करते हैं। इस तरह यदि देखा जाए तो सम्पूर्ण सहकारी साख संस्था की यह त्रि-स्तरीय संरचना ग्रामीण भारत की आत्मा है। इसे ग्रामीण विकास के किसी भी पहलू से पृथक नहीं किया जा सकता। ग्रामीण जन स्वयं सहकारी समिति का निर्माण कर एक सामूहिक साख व्यवस्था का सृजन कर

लेते हैं जिसे एक शीर्ष स्तरीय संस्था आर्थिक सम्बल देती है। फलस्वरूप यह साख समिति अथवा मिनी बैंक साख विस्तार के माध्यम से ग्राम स्तर पर विकासात्मक कार्य में संलग्न हो जाता है। अल्पकालीन एवं मध्यमकालीन साख ही नहीं दीर्घकालीन साख आवश्यकता की पूर्ति भी विकास बैंकों के माध्यम से की जाती है। सहकारों साख व्यवस्था को ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने भी ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए सहकारी समितियों के योगदान की प्रशंसा करते हुए यह मत व्यक्त किया 'यद्यपि सहकारिता असफल हुई है किन्तु इसे सफलता प्राप्त करनी चाहिये। (co-operative has failed but co-operative must successed).

इस प्रकार ग्रामीण भारत में सहकारी साख संस्थाएँ सुदूर आंचलिक क्षेत्रों तक अपना विस्तृत रुप लिये हुए साख के फैलाव में संलग्न है किन्तु यह श्रेष्ठ संरचना अत्यधिक सरकारीकरण, अकुशल प्रबन्धन, अनियोजित विस्तार तथा स्थानीय राजनीति के अधिक प्रभावी होने के कारण सफलता प्राप्त नहीं कर रही है, किन्तु सहकारिता का दर्शन भारतीय ग्रामीण दर्शन के अनुरूप होने के कारण यह ग्रामीण सभ्यता एवं संस्कृति का अभिन्न अंग है। अत: सहकारिता का योगदान ग्रामीण क्षेत्रों में सतत् एवं अनवरत जारी रहेगा।

13.12 सहकारी बैंक सम्बन्धी कानूनी प्रावधान

बैंकिंग अधिनियम 1949 तथा सहकारी बैंक (56) Banking Regulation Act 1949 and co-operative Bank)(Sec.56) - सहकारी बैंकों के महत्वपूर्ण योगदान को देखते हुए सहकारी साख समितियों को व्यापारिक बैंकों के समकक्ष दर्जा दिया गया। इस हेतु सन् 1956 में बैंकिंग विधि (सहकारी समितियों पर) पारित किया गया। इस अधिनियम के पारित होने के साथ ही बैंकिंग अधिनियम 1949 में एक विशेष खण्ड (5) जोड़ा गया जिसके अन्तर्गत धारा 56 में सहकारी बैंकों से सम्बन्धित प्रावधान लागू किये गए। मुख्य प्रावधान इस प्रकार है-

1. सहकारी बैंकों का अनुज्ञा पत्र (Licensing of co-operating Banks) -

प्रत्येक राज्य सहकारी बैंकों के लिए यह आवश्यक है कि वे रिजर्व बैंक से अनुज्ञा-पत्र प्राप्त करे। भारतीय रिजर्व बैंक सभी राज्य सहकारी बैंकों तथा केन्द्रीय सहकारी बैंकों को जिसकी चुकता पूँजी तथा कोष एक लाख रूपया अथवा अधिक है, उसे भारतीय रिजर्व बैंक से अनुज्ञा पत्र प्राप्त करना अनिवार्य हैं।

2. बैंक शब्द का प्रयोग (Use of Word 'Banks') -

जो भी सहकारी 'समितियाँ इस अधिनियम के अन्तर्गत अनुज्ञा प्राप्त करती है वे अपने नाम के साथ अनिवार्य रूप से 'बैंक शाद का प्रयोग करे। अन्य किसी सहकारी समिति को बैंक शब्द के प्रयोग की अनुमति नहीं होगी। किन्तु प्राथमिक सहकारी साख समितियों को अपने नाम के साथ साख बैंक शब्द लगाने की छूट दी गई है।

3. न्यूनतम चुकता पूजी (Minimum Paid Capital) -

कोई भी सहकारी बैंक अपना व्यावसाय जारी रख नहीं सकता है जब तक कि उसकी चुकता पूँजी तथा कोष कम से कम एक लाख रूपया नहीं हो अर्थात सहकारी बैंक के लिए भारत में व्यवसाय संचालन करने पर कम से कम एक लाख रूपया चुक्ता पूँजी तथा कोष बनाये रखे।

4. नकद कोष (Cash Reserve) -

प्रत्येक सहकारी बैंक के लिए यह आवश्यक है कि वह भारतीय रिजर्व बैंक की किसी शाखा में अथवा राज्य सहकारी बैंक में अथवा केन्द्र सरकार द्वारा सूचित किसी बैंक में चालू खाता खुलवा कर नकद कोष जमा कराएँ। प्राथमिक सहकारी साख समितियों के लिए यह प्रावधान हैं कि वह केन्द्रिय सहयोगी कोष मे अपना नकद जमा करा सकती है। प्रत्येक सहकारी बैंक के लिए आवश्यक है कि वह कम से कम माँग एवं अवधि जमाओं का 3 प्रतिशत नकद कोष के रूप में जमा कराए तथा हर माह के 15 दिन में इसकी जानकारी रिजर्व बैंक को प्रदान करे।

5. **अन्य सहकारी समितियों के अंश खरीदने पर प्रतिबन्ध (Restrictions on buying** Shares of other Co-operative Societies) - कोई भी सहकारी बैंक अन्य सहकारी बैंकों के अंश तभी खरीद सकता है जबकि वह निम्नांकित शर्ते पूरी करे-
   1. वे अंश पत्र जो राज्य सरकार के कोषों से क्रय किये गये हैं।
   2. राज्य सहकारी बैंकों के अंश पत्र जो केन्द्रीय सहकारी बैंकों द्वारा रखे गये हों।
   3. केन्द्रीय सहकारी बैंकों के अंश पत्र जो प्राथमिक सहकारी समितियों द्वारा खरीदे गये हों।

6. अन्य प्रतिबंध (Other Restrictions) -

सहकारी बैंकों पर बैंकिंग अधिनियम 1549 की धारा 56 के अन्तर्गत कई प्रतिबन्ध लगाए गए हैं जिनमें कोई भी सहकारी बैंक अपने ही अंश पत्रों के आधार पर ऋण प्रदान नहीं कर सकता है। बैंक के व्यवस्थापकों, निदेशकों, निजी कम्पनियों तथा व्यक्तियों को असुरक्षित ऋण प्रदान नहीं किया जा सकता है।

उपर्युक्त प्रावधानों के अतिरिक्त सहकारी बैंकों के वार्षिक लेखे बैंकिंग अधिनियम 1949 के प्रावधानों के अनुरूप ही तैयार किये जाते हैं। शेष सभी प्रावधान व्यापारिक बैंकों के अनुरूप ही सहकारी बैंकों पर लागू होते हैं।

13.13 सारांश

भारतवर्ष में सहकारी साख ग्रामीण तथा शहरी ऋण व्यवस्था दो भागों में विभक्त है। जहां तक ग्रामीण सहकारी ऋण- व्यवस्था का प्रश्न है, इसे पुन: दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग में अल्प व मध्य-क़ालीन ऋण आते हैं और दूसरे में दीर्घकालीन ऋण। अल्प व मध्यकालीन साख का ढाँचा चार सीढ़ियों की तरह हैं। ग्राम स्तर की प्राथमिक कृषि ऋणदात्री समिति (सेवा समिति) इस प्रकार की साख का आधार है। दूसरी सीढ़ी केन्द्रीय सहकारी बैंकों की है जिनके सदस्य प्राथमिक कृषि ऋणदात्री समितियाँ होती है। तीसरी सीढ़ी राज्य स्तर के शीर्ष बैंक की है जिसके सदस्य केन्द्रीय सहकारी बैंक है। अन्तिम सीढ़ी राष्ट्रीय स्तर के नाबाड़ की है जो शीर्ष बैंकों को पुनर्वित सुविधाऐं प्रदान करता है।

दीर्घकालीन ऋण भूमि विकास बैंकों दारा प्रदान किया जाता है। दीर्घकालीन ऋण के लिए राष्ट्रीय स्तर पर नाबार्ड है जो केन्द्रीय भूमि विकास बैंकों को पुनर्वित सुविधा प्रदान करता है। राज्य स्तर पर प्रत्येक राज्य में एक केन्द्रीय भूमि विकास बैंक होती है। कुछ स्थानों पर शीर्ष

भूमि विकास बैंक अपनी प्राथमिक बैंकों की सहायता से, जो कि तहसील या जिला स्तर पर होती है, अपना कारोबार चलाती है और कुछ अन्य स्थानों पर इसकी शाखाएँ कार्य करती है।

शहरी साख के लिए कर्मचारी ऋणदायी सहकारी समितियां व अरबन कॉआपरेटिव बैंक होते हैं। इन समितियों द्वारा शहरी कर्मचारियों, मजदूरों अथवा छोटे उद्योगों को साख प्रदान की जाती हैं।

आर्थिक जीवन में साख या वित्त का अत्यधिक महत्व है। इसके माध्यम से ही प्रत्येक मानव की आर्थिक प्रगति होती है। इसके अभाव में ही भारतीय कृषक लोभी साहूकारों के चंगुल में फंस गया और इसके परिमाणस्वरूप उसने ऋणग्रस्तता की स्थिति में जन्म लिया, जीवन-यापन किया तथा उसके भार को अपनी भावी सन्ततियों पर छोड़ता हुआ मर गया। यह भारतीय कृषक के इतिहास की करूण कहानी है। सहकारी साख ने भारतीय कृषक को कुछ मायने में इस स्थिति से उबारा है।

13.14 शब्दावली

सहकारी बैंक (Co-operative Bank) :

सहकारी बैंक वे संस्थायें होती है जो सामूहिक स्वामित्व वाले व्यक्तियों का एक स्वेच्छिक संगठन है जिनकी स्थापना लोकतान्त्रीय आधार पर होती है जो अपने सदस्यों की बचतें संगृहीत करते हैं तथा उन्हें ऋण प्रदान करते हैं।

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) :

कृषि एवं ग्रामीण विकास हेतु 12 जुलाई 1982 को सहकारी समितियों को साख उपलब्ध कराने हेतु नाबार्ड की स्थापना की गई ग्रामीण साख के लिए यह बैक शीर्ष संस्था है।

राज्य सहकारी बैंक (State Co-operative Bank or Apex Bank) :

राज्य सहकारी बैंक राज्य विशेष के सहकारी क्षेत्र की सर्वोच्च संस्था है। इसका प्रमुख कार्य राज्य स्तर पर वित्तीय साधन उपलब्ध करना है। ये शीर्ष बैंक केन्द्रीय सहकारी बैंकों के कार्य संचालन पर नियंत्रण रखकर प्रबन्ध में समन्वय का कार्य करते हैं।

केन्द्रीय सहकारी बैंक (Central Co-operative Banks):

सहकारी साख संरचना में केन्द्रीय सहकारी बैंक मध्यस्तरीय सहकारी संस्थायें हैं। ये प्राथमिक सहकारी साख समितियों तथा राज्य सहकारी बैंकों के मध्य सम्पर्क सूत्र का कार्य करते हैं। यह जिला स्तर पर कार्यरत रहते हैं।

प्राथमिक सहकारी साख समितियां (Primary Co-operative Credit Societies):

ये ग्राम स्तर पर होती हैं जिनमें केवल व्यक्ति ही सदस्य होते हैं। इनका कार्य सदस्यों को उधार देने के लिये कोषों का सृजन करना होता है।

प्राथमिक भूमि विकास बैंक (Primary Land Development Book):

नीचे के स्तर पर दीर्घकालीन साख की व्यवस्था के लिये प्राथमिक भूमि विकास बैंक होते हैं जो तालुका या तहसील स्तर पर कार्य करते हैं। अब इन्हें प्राथमिक सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक कहा जाता है।

केन्द्रीय भूमि विकास बैंक (Central Land Development Book) :

प्राथमिक भूमि विकास बैंकों के संघों के रूप में राज्य स्तर पर कार्य करते हैं तथा इनका कार्य प्राथमिक भूमि विकास बैंकों को वित्तीय साधन प्रदान करना होता है। इनका उद्देश्य दीर्घकालीन साख की व्यवस्था हेतु प्रयास करना होता है। अब इन्हें राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (SCARDBs) कहा जाता है।

13.15 अभ्यास प्रश्न

1. सहकारी बैंक से क्या तात्पर्य है? ग्रामीण विकास में सहकारी बैंकों के योगदान की समीक्षा कीजिये।
2. नाबार्ड की पूंजी, प्रबन्ध एवं कार्यों का वर्णन कीजिये।
3. भारत में राज्य सहकारी बैंकों पर निबन्ध लिखिये।
4. केन्द्रीय सहकारी बैंक के संगठन, कार्य एवं प्रगति का वर्णन कीजिये।
5. प्राथमिक सहकारी साख समितियों के वित्त के मुख्य स्त्रोत क्या हैं? इनके समक्ष क्या समस्यायें हैं? उन्हें दूर करने हेतु आप क्या उपाय सुझायेंगे?
6. अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन सहकारी साख में अंतर स्पष्ट कीजिये। दीर्घकालीन सहकारी साख प्रदान करने वाली संस्थाओं का वर्णन कीजिये।
7. टिप्पणियां लिखिये- अ. भारत में सहकारी बैंकिंग का ढांचा ब. केन्द्रीय भूमि विकास बैंक।

13.16 संदर्भ ग्रन्थ

1. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार – पी एन वार्ष्णेय
2. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार – बी एल ओझा
3. बैंक विधि एवं व्यवहार – डा एच सी शर्मा
4. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार – स्वामी व गुप्ता

इकाई - 14
मर्चेन्ट बैंकिंग

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 मर्चेन्ट बैंक का अर्थ

14.3 भारत में मर्चेन्ट बैंकिंग का विकास

14.4 मर्चेन्ट बैंक के कार्य

14.5 भारत में मर्चेन्ट बैंकों की कार्य प्रणाली

14.6 मर्चेन्ट बैंकिंग की कमियां और उपचार

14.7 पारस्परिक निधियाँ -परिचय

14.8 पारस्परिक निधयाँ - अर्थ एवं परिभाषा

14.9 पारस्परिक निधियों के प्रकार

14.10 भारत में पारस्परिक निधियाँ

14.11 पारस्परिक निधियों के सम्बन्ध में सरकार द्वारा जारी दिशा निर्देश

14.12 सारांश

14.13 शब्दावली

14.14 अभ्यास प्रश्न

14.15 संदर्भ ग्रन्थ

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के निम्नांकित उद्देश्य हैं -

- मर्चेन्ट बैंकिंग की जानकारी प्रदान करना।
- मर्चेन्ट बैंकिंग के भारत में विकास से अवगत करवाना।
- मर्चेन्ट बैंकों के कार्य एवं कार्यप्रणाली की जानकारी प्रदान करना।
- मर्चेन्ट बैंकिंग की कमियाँ एवं उपचारों की जानकारी देना।
- पारस्परिक निधि से परिचय करवाना।
- पारस्परिक निधियों के प्रकार एवं भारत में पारस्परिक निधियों की जानकारी प्रदान करना।

14.1 प्रस्तावना

मर्चेन्ट बैंक की संस्था ब्रिटेन में प्रारंभ हुई जहाँ मर्चेंट बैंकर विनिमय बिल स्वीकार कर विदेशी व्यापार के वित्त प्रबन्धन में लगे व्यापारी थे। ये विदेशी व्यापार से संबंधित अन्य बैंकिंग सेवाएँ भी प्रदान करते थे जैसे स्वर्ण और विदेशी मुद्रा में व्यापार करना, विदेशी ऋणकर्ताओं को

लंदन मुद्रा बाजार में मुद्रा उधार लेने के लिए मदद करना आदि। 20 वीं सदी के प्रारंभ से इन्होंने फर्मो का विलय, हस्तांतरण और अन्य वित्तीय मामलों पर सुझाव आदि देने को शामिल कर अपने कार्य-क्षेत्र का विस्तार किया है। ये यूरो-मुद्रा बाजार में सक्रिय है और किश्त खरीद एवं सोना-चांदी में व्यापार करते है। ये प्रतिभूतियों के प्रोत्साहन, वितरण एवं प्रशासन के कार्य भी करते हैं तथा प्रतिभूतियाँ जारी करने वाली कम्पनियों को निश्चित कीमत की गारंटी देते हैं।

14.2 मर्चेन्ट बैंक का अर्थ

मर्चेंट बैंकिंग के अन्तर्गत औद्योगिक तथा व्यापारिक संस्थानों को विशिष्ट प्रकार की सेवायें उपलब्ध करायी जाती है। मर्चेंट बैंक, व्यावसायिक बैंकों से भिन्न होते हैं। व्यावसायिक बैंक व्यक्तियों, कंपनियों और अन्य संगठनों से जमा प्राप्त करते हैं और इन्हें भुगतान करते हैं। ये उन्हें अल्पकालीन और दीर्घकालीन ऋण देते हैं। ये अपने ग्राहकों को कई अन्य सेवाएँ प्रदान करते हैं जैसे ट्रस्टी एवं वसीयत प्रबंधक सुविधाएँ, साख स्थानान्तरण, क्रेडिट कार्ड, विदेशी विनिमय की पूर्ति, एजेन्सी सेवाएँ आदि। दूसरी ओर, मर्चेंट बैंक (जिन्हें अमेरिका में निवेश बैंक कहते हे) द्वितीयक बैंक होते हैं। ये विभिन्न क्रियाओं में विशेषज्ञ होते हैं। जैसे-व्यापार को वित्त प्रदान करना, किश्त खरीद प्रदान करना, औद्योगिक वित्त प्रदान करना, नये इश्यू का बीमा करना, विलय और हस्तांतरण के लिए सलाह देना और वित्त व्यवस्था करना, संस्थाओं के लिए निवेशों का प्रबंध करना, अप्रवासी निवेशों का प्रबंधन आदि।

14.3 भारत में मर्चेन्ट बैंकिंग का विकास

भारत में व्यावसायिक बैंकिंग के प्रारंभ होने से पूर्व देशी बैंकर ही मर्चेंट बैंकर का कार्य कर रहे थे। वे व्यापारियों और छोटे उद्योगपतियों को ऋण देकर, हुंडी लिखकर, खरीदकर और बेचकर, वित्त बिलों और व्यापारिक बिलों को लिखकर वित्त एवं धन-प्रेषण सुविधाएं प्रदान करते थे। ये आन्तरिक व्यापार के वित्त प्रबंधन में सहायक होते थे।

मर्चेंट बैंक अब सार्वजनिक निर्गमों के प्रबंधन, ऋण का व्यवसायी संघ करना, वित्तीय और प्रबंधन सलाहकार, प्रोजेक्ट पर सलाह देना, विलय और अधिग्रहण, अनिवासी निवेशों का प्रबंधन जैसी सेवाएँ प्रदान करते है। भारत में मर्चेंट बैंकिंग प्रारंभ करने का श्रेय ग्रिण्डलेज बैंक, सिटी बैंक जैसे विदेशी बैंकों को जाता है। वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र के कई बैंक मर्चेंट बैंकिंग सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं जो बैंकों को सहायक कंपनी होते हैं। निजी वित्तीय सेवा कंपनियां, अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाएँ, जैसे ICICI,IDBI आदि निजी बैंकिंग कंपनियां, विदेशी बैंकिंग कंपनियां, और तकनीकी परामर्शदात्री संगठन भी व्यावसायिक बैंकिंग सेवाएं प्रदान करते हैं। इनमें से कुछ है -एस.बी.आई. पूंजी बाजार लि. बैंक ऑफ बड़ौदा मर्चेंट बैंक डिवीजन, कैनरा बैंक वित्तीय सेवा लि., अखिल बैंक वित्त लि., बैंक ऑफ इण्डिया वित्त लि., डी.एस.पी. वित्तीय कन्सलटेन्ट्स, जे.एम. वित्तीय और निवेश सेवा लि. आदि।

14.4 मर्चेन्ट बैंक के कार्य

भारत में मर्चेंट बैंक निम्न कार्य करते हैं:

1. **पूंजी निर्गमों का प्रबंधन (Managing Capital Issues)** - मर्चेंट बैंक निम्न सेवाएँ प्रदान करके कंपनियों के नये निर्गमों का प्रबंधन करते हैं।

1. पूंजी ढांचे का विस्तार।
2. विवरणिका का मसौदा तैयार करना।
3. सेबी की अनुमति प्राप्त करना।
4. स्टॉक एक्सचेंजों की स्वीकृति प्राप्त करना।
5. निजी और बाजार व्यवस्था द्वारा कंपनी शेयर पूंजी में संस्थाओं की सहभागिता की व्यवस्था करना।
6. दलालों, बैंकों और वित्तीय संस्थाओं से निर्गम की अभिगोपन की व्यवस्था करना।
7. शेयरों के निर्गम हेतु प्रबंधकों, दलालों, निर्गम गृहों और निर्गम बैंकरों का चुनाव करना।
8. निर्गम के लिए स्वयं प्रबंधक के रूप में कार्य करना।
9. निर्गम के प्रचार का उत्तरदायित्व लेना।
10. शेयरों और डिबेंचरों, उनके आवंटन, मुद्रा का संग्रह और उन्हें अंशदाताओ को भेजने अथवा शेयरधारकों और निक्षेपगारों को उनके विलय में सूचित करने संबंधी प्रार्थना पत्र प्राप्त करना।

2. **नयी औद्योगिक इकाइयों पर सुझाव** (Advice on New Industrial Units) - वे फर्मो को नयी औद्योगिक इकाइयां स्थापित करने के लिए उनके स्थान-निर्धारण, तकनीकी सहयोगों, उचित तकनीकें चुनने वित्त प्रबंधन, कर आयोजन, सरकार की स्वीकृतियाँ प्राप्त करने, आदि से संबंधित सुझाव देते हैं।

3. **प्रोजेक्ट निर्माण** (Project Formulation) - वे कंपनियों को निवेशपूर्व प्रोजेक्ट रिपोर्ट तैयार करने, और बाजार सर्वेक्षण आदि कर उनके प्रोजेक्टों के निर्माण में मदद करते हैं।

4. **ऋण संघटन** (Loan Syndication) - वे कंपनियों को बैंकों और वित्तीय संस्थाओं से वित्त की व्यवस्था कर ऋण संघटन में सहायता करते हैं। इसके लिए मर्चेंट बैंक, बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के लिए प्रार्थना-पत्र तैयार करते हैं, ऋण सुविधाओं की स्वीकृति के लिए बातचीत करते हैं, चल-पूंजी सुविधाओं के लिए बैंकों से सहयोग करते हैं, सहायता संघ व्यवस्थाओं के लिए वित्तीय संस्थाओं से समझौता करते हैं और ऋण कागजातों को पूरा करने में मदद करते हैं।

5. **ट्रस्टीज** (Trustees) - जब कंपनियां सुरक्षित डिबेंचर जारी करती हैं तो मर्चेंट बैंक डिबेंचर धारकों के ट्रस्टी के रूप में कार्य करते हैं। वे डिबेंचर धारकों के हितों की रक्षा के लिए ऋण श्रेणी निर्धारण करने वाली एजेन्सियों से कंपनियों के ऋण श्रेणी निर्धारण की व्यवस्था करते हैं।

6. **पुन:सरचना और विलय** (Restructuring and mergers) - वे सुझाव देते हैं, योजनाओं का निर्माण करते हैं और पुनसरचना, विलय, एकीकरण के लिए कागजात तैयार करते हैं एवं कंपनियों का हस्तांतरण करते हैं। वे संबंधित व्यक्तियों और अधिकारियों की स्वीकृतियां प्राप्त करने में मदद करते हैं।

7. **निवेश सूची प्रबंधन** (portfolio management) - मर्चेंट बैंक, कंपनियों की प्रतिभूतियां बेचकर और खरीदकर उनकी निवेश सूचियों का प्रबंधन करते हैं। वे उन्हें बाजार सूचना और परामर्श सेवाएं भी प्रदान करते हैं।

8. **उपकरण लीजिंग** (Equipment Leasing) - वे कंपनियों को उपकरण उपलब्ध कराकर और इसे कंपनियों को पट्टे पर देकर सहायता करते हैं।

9. **बीमार औद्योगिक इकाइयां** (Sick Industries Units) - वे बीमार औद्योगिक इकाइयों को सुधारने में सहायता करते हैं। इसके लिए वे अध्ययन संचालन करते हैं, पुन: स्थापना के लिए रिपोर्ट तैयार करते हैं और बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं से वित्तीय सहायता का प्रबंध करते हैं। अंतिम सहायता के रूप में, वे औद्योगिक ओर वित्तीय पुनर्निर्माण के लिए बोर्ड को प्रस्तुत करने हेतु रिपोर्ट तैयार करने में सहायता करते हैं।

10. **अनिवासी भारतीयों को सलाह** (Advice to Non- Resident Indian) - मर्चेंट बैंक उन अनिवासी भारतीयों को जो भारत में औद्योगिक इकाइयां स्थापित करना चाहते हैं, निम्न प्रकार से मदद करते हैं : प्रोजेक्टों पर सलाह देकर, स्थान-निर्धारण कर, निवेश अवसर उपलब्ध कराकर, सहयोग देकर, पूंजी निर्गम का प्रबन्धन कर, निवेश-सूची प्रबंधन आदि।

14.5 भारत में मर्चेन्ट बैंकों की कार्य प्रणाली

भारत में मर्चेंट बैंक SEBI (Merchant bankers)Regulation, 1992 द्वारा नियमित होते हैं। उन्हें व्यवसाय करने के लिए सेबी में पंजीकृत होना आवश्यक होता है। मर्चेंट बैंकिंग क्रियाओं में ढांचागत परिवर्तन लाने के लिए 1996 और 1997 में मर्चेंट बैंकर से संबंधित सेबी नियमनों में संशोधन किए गए थे। विभिन्न योग्यता मानदण्डों के आधार पर मर्चेंट बैंकरों का पूर्ववर्ती चौहरा वर्गीकरण समाप्त कर दिया गया। 8 दिसम्बर, 1997 तक न्यूनतम चार श्रेणियां थी - 1 न्यूनतम 5 करोड़ रूपये की शुद्ध मूल्य वाली, 2. न्यूनतम 50 लाख रूपये की शुद्ध मूल्य वाली, 3.न्यूनतम 20 लाख रूपये की शुद्ध मूल्य वाली तथा 4. शून्य। उनके बदले न्यूनतम 5 करोड के शुद्ध मूल्य वाली मर्चेंट बैंकर की एक इकाई स्थापित होती है। केवल एक निगम को मर्चेंट बैंकर के रूप में कार्य करने की अनुमति दी गयी है। मैट बैंकर को अभिगोपन का कार्य करने की अनुमति दी गयी है परन्तु इसके लिए SEBI(Portfolio Manager)Rules and Regulation, 1993 के अन्तर्गत निवेश सूची प्रबंधक के रूप में कार्य करने के लिए पृथक पंजीकरण कराना आवश्यक होता है।

वर्तमान में मर्चेंट बैंकर के लिए केवल पूंजी बाजार से संबंधित (कोष आधारित) क्रियाओं के अतिरिक्त क्रियाएं करने की मनाही होती है। NBFCs (गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियाँ) द्वारा की जाने वाली क्रियाएं जैसे जमा स्वीकार करना, पट्टे पर देना, बिलों का बट्टा करना, आदि किसी भी मर्चेंट बैंकर द्वारा किए जाने की अनुमति नहीं दी जाती है। यदि NBFCs मर्चेंट बैंकर के रूप में कार्य कर रही है, उन्हें अपनी NBFCs क्रियाओं से पूंजी बाजार संबंधित क्रियाओं को पृथक करना आवश्यक होता है। इश्यू और इश्यू के रजिस्ट्रार के बीच दूर का संबंध भी चालू किया गया है।

14.6 मर्चेन्ट बैंकिंग की कमियां और उपचार

भारत में, SEBI (मर्चेंट बैंकर्स) नियमन संशोधन 1997 के पूर्व तक मर्चेंट बैंकरों की विस्तृत वृद्धि हुई थी। मर्चेंट बैंकर अनुचित और कपटपूर्ण व्यापार कार्यों में लगे थे। नये इश्यूज के जन-प्रस्ताव दस्तावेज में कोई पारदर्शिता नहीं थी।. वे शेयरों और डिबेंचरों की बिकी को प्रोत्साहित करने के लिए भ्रामक बयान देते थे। वे खराब इश्यूज चलाने में उन्हें जारी करने वाली कंपनी के साथ मिल कर कीमत तिकड़म में लगे होते थे। वास्तव में, उनके पास नये इश्यूज के प्रबंधन के लिए कोई विशेषज्ञ नहीं थे।

SEBI ने 1997 में मर्चेंट बैंकर नियमनों में संशोधन कर उनके कार्यकरण की सभी कमियों को दूर कर दिया है। प्रस्ताव दस्तावेजों में प्रकटीकरण आवश्यकताएं अधिक पारदर्शी बनायी गयी है। सार्वजनिक इश्यू जारी करने से पहले प्रत्येक विवरणिका सेबी (SEBI) के पास स्वीकृति (gility) के लिए भेजी जाती है। इश्यू की मात्रा, विभिन्न श्रेणियों को इनका निश्चित आवंटन, वित्त प्रबंधन के साधन और स्त्रोत, प्रस्तावित प्रोजेक्ट व्यय का वर्ष वार व्यौरा, लाभ / हानि विवरण, आन्तरिक और बाहरी जोखिम घटकों का प्रबंधन ज्ञान, मर्चेंट बैंकर द्वारा अनिवार्य अभिगोपन आदि लागू किए गए हैं। इस प्रकार सेबी SEBI ने कठोर नियमन द्वारा मर्चेंट बैंकर की कमियों को दूर करने का प्रयास किया है। परिणामस्वरूप, कई मर्चेन्ट बैंकर पूंजी बाजार में सफलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं।

14.7 पारस्परिक निधियां - परिचय

सर्वप्रथम यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया ही पारस्परिक निधियां स्थापित करती थी। परन्तु वर्तमान समय में बीमा कम्पनियां तथा कुछ सार्वजनिक बैंकों ने भी पारस्परिक निधियाँ स्थापित की है। इसमें पारस्परिक निधियाँ स्थापित करने वाली संस्था छोटे-छोटे विनियोक्ताओं से धन एकत्र करती है तथा इसके पश्चात इस धन का विनियोजन लाभकारी प्रतिभूतियों में किया जाता है। भारतीय पूंजी बाजार में वर्तमान समय में इनका प्रचलन काफी बढ़ गया है तथा बड़े-बड़े बैंकों की सहायक संस्थायें इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। कोई भी पारस्परिक निधि अपनी आस्तियों के 5 प्र.श. से अधिक किसी एक कम्पनी में या किसी कम्पनी के कुल अंशों के 5 प्र.श. से अधिक एक योजना के तहत विनियोजित नहीं करेगी तथा अर्जित लाभ का 80 प्र.श. विनियोक्ताओं में विभाजित किया जायेगा।

14.8 पारस्परिक निधियाँ-अर्थ एवं परिभाषा

साझा कोष अंशों, ऋणपत्रों एवं अन्य प्रतिभूतियों का ऐसा संयोजन है जिन्हें निवेशकों की एक बहुत बड़ी संख्या खरीदती है और प्रतिभूतियों के इस संयोजन का प्रबन्ध एक पेशेवर निवेशकर्ता कम्पनी द्वारा किया जाता है। प्रतिभूतियों के ऐसे प्रत्येक संयोजन को जिसकी अपनी एक विशिष्ट निधि होती है उसे पारस्परिक निधियाँ या साझा कोष कहते हैं।

एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार, 'पारस्परिक निधि, एक ऐसी कम्पनी है जो इसके अभिदानकर्ताओं के कोषों का विविध प्रतिभूतियों में निवेश करती है और इस निवेश के बदले में इनके प्रतिनिधि स्वरूप अपनी इकाइयाँ जारी करती है। यह कम्पनी अपने शुद्ध आस्ति

मूल्य पर निरन्तर नवीन अंश या इकाइयाँ प्रस्तावित करती है और माँग किये जाने पर इन अंशों या इकाइयों का उसके द्वारा धारित प्रतिभूतियों के दिन-प्रतिदिन के बाजार-मूल्य के आधार पर निर्धारित कर उनके शुद्ध आस्ति मूल्य पर शोधन करती है।

सेबी (पारस्परिक निधि) नियमन 1994 के अनुसार, 'पारस्परिक निधि एक प्रायोजक द्वारा एक प्रन्यास के रूप में स्थापित निधि है जिसका उद्देश्य प्रन्यासियों के माध्यम से प्रतिभूतियों के निवेश हेतु इन नियमनों के अधीन एक या अधिक योजनाओं के अन्तर्गत जनता में इकाइयों के विक्रय के माध्यम से धन राशि जुटाना है।

पारस्परिक निधि एक ऐसी कम्पनी है जो आम जनता को अपनी यूनिटें या निवेश विलेख बेचकर धन जुटाती है। इस धन को यह विभिन्न कम्पनियों के अंशों व ऋणपत्रों में विनियोजित करते है और इसके द्वारा धारित अंशों व ऋणपत्रों के बाजार मूल्य पर ही इसके द्वारा जारी की गयी इकाइयों का मूल्य निर्भर करता है। यह कम्पनी इन यूनिटों या विलेखों को प्रचलित बाजार मूल्य पर वापस भी लेती है। इस प्रकार पारस्परिक निधियों के माध्यम से प्रतिभूतियों में निवेश का जोखिम बँट जाता है।

पारस्परिक निधियों की स्थापना एवं संचालन किसी नियमित निकाय तारा किया जाता है जिसे प्रायोजक कहते हैं। यह प्रायोजक आस्ति प्रबन्ध कम्पनी की तरह कार्य करता है। पारस्परिक निधियों का गठन करने के लिए इसकी यूनिटें या निवेश प्रलेख बेचे (शत हैं। इनसे प्राप्त धन को अंश, ऋणपत्र या अन्य प्रतिभूतियाँ खरीद कर विनियोजित किया जाता है। इस प्रकार अत्यन्त छोटे-छोटे निवेशक भी न्यूनतम -जोखिम के साथ अपनी बचतों का पारस्परिक निधियों की यूनिटों में निवेश कर प्रतिभूतियों में निवेश का परोक्ष लाभ उठा सकते हैं। पारस्परिक निधियों की यूनिटें अत्यन्त न्यून अंकित मूल्य की होती है। जिसे छोटे-छोटे निवेशकर्ता भी खरीद सकते हैं। पारस्परिक निधियों का नियमन भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड द्वारा किया जाता है।

14.9 पारस्परिक निधियों के प्रकार

म्यूचल फंड को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है :-

1. **विकास फंड** (Growth Funds) - इस फंड में कोषों का विनियोग स्कन्धों में किया जाता है जिससे अत्यधिक पूंजी मूल्य में वृद्धि होती है।

2. **आय फंड** (Income Funds) - इस फंड में विनियोक्ताओं को स्थिर नियमित आय प्राप्त होती है। अत: इनसे प्राप्त कोषों का प्रयोग अच्छी प्रत्याय वाली कम्पनियों में किया जाता है जिनमें जोखिम की संभावना बहु त कम रहती है।

3. **तरल सम्पत्ति फंड** (Liquid Asset Funds) - इन्हे मुद्रा बाजार म्यूचल फंड के नाम से भी जाना जाता है।

4. **संतुलित फंड** (Balance Funds) - इन म्युचल फंडों -धारा संतुलित रूप से अपने विनियोगों को स्थिर आय प्रतिभूतियों तथा कम जोखिम वाले विशिष्ट उद्योगों में विनियोग किया जाता है। अलग पैरा में लेने म्युचल फंड को खुले सिरे तथा बंद सिरे आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। जिनका संक्षिप्त विवेचन निम्नांकित है-

1. **खुले सिरे म्युचल फंड** - इस प्रकार के म्युचल फंड 1964 में यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया द्वारा प्रारम्भ किये गये जिसमें यूनिटों की खरीद एवं बिकी वर्ष पर्यन्त चलती रहती है। जिसमें

सदस्य चाहे तो किसी भी योजना से पृथक किसी भी समय पृथक हो सकते हैं। ये सतत् चलने वाली योजना है तथा सदस्यों को विशेषज्ञ विनियोग का लाभ मिलता रहता है जब तक कि वे इसके सदस्य हैं।

2. **बंद सिरे वाले म्युचल फंड** - इस प्रकार के म्यूचल फंड में सदस्यों से निर्धारित अवधि में अंशदान इकट्ठा किया जाता है। इस प्रकार के फंड की अवधि 5 से 7 वर्ष होती है, जिसके पश्चात आय एवं लाभों का जिनकी पूंजी मूल्य में वृद्धि हुई है इत्यादि को सदस्यों में वितरित कर दिया जाता है तथा इसमें फंड के खर्चे काट दिये जाते हैं। केन विकास फंड, जीवन बीमा म्युचल फंड इत्यादि बंद सिरे म्यूचल फंड की श्रेणी में हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र म्युचल फंड (Public Sector Mutual Funds) - भारतीय सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों तथा बीमा कम्पनियों द्वारा अपने स्वयं के म्युचल फंड प्रत्यक्ष अथवा अपनी सहायक वित्तीय सेवाओं वाली कम्पनियों के माध्यम से स्थापित किये जाते हैं।

ये म्युचल फंड भारतीय ट्रस्ट अधिनियम के अन्तर्गत ट्रस्ट के रूप में संगठित हैं जिसके प्रायोजक ट्रस्ट के रूप में जाने जाते हैं तथा विनियोगकर्ता लाभार्थी के रूप में होते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित म्युचल फंड भी सेबी के अन्तर्गत जारी दिशा निर्देशों के अन्तर्गत कार्य करते हैं।

निजी म्युचल फंड (Private Sector Mutual Funds) - पूंजी बाजार में म्युचल फंड के बढ़ते हुए महत्व को देखते हुए सरकार ने म्युचल फंड को निजी एवं संयुक्त क्षेत्र में स्थापित करने का भी अधिकार दे दिया। म्युचल फंड को निजी क्षेत्र में वित्त मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा फरवरी, 1992 में जारी निर्देशों के अनुसार निजी क्षेत्र को अपने कारोबार को प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा ही अधिकृत किया जायेगा। इनके कोषों का प्रबंधन किसी पंजीकृत कम्पनी द्वारा ही किया जा सकेगा तथा इन्हें अपने व्यावसायिक लेनदेन में पारदर्शिता एवं स्पष्टता रखनी होगी। इन म्युचल फंडों की स्थापना ट्रस्ट के रूप में भारतीय ट्रस्ट अधिनियम के अन्तर्गत की जावेगी तथा ये ट्रस्ट एक या अधिक म्युचल फंड योजनाऐं आरम्भ कर सकते हैं।

छः कम्पनियां जिन्हें सेबी द्वारा निजी क्षेत्र में म्युचल फंड की स्वीकृति प्रदान कर दी गई है निम्न हैः-

1. औघोगिक साख एवं विनियोग निगम
2. सीएट वित्तीय सेवाएं
3. एप्पल उद्योग
4. 20वी शताब्दी फाइनेंस लिमिटेड
5. साख पूंजी वित्त निगम
6. टाटा संस लिमिटेड

तटीय म्युचल फंड (Off Share Mutual Funds) -

1. यह 1988 में स्थापित किया गया था। यह प्रथम भारतीय तटीय म्युचल फंड था जिसका प्रवर्तक यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया तथा अमेरीका की मेरील लिंच द्वारा किया गया था। यह फंड गुरनसे में पूंजीबद्ध तथा लंदन स्टॉक एक्सचेंज में कोट किया गया है।

2. भारत विकास फंड - यह 1988 में स्थापित किया गया। यह 6० मिलियन डीलर से प्रारम्भ किया गया। यह फण्ड भारतीय तटीय म्युचल फंड मेरीललंच तथा नोमुरा प्रतिभूति द्वारा प्रवर्तित है तथा न्यूयार्क स्टॉक एक्सचेंज में सूचित है।

14.10 भारत में पारस्परिक निधियाँ

म्यूचल फंड के प्रकार (Type of Mutual Funds) -

(अ) घरेलू स्यूचल फंड-

1. यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया म्युचुअल फंड
2. स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया म्युचुअल फंड - इसमें प्रमुख निम्नलिखित है-
    1. मैग्नम नियमित आय योजना (MRIS) 1987
    2. मैग्नम कर बचत योजना (MTSS), 1988.89
    3. मैग्नम नियमित योजना (MRISI), 1989)
    4. मैग्नम नियमित आय योजना (MMIS), 1989)
    5. मैग्नम नियमित आय योजना 1909
    6. मैग्नम कर बचत योजना (MTSS), 1990
    7. मैग्नम गुणक योजना (MMS), 1990
    8. मैग्नम मासिक आय योजना II 1991
3. कैनरा बैंक म्युचुअल फंड (CBMS)
4. इंडियन बैंक म्युचुअल फंड (IBNF)
5. पंजाब नेशनल बैंक म्युचुअल फंड (PNDMF)
6. बैंक ऑफ इंडिया म्युचुअल फंड (DOIMF)
7. आन्ध्र बैंक म्युचुअल फंड (ABMF)
8. जीवन बीमा निगम म्युचुअल फंड (LICMF)
9. सामान्य बीमा निगम म्युचुअल फंड (GICMF)

(ब) विदेशी म्युचल फंड (Over- seas mutual fund) -

1. भारतीय कोष - युनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया द्वारा प्रायोजित।
2. भारत विकास कोष - युनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया द्वारा प्रायोजित।
3. भारत मैग्नम फंड 'अ' - स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा प्रायोजित।
4. भारत मैग्नम फंड - 'ब' स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा प्रायोजित।
5. हिमालय फंड - कैनरा बैंक द्वारा प्रायोजित।
6. कॉमन वैल्थ समता फंड - कैनरा बैंक द्वारा प्रायोजित।
7. भारत विनियोग फंड - ग्रीनलैंड बैंक द्वारा प्रयोजित।

14.11 सरकार द्वारा जारी दिशा निर्देश

भारत की केन्द्रीय सरकार ने रिजर्व बैंक आफ इण्डिया से सलाह-मशविरा कर म्युचल फंड के स्वस्थ विकास हेतु निम्न मार्ग दर्शन जारी किये हैं।

1. सभी पारस्परिक निधियों को (वैधानिक निधियों को छोड़कर) भारतीय प्रतिभूति विनिमय निगम (सेबी) के साथ पंजीकृत होना होगा तथा अपने निधि के निर्गमन से पूर्व निर्गमन नियंत्रक (CCI) से अनुमति प्राप्त करनी होगी।
2. वर्तमान में कार्यरत म्युचल फंड को 28 जून 1990 से लाग नियम के अन्तर्गत 90 दिन के अन्दर-अन्दर सेबी में पंजीकरण करवाना आवश्यक होगा।
3. प्रत्येक प्रायोजक संस्था को कम से कम 2 करोड़ रू. का विनियोग करना आवश्यक होगा तथा यह राशि एवं अंशदान के रूप में म्युचल फंड की किसी भी योजना में परिवर्तित हो जायेगी।
4. कोई भी म्युचल फंड अपने स्वयं के प्रयोग के अलावा ऐसी कोई गतिविधि जिसमें अचल सम्पत्ति का अधिग्रहण हो, को नहीं करेंगे परन्तु यदि किसी म्युचल फंड की स्थापना इस हेतु की गई हो तो यह इसका अपवाद होगा।
5. एक म्युचल फंड सामान्यत: दूसरे म्युचल फंड में विनियोग नहीं करेंगे।
6. म्युचल फंड सामान्यत: किसी कम्पनी तथा अन्य निगमित संस्था में अपनी जमाएं नहीं रखेंगे।
7. म्युचल फंड को अपनी अर्जित वार्षिक आय का 80 प्र.श. या इससे अधिक अंशधारियों को वितरित करना चहिये।
8. प्रत्येक योजना का लेखा जोखा अलग-अलग रखा जाये तथा प्रत्येक योजना की आस्तियों का अलग से विभक्तिकरण किया जाये।
9. अंशों के संस्थागत विनियोगों का प्रकटीकरण सरकार द्वारा जारी दिशा-निर्देशों के अनुसार किया जाये।
10. म्युचल फंड किसी भी कम्पनी के अंशों में अपनी आस्तियों के 5 प्रतिशत से अधिक विनियोग नहीं करेंगे तथा न ही अन्य किसी योजना में विनियोग करेंगे।

14.12 सारांश

भारत मे अनेक नई परियोजनाओं बड़े निर्गमन, नये वित्तीय साधन एव उन्नयन बाजार तकनीकों ने मर्चेन्ट बैंकिंग क्रियाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। पिछले कुछ वर्षो में स्वतंत्र मूल्य नीति के नये निर्गमन को त्वरित गति प्रदान की है। प्राथमिक बाजार में एक मर्चेन्ट बैंकर कम्पनियों के कोषों का चयन एवं समन्वय का कार्य करता है। मर्चेन्ट बैंकर्स की क्रियाएं पूर्णत: दृश्य है क्योंकि नियमित शक्तियों के साथ उनका नियमित समागम होता है। इनके द्वारा प्रवर्तन, एवं ब्रोकर्स क्रियाओं में सक्रिय भाग लिया जाता है।

विनियोक्ताओं द्वारा मर्चेन्ट बैंकिंग क्रियाओं की गुणवत्ता का निर्धारण किया जाता है। सेबी द्वारा जारी मार्गदर्शक सिद्धान्तों, विनियमों में मर्चेन्ट बैंकर्स की क्रियाओं का स्पष्ट उल्लेख

है। इनमें प्रमुख है - विज्ञापन तथा अनुवर्तन, प्रस्ताव प्रपत्रों का लेखा तथा निर्गमन के पश्चात कार्य, नियमों एवं नियमनों का पालन, निर्गमन का मूल्यांकन एवं अभिगोपकों की पूंजी पर्याप्तता का प्रमाण-पत्र जारी करना इत्यादि।

विगत कई वर्षो से पारस्परिक निधियां अपने कोषों एवं विभिन्न योजनाओं के माध्यम से तीव्र गति से अपने कारोबार में विस्तार कर रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि हाल ही के वर्षो में म्युचल फंड से लघु विनियोक्ताओ को अपनी वित्तीय आस्तियों को बढ़ाने तथा विकेन्द्रीय पॉर्टफोलियों प्रबन्ध हेतु अनेक विकल्प प्रदान किये गये हैं। आज एक निवेशकर्ता के समक्ष विनियोग हेतु कई विकल्प उपलब्ध हैं जिसमें वह -

1. स्थिर आय प्राप्त करने में सफल हो सकता है।
2. आय के साथ साथ पूंजी के मूल्य में वृद्धि।
3. शुद्ध - पूंजी मूल्य में वृद्धि।
4. बीमा सुरक्षा।
5. ऋण - सुविधा की प्राप्ति।
6. कर - लाभ योजनाएँ इत्यादि।

म्युचल फंड एवं उनके द्वारा प्रायोजित योजनाओं ने विनियोक्ताओ के बहुत बड़े वर्ग को प्रभावित किया है। म्युचल फंड क्रियाओं की प्रत्याय दर, बोनस, पूजी मूल्य में वृद्धि, अत्याधिक प्रार्थित पूंजी की प्राप्ति, अपने दावों का पुन: निर्गमन सफल सम्पत्ति के मूल्य में वृद्धि इत्यादि पर प्रभाव पड़ा है।

14.13 शब्दावली

मर्चेन्ट बैंकिंग (Merchant Banking) - वाणिज्यिक बैंकिंग के अन्तर्गत औद्योगिक तथा व्यापारिक संस्थानों को विशिष्ट प्रकार की सेवायें उपलब्ध करायी जाती है। इसमें परियोजना सम्बंधी परामर्श, व्यवहार्यता रिपोर्ट तैयार करना, प्रस्तावों पर सरकार की सहमति प्राप्त करना, नये निर्गमों के प्रबन्धक के रूप में कार्य करना, कार्यशील पूंजी की व्यवस्था करना आदि सेवायें सम्मिलित होती हैं।

भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड - सेबी (Securities and Exchange Board of India-SEBI) - भारतीय पूंजी बाजार को विनियमित करने, निवेशकों के विश्वास को बनाये रखने तथा उनके हितों की रक्षा के उद्देश्य से व 2 अप्रेल 1988 को सेबी की स्थापना की गयी।

निवेश सूची प्रबंधन (Protfolio Management) - कंपनियों की प्रतिभूतियां बेचकर और खरीद कर उनकी निवेश सूचिचों का प्रबन्धन करना।

पारस्परिक निधियां (Mutual Funds) - इसके अन्तर्गत जन-साधारण के निवेश योग्य धन को ऐच्छिक आधार पर एकत्रित करके विनियोग के बेहतर अवसरों में प्रयोग किया जाता है। इसकी स्थापना प्राय: निवेश सम्बन्धी निर्णय लेने वाली दक्ष वित्तीय संस्थाओं द्वारा की जाती है।

खुले सिरे म्युचुअल फंड (Opened Mutual Funds) - इसमें यूनिटों की खरीद एवं बिकी वर्ष पर्यन्त चलती रहती है। इसमें सदस्य चाहे तो किसी भी योजना से किसी भी समय पृथक हो सकते हैं।

बंद सिरे वाले म्युचुअल फंड (Closed ended Mutual Funds) - इसमें सदस्यों से निर्धारित अवधि में अंशदान एकत्रित किया जाता है। इस प्रकार के फंड की अवधि 5-7 वर्ष होती है।

14.14 अभ्यास प्रश्न

1. व्यावसायिक बैंकर और मर्चेन्ट बैंकर में अंतर बताइये। भारत में मर्चेन्ट बैंकरों के कार्यकरण का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।
2. मर्चेन्ट बैंकिंग क्या है? मर्चेन्ट बैंकर कौन-कौन से कार्य करते हैं?
3. भारत में मर्चेन्ट बैंकिंग की वृद्धि और कार्यकरण का वर्णन कीजिये।
4. मर्चेन्ट बैंकिंग से आप क्या समझते हैं? मर्चेन्ट बैंकिंग की कमियां और उन्हें दूर करने हेतु उपचार बताइये।
5. पारस्परिक निधियां क्या है? इनके विभिन्न प्रकार बताइये।
6. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिये -
    1. सार्वजनिक क्षेत्र म्युचल फंड
    2. निजी क्षेत्र म्युचल फंड

14.15 संदर्भ ग्रंथ

1. बैंकिंग कम्पनीज (उपक्रम अधिग्रहण एवं अन्तरण) अधिनियम 1970
2. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार डॉ मालीराम शर्मा एवं वशिष्ठ
3. बैंकिंग विधि एवं व्यवहार डॉ त्रिवेदी शर्मा आदि
4. भारत में बैंकिंग व्यवस्था डॉ एम एल झिंगन

इकाई 15
बैंकिंग सुधार

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 बैंकिंग प्रणाली का अर्थ
15.3 भारतीय बैंकिंग प्रणाली
15.4 भारत में बैंकों के राष्ट्रीकरण के कारण
15.5 भारतीय बैंकिंग क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता
15.6 बैंकिंग क्षेत्र में सुधार हेतु नरसिम्हम समिति की स्थापना एवं सिफारिशें
(i) नरसिम्हम समिति सुधार I, 1991
(ii) नरसिम्हम समिति II, 1998
15.7 नरसिम्हम समिति (1991-98) का मूल्यांकन
15.8 बैंकिंग प्रणाली की समस्याएँ
15.9 सारांश
15.10 शब्दावली
15.11 अभ्यास प्रश्न
15.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

15.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् छात्र समझ पाएंगे :-

- आधुनिक बैंकिंग प्रणाली का विकास एवं महत्व।
- भारत की आधुनिक बैंकिंग प्रणाली।
- भारत में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के कारण
- भारत में बैंकिंग प्रणाली में सुधार की आवश्यकता।
- भारत में बैंकिंग प्रणाली में सुधार हेतु नरसिम्हम समिति I व II की स्थापना के कारण एवं सिफारिशें।
- नरसिम्हम समिति का मूल्यांकन

15.1 प्रस्तावना

किसी राष्ट्र के विकास में बैंक महत्वपूर्ण इकाई होते है। ये लोगों की छोटी-छोटी बचतों को एकत्र कर उन्हें गतिमान बनाते हैं ताकि देश के विकास हेतु आवश्यक वित्त की व्यवस्था की जा सके। इसके अतिरिक्त बैंकों का एक महत्वपूर्ण कार्य देश में साख का निर्माण (Credit Creation) करना भी होता है। साख निर्माण द्वारा यह अर्थव्यवस्था में पर्याप्त तरलता बनाए

रखते हैं। भारत में बैंकिंग सुधार की आवश्यकता लम्बे समय से महसूस की जा रही थी। यद्यपि सरकार द्वारा समय-समय पर सुधार हेतु आवश्यक कदम उठाऐ गए किन्तु इसके कोई ठोस परिणाम देखने को नहीं मिलें। बैंकिंग प्रणाली में लगातार आती जा रही गिरावट को ही देखते हुए ही 1991 में रिजर्व बैंक के पूर्व गर्वनर एम. नरसिम्हम की अध्यक्षता में बैंकिंग प्रणाली में सुधार हेतु सिफारिशें करने के लिए समिति का गठन किया गया।

15.2 बैंकिंग प्रणाली का अर्थ, विकास एवं महत्व

किसी राष्ट्र की बैंकिंग प्रणाली से तात्पर्य उस व्यवस्था से है जिसमें किसी राष्ट्र की बैंकिंग कार्य में लगी समस्त संस्थाओं व उनकी क्रियाओं का समावेश होता है। प्राय: इस कार्य में लगी संस्थाएँ जनता से जमाएँ स्वीकार करना, उधार देना, साख का निर्माण करना, तरलता बनाए रखना इत्यादि कार्यों को करती हैं। किन्तु जैसे-जैसे मानव की आवश्यकताओं में वृद्धि होती चली गई वैसे-वैसे बैंकिंग प्रणाली का भी विस्तार होता चला गया है। आज इस प्रणाली के प्रमुख सूत्र के रूप में बैंक अपने सामान्य कार्यो के अतिरिक्त ग्राहकों के एजेण्ट के रूप में कार्य, सलाहकार के रूप में कार्य, मूल्यवान धातुओं की सुरक्षा आदि कार्यों को भी सम्पन्न कर रहे।

विश्व में बैंकों का इतिहास बहुत पुराना है। जैसे-जैसे मनुष्य की आवश्यकताओं में परिवर्तन होता चला गया वैसे-वैसे बैंकों का स्वरूप भी बदलता चला गया। प्रारम्भ में बैंकों का कार्य केवल मुद्रा के लेन-देन तक सीमित था। आगे चल कर बैंक जमाए (Deposits) स्वीकार करने तथा उधार (lending) देने का कार्य करने लगे। आधुनिक युग में तो बैंकों का स्वरूप बिलकुल बदल चुका हे। आज बैंक साख निर्माण, ग्राहकों के एजेण्ट के रूप में कार्य, लॉकर्स उपलब्ध करवाना, ग्राहकों को सलाह देना, प्रतिभूतियों का लेन-देन करने जैसा महत्वपूर्ण कार्य भी करने लगे हैं। वैश्वीकरण के पश्चात् से बैंकों का कार्य क्षेत्र भी बहुत अधिक बड़ चुका है। आज ये विदेशी मुद्राओं के संग्रहण के साथ-साथ उसके लेने-देने का कार्य भी सुचारु रूप से कर रहे हैं। यद्यपि बैंकों के कार्य क्षेत्र में वृद्धि होने के साथ-साथ इनकी कार्य प्रणाली में भी सुधार की आवश्यकता महसूस की गई।

भारत जैसे विकासशील देश में बैंकों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण है। हमारे देश में न केवल पूँजी का अभाव है अपितु इसके सही उपयोग की भी समस्या है। इसके निराकरण के लिए एक सुदृढ़ बैंकिंग व्यवस्था का होना अत्यन्त आवश्यक है। तीव्र आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य पूँजी निर्माण का कार्य 3 चरणों में होता है-

(i) वास्तविक बचत का निर्माण

(ii) बचतों को एकत्र करना तथा

(iii) बचतों का विनियोग करना।

उपर्युक्त 3 चरणों में से अन्तिम दो चरण देश की बैंकिंग व्यवस्था पर ही निर्भर करते हैं। व्यक्तियों की बचतें जमा हो तथा जमाओं का लाभदायक विनियोग हो- यह इस बात पर निर्भर करता है कि देश में बैंकिंग सेवाओं का कितना विस्तार हुआ है व उनमें कितनी कुशलता है।

भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों में जहाँ गरीबी तथा बेरोजगारी जैसी समस्याएँ विकराल रूप धारण कर चुकी हैं वहाँ इन समस्याओं का समाधान भी उन्नत बैंकिंग व्यवस्था में निहित है।

बैंकों द्वारा अपनाई जा रही उदार ऋण नीति इस ओर एक महत्वपूर्ण कदम है। भारत में बैंक आई.आर.डी.पी. प्रोग्राम के तहत चयनित परिवारों को ऋण सुविधाएं प्रदान कर उन्हें लाभ पहुँचाने में सफल रहे हैं। बेरोजगारी को कम करने के लिए शिक्षित बेरोजगारों को उदार शर्तों पर ऋण उपलब्ध करवाया जा रहा है। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात बैंकों ने आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष ध्यान दिया है। यहाँ एक तरफ बैंकों ने ग्रामीण क्षेत्रों में शाखाओं का विस्तार किया है वहीं दूसरी तरफ प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में ऋण को मात्रा में भी उल्लेखनीय वृद्धि की है।

इस प्रकार यह कहना उचित होगा कि विकासशील एवं विकसित राष्ट्रों में बैंकिंग आधुनिक विकास का आधार है। बैंक देश के कृषि विकास, औद्योगिक विकास, आन्तरिक एवं विदेशी व्यापार, पूँजी निर्माण, गरीबी तथा बेरोजगारी उन्मूलन आदि सभी कार्यों में महत्वपूर्ण है।

15.3 भारतीय बैंकिंग प्रणाली

किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकाश में उस राष्ट्र की बैंकिंग प्रणाली का महत्वपूर्ण योगदान होता है। बैंकिंग प्रणाली में किसी भी राष्ट्र में समस्त बैंकिंग कार्य करने वाली शीर्ष बैंकिंग संस्थाओं को शामिल किया जाता है। भारतीय बैंकिंग प्रणाली को संगठित एवं असंगठित क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है। हम यहाँ केवल संगठित क्षेत्र में स्थापित शीर्ष संस्थाओं का ही अध्ययन करेंगे।

संगठित क्षेत्र में शीर्ष बैंकिंग संस्थाएँ

भारतीय रिजर्व बैंक (RBI)	भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI)	राष्ट्रीय गृह निर्माण (NHB)	भारतीय लघु उद्योग (SIDBI)
भारतीय आयात-निर्यात बैंक (Exim Bank)	राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (NABARD)		

भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank of India)

भारतीय बैंकिंग प्रणाली की सर्वोच्च संस्था रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया है। इसकी स्थापना 1 अप्रेल 1935 को की गई थी तथा 1 जनवरी 1949 को इसका राष्ट्रीयकरण कर लिया गया।

भारत में रिजर्व बैंक करेन्सी नोट का निर्गमन, साख का नियमन, समस्त बैंकिंग व्यवस्था का नियमन विदेशी मुद्रा की व्यवस्था तथा विदेशी विनिमय कोषों का संरक्षण तथा मौद्रिक स्थिरता को बनाएँ रखना, जैसे कार्यों को सम्पादित करता है।

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI)

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) की स्थापना 1964 में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की एक सहयोगी संस्था के रूप में की गई थी। इसकी स्थापना का प्रमुख उद्देश्य औद्योगिक क्षेत्र में दीर्घकालीन वित्त प्रदान करना था। 1 फरवरी 1976 में इस संस्थान को रिजर्व बैंक से अलग कर दिया गया। वर्तमान में इसकी समस्त अंशपूँजी भारत सरकार के पास है।

यह बैंक उद्योगों को प्रत्यक्ष सहायता प्रदान करता है। नई औद्योगिक इकाईयों की स्थापना, पुरानी इकाइयों के विस्तार तथा उनके आधुनिकीकरण के लिए यह बैंक लम्बी अवधि के ऋण उपलब्ध करवाता है। औद्योगिक ऋणों पर पुर्नवित की सुविधा भी इस बैक द्वारा उपलब्ध करवाई जाती है। व्यापारिक बैंकों एवं राज्य वित्त निगमों को पुर्नवित्त भी यह बैंक उपलब्ध करवाता है।

इस बैंक ने अपने ऋणों में कृषि विकास एवं मजबूत औद्योगिक ढाँचे को तैयार करने वाले उद्योगों को प्राथमिकता प्रदान की है। कुल ऋणों का 50 प्रतिशत उर्वरक, बिजली उत्पाद, सड़क परिवहन, लोह, इस्पात, सीमेंट, तथा सूती वस्त्र उद्योगों को प्राप्त हुआ है। 40 प्रतिशत से अधिक ऋण पिछड़े क्षेत्रों के विकास इत्यादि कार्यों के लिए प्रदान किए जाते हैं। किन्तु अनेक कारणों के चलते यह बैंक एक हानिप्रद संस्था में परिवर्तित होता चला गया। अन्ततः 1991 में इस बैंक ने गैर-जमानती बोंण्डों के सार्वजनिक निर्गम के माध्यम से पहली बार पूँजी बाजार में प्रवेश किया। 1992 में मर्चेन्ट बैंकिंग तथा विदेशी मुद्रा सेवाओं की शुरूआत की। 1994 में इस बैंक ने उद्यम पूँजी निधि का प्रारम्भ किया।

भारतीय निर्यात-आयात बैंक (Export-Import Bank of India)

निर्यात सम्वर्द्धन में सहयोग प्रदान करने के लिए मार्च 1982 मे भारतीय निर्यात-आयात बैंक की स्थापना की गई। यह बैंक न केवल निर्यात-आयात हेतु सुविधाएँ प्रदान करता है अपितु विदेशी व्यापार के संवर्द्धन हेतु तकनीकी सलाह भी प्रदान करता है। इसके अलावा यह शोध एवं सर्वेक्षण को भी प्रोत्साहन देता हे।

यह बैंक 3 प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करता है- प्रथम ऋण द्वितीय पुर्नकटौती एवं तृतीय गारण्टी। इस बैंक की स्थापना से भारतीय पूँजीगत सामान का विदेशों में निर्यात बढा है। परिवहन उपकरण, विद्युत उत्पादन. विद्युत उपकरण, चीनी संयंत्र, इन्जीनियरिंग सामान आदि उद्योगों के निर्यात बढाने में मदद मिली है।

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (NABARD)

12 जुलाई, 1982 को, रमण समिति की सिफारिशों के आधार पर राष्ट्रीय स्तर पर कृषि एवं ग्रामीण विकास हेतु, राष्ट्रीय कृषि तथा ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना की गई। कालान्तर में कृषि पुनर्वित एवं विकास निगम (ARDC) को भी इस बैंक में मिला दिया गया। यह बैंक विशेष तौर पर ग्रामीण क्षेत्र में वित्तीय सुविधाओं को उपलब्ध करवाने वाली संस्थाओं को पुनर्वित की सुविधा उपलब्ध कराता है। इस पुर्नवित्त की अवधि अल्पकालीन, मध्यमकालीन तथा दीर्घकालीन हो सकती है। नाबार्ड द्वारा राज्य सरकारों को भी 20 वर्ष की अवधि के ऋण स्वीकार किए जा सकते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत विभिन्न संस्थाओं द्वारा किए जाने वाले समस्त विकास कार्यों में यह बैंक समन्वय स्थापित करता है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्र में शोध कार्य को भी यह बैंक प्रोत्साहित करता है।

राष्ट्रीय आवास बैंक (NHB)

गृह निर्माण कार्य के लिए आवश्यक वित्त को उपलब्ध करवाने हेतु राष्ट्रीय स्तर पर एक विशिष्ट संस्था के रूप में राष्ट्रीय आवास बैंक (NHB) की स्थापना की गई है। इसकी प्रारम्भिक पूँजी 100 करोड रू. निर्धारित की गई है, जो रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा प्रदत्त की जाती है।

इस बैंक को यह दायित्व सौंपा गया है कि यह देश में गृह निर्माण के लिए अधिकाधिक वित्तीय संसाधन जुटाने की दिशा में कार्य करें। इस बैंक द्वारा विशेषतौर पर समाज के कमजोर वर्गों के लोगों के लिए गृह-निर्माण कार्य में लगी विभिन्न एजेन्सियों को आवश्यक वित्त उपलब्ध करवाया जाएगा।

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI)

लघु उद्योगों को वित्तीय सहायता गया तकनीकी जानकारी प्रदान करने के उद्देश्य से भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना की गयी है। यह बैंक ऋण देने, तकनीकी जानकारी देने तथा अन्य संस्थाओं को लघु क्षेत्र को प्रदान किये गये ऋणों के बदले में पुर्नवित्त की सुविधा भी प्रदान करता है।

5.4 भारत में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के कारण

भारत में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के लिए निम्नलिखित कारण जिम्मेदार थे :-

1. निजी बैंकों द्वारा प्राथमिक क्षेत्र की लगातार अनदेखी बैंकों के राष्ट्रीयकरण के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारण था।
2. निजी बैंकों द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में शाखाओं के विस्तार की उपेक्षा करना;
3. बैंक प्रबन्धकों की निजी उद्योगपतियों से साँठ-गाँठ;
4. सरकार द्वारा चलाए जा रहे सार्वजनिक कल्याण के कार्यक्रमों की अनदेखी करना;
5. विभिन्न बैंकों की कार्यप्रणाली एवं ब्याज दरों में भिन्नता पाया जाना।
6. निजी बैंकों की लाभदायकता व जवाबदेहिता में निरन्तर गिरावट आती जा रही थी।

15.5 भारत में बैंकिंग प्रणाली में सुधारों की आवश्यकता

भारत में बैंकिंग प्रणाली में सुधार की आवश्यकता बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात से ही महसूस की जा रही थी। भारतीय बैंकिंग प्रणाली में सुधार लाने के लिए समय-समय पर भिन्न-भिन्न समितियों का गठन किया गया। किन्तु राजनैतिक हस्तक्षेप के चलते समितियों द्वारा दी गई सिफारिशों को एक सीमा तक ही लाग किया जा सका। वर्ष 1991 में वैश्वीकरण को अपनाने के साथ से ही भारतीय बैंकिंग प्रणाली में आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गई। इस सम्बन्ध में वर्ष 1991 में रिजर्व बैंक के पूर्व गर्वनर एम. नरसिंमन की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति के गठन के पीछे निम्नलिखित कारण जिम्मेदार रहे हैं:-

1. निर्देशित विनियोग; एवं
2. निर्देशित उधार कार्यक्रम

1. **निर्देशित विनियोग** (Directed Investment)

सुदृढ़ बैंकिंग प्रणाली का यह उत्तरदायित्व है कि वह अर्थव्यवस्था में पर्याप्त तरलता बनाए रखें। इसी कारण से बैंकिंग अधिनियम कानून, 1949 की धारा 24 के अनुसार भारत में वाणिज्यक बैंकों को नकदी, स्वर्ण एवं बन्धनमुक्त अनुमोदित प्रतिभूतियों के रूप में कुल माँग तथा सावधि जमा दायित्वों के 25 प्रतिशत से कम राशि को तरल सम्पत्ति (Liquid assets)

के रूप में रखना आवश्यक कर दिया गया। रिजर्व बैंक को यह अधिकार दिया गया कि वह न्यूनतम वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) को परिवर्तित कर सकता है। इस अधिकार के तहत, भारतीय रिजर्व बैंक ने नवम्बर 1972 में इस अनुपात को 25 प्रतिशत से बढ़ाकर 30 प्रतिशत और बाद में धीरे-धीरे बढ़ाकर 385 प्रतिशत कर दिया।

भारतीय रिजर्व बैंक के ऐसा करने के दो कारण थे-

(i) ऊँचे वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) के कारण वाणिज्यिक बैंकों को अपनी कुल जमा राशि का एक बड़ा भाग सरकारी प्रतिभूतियों एवं सरकार द्वारा गारण्टीयुक्त प्रतिभूतियों में रखना अनिवार्य होता था। इस कारण से वाणिज्यिक बैंकों द्वारा उद्योग एवं व्यापार को ऋण तथा अग्रिम देने की क्षमता कम हो जाती थी।

(ii) ऊँचे वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) के कारण बैंकों को अपनी जमा राशियों को बैंक उधार एवं अग्रिम की अपेक्षा सरकारी प्रतिभूतियों एवं अन्य गारण्टीयुक्त प्रतिभूतियों में रखना पड़ता था, इसके पीछे यह मत था कि इसका प्रभाव मुद्रास्फीति को कम कर देता है।

नरसिम्हम समिति का यह तर्क था कि ऊँचे वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) के कारण बैंकों की लाभदायकता प्रभावित होती है क्योंकि सरकारी प्रतिभूतियों पर ब्याज दर बाजार ब्याज दर की अपेक्षा कम होती है। इसके अतिरिक्त ऊँचे कानूनी तरलता अनुपात के कारण बैंकों के पास उत्पादक आर्थिक क्षेत्रों जैसे कृषि, उद्योग एवं व्यापार इत्यादि के लिए उधार देने हेतु कम तरलता बचती है। इसी कारण नरसिम्हम ने ऊँचे कानूनी तरलता अनुपात को एक प्रकार के कर (Tax) की संज्ञा दी।

इसी के साथ वाणिज्यिक बैंकों को रिजर्व बैंक अधिनियम (1934) के तहत अपनी जमाओं का एक निश्चित प्रतिशत (SLRके अतिरिक्त) नकद कोषानुपात (CRR) के रूप में रिजर्व बैंक के पास जमा करवाना अनिवार्य था। सन् 1962 के संशोधन के अनुसार इस अनुपात को 3 से 15 प्रतिशत के मध्य निश्चित कर दिया गया। यद्यपि इस अनुपात में समय-समय पर अनेक परिवर्तन भी किए गए। 1973 में एक अनुमान के तहत यह जानकारी मिली की नकद-कोषानुपात में 1 प्रतिशत की वृद्धि 100 करोड रुपये की सीमा तक उधार क्षमता को कम कर देती है। अत: नरसिम्हम का मानना था कि ऊँचा नकद कोषानुपात भी बैंकों के उधार देने की क्षमता को कम कर देता है जिससे उनकी लाभदायकता प्रभावित होती है।

2. **निर्देशित उधार कार्यक्रम** (Directed Credit Programmes)

1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण का उद्देश्य जहाँ एक ओर बैंक विहीन स्थानों पर शाखा विस्तार करना था वही दूसरी तरफ प्राथमिक क्षेत्र (Primary Sector) जिसमें कृषि तथा सम्बन्धित क्रियाएं शामिल थी, की बैंकों द्वारा की जा रही लगातार उपेक्षा थी। बाद में बैंकों के उधार कार्यक्रम में निर्यात एवं खाद्य वसूली क्रियाएँ भी शामिल कर दी गई तथा बैंकों को निर्देशित किया गया कि वे प्राथमिक क्षेत्रों के साथ-साथ नए उधार क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करें। बैंकों को यह भी कहा गया वे प्रतिभूति-उन्मुख उधार (Security Oriented Credit) की बजाए उद्देश्य-उन्मुख उधार (Objective Oriented Credit) पर अधिक ध्यान दे। इस निर्देशित उधार कार्यक्रम के कारण बैंकों की कार्य कुशलता लगातार गिरती चली गई। उनकी बकाया उधार राशियाँ डुबत ऋण में बदलने लगी और उनकी उत्पादकता को गहरा धक्का लगा।

3. **राजनैतिक एवं प्रशासनिक हस्तक्षेप** (Political and Administrative Interference)

नरसिम्हम समिति का मानना था कि बैंक प्रणाली को सबसे ज्यादा नुकसान उधार सम्बन्धी निर्णयों में राजनैतिक एवं प्रशासनिक हस्तक्षेप से हुआ है। राजनैतिक पार्टियाँ अपने चुनावी लाभ के लिए ग्राम तथा नगरों में उधार मेलों के माध्यम से अपने समर्थकों को बैंक-उधार दिलवाते थे। यह बात सुदृढ़ बैंकिंग व्यवस्था के विरूद्ध थी। यही स्थिति समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) के सम्बन्ध में भी देखने को मिली। नरसिम्हम समिति के अनुसार इस प्रकार कुल कृषि तथा लघु औद्योगिक उधार लगातार दूषित होता चला गया।

राजनैतिक हस्तक्षेप की एक अन्य मिसाल उस समय देखने को मिलती है जबकि बैंकों को यह निर्देशित किया गया कि वे बीमार औद्योगिक इकाइयों को उधार उपलब्ध करवाएँ। औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (BIFR) की सलाह एवं न्यायालयों के निर्देशों का पालन करते हुए बैंकों को मजबूर किया गया कि वे बीमार एवं लगातार घाटा उठा रही औद्योगिक इकाइयों में पूँजी का निवेश करें। इस कदम से सार्वजनिक बैंकों को भारी नुकसान उठाना पड़ा।

4. बैंकों का बढ़ता व्यय भार

अनियन्त्रित शाखा विस्तार एवं उधार कार्यक्रम के कारण बैंकों के व्यय भार में भी काफी वृद्धि देखने को मिली है। इस ओर नरसिम्हम समिति ने संकेत किया है कि -

(i) शाखा विस्तार आर्थिक दृष्टि से उपयोगी है अथवा नहीं इस पर ध्यान नहीं दिया गया;

(ii) स्टाफ में तेजी से वृद्धि होने से उनसे जुड़ी अन्य समस्याएँ यथा पदोन्नति, गुणवत्ता में गिरावट, अति-स्टाफिंग (Over Staffing) इत्यादि पैदा होने लगी;

(iii) मजदूर संगठनों के हावी होने से प्रशासनिक कुशलता में गिरावट आने लगी साथ ही अनुशासनहीनता की घटनाएँ बढने लगी। संगठनों ने यन्त्रीकरण एवं कम्प्यूटरीकरण (Computerisation) का विरोध किया। मजदूरी एवं पदोन्नति को उत्पादकता से न जोड़कर अनिवार्य विषय बना दिया। परिणाम स्वरूप ग्राहक सेवा में कुशलता एवं श्रम-उत्पादकता (Labour Productivity) में गिरावट आई।

15.6 बैंकिंग क्षेत्र में सुधार हेतु नरसिम्हम समिति की स्थापना एवं सिफारिशें

नरसिम्हम समिति सुधार 1

1991 में बैंकिंग प्रणाली में आमूल-चूल परिवर्तन करने के उद्देश्य से रिजर्व बैंक के पूर्व गर्वनर एम. नरसिम्हम की अध्यक्षता में एक समिति का गठन इस मूल भावना के साथ किया गया कि बैंक जनता से प्राप्त धन के ट्रस्टी मात्र है और उन्हें इस धन का प्रयोग इस ढंग से करना चाहिए ताकि धन के स्वामियों अर्थात् जमाकर्ताओं को अधिकतम लाभ प्राप्त हो। समिति के गठनकर्ताओं की यह धारणा थी कि सरकार को भी यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह आर्थिक संसाधनों के आयोजन की आड़ में इन राष्ट्रीयकृत बैंकों की शोधन-क्षमता (Solvency), स्वास्थ्य एवं कुशलता को किसी भी प्रकार का खतरा पहुँचाए। साथ ही सरकार को यह हक नहीं होना चाहिए कि वह बैंकों की जमाराशियों को नीची ब्याज दरों पर प्राप्त कर इसका उपयोग कर्मचारियों के वेतन-भत्ते चुकाने में करे।

नरसिम्हम समिति की सिफारिशों के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :-

(i) संचालन लोचशीलता को एक सीमा तक बनाए रखना;

(ii) सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को अपने निर्णयों में आन्तरिक स्वायत्ता (internal autonomy) प्रदान करना;

और

(iv) बैंक क्रियाओं में व्यावसायिकता (Professionalism) को प्राथमिकता प्रदान करना।

(अ) निर्देशित विनियोग (Directed Investment) के बारे में:-

नरसिम्हम समिति ने कानूनी तरलता अनुपात (SLR) व नकद कोषानुपात (CRR) के बारे में ये महत्वपूर्ण सिफारिशें की -

(i) **वैधानिक तरलता अनुपात** (SLR) : समिति ने यह सिफारिश की है कि सरकार को सार्वजनिक क्षेत्र के वित्तीय संस्थानों के लिए वित्त की व्यवस्था के रूप में वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) का इस्तेमाल तुरन्त रोक देना चाहिए। समिति का आग्रह था कि अगले 5 वर्षो में SLR को 385 प्रतिशत से घटाकर 25 प्रतिशत के स्तर तक ले आया जाय। इस प्रकार SLR में कटौती से जो राशि बैंकों के पास शेष रहे उसे कृषि, उद्योग एवं व्यापार आदि को प्रोत्साहित करने में इस्तेमाल किया जाय। इसी प्रकार समिति ने सिफारिश की कि सरकार की उधार-प्राप्ति दर को बाजार दर के समकक्ष लाया जाय ताकि बैंकों को अपनी आय बढाने में सहायता मिले। है।

(ii) **नकद कोषानुपात** (CRR) समिति ने यह सिफारिश की है कि भारतीय रिजर्व बैंक को नकद कोषानुपात पर अपनी निर्भरता कम करते हुए खुले बाजार की क्रियाओं (open market operation) को साख-नियन्त्रण के उपाय के रूप में इस्तेमाल करना चाहिए। साथ ही नकद कोषानुपात के ऊँचे स्तर को धीरे-धीरे नीचे लाया जाना चाहिए ताकि रिजर्व बैंक के पास निष्क्रिय नकदी (Idle Cash) के रूप में पड़ी राशि को अधिक उत्पादक एवं लाभदायक कार्यों में इस्तेमाल किया जा सके।

(ब) निर्देशित उधार कार्यक्रम (Directed Credit Programme) : नरसिम्हम समिति ने सिफारिश की हे निर्देशित उधार कार्यक्रम को धीरे-धीरे समाप्त कर देना चाहिए। इसके पीछे उनका तर्क है किए कृषि एवं लघु उद्योग अब परिपक्व अवस्था में आ चुके हैं। साथ ही दो दशकों तक चालू रही ब्याज पर सहायता (Subsidy on interest) भी काफी है इस कारण से रियायती ब्याज दरों का परित्याग कर देना चाहिए। समिति का तर्क है कि उधार कार्यक्रम को एक नियमित प्रणाली के रूप में इस्तेमाल न करके आवश्यकता आधारित (need base) कर देना चाहिए। 'प्राथमिक क्षेत्र' (Primary Sector) को पुन: परिभाषित करना चाहिए तथा इस क्षेत्र के लिए कुल बैंक उधार को 10 प्रतिशत तक निश्चित कर देना चाहिए।

(स) ब्याज-दर ढाँचे (Interest Rate sturcture) के बारे में सिफारिशें : नरसिम्हम समिति का मत है किए ब्याज-दरों के ढाँचे का निर्धारण सामान्यतया बाजार शक्तियों के द्वारा किया जाना चाहिए। बैंकों और वित्तीय संस्थानों की जमा एवं उधार दरों पर लगाए गए सभी नियन्त्रणों एवं नियमों को समाप्त कर देना चाहिए। नरसिम्हम समिति का प्रस्ताव है कि ब्याज दरों के ढाँचे को सरल बनाने का अधिकार भारतीय रिजर्व बैंक को होना चाहिए। समिति के अनुसार ब्याज दरों

पर दी जाने वाली सहायता को समाप्त कर देना चाहिए। इस सिफारिश का उद्देश्य बैंकों की आय में वृद्धि करना था।

(द) बैंकिंग ढाँचे की संरचना में सुधार के बारे में सिफारिशें: बैंकिंग-क्रियाओं में अधिक कुशलता लाने की दृष्टि से, नरसिम्हम समिति ने सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की विलयन (Merger) एवं स्वामित्व-पुनर्गठन द्वारा संख्या कम करने का प्रस्ताव किया। समिति के अनुसार:-

(i) 3 से 4 बड़े बैंक (जिनमें स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया भी शामिल हो) ऐसे होने चाहिए जो वास्तविक रूप में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के बन सकें।

(ii) 8 से 10 राष्ट्रीय बैंक होने चाहिए जिनकी शाखाएँ देश भर में फैली हुई हों और जो सामान्य बैंकिंग कार्य करते रहें।

(iii) स्थानीय बैंकों, की क्रियाएँ सामान्यतया किसी एक विशेष क्षेत्र तक सीमित हो जानी चाहिए।

(iv) ग्राम बैंक जिनमें ग्रामीण क्षेत्रीय बैंक (Rural Regional Bank) भी शामिल हो, की क्रियाएँ ग्रामीण क्षेत्रों तक सीमित होनी चाहिए तथा इनका मुख्य कार्य कृषि एवं सम्बद्ध क्रियाओं के लिए वित्त जुटाना होना चाहिए। चूंकि अब देश में ग्रामीण तथा अर्द्ध-नगरीय शाखाओं की व्यवस्था कायम हो चुकी है; अत: बैंकों को उद्देश्य आधारित (Objective based) शाखा विस्तार कार्यक्रम को त्याग कर लाभदायकता आधारित (Profitability based) शाखाएँ खोलने की इजाजत दे देनी चाहिए। साथ ही समिति ने सरकार से यह आग्रह भी किया कि सरकार यह आश्वासन दे कि भविष्य में बैंकों का राष्ट्रीयकरण नहीं किया जाएगा। यदि निजी बैंक न्यूनतम पूँजी एवं अन्य शती के साथ देश में शाखाएँ खोलना चाहते हैं तो उन्हें इजाजत दे देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सरकार को विदेशी बैंकों को देश में व्यवसाय करने देने हेतु नियमों को लचीला बनाया जाना चाहिए। विदेशी बैंकों और भारतीय बैंकों को मिल कर साझे के उद्यम (jointveture) स्थापित करने की इजाजत देनों चाहिए ताकि वे व्यापार एवं विनियोग बैंकिंग, पट्टेदारी एवं अन्य नई प्रकार की वित्तीय सेवाओं की व्यवस्था कर सकें।

बैंकिंग प्रणाली के बारे में समिति की अन्य सिफारिशें (Other Recommendation about Banking System)

(i) **परिसम्पत्ति पुनर्निर्माण निधि** (Assets Reconstruction Fund) : सरकार के उदार-उधार कार्यक्रम (Liberal Credit Programme) के कारण राष्ट्रीयकृत बैंकों व अन्य वित्तीय संस्थानों के पास बड़ी मात्रा में गैर-निष्पादनीय परिसम्पत्तियाँ (Non-Performing Assets) एकत्र हो गई है। नरसिम्हम समिति ने इन के बावत् यह सुझाव दिया है कि एक परिसम्पत्ति पुनर्निर्माण निधि (ARF) की स्थापना की जानी चाहिए और एक विशेष कानून के तहत इसे संस्थान का दर्जा दे दिया जाना चाहिए जो धीरे-धीरे राष्ट्रीयकृत बैंकों व अन्य वित्तीय स्थानों के समस्त कत-ऋणों (Bad debts) व संदिग्ध ऋणों (Doubtful) को बट्टे पर अपने हाथ में ले सके। इस प्रकार बैंक एवं अन्य वित्तीय संस्थान इन डूबत एवं संदिग्ध ऋणों को अपने तुलन-पत्रों में से हटा लेंगे और इनका प्रयोग इस प्रक्रिया द्वारा अधिक उत्पादक कार्यों में कर सकेंगे।

(ii) **द्वैध नियन्त्रण की समाप्ति :** नरसिम्हम समिति ने सिफारिश की कि बैंकिंग प्रणाली को द्वैध नियन्त्रण (Dual Control)ए व्यवस्था से मुआ कर देना चाहिए। बैंकिंग प्रणाली पर एक ओर रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया नियन्त्रण रखता है वहीं दूसरी ओर वित्त मन्त्रालय का बैंकिंग विभाग इस प्रणाली को नियन्त्रित करता है। देश में समस्त बैंकिंग प्रणाली पर केवल रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया का नियन्त्रण होना चाहिए।

(iii) **स्वतन्त्र एवं स्वायत्त बैंक** (Independence & Autonomous Banks) : नरसिम्हम समिति ने प्रत्येक बैंक को स्वतन्त्र एवं स्वायत्त इकाई मानने पर बल दिया। समिति ने सिफारिश की कि प्रत्येक बैंक को कार्य करने की तकनीक व संस्कृति चुनने का अधिकार होना चाहिए ताकि वे आपस में प्रतिस्पर्धा कर सकें। रिजर्व बैंक को आन्तरिक प्रशासन के सन्दर्भ में बैंकों की स्वतन्त्रता व स्वायत्तता को ध्यान में रखते हुए उन सभी मार्गदर्शी सिद्धान्तों व निर्देशों की समीक्षा करनी चाहिए जो सरकार या भारतीय रिजर्व बैंक ने अब तक जारी किए हैं। समिति का मत है कि बैंकों के सर्वोच्च अधिकारी (अध्यक्ष एवं प्रबन्ध निदेशक) की नियुक्ति का आधार राजनैतिक न होकर शुद्ध व्यावसायिकता एवं ईमानदारी होना चाहिए। इसके लिए विशेषज्ञों का एक स्वतन्त्र पैनल होना चाहिए।

बैंकिंग प्रणाली से सम्बन्धित उपर्युका सिफारिशें कई पहलुओं में क्रान्तिकारी हैं अतः इनका विरोध मजदूर संघों, वित्त मंत्रालय एवं प्रगतिशील अर्थशास्त्रियों द्वारा किया जाना स्वाभाविक है।

3. सार्वजनिक क्षेत्र के वित्तीय संस्थानों का सुधार (Reform of the Public Sector financial Institutions)

(i) इन वित्तीय संस्थानों को ऐसे उद्यमियों को ऋण स्वीकृत करने के लिए कहा गया जिनकी क्षमता व योग्यता प्रमाणित नहीं थी।

(ii) बीमार इकाइयों को सहायता देने की सरकारी नीति ने विकास संस्थानों को मजबूर किया कि वे अपनी बेहतर व्यापारिक निर्णय नीति के विरूद्ध जा कर ऐसी इकाइयों को ऋण स्वीकृत करें।

(iii) राज्यस्तर पर स्थापित वित्तीय संस्थान राज्य सरकारों के हाथों की कठपुतलियाँ बन कर हानिपरक संस्थान बन गए।

(iv) सावधि वित्त (Term Finance) के क्षेत्र में विकास संस्थाओं में प्रतिस्पर्धा का नितान्त अभाव रहा है।

उपर्युक्त कमियों के चलते नरसिम्हम समिति ने इन संस्थानों के हालात पर गौर करते हुए अपनी सिफारिशों में निम्न सुधार को अपनाने की सलाह दी -

विकास वित्त संस्थानों के बारे में समिति की सिफारिशें -

(i) विकास वित्त संस्थानों के स्वामित्व ढाँचे को भारतीय औद्योगिक ऋण तथा विनियोग निगम (ICICI) की भाँति ज्यादा व्यापक आधार वाला बनाया जाना चाहिए।

(ii) सरकार को एक कार्य योजना तैयार करनी चाहिए जिसके आधार पर विकास वित्त संस्थान आन्तरिक प्रशासन में पर्याप्त रूप में स्वायत्त संस्थान बन जाए।

(iii) वित्त संस्थानों के मुख्य प्रबन्धकों की नियुक्ति शुद्ध व्यावसायिक योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए, इस हेतु विशेषज्ञों का एक स्वतन्त्र पैनल विकसित किया जाना चाहिए।

(iv) इन संस्थानों के प्रबन्धक मण्डल में औद्योगिक जगत के प्रतिनिधि शामिल किए जाने चाहिए।

(v) राज्य-स्तरीय वित्तीय संस्थानों में राज्य सरकार का हस्तक्षेप समाप्त कर इन्हें स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की इजाजत होनी चाहिए ताकि वे उन्नत कुशलता के साथ कार्य कर सकें।

(vi) ऋणों की स्वीकृति के संदर्भ में प्रत्येक विकास वित्त संस्थान को ऋण प्रदान करने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। इस हेतु प्रोजेक्ट का तकनीकी एवं आर्थिक मूल्यांकन पूर्ण ईमानदारी से किया जाना चाहिए। विकास वित्त संस्थानों को अपने ऋणों के कार्यान्वयन का स्वयं पर्यवेक्षण करना चाहिए।

(vii) संघीय वित्त प्रबन्धन की वर्तमान प्रणाली का त्याग कर देना चाहिए।

(viii) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) के कार्यक्षेत्र एवं कार्यों में परिवर्तन करके इसे अन्य संस्थानों के समान बनाना चाहिए। इस बैंक की सर्वोच्च पुनर्वित्त प्रबन्धन के कार्यक्षेत्र के लिए ही इस्तेमाल किया जाना चाहिए व इसके प्रत्यक्ष उधार देने संबन्धि कार्य अन्य किसी संस्थान को सौंप देने चाहिए।

(ix) निगमीय स्वामित्वान्तरण (Corporate takeover) के मामलों में, विकास वित्त संस्थानों को ऐसे वर्तमान प्रबन्धकों का समर्थन करना चाहिए जिनका सभी के लाभ के लिए प्रमाणित रिकार्ड हो। इस मामले में विकास वित्त संस्थानों को बाहरी दबावों से मुक्त होकर स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

नरसिम्हम समिति ने यह सिफारिश की है कि विकास वित्त संस्थानों को अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्डों को अपनाना चाहिए। समिति ने प्रस्ताव किया है कि वाणिज्यिक बैंकों को सावधि वित्त (Term Finance) के विस्तार हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जबकि विकास वित्त संस्थानों को कार्यशील पूँजी (working capital) की आवश्यकताओं के लिए अल्पकालीन ऋण देने प्रारम्भ कर देने चाहिए।

भारत में मुद्रा और पूँजी बाजार का सुधार (Reform of the Money and the Capital market in India)

भारतीय मुद्रा बाजार (Indian Money Market)

भारतीय मुद्रा बाजार जोकि अल्पकालीन विनिमय-पत्रों का बाजार है, में कई नए संस्थान कायम किए जा चुके है जैसे भारतीय बट्टा एवं वित्त घर (Discount and Finance House of India)। नई प्रतिभूतियाँ शामिल की गई हैं जैसे वाणिज्यिक विनिमय-पत्र और जमा-प्रमाण-पत्र (Certificates of Deposits)। ये विशिष्ट विनियोग संस्थान अब विकसित हो रहे बाजार की आवश्यकताओं को पूरा कर रहे हैं। वित्तीय संस्थानों एवं विनिमय-पत्रों के इस फैलाव के कारण अब बचतकर्त्ताओं को परिसम्पत् (Assets) के चुनाव में विस्तृत किस्म के पत्र उपलब्ध हैं

जिनमें से वे जोखिम, तरलता और प्रत्याय-दर के आधार पर चुनाव कर सकते हैं। वित्तीय सेवाओं में भी काफी प्रतिस्पर्धा उपलब्ध है।

भारत में मुद्रा बाजार की क्रियाओं का विस्तार हो रहा है और एक द्वितीयक बाजार (Secondary Market) के विकास की भी शुरूआत हो चुकी है, माँग मुद्रा बाजार (Call Money market) की मुख्य समस्या इसमें अत्यधिक अस्थिरता का अंश है। हाल ही के वर्षो के दौरान, माँग मुद्रा सौदों की मात्रा बढ़ती जा रही है और औसत माँग मुद्रा दरों में वृद्धि हो रही है। मुद्रा बाजार में ऊँची दरों के विद्यमान होने के परिणामस्वरूप संभवत: वाणिज्यिक विनिमय-पत्रों के सौदों में वृद्धि नहीं हो रही है।

रिजर्व बैंक ने बैंकों और उनके अनुषंगियों को मुद्रा-बाजार में पारस्परिक निधियाँ (Mutual funds) स्थापित करने की इजाजत दे दी है जिससे मुद्रा बाजार क्रिया का विस्तार होगा यदि विनिमय-पत्रों के बट्टा द्वारा उधार माँगने वालों का क्षेत्र-विस्तार नहीं किया जाता। साथ ही भारतीय रिजर्व बैंक को अपने बट्टा व्यापार (Discounting Business) का प्रयोग पुनर्वित उपाय के रूप में अधिकाधिक करना होगा ताकि विनिमय-पत्र को वित्त उपकरण के रूप में लोक प्रिय बनाया जा सके। मुद्रा बाजार में भाग लेने वालों की मात्रा बढ़ाने और विनिमय-उपकरणों की किस्मों का विस्तार करने से द्वितीयक बाजार अधिक क्रियाशील हो सकेगा। इस सम्बन्ध में भारतीय बट्टा एवं वित्त घर की स्थापना इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है क्योंकि इससे मुद्रा-बाजार में उच्चावचनों को कम करने में सहायता मिलेगी और इससे द्वितीयक बाजार का निर्माण प्रोत्साहित हो सकेगा।

नरसिम्हम समिति ने यह सुझाव दिया कि सुप्रबन्धित गैर-बैंकिंग वित्तीय अन्तर्वर्तियों(Non-banking financial Intermediaries) जैसे किराया-खरीद और लीजिंग कम्पनियों (Leasing companies) एवं व्यापारी बैंकों को मुद्रा बाजार में कार्य करने की इजाजत होनी चाहिए। जोखिम पूँजी कम्पनियाँ भी अपनी अल्पकालीन पूँजी निधियाँ मुद्रा बाजार में उपलब्ध करा सकती हैं।

भारत में पूँजी बाजार (Capital Market in India)

पिछले दो दशकों के दौरान, भारत में पूँजी बाजार का महत्त्वपूर्ण रूप में विकास हुआ है। पूँजी बाजार के सौदों की मात्रा में वृद्धि हुई है; इसके कार्यों का विविधीकरण हुआ है। नये वित्तीय संस्थान जैसे व्यापारी बैंक, पारस्परिक निधियाँ एव जोखिम पूँजी कम्पनियाँ कायम हो गई हैं और काफी सक्रिय रूप में कार्य कर रही हैं। नये वित्तीय उपकरण जैसे पूर्ण एवं आशिक परिवर्तनीय ऋण पत्र, 182 दिन के राजकोषीय पत्र, वाणिज्यिक विनिमय-पत्र, जमा प्रमाण पत्र आदि चालू हो गए हैं। इससे बढ़ते हुए विविधीकरण (Diversification) का परिचय मिलता है और वित्तीय सेवाओं में सूक्ष्मता के विकास का आभास होता है जोकि बढ़ते हुए पूँजी एवं मुद्रा बाजार की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है। आज नयी जारी पूँजी की मात्रा 6500 करोड रुपए से 7000 करोड़ रुपए के बीच है। हिस्सेदारों की संख्या कई करोड़ों तक पहुँच गई है जिससे हिस्सा पूँजी की बढ़ती हुई संस्कृति का संकेत मिलता है।

वाणिज्य बैंक जो मुद्रा बाजार में व्यापार करते हैं, पूँजी बाजार में अपने व्यापारी बैंकों (Merchants Banks) और पारस्परिक निधि अनुषंगियों द्वारा प्रवेश करते हैं। वे अब लिजिंग और जोखिम पूँजी वित्त में भी कार्य करने लगे हैं।

गैर-बैंकिंग वित्तीय अन्तर्वर्ती (Non-banking financial intermediaries)

1. **लीजिंग और किराया-खरीद कम्पनियाँ** (Leasing and hire purchase companies)- हाल ही में बहुत सी लीजिंग कम्पनियाँ चालू की गई हैं परन्तु इनमें से बहुत सी लोप हो गई क्योंकि उनके पास कम पूँजी थी और उनका प्रबन्ध बहुत घटिया था। छोटे तथा मध्यम आकार वाली कम्पनियों के लिए लीजिंग (Leasing) एक लोकप्रिय तरीका बनता जा रहा है जिससे प्लान्ट एवं मशीनरी के लिए वित्त प्राप्त किया जा सकता है। इनके विकास के कारण मे वैयक्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तीव्र गति, अनौपचारिकता और लोचशीलता के गुण हैं।

अत: लीजिंग एवं किराया-खरीद कम्पनियों के महत्त्व और बढ़ते हुए कार्यभाग को स्वीकार करते हुए नरसिम्हम समिति ने सिफारिश की कि

(क) एक न्यूनतम पूँजी आवश्यकता निश्चित कर देनी चाहिए;

(ख) व्यापार करने के विवेकपूर्ण मानदण्ड और मार्गदर्शी सिद्धान्त निर्धारित कर देने चाहिए; और

(ग) पर्यवेक्षण का आधार नियतकालिक तुलन-पत्र होने चाहिए जिनका एकीकृत पर्यवेक्षण प्राधिकार द्वारा परीक्षण होना चाहिए।

2. **व्यापारी बैंकिंग** (Merchant Banking)- मौलिक रूप में वाणिज्य बैंकों द्वारा व्यापारी बैंकिंग विभागों के रूप में स्थापित होने के पश्चात् ये पृथक् रूप में व्यापारी बैंक अनुषंगी कम्पनियों के रूप में विदेशी बैंकिंग तथा मुद्रा बाजार संस्थानों के रूप में कायम किए गए हैं और कुछ ऐसी फर्मो द्वारा स्थापित किए गए हैं जो दलाली एवं वित्तीय परामर्श कार्य करती हैं।

भारत में व्यापारी बैंक नई जारी पूँजी का प्रबन्ध एवं अभिगोपन (Underwriting) करते हैं; वे उधार के व्यवसायी-संघ (Syndication) बनाने का कार्य करते हैं और वे अपने निगमीय ग्राहकों को राशियाँ प्राप्त करने तथा अन्य वित्तीय पहलुओं पर सलाह देते हैं। विदेशी व्यापारी बैंकों के विरुद्ध, भारतीय व्यापारी बैंक बैंकिंग कार्य अर्थात् जमा स्वीकार करना, उधार देना और विदेशी मुद्रा सेवाएँ भी उपलब्ध कराते हैं।

नरसिम्हम समिति भारत की औद्योगिक अर्थव्यवस्था के अधिनियमित ढाँचे में व्यापारी बैंकों के कार्यभाग की काफी बड़ी क्षमता की कल्पना करती है। समिति चाहेगी कि सरकार सुप्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारी एवं विनियोग बैंकों के साथ साझे उद्यमों (Join ventures) की स्थापना में प्रोत्साहन दे। समिति यह भी चाहती है कि समय के साथ-साथ व्यापारी बैंक बाजार के जमा तथा उधार संसाधन भी प्राप्त करने लगें। इसके लिए उन्हें भारतीय रिजर्व बैंक के मार्गदर्शी सिद्धान्तों के अन्तर्गत कार्य करना होगा।

वर्तमान परिस्थिति में, व्यापारी बैंक दो प्राधिकारी के आधीन कार्य करते हैं-

(क) भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (Securities and Exchange Board of India) को सभी व्यापारी बैंकों की निर्गम क्रिया और उनके व्यापार के पोर्टफोलियो प्रबन्ध के नियमन का अधिकार प्राप्त है।

(ख) भारतीय रिजर्व बैंक उन व्यापारी बैंकों का पर्यवेक्षण करता है जो वाणिज्य बैंकों के अनुषंगी या इनके सम्बन्धी हैं। यदि व्यापारी बैंक जमा गतिमान करना चाहें, तो उन्हें भारतीय रिजर्व बैंक के मार्गदर्शी सिद्धान्तों का पालन करना होगा।

3. **पारस्परिक निधियाँ** (Mutual Funds)- हाल ही के वर्षो में, पारस्परिक निधियाँ पूँजी बाजार के नए संस्थानों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बन गई हैं। बहुत से सार्वजनिक बैंकों और वित्तीय संस्थानों ने कर-छूट आधार पर पारस्परिक निधियाँ स्थापित की हैं, ये लगभग भारतीय इकाई न्यास की भाँति ही हैं। इन्होंने विनियोक्ता-समर्थन के रूप में भारी प्रगति प्राप्त कर ली है। अब सरकार निजी क्षेत्र और साझे क्षेत्र में भी पारस्परिक निधियों का क्षेत्र-विस्तार करना चाहती है। भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड को इनके लिए मार्गदर्शी सिद्धान्त बनाने और इनके कार्य के पर्यवेक्षण एवं विनियमन का अधिकार है।

नरसिम्हम समिति ने सिफारिश की कि (i) पारस्परिक निधियों के निर्माण के लिए एक उचित विनियामक ढाँचा (Regulatory framework) कायम होना चाहिए ताकि सुदृढ़, सुव्यवस्थित और प्रतिस्पर्धी वातावरण में इनका विकास हो सके, (ii) पारस्परिक निधियों की स्थापना और कार्य संचालन के लिए एक उचित कानूनी ढाँचा होना चाहिए और (iii) कर-रियासतों के क्षेत्र में पारस्परिक निधियों (भारतीय इकाई न्यास भी जिसमें शामिल हो) को एक सा व्यवहार मिलना चाहिए।

4. **जोखिम पूँजी कम्पनियाँ** (Venture Capital Companies)- जोखिम पूँजी वित्त-प्रबन्ध पूँजी बाजार में हाल, में नव प्रवेशकों में से है। इस प्रकार की पूँजी के लिए काफी बड़ा क्षेत्र उपलब्ध है क्योंकि हाल ही के वर्षा में टेक्नोक्रेट उद्यमकर्ता (Technocrate entrepreneur) उभरे हैं जिनके पास योग्यता एवं विशेषज्ञता है किन्तु पूँजी का अभाव है। वित्तीय संस्थान आमतौर पर विनियोग वित्त-प्रबन्ध में प्रवर्तक योगदान (Promoter countribution) की अधिक मात्रा पर बल देते हैं, जिस स्थिति में टेक्नोक्रेट उद्यमकर्ताओं को जोखिम पूँजी कम्पनियों के समर्थन की आवश्यकता पड़ती है ताकि नये विचार और नई तकनालाजी आरम्भ करके अपनी परिस्थितियों के अनुकूल ढाली जा सके। इस कार्य में अत्यधिक जोखिम उठाना पड़ता है।

नरसिम्हम समिति ने यह महसूस किया कि जोखिम पूँजी कम्पनियों की स्थापना के मार्गदर्शी सिद्धान्त बहुत प्रतिबन्धात्मक और अवास्तविक हैं और इस कारण वे इनके विकास में बाधा हैं। समिति ने यह आशा व्यक्त की कि सरकार इन मार्गदर्शी सिद्धान्तों की समीक्षा कर इनमें संशोधन करेगी ताकि पात्रता की कसौटियों (Eligibility criteria) का विस्तार किया जा सके और जोखिम पूँजी कम्पनियों के कार्य-संचालन में कुछ हद तक लोचशीलता प्राप्त की जा सके। चूँकि जोखिम पूँजी वित्त-प्रबन्ध में जोखिम का अंश बहुत अधिक होता है, इसलिए नरसिम्हम समिति ने यह सिफारिश की कि इन कम्पनियों पर पूँजी-लाभ कर (Capital gains

tax) में कटौती करनी चाहिए और जोखिम पूँजी कम्पनियों के साथ वही व्यवहार किया जाना चाहिए जो पारस्परिक निधियों के साथ किया जाता है।

पूँजी बाजार का नियमन (Regulation of the Capital Market)

पूँजी बाजार के विभिन्न संस्थानों, जिनका हमने जिक्र पहले किया है, ने पूँजी बाजार का विस्तार करने में सहायता दी है और बचतकर्ता और विनियोक्ता को कई प्रकार के विकल्प उपलब्ध कराए हैं। इनके विकास और विस्तार को बढ़ावा देने की अत्यन्त आवश्यकता है। साथ ही विनियोक्ता संरक्षण की दृष्टि से पूँजी बाजार के नियमन की आवश्यकता है। अभी तक पूँजी निर्गम नियंत्रण (Controller of Capital Issues) या / और भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड द्वारा नियन्त्रण लाग किए गए हैं। उदाहरणार्थ, नई जारी पूँजी के लिए पहले स्वीकृति लेनी आवश्यक है, चाहे व्यापारी बैंकरों ने इसकी हामीदारी की हो और व्यवसायी परामर्श के आधार पर विनियोग का प्रकार, इसकी शर्ते, कीमत-निर्धारण आदि किया गया हो।

नरसिम्हम समिति के अनुसार ऐसी कम्पनियाँ जिनके हिस्से शेयर बाजार की सूची में अंकित हैं, के बारे में न ही SEBI और न ही CCI की पूर्व-स्वीकृति की आवश्यकता होनी चाहिए। सूची में न शामिल किए गए हिस्सों के संदर्भ में, जिनके बारे में विनियोक्ताओ को इनके भावी लाभ और प्रवर्तकों सम्बन्धी पृष्ठभूमि पर्याप्त नहीं, शेयर बाजारों को SEBI के मार्गदर्शी सिद्धान्तों के आधार पर स्वीकृति प्रदान करनी चाहिए ताकि प्रवर्तक इनका किसी प्रकार दुरुपयोग न कर सकें।

नरसिम्हम समिति ने सिफारिश की कि प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड को सुविचारित मार्गदर्शी सिद्धान्त तैयार करने चाहिए ताकि विनियोक्ताओ के हितों की रक्षा की जा सके। इन सिद्धान्तों को पूँजी निर्गम नियन्त्रक (Controller of Capital Issues) द्वारा लाग मार्गदर्शी सिद्धान्तों का विस्थापन करना होगा। समिति ने यह सिफारिश की कि CCI के बाजार नियामक कार्यकर्ता को सौंप देने चाहिए जो सुविचारित सिद्धान्त और मार्गदर्शी सिद्धान्त प्रतिपादित करे, परन्तु पूँजी बाजार के दिन-प्रति-दिन के कार्यों में दखल न दे। अत: पूँजी निर्गम नियन्त्रक का अत्याधिक इच्छानुसार नियन्त्रण समाप्त कर देना चाहिए।

जहाँ तक पूँजी बाजार के विभिन्न संस्थानों का सम्बन्ध है, नरसिम्हम समिति ने उन सामान्य सिद्धान्तों की रूपरेखा तैयार की है जो विभिन्न संस्थानों के विनियामक ढाँचे (Regulatory framework) को नियन्त्रित करेंगे। जहाँ तक पर्यवेक्षण (Supervision) का सम्बन्ध है, नरसिम्हम समिति वित्तीय संस्थानों के पर्यवेक्षण के लिए संस्थानों के बाहुल्य के विरुद्ध है।

अन्त में नरसिम्हम समिति चाहती है कि भारतीय पूँजी बाजार को धीरे-धीरे विदेशी पोर्टफोलियो विनियोग के लिए खोल देना चाहिए और साथ ही ऐसे प्रयास किए जाने चाहिए जिनसे पूँजी बाजार की गहराई बढ़े और इसके लिए नई प्रकार की हिस्सा पूँजी (Equity) और ऋण पत्र जारी करने को सुविधाजनक बनाया जावे।

5. **बैंकिंग क्षेत्र का सुधार (1992-98)** (Reform of the Banking Sector- 1992-98)

बैंक-मजदूर संघों द्वारा कड़ा विरोध करने के बावजूद, भारत सरकार ने नरसिम्हम समिति (Narasimham Committee) 1991 की सभी सिफारिशें स्वीकार कर ली। 1991-92 और 1997-98 के बीच बैंकिंग सुधार सम्बन्धी निम्नलिखित उपाय किए गए :-

1. **वैधानिक तरलता अनुपात** (statutory Liquidity Ratio)- को माँग तथा सावधि देयता के 38.5 प्रतिशत से कम कर मार्च 1997 में 25 प्रतिशत तक कर दिया गया। यह बैंक विनिमय कानून (1949) में निधारित न्यूनतम 25 प्रतिशत के समान था।

2. **नकद प्रारक्षण अनुपात** (Cash Reserve Ratio) मौलिक रूप में कानूनी 15 प्रतिशत से कम करके नकद-प्रारक्षण अनुपात को नीचे लाना था। इसे मई 1993 में कम करके 14 प्रतिशत किया गया। परन्तु विदेशी मुद्रा के भारी अन्तःप्रवाह और इसके परिणामस्वरूप प्राथमिक तरलता (Primary liquidity) में वृद्धि ने भारतीय रिजर्व बैंक को मजबूर कर दिया कि वह नकद-प्रारक्षण अनुपात को अगस्त 1994 तक बढ़ा कर 15 प्रतिशत कर दे।

जब परिस्थिति में सुधार हुआ और मुद्रासंभरण में वृद्धि 1995-96 और 1996-97 में मन्द हो गयी, तब भारतीय रिजर्व बैंक ने नकद-प्रारक्षण अनुपात को मार्च 1997 में 15 प्रतिशत से कम करके 10 प्रतिशत कर दिया। इसके परिणामस्वरूप 18000 करोड़ रुपए का नकद-अधिशेष (Cash balance) बैंकों के लिए मुक्ता हो गया ताकि बैंक जो उधार का विस्तार करने से वंचित हो रहे थे, इसका प्रयोग औद्योगिक एवं अन्य क्षेत्रों को उधार देने के लिए कर सके।

3. **बैंक उधार की शिलपट्टें** (Slabs)- 1994-95 में 20 से घटाकर 2 कर दी गयीं। 1991-92 में ब्याज-दरों में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए -

(क) 2 लाख रुपए से अधिक बैंक-अग्रिम पर जो स्टेट बैंक और अधिकतर बैंकों द्वारा दिए जाते हैं, प्रमुख उधार-दर कमकर दी गयी।

(ख) 2 लाख रुपए से ऊपर के बैंक उधार पर ब्याज दर पूर्णतया अनियंत्रित कर दी गयी है।

(ग) एक वर्ष से अधिक देशीय सावधि जमा (Term deposite) और अनिवासी भारतीयों द्वारा गैर-प्रत्यावर्तनीय (Non-repatriable) रुपया जमा पर ब्याज-दर अनियंत्रित कर दी गयी।

(घ) सभी सहकारी बैंकों की जमा एवं अग्रिमों पर ब्याज दरें अविनियमित कर दी गयी हैं बशर्ते कि न्यूनतम उधार दर 13 प्रतिशत हो। यह बात शहरी सरकारी बैंकों पर लागू नहीं होगी।

ब्याजदरों को अनियन्त्रित करने का उद्देश्य बैंकों में उच्चस्तर के अग्रिमों में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा प्रोत्साहित करना है।

अनुसूचित वाणिज्य बैंकों को अपनी जमा पर ब्याज-दर निश्चित करने की स्वतन्त्रता है बशर्ते कि यह न्यूनतम दर और अधिकतम दर की सीमाओं कें बीच हो।

(4) सुधार प्रक्रिया के अंग के रूप में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा विवेकशील मानदण्ड (Prudential Norms) आरम्भ किए गए हैं। इनका उद्देश्य आय की स्वीकार्यता की प्रणाली, परिसम्पत्तियों के वर्गीकरण और अप्राप्य ऋणों (Bad debts) के लिए प्रावधान करना है जिसके परिणामस्वरूप वाणिज्य बैंकों के वही खाते उनकी वित्तीय स्थिति को ठीक प्रकार से प्रतिबिम्बित

करें ताकि अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से स्वीकार्य लेखा व्यवहार के अनुसार इन्हें प्रस्तुत किया जा सके। इससे बैंकों के प्रभावी पर्यवेक्षण में सहायता मिलेगी।

विवेकशील मानदण्डों के अनुसार यह आवश्यक है कि बैंक अपनी गैर-निष्पादनीय परिसम्पत्तियों (Non-preforming Assets) के लिए शत-प्रतिशत प्रावधान करें। चूँकि इसके लिए अनुमानित राशि 10000 करोड़ रुपए निर्धारित की गयी, इसे दो वर्षो में पूरा करने का निर्णय किया गया।

(5) **पूँजी पर्याप्तता मानदण्ड** (Capital adequency norms)- अप्रैल 1992 में 8 प्रतिशत पर निश्चित किए गए और बैंकों को इन्हें तीन वर्षो की अवधि में पूरा करने को कहा गया। मार्च 1996 तक सभी सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने इस मानदण्ड को पूरा कर लिया। विदेशी बैंकों और कुछ भारतीय निजी क्षेत्र के बैंकों ने भी 8 प्रतिशत के पूरे मानदण्ड को प्राप्त कर लिया।

भारत सरकार ने बैंकिंग कम्पनी (उद्यमों के अधिग्रहण एवं हस्तान्तरण) कानून में संशोधन कर सभी राष्ट्रीयकृत बैंकों को बाजार से पूँजी प्राप्त करने की स्वीकृति दे दी है। इसके लिए वे सार्वजनिक निर्गमन (Public Issues) जारी कर सकते हैं बशर्ते कि केन्द्र सरकार का आधिपत्य प्रदत्त पूँजी (Paid-up capital) के 51 प्रतिशत के नीचे न हो जाए।

भारतीय स्टेट बैंक पहला बैंक था जिसने हिस्सा-पूँजी द्वारा 1400 करोड़ रुपए और बाँड़ों द्वारा 1000 करोड़ रुपए प्राप्त किए। भारतीय रिजर्व बैंक की भारतीय स्टेट बैंक में हिस्सा-पूँजी अब 67 प्रतिशत है जबकि यह पहले 99 प्रतिशत थी। स्टेट बैंक के कानून में संशोधन कर हिस्सेदारों को 10 प्रतिशत वोट-अधिकार दिए गए है। ओरियंटल बैंक ऑफ कामर्स ने 1994-95 में हिस्सा-पूँजी निर्गमन से 360 करोड़ रुपए प्राप्त किए। अन्य राष्ट्रीयकृत बैंक भी पूँजी बाजार में प्रवेश की योजना बना रहे हैं।

(6) **कार्य संचालन की स्वतन्त्रता**- अनुसूचित वाणिज्य बैंकों को अब इस बात की स्वतन्त्रता दी गयी है कि वे नयी शाखाएँ खोलें और विस्तार काउंटर भी कायम करें। ऐसा करते समय उन्हें पूँजी पर्याप्तता मानदण्डों और सविवेक खाता मानदण्डों को पूरा करना होगा। उन्हें अक्षम शाखाओं को (ग्रामीण क्षेत्रों को छोड़) बन्द करने की इजाजत भी दी गयी है। बैंक उधार मानदण्डों का भी उदारीकरण किया गया है और उन्हें विशेष मदों की मालतालिकाओं (Inventories) और प्राप्य राशियों (Receivables) के अधिग्रहण स्तर सम्बन्धी निर्णय करने की भी स्वतन्त्रता दी गयी है।

(7) **नये निजी क्षेत्र के बैंक** - 10 निजी क्षेत्र के बैंकों ने अब कार्य करना आरम्भ कर दिया है। भारत सरकार ने नये निजी क्षेत्र के बैंकों को स्थापित करने के प्रस्तावों को सिद्धान्त रूप में स्वीकृति दे दी है। नये निजी क्षेत्र के बैंकों को 20 प्रतिशत तक पूँजी संस्थानात्मक विनियोक्ताओ और 40 प्रतिशत तक अनिवासी भारतीयों से प्राप्त करने की इजाजत दी गयी है।

1996-97 के बजट में भारत सरकार ने नये निजी स्थानीय क्षेत्र बैंक (Local areas banks) स्थापित करने की घोषणा की जिनका कार्यक्षेत्र पड़ोसी तीन जिलों तक सीमित होगा। ये बैंक ग्रामीण बचत को गतिमान करेंगे और इसे स्थानीय क्षेत्र में विनियोग के लिए मार्गीकृत करेंगे। रिजर्व बैंक ने इन बैंकों की स्थापना के लिए मार्गदर्शी सिद्धान्त तय किए हैं और सरकार ने

ऐसे बैंक स्थापित करने के दो प्रस्ताव स्वीकार कर लिए हैं - एक महाराष्ट्र में और दूसरा कर्नाटक में।

(8) **वाणिज्य बैंकों का पर्यवेक्षण**- रिजर्व बैंक वाणिज्य बैंकों पर पर्यवेक्षण (Supervision) को और कड़ा बना रहा है, विशेष कर 1992 के प्रतिभूति घोटाले के पश्चात्। इस कार्य के लिए वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड कायम किया जाएगा जिसके अध्यक्ष गवर्नर होंगे ताकि बैंकों तथा वित्तीय संस्थानों के पर्यवेक्षण और चौकसी को मजबूत बनाया जा सके। इसके लिए भारतीय रिजर्व बैंक ने एक नया विभाग कायम किया है।

(9) **ऋणों की वसूली**- भारत सरकार ने 1993 में बैंकों एवं वित्तीय संस्थानों के ऋण की वसूली सम्बन्धी कानून पास कर दिया। इसका उद्देश्य ऋण की वसूली की गति तेज करना है। इस कार्य के लिए छः विशेष वसूली न्यायाधिकरण (Special Recovery Tribunals) कलकत्ता, नयी दिल्ली, जयपुर, अहमदाबाद, बंगलूर और चैनई में स्थापित किए गए।

भावी दृष्टि

नरसिम्हम समिति की सिफारिशों पर आधारित 1992 के पश्चात् चालू किए गए बैंक सुधारों का उद्देश्य अत्यधिक विनियमित एवं निर्देशित सार्वजनिक क्षेत्र बैंक-प्रणाली को स्वतंत्र, प्रतियोगी, सविवेक और पर्यवेक्षी अनुशासन के रूप में परिवर्तित करना था। इसके लिए सार्वजनिक बैंकों में वाणिज्यिक दृष्टिकोण" का विकास करना था ताकि

1. वे विनियोक्ताओ की बचत पर बेहतर प्रत्याय दे सकें;
2. अतिरिक्त राजस्व प्राप्त करने की रणनीति तय कर सकें;
3. नयी सेवाओं को चालू कर वित्तीय जोखिम को कम कर सकें;
4. लागत-आय अनुपात को उन्नत कर सकें और संचालन कुशलता बढ़ा सकें और
5. मन्द लाभदायकता की समस्या और ऊँची एवं बढ़ती हुई गैर-निष्पादनीय परिसम्पत्तियों की समस्याओं का आक्रमणकारी समाधान कर सके।

नरसिम्हम समिति II सुधार (1998)

भारत सरकार ने श्री नरसिम्हम की अध्यक्षता में बैंकिंग क्षेत्र के सुधार के लिए एक समिति नियुक्त की जिसने अपनी रिपोर्ट अप्रैल 1998 में प्रस्तुत कर दी। इस समिति की मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित हैं -

1. **एक सशक्त बैंकिंग प्रणाली की आवश्यकता**- नरसिम्हम समिति (1998) ने देश में एक सशक्त बैंकिंग प्रणाली कायम करने पर बल दिया, विशेषकर पूँजी खाता परिवर्तनीयता (Capital account convertibility) के संदर्भ में जिसमें पूँजी का बड़ी मात्रा में अन्र्तप्रवाह एवं उत्प्रवाह होगा जिसके परिणामस्वरुप विदेशी मुद्रा के प्रबन्ध एवं देशीय तरलता (Domestic liquidity) की समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। इसके लिए एक मजबूत बैंक प्रणाली की जरूरत है। इसके लिए नरसिम्हम समिति ने सशक्त बैंकों के विलयन (Merger) का सुझाव दिया है जिसका उद्योग पर गुणक प्रभाव (Multiple effect) होगा। किन्तु समिति ने मजबूत बैंकों का कमजोर बैंकों के साथ विलयन करने में सावधानी बरतने पर बल दिया है क्योंकि इसका मजबूत बैंक की

परिसम्पत की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव होगा। समिति ने इस विचार को भी बढ़ावा दिया है कि दो या तीन बड़े भारतीय बैंकों को अन्तर्राष्ट्रीय या विश्वव्यापी स्वरूप प्रदान करना चाहिए।

2. **संकीर्ण बैंकिंग** (Narrow banking) की अवधारणा का प्रयोग- समिति कमजोर सरकारी क्षेत्र के बैंकों की पुनर्स्थापना के लिए गम्भीर रूप में चिन्तित है जिन्होंने भारी मात्रा में गैर-निष्पादनीय परिसम्पत्तियाँ (Non-performing assets) एकत्र कर ली है जोकि कुछ परिस्थितियों में कुल परसम्पतियों के 20 प्रतिशत से अधिक हैं। इन कमजोर बैंकों के पुन: स्थापना के लिए संकीर्ण बैंकिंग की अवधारणा अपनाने की सिफारिश की है। संकीर्ण बैंक का अभिप्राय यह है कि कमजोर बैंक अपनी राशियों को अल्पकालीन जोखिम-मुक्त परिसम्पतों में लगाएँ। इन्हें सुरक्षित तरल परिसम्पतों से संतुलित करना होगा। यदि संकीर्ण बैंकिंग की अवधारणा कमजोर बैंकों के पुन: स्थापन के लिए अव्यवहार्य मालूम हो, तब इन्हें बन्द करने के प्रस्ताव पर समिति के अनुसार, विचार करना होगा।

3. **छोटे स्थानीय बैंक** - नरसिम्हम समिति (1998) ने तर्क दिया है "जबकि दो या तीन बड़े बैंक जिनका अन्तर्राष्ट्रीय स्तर हो और 8-10 बड़े राष्ट्रीय बैंक बड़े तथा मध्यम निगम क्षेत्र की जरूरतों को पूरा कर सकते हैं, तब भी बहु त से स्थानीय बैंकों की जरूरत होगी। अत: समिति ने सुझाव दिया है कि छोटे स्थानीय बैंक (Local banks) स्थापित किए जाएँ जो राज्य या कुछ जिलों तक अपने कार्य को सीमित रखें ताकि स्थानीय व्यापार, लघु उद्योग और कृषि की जरूरतें पूरी की जा सकें। साथ ही इन बैंकों का बड़े राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय बैंकों से तदनुरूप मजबूत सम्बन्ध होना चाहिए।

4. **पूँजी पर्याप्तता अनुपात** (capital adequency ratio)- नरसिम्हम समिति (1998) ने यह भी सुझाव दिया है कि सरकार को निर्धारित पूँजी पर्याप्तता अनुपात को बढ़ाने. पर विचार करना चाहिए ताकि बैंकों की अन्तर्निहित शक्ति को उन्नत किया जा सके और उनकी जोखिम सहन करने की सामर्थ्य बढ़ायी जा सके। समिति ने बैंकों के लिए ऊँची पूँजी पर्याप्तता आवश्यकताओं को निश्चित करने का सुझाव दिया है और बैंकों के बट्टे खाते के ऋणों के प्रबन्ध के लिए परिसम्पत्ति पुनर्निर्माण कोष (Assets Reconstruction fund) कायम करने चाहिए।

5. **सार्वजनिक स्वामित्व और वास्तविक स्वायत्ता**-नरसिम्हम समिति (1998) ने यह तर्क दिया है कि बैंकों का सरकारी स्वामित्व एवं प्रबन्ध सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की स्वायत्ता एवं लोचशीलता को नहीं बढ़ाता। इस सम्बन्ध में समिति ने सिफारिश की है कि बोर्डों के कार्यों की समीक्षा की जानी चाहिए ताकि वे हिस्सेदारों के मूल्य को निगम-रणनीति के निर्माण द्वारा बढ़ाने के लिए उत्तरदायी रहें।

नरसिम्हम समिति (1998) ने भारतीय रिजर्व बैंक के वित्तीय पर्यवेक्षण के बोर्ड के लिए स्वायत्ता और भारतीय रिजर्व बैंक के विनियामक एवं पर्यवेक्षक कार्यों को पृथक करने की आवश्यकता पर विचार किया है। समिति ने इस बात पर बल दिया कि रिजर्व बैंक को उन बैंकों से दूर रहना चाहिए जिनके विनियमन का कार्य वह करता है। समिति ने साफ शब्दों में लिखा है: "विनियमन की चिन्ता कार्यनीति एवं प्रकटीकरण मानदण्डों (Disclosure norms) और अच्छी कार्यविधि तय करने तक होनी चाहिए और इसे बैंक के रोजमर्रा के प्राबंध में नहीं पड़ना चाहिए।"

6. नरसिम्हम समिति ने भारतीय रिजर्व बैंक विनियमन कानून, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया के कानून में तुरन्त संशोधन करने का सुझाव दिया है ताकि इन कानूनों को देश के बैंक-उद्योग की वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जा सके।

समिति की अन्य सिफारिशों सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के कम्प्यूटरीकरण, इन्हें अधिक व्यावसायिक बनाने और बैंकों के बोर्डों के अराजनीतिकरण (Depoliticization), बैंकों के स्टाफ को भरने के नियमों एवं कार्य विधि, प्रशिक्षण और वेतन नीतियों (Remuneration policies) से सम्बन्धित हैं।

15.7 नरसिम्हम समिति (1991-98) का मूल्यांकन

वास्तव में बैंकिंग क्षेत्र के सुधार पर दूसरी नरसिम्हम समिति नियुक्त करने का कोई औचित्य नहीं था जबकि पहली समिति रिर्पोट की सिफारिशों को जो कि 1991 में की गयीं थी लागू करने के लिए पूरा एक दशक बीत गया होता। एक या दो सिफारिशों को छोड़ जो सशक्त बैंकों के कमजोर बैंकों से विलयन से सम्बन्धित हैं, अन्य सभी सिफारिशों को नरसिम्हम समिति द्वारा केवल मात्र दोहराया गया है। जाहिर है कि बैंकिंग क्षेत्र सुधार पर नरसिम्हम समिति की स्थापना वित्त मंत्रालय के बैंकिंग विभाग के दिमाग की लहर है। नरसिम्हम समिति (1991) ने वित्त मंत्रालय के बैंकिंग विभाग को बन्द करने की सिफारिश की थी क्योंकि इस विभाग के पास कोई अर्थपूर्ण काम नहीं है और बैंकिंग प्रणाली सम्बन्धी सभी मामलों के लिए केवल एक प्राधिकार अर्थात् भारतीय रिजर्व बैंक होना चाहिए। जाहिर है कि वित्त मंत्रालय ने यह सिफारिश स्वीकार नहीं की।

15.8 आधुनिक बैंकिंग प्रणाली की समस्याएँ

(i) राजनैतिक हस्तक्षेप (Political Interference)
(ii) सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति (Political Interference)
(iii) उद्देश्य आधारित बैंकिंग (Objective Oriented Banking)
(iv) अनार्थिक शाखा विस्तार (Uneconomical Branch Expansion)
(v) कुशल कर्मचारियों का अभाव (Lack of Trained Personal)
(vi) प्रतिस्पर्धा का अभाव (Lack of Competition)
(vii) आवश्यकता से अधिक नियन्त्रण (Excess control)
(viii) आधुनिकीकरण का अभाव (Lack of Modernisation)
(ix) गैर-निष्पादीय सम्पत्तियों में बढ़ोतरी (Increasing NPA's)
(x) धीमे बैंकिंग सुधार (Slow Banking Reform)
(xi) भ्रष्टाचार (Corruption)

i. **राजनैतिक हस्तक्षेप (Political Interference)** आधुनिक बैंकिंग प्रणाली भी अन्य क्षेत्रों की तरह ही राजनैतिक हस्तक्षेप के अभिशाप से ग्रसित है। राष्ट्रीयकरण के पश्चात् से बैंक देश के राजनेताओं का अपने राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति करने का एक औजार बन गए है। शाखा विस्तार से लेकर ऋण स्वीकार करने तक में छोटे-बड़े नेता अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। शाखा-

प्रबन्धकों को इस बात के लिए बाध्य किया जाता है कि वे बिना पर्याप्त जाँच-पड़ताल के ऋण स्वीकृत कर दें तथा बाद में वसूली न होने पर ऐसे व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही भी न करें।

ii. **सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति (Political Interference)** : सरकार बैंकों का इस्तेमाल अपने विभिन्न सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति में भी करती है। सरकार विभिन्न क्षेत्रों के उत्थान के लिए जो योजनाएँ बनाती है उनके क्रियान्वयन की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी बैंकों पर डाल दी जाती है। बैंकों को न चाहते हुए भी ऐसी योजनाओं के लिए ऋण स्वीकृत करने होते है जो आगे चलकर अत ऋण में बदल जाते हैं। यही कारण है कि बैंक धीरे-धीरे अलाभकारी संस्था बनते जाते हैं।

iii. **उद्देश्य-आधारित बैंकिंग :** आजादी प्राप्ति के साथ ही बैंकिंग कार्य में लगी संस्थाओं का उद्देश्य भी बदल गया। सरकार द्वारा बैंकों का उपयोग सामाजिक न्याय को प्राप्त करने में किया जाने लगा। इस कार्य को और गति वर्ष 1969 में 14 बड़े वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण से मिली। 1980 में शेष 6 बैंकों का भी राष्ट्रीयकरण कर लिया गया। इस राष्ट्रीयकरण का प्रमुख उद्देश्य यह रहा कि बैंकों द्वारा प्राथमिक क्षेत्र जिसमें कृषि प्रमुख थी, की लगातार उपेक्षा की जा रही थी। अब बैंकों के शाखा-विस्तार कार्यक्रम को लाभ-आधारित (Profit based) से बदलकर उद्देश्य-आधारित (objective based) बना दिया गया। उन्हें इस बात के लिए बाध्य किया गया कि वे आर्थिक लाभ को छोड़कर ऐसे स्थानों पर अपनी शाखाएँ खोलें जो सरकार को अपने सामाजिक न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करने में मदद दे सकें।

iv. **अनार्थिक शाखा विस्तार (Uneconomical Branch Expansion)** : सामाजिक न्याय बाँटने के चक्कर में इन बैंकों ने ऐसे स्थानों पर अपनी शाखाओं का विस्तार जो आर्थिक रूप से उपयोगी नहीं थी। इस रूप में बैंकों पर अनावश्यक आर्थिक दबाव पड़ते लगा। बैंकों को ऐसी शाखाएँ खोलने व चलाने के लिए बाध्य किया गया जो किसी भी दृष्टि से उपयोगी नहीं थी। उनमें पर्याप्त सुरक्षा का अभाव था। कर्मचारियों की लगातार कमी बनी रहती थी। इस वजह से वे अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफल रहती थी व अन्तत: अलाभकारी सिद्ध होती थी।

v. **कुशल कर्मचारियों का अभाव (Lack of Trained Personal)** अनियन्त्रित शाखा-विस्तार (Un-controlled Branch Expanssion) के चलते बैंकों में कुशल कर्मचारियों का अभाव होता चला गया। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों द्वारा लगातार इस बात की चेष्टा की जाती है कि वह शहरों में ही बने रहे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे काम पर ध्यान कम देते व अन्य क्रियाओं में लिप्त रहते थे। इस समस्या ने सशक्त कर्मचारी संगठनों को पनपने में मदद की। ये संगठन स्वस्थ उद्देश्यों के स्थान पर ऐसे मामलों को उठाते थे जो बैंकिंग प्रणाली में बाधा उत्पन्न करते थे।

vi. **प्रतिस्पर्धा का अभाव (Lack of Competition)** राष्ट्रीयकरण के पश्चात् से बैंकिंग प्रणाली में उचित प्रतिस्पर्धा का अभाव देखने को मिला है। ये बात सर्वविदित है कि किसी कार्य की सफलता के लिए स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का होना आवश्यक है। आज बैंकिंग कार्य में लगी राष्ट्रीयकृत संस्थाएँ केवल अपने उद्देश्यों को पूरा करने में लगी रहती हैं उनका लाभ से कोई लेना देना नहीं है। हमारे देश में बैंकों का विकास प्रतिस्पर्धी संस्था के रूप में न होकर सहायक संस्थाओं के रूप में हो रहा है। हमारे देश में अनेक ऐसे वित्तीय संस्थान है जिनमें प्रतिस्पर्धा का

नितान्त अभाव होने से उनकी कार्य कुशलता में लगातार गिरावट आ रही है। IDBI, ICICI, IFCI व UTI ये वे संस्थान है जो अलाभकारी बन चुके हैं। अब सरकार इन्हें या तो निजी क्षेत्रों में देने पर विचार कर रही है या फिर मोटी वित्तीय सहायता से जीवित रखने का प्रयास कर रही है।

vii. **आवश्यकता से अधिक नियन्त्रण (Excess Control)** : आजादी के पश्चात् से ही बैंकिंग प्रणाली पर सरकार ने अपना शिकंजा कसना प्रारम्भ कर दिया था। इस कार्य को गति बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् से और मिली है। आज भारत की समस्त बैंकिंग प्रणाली को दोहरे नियन्त्रण में काम करना पड़ता है। एक तरफ तो इसे रिजर्व बैंक के कड़े मार्ग दर्शन में काम करना होता है वहीं दूसरी ओर देश का वित्त मंत्रालय इन पर अपनी निगाह रखता है। इन संस्थाओं की समस्त कार्य-प्रणाली को सरकार व रिजर्व बैंक निर्धारित करते हैं। इन्हें कोई भी निर्णय लेने का अधिकार नहीं है।

viii. **आधुनिकीकरण का अभाव (Lack of Modernisation)** : एक लम्बे अन्तराल के बावजूद भी भारतीय बैंकिंग प्रणाली पूर्ण आधुनिकीकरण से दूर है। आज भी बैंकों की अधिकांश शाखाएं कम्प्यूटरीकरण के अभाव में कार्य कर रही हैं। ग्रामीण इलाकों में स्थापित की गई शाखाओं की तो स्थिति और गम्भीर है। ये शाखाएँ अधिकांश समय तो बिजली की कटौती से ग्रस्त रहती हैं। इन शाखाओं में यदि कम्प्यूटर लगे भी है तो सदैव नेट वर्किंग की समस्या बनी रहती है।

ix. **गैर-निष्पादीय सम्पत्तियों में बढ़ोतरी (increasing NPA’s)** : सरकार के निर्देशित उधार कार्यक्रम के कारण बैंकों की भारी राशि ऐसी परिसम्पत्तियों में फंस चुकी है जिनसे किसी भी प्रकार की वसूली हो पाना सम्मत नहीं है। ये परिसम्पत्तियाँ बैंकों के लिए समस्या बन चुकी हैं। इन परिसम्पत्तियों में लगी राशि को बैंक न तो अपने खातों में दिखा सकते हैं और न ही हटा सकते हैं। बैंकों को इस बात का भी अधिकार नहीं दिया गया कि वे इन सम्पत्तियों को बेचकर अपनी राशि वसूल कर सकें। यदि वे ऐसा करना भी चाहते हैं तो उन्हें एक लम्बी कानूनी प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ता है जिसमें अनावश्यक समय व संसाधनों का दुरूपयोग होता है।

x. **धीमे बैंकिंग सुधार (Slow Banking Reform) :** यद्यपि भारत में बैंकिंग-सुधारों (Banking Reform) का आरम्भ 1991 से ही हो चुका है। रिजर्व बैंक के पूर्व गर्वनर एम. नरसिम्हम की अध्यक्षता में बैंकिंग प्रणाली में सुधार हेतु सुझाव देने के लिए एक समिति का गठन किया गया। बाद में 1998 में भी इन्हीं की अध्यक्षता में पुन: एक समिति गठित की गई। किन्तु इनके द्वारा दिए गए सुझाव आज भी पूरी तरह से लागू नहीं किए जा सके हैं। इसी का परिणाम है कि भारतीय बैंकिंग प्रणाली अनेक समस्याओं से ग्रसित है।

xi. **भ्रष्टाचार (Corruption) :** भ्रष्टाचार के जहर से भारतीय बैंकिंग प्रणाली भी अछूती नहीं है। सन् 1991-92 से हर्षद मेहता शेयर घोटाले में बैंकों के बड़े अधिकारी लिप्त पाए गए थे। जिन पर कोई ठोस कार्यवाही नहीं हुई। यही प्रक्रिया सन् 2001-01 में यू.टी.आई. बैंक घोटाले के संबन्ध में देखने को मिली। इसमें भी बड़े बैंकरों की मदद से सामान्य जनता के धन का दुरूपयोग किया गया। आज बैंक का बड़े से बड़ा व छोटे से छोटा अधिकारी इस बात की चेष्टा करता है कि

किस प्रकार ऋण स्वीकृत करने, वसूली करने में भ्रष्टाचार किया जाए। उपर्युक्त समस्याओं के चलते ही भारतीय बैंकिंग प्रणाली व क्षेत्र में सुधारों की आवश्यकता महसूस की जाने लगी।

15.9 सारांश

किसी राष्ट्र में बैंकिंग प्रणाली वहीं भूमिका निभाती है जो शरीर में रक्त निभाता है। एक स्वस्थ बैंकिंग प्रणाली किसी राष्ट्र के विकास को गतिवान बनाती है। जिस प्रकार शरीर को स्वास्थ बनाए रखने के लिए समय-समय पर जाँच की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार बैंकिंग प्रणाली में भी सुधारों की आवश्यकता होती है। भारत में भी बैंक सुधार काफी लम्बे समय से अपेक्षित थे। इसकी परिणिति 1991 में रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर एम. नरसिम्हम की अध्यक्षता में गठित समिति के रूप में हो सकी। उपर्युक्त पाठ में हमने नरसिम्हम समिति के प्रथम व द्वितीय सुधारों के बारे में विस्तार से अध्ययन किया है।

5.10 शब्दावली

(i) राष्ट्रीयकरण- किसी संस्था का प्रबन्धन सरकार द्वारा अपने हाथ में लेने को राष्ट्रीयकरण कहते हैं। राष्ट्रीयकृत संगठन के 100 प्रतिशत शेयर सरकार के स्वामित्व के होते है।

(ii) निर्देशित - किसी के निर्देशों के तहत काम करने को निर्देशित कहते हैं।

(iii) बैंकिंग प्रणाली- एक राष्ट्र में होने वाली समस्त बैंकिंग क्रियाओं यथा बैंकों की स्थापना, प्रबन्धन, कार्य-योजना इत्यादि को ही बैंकिंग प्रणाली कहते हैं।

(iv) संदिग्ध ऋण - ऐसे ऋण जो डूबत खाते हो चुके हैं व जिनके प्राप्त होने की आशा नहीं है।

(v) ग्राम बैंक - ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष तौर पर स्थाण्ति बैंकों को ग्राम बैंक कहा गया है इनका प्रमुख कार्य पिछड़े व बैंक-शाखा रहित स्थानों में बैंकिंग सुविधा उपलब्ध करवाना है।

15.11 अभ्यास प्रश्न

(i) भारत में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के कारण बताइए।

(ii) 1991 में गठित एम. नरसिम्हम समिति द्वारा बैंकिंग ढाँचे की संरचना में सुधार के बारे में की गई सिफारिशों को बताइए।

(iii) निर्देशित आधार कार्यक्रम से आप क्या समझते हैं।

(iv) राष्ट्रीय आवास बैंक (NBH) के बारे में आप क्या जानते हैं।

15.12 सन्दर्भ ग्रंथ

(i) रुद्रदत्त एवं सुन्दरम् - भारतीय अर्थव्यवस्था

(ii) बैंकिंग एवं वित्त- गुप्ता एवं रूगमी

इकाई 16

बैंकिंग धोखा-धड़ी-साईबर धोखा प्रकार एवं उपचार, कानूनी प्रावधान इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 धोखाधडी / धोखाधडी / कपट का अर्थ एव परिभाषा

16.3 बैंक धोखाधडी / कपट का अर्थ

16.4 बैंक धोखाधडी / कपट का क्षेत्र

16.5 बैंक धोखाधडी / कपट के कारण एवं धोखाधडी / कपट रोकने के उपाय सुझाव

16.6 साइबर धोखाधडी / कपट

16.7 बैंक धोखाधडी / कपट का वर्गीकरण व सुरक्षा के उपाय

16.8 भारत के चर्चित बैंक घोटाले

16.9 सारांश

16.10 शब्दावली

16.11 अभ्यास प्रश्न

16.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

16.0 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन करने के पश्चात् छात्र समझ पाएंगे -

- धोखाधडी का अर्थ एवं परिभाषा।
- बैंक धोखाधड़ी का अर्थ एवं उसका क्षेत्र।
- बैंक धोखाधड़ी के कारण एवं रोकने के उपाय
- साइबर धोखा के प्रकार एवं सुरक्षा के उपाय।
- भारत में चर्चित बैंक घोटाले।

16.1 प्रस्तावना

बैंक किसी देश में वित्तीय क्षेत्र को गति प्रदान करते हैं। सम्पूर्ण वित्तीय क्षेत्र की गतिविधियों का संचालन बैंकों द्वारा किया जाता है। बैंक देश की छोटी-छोटी बचतों को एकत्र कर पूँजी निर्माण का कार्य करते हैं इस पूँजी का उपयोग कृषि, उद्योग तथा सेवा क्षेत्र को उधार देने के लिए किया जाता है। उक्त सभी क्षेत्रों का विकास देश के आर्थिक विकास को गति प्रदान करता है। ऋण के रूप में प्राप्त धनराशि का विनियोजन उत्पादन वृद्धि हेतु किया जाता है, उत्पादन के बढने से प्रत्यक्ष रूप से रोजगार में वृद्धि होती है, आय में वृद्धि होती है और लोगों के जीवन स्तर में परिवर्तन होने लगते हैं।

देश में सामाजिक बैंकिंग का विकास सन् 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के साथ ही प्रारंभ हो गया था। सरकार ने छोटे बैंकों की कार्य प्रणाली से सम्बन्धित कमियाँ दूर करने तथा जनता का बैंकों में विश्वास उत्पन्न करने हेतु 19 जुलाई 1969 में 14 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया। एक दशक के पश्चात् 15 अप्रेल 1980 को पुन: छ: बड़े बैंकों जिनकी जमाएँ 200 करोड़ रूपये से अधिक थी का राष्ट्रीयकरण किया गया। तत्पश्चात् 4 सितम्बर 1993 को सरकार ने न्यू बैक ऑफ इण्डिया का विलय पंजाब नेशनल बैंक में कर दिया, इससे राष्ट्रीयकृत बैंकों की संख्या 20 से घटकर 19 रह गयी। वर्तमान में भारत में 19 राष्ट्रीय बैंकों के साथ सहकारी बैंक, ग्रामीण बैंक, भूमिविकास बैंक, निजी बैक, विदेशी बैंक एवं अनेक लाख समितियाँ ऋण उपलब्ध कराने का कार्य कर रहे हैं। बैंकों का व्यवसाय निरन्तर बढता जा रहा है। इसी के साथ बैंकों में होने वाले धोखाधडी'कपट तथा धोखाधड़ी भी निरन्तर बढती जा रही हैं। धोखाधड़ी करने वाले व्यक्ति धोखा करने हेतु नयी से नयी विधियो एवं तकनीकों का सहारा लेते हैं। बैंकों में धोखाधड़ी / कपट या धोखा कर्मचारियों, अधिकारियों के अनुचित व्यवहार, गलत प्रमाणन, अनाधिकृत व्यक्तियों को ऋण स्वीकृति, गलत लेखा प्रविष्टी, बाहरी व्यक्तियों के हस्तक्षेप आदि से हो सकता है।

16.2 धोखाधडी / कपट का अर्थ एवं परिभाषा

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 17 के अनुसार "जब अनुबन्ध के एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को धोखा देने के उद्देश्य से निम्नलिखित कार्यों में से कोई कार्य करता है तो उसके द्वारा धोखाधडी / कपट किया हु आ माना जाता है

(i) किसी असत्य बात का सुझाव, जिसकी सच्चाई में सुझाव देने वाले का भी विश्वास नहीं है।

(ii) किसी तथ्य का ज्ञान करना या विश्वास रखने वाले व्यक्ति द्वारा उसे सक्रिय रूप से छिपाना।

(iii) ऐसा वचन जिसे पूरा करने का इरादा न हो।

(iv) धोखा देने के उद्देश्य से किया गया कोई अन्य कार्य।

(v) कोई ऐसा कार्य जिसे विधि (कानून) द्वारा धोखाधड़ी कपटपूर्ण घोषित किया गया हो।

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 17 की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि धोखाधड़ी कपट में असत्य बात का सुझाव, तथ्यों का सक्रिय छुपाव, कार्य पूरा न करने के उद्देश्य से किया गया कार्य तथा वह कार्य जो विधि द्वारा धोखाधड़ी / कपटमय घोषित किया गया है; को सम्मिलित किया जा सकता है। यह धोखाधड़ी / कपट या धोखाधड़ी स्वयं पक्षकार द्वारा या उसके प्रतिनिधि द्वारा किया जा सकता है। सामान्य अर्थ में धोखाधडी / कपट का अभिप्राय उस बेईमानी पूर्ण कार्य से है जिसका उद्देश्य दूसरे पक्षकार को धोखा देकर लाभ प्राप्त करना हो।

भारटन के शब्दों में, "उचित व्यवहारों के लिए नियमों के उल्लंघन को धोखाधडी / कपट कहा जा सकता है।"

स्ट्राऊड के शब्दकोष के अनुसार, कुछ बेईमानी एवं नैतिक रूप से गलती, जो अवैधता से भिन्न है, धोखाधड़ी / कपट है। "

इन परिभाषाओं में ईमानदारी का अभाव, चालाकी, धोखा या ऐसी भूल जो वैधानिक कर्त्तव्य का खण्डन करती हो धोखाधड़ी / कपट में शामिल किया गया है। दूसरे शब्दों में मिथ्या वर्णन, जानबूझकर कर गलती करना, जानते हुए गलत कार्य करना धोखाधड़ी / कपट है।

16.3 बैंक धोखाधड़ी कपट का अर्थ

बैंक धोखाधडी / कपट का आशय है बैंक के अधिकारियों, कर्मचारियों या दोनों की मिली भगत से बैंकिंग नियमों के विरूद्ध कार्य करके बैंक को हानि पहुँचाने है। बैंक की हानि लूटपाट डकैती, चोरी, ठगी आदि से और भी बढ़ जाती है। कई बार अनाधिकृत विधि से गलत लोगों को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से ऋण सुविधाएँ प्रदान कर दी जाती हैं। कभी कभी नकली या घटिया वस्तुओं का अधिक मूल्य दिखाकर जमानत के रूप में बैंक में रख दिया जाता है और ऋण ले लिया जाता है। बैंक स्टॉफ की अज्ञानता का लाभ उठाकर अनेक बैंकों से एक ही वस्तु पर ऋण प्राप्त कर लिया जाता है। जो वस्तुएँ जमानत के रूप में बैंक में रखी जाती है उन में अप्रचलित वस्तुओं को अच्छे स्टॉक में मिलाकर अधिक मात्रा में ऋण प्राप्त कर लिया जाता है। वस्तुओं के वजन में भी कमी पाया जाना और बैंक में गलत वजन दिखाना तो सामान्य सी बात है। कई प्रकार के खाते खोलकर जाली हस्ताक्षर करके, झूठे प्रमाणकर्ता या गवाह प्रस्तुत करके, जाली चैक या ड्राफ्ट जारी करके भी धोखा या धोखाधड़ी / कपट किया जा सकता है। बहुत बड़ी संख्या में बैंक ड्राफ्ट, डाक स्थानान्तरण या नेट स्थानान्तरण द्वारा बैंक धोखाधड़ी / कपट किये जाते हैं। बैंक धोखाधडी / कपट में चार मुख्य तत्व उत्तरदायी होते हैं

(अ) बैंक स्टाफ का बाहरी लोगों के साथ अत्यधिक मेलजोल।

(ब) बैंक स्टाफ द्वारा मार्गदर्शी सिद्धान्तों एवं निर्देशों का पालन न करना।

(स) बाह्य तत्वों द्वारा चैकों के साथ छेड़छाड़, ड्राफट में गलत रकम का इन्द्राज आदि के द्वारा धोखाधड़ी / कपट करना।

(द) बैंक के उच्चाधिकारियों तथा व्यवसायियों के बीच बढ़ते सम्बन्ध तथा नियमों को ताक पर रखकर कार्य करना।

16.4 बैंक में धोखाधडी कपट या धोखाधड़ी का क्षेत्र

रिजर्व बैंक के निर्देशानुसार बैंकों में धोखाधड़ी क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। बैंकिंग विकास तथा तकनीकी विकास दोनों में अनेक क्षेत्र ऐसे होते हैं जहाँ धोखाधड़ी / कपट / धोखाधड़ी की जा सकती है यह धोखाधडी / कपट या धोखाधड़ी बैंक के अधिकारियों, कर्मचारियों द्वारा गलत ऋण जारी करना तथा प्रमाण पत्रों में हेराफेरी आदि के कारण हो सकती है। बैंक में विदेशी विनिमय व्यवहारों में अनियमितता के कारण भी धोखाधड़ी हो सकती है। ऋण व्यवहारों में गलत ऋण चुकाने के कारण भी बैंक को हानि उठानी पड़ती है। बैंक में यदि नकद राशि की सदैव कमी बनी रहती है तो बैंक की कार्य प्रणाली पर सन्देह उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार से कहा जा सकता हैं कि बैंकों में धोखाधड़ी का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होता जा रहा है। वे क्षेत्र जिनमें बैंकों में धोखाधडी / कपट या धोखाधड़ी की सम्भावना होती है उनका विवेचन निम्नलिखित है :-

(i) **विश्वास की कमी** : जो बैंक अधिकारी एवं कर्मचारी विश्वास के योग्य नहीं होते हैं उन्हें कभी भी बैंकों में विश्वसनीय स्थानों पर या महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए।

प्राय: सभी बैंकों में इस प्रकार के लोग पाये जाते हैं उनकी एक सूची तैयार की जानी चाहिए। ये व्यक्ति अपने कार्यों से बैंकों में धोखाधड़ी करके बैंक की छवि को खराब करते हैं और ग्राहकों के साथ धोखा करते हैं। ये व्यक्ति बैंक के कोषों का दुरुपयोग कर सकते हैं।

(ii) **प्रमाणपत्रों तथा पूर्व लेखों के साथ छेड़छाड़ :** बैंक के कर्मचारी या अधिकारी प्रमाणपत्रों या पूर्व लेखों के साथ छेड़छाड़ कर बैंक जमा से तथा ग्राहकों से धोखा करते हैं। वे ग्राहकों द्वारा जमा किये गये धन को खाते में जमा न करके अपने व्यक्तिगत कार्यों में उपयोग करते हैं। यह कार्य भी धोखाधडी के क्षेत्र में शामिल किया जाता है।

(iii) **वाउचर के साथ धोखाधड़ी / कपट या धोखाधड़ी :** बैंक ग्राहकों द्वारा लेन देन सम्बन्धी अनेक वाउचर लगाये जाते हैं। व्यापार सम्बन्धी अनेक प्रमाणपत्र बैंक में जमा कराये जाते हैं। बैंक का कोई कर्मचारी या अधिकारी इन वाउचरों की राशि में परिवर्तन कर ग्राहकों के साथ धोखा कर सकता है। ऋण देते समय झूठे प्रमाण पत्र तैयार करवा कर गलत लोगों को ऋण दिलाया जा सकता है और अंततः बैंक को हानि उठानी पड़ सकती है।

(iv) **निर्देशों की अनुपालना न करना :** बैंक रिजर्व बैंक द्वारा जारी निर्देशों की अनुपालना नहीं करते हैं। इन निर्देशों की अनदेखी करते हुए यदि कार्य करते हैं तो यह कृत्य भी बैंक धोखाधड़ी के क्षेत्र में आता है।

(v) **ऋण अधिकारियों द्वारा अनाधिकृत ऋण सुविधाओं का विस्तार करना :** ऋण अधिकारी यदि नियमों कानूनों की अवहेलना करते हुए क्या सुविधाओं का विस्तार करते हैं। ग्राहकों की आर्थिक स्थिति की जाँच किये बिना, जमानत सम्पत्ति का सही मूल्यांकन किये बिना यदि बैंक अधिकारी द्वारा ऋण स्वीकृत किये जाते हैं तो यह भी बैंक धोखाधड़ी का ही क्षेत्र है। ये ऋण अपने परिवार के सदस्यों, मित्रों, रिश्तेदारों या राजनेताओं को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से स्वीकृत किये जा सकते हैं।

(vi) **माँग ड्राफ्ट में धोखाधड़ी तथा जाली ड्राफट जारी करना** : बैंक को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से बैंक के अधिकारी कभी माँग ड्राफ्ट जारी कर देते है और उनका हिसाब नहीं रखते हैं। दूसरा ड्राफ्ट पुस्तक को स्कैन करके फर्जी ड्राफ्ट पुस्तक तैयार की जा सकती है और बैंक एवं ग्राहकों के साथ धोखा किया जा सकता है।

(vii) **नकद तरलता की कमी :** यदि बैंक में सदैव नकद धन राशि की कमी बनी रहती है, तो यह भी बैंक मैनेजर तथा ग्राहकों के लिए चिन्ता का विषय है। नकद लेन देन का कार्य जिम्मेदार तथा विश्वास योग्य व्यक्ति को ही सौंपा जाना चाहिए। नकद राशि लेन देन कक्ष तथा स्ट्रांग कक्ष में कोई भी अनाधिकृत व्यक्ति प्रवेश न कर सके, ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए अन्यथा बैंक में धोखाधडी / कपट या धोखाधड़ी की सम्भावना बढ़ जाती है।

(viii) **गलत खातों में प्रविष्टी** : यदि बैंक के कर्मचारी तथा अधिकारी दोनों के मन में बेइमानी आ जाती हे तो वे ऋण भुगतानों की गलत खातों में प्रविष्टी करके उस रकम को स्वयं निकाल सकते हैं तथा ग्राहक के ऋण खाते में राशि में कोई कमी नहीं होती है। ग्राहक यदि जागरूक नहीं है तो वर्षा तक यह रकम उसके खाते से धोखाधडी करके निकाली जा सकती है।

16.5 बैंक धोखाधड़ी / कपट के कारण एवं धोखाधड़ी / कपट रोकने के उपाय / सुझाव

बैंक धोखाधड़ी / कपट तीन कारणों से हो सकता है। पहला बाहरी व्यक्तियों द्वारा बैंक धोखाधड़ी / कपट दूसरा, बैंक स्टाफ द्वारा किए गया धोखाधडी / कपट तीसरा बैंक कर्मचारियों तथा बाहरी व्यक्तियों की मिली भगत से किया गया धोखाधडी कपट। उपरोक्त तीनों प्रकार के धोखाधडी / कपट तथा धोखाधडी / कपट रोकने के उपायों का वर्णन निम्नलिखित है :

(1) बाहरी व्यक्तियों द्वारा किए जाने धोखाधडी / कपट	धोखाधड़ी / कपट रोकने के उपाय / सुझाव वाले
(i) बेनामी खाते खोलना	
(1) स्थायी खातेदार द्वारा गलत परिचय करवाना न देना	(1) परिचय कराने वाला व्यक्ति बैंक खातेदार होना चाहिए।
(2) बैंक कर्मचारियों द्वारा ध्यान न देना	(2) बैंक कर्मचारी का दायित्व हे कि वह अपने दायित्व निर्वाह भली भाँति करे यदि गलती हो जाती है तो इसकी सूचना उच्चाधिकारी को देनी चाहिए।
(3) खाता खोलने वाले व्यक्ति द्वारा मन गलत कहानी गढ़ना	(3) बैंक कर्मचारी को खाता खोलने वाले व्यक्ति कि फोटो तथा परिचय प्रमाण पत्रों कि सहायता से उस व्यक्ति का सत्यापन करना चाहिए।
(1) गलत तरीकों से चैक बुक तथा अन्य प्रलेख प्राप्त करना	(1) अधिकृत व्यक्ति को ही चैक बुक, ड्राफ्ट व अन्य प्रलेख सौंपें जायें
(2) चैक तथा ड्राफ्ट में तारीख, नाम तथा पाने वाले व्यक्ति के नाम एवं राशि से छेड़छाड़ करना	(2) इस सम्बन्ध में बैंक कर्मचारी द्वारा भुगतान करने समय भुगतान हस्ताक्षर का प्रमाणीकरण आवश्यक है।
(1) बड़ी रकम निकालते समय एवं खाता बन्द करते समय की गई धोखाधड़ी	(1) एक मुश्त बड़ी रकम का भुगतान करते समय बैंक बन्द करते समय कर्मचारी को भुगतान प्राप्तकर्ता के सम्बन्ध में पूरी जानकारी कर लेनी चाहिए।
(2) प्रारम्भिक लेनदेन में बैंक कर्मचारियों का विश्वास जीतने के बाद गलत चैक व ड्राफ्टों से एक मुश्त रकम निकालना	(2) राशि भुगतान करते समय उस खाते में किए गए लेनदेन कि सत्यता कि जाँच कर लेनी चाहिए।
(iv) विनिमय बिलों को झूठी परिवहन रसीदों के आधार पर बट्टे पर भुनाना तथा रसीद का वापिस आना	(i) यह सुविधा केवल पर्याप्त साख रखने वाले व्यक्ति को ही मिलनी चाहिए। भारतीय बैंकिंग एसोसिएशन द्वारा अधिकृत

	संचालकों कि नकद स्थानांतरण रसीदों को ही स्वीकार करना चाहिए
(v) बेकार वस्तुओं के आधार पर बेईमान व्यापारियों तथा उद्योग पतियों द्वारा ऋण प्राप्त कर लेना	(ii) बैंक समय-समय पर अधिकारियों द्वारा जमानत के रूप में रखे गये स्टॉक का निरीक्षण एवं जाँच पड़ताल करनी चाहिए।
(vi) जमानत के रूप में मकान या जमीन के नकली कागजातों को चतुराई से प्रस्तुत करना	(iii) जमीन या मकान के कागजातों की योग्य वकील द्वारा जाँच पड़ताल की जानी चाहिए तथा रजिस्ट्रार के कार्यालय से कागजातों का प्रमाणन कराया जाना चाहिए।
(vii) बेईमान व्यक्तियों द्वारा बैंक में बड़ी जमा राशियाँ जमा कराने या स्थायी जमा कराने का वायदा करना ताकि उनकी स्वयं की जमा राशि पर ऋण सुविधा मिल सके।	(iv) ऐसी जमाएँ स्वीकार करते समय बैंक अधिकारियों को सावधान रहना चाहिए और उस व्यक्ति जो बैंक में धन जमा कराता है। यह धन कैसे आ रहा है। दूसरा उसे ऋण सुविधाएँ देते सम्पूर्ण जाँच पड़ताल कर लेनी चाहिए।
(2) बैंक कर्मचारियों द्वारा किया जाने वाला धोखाधड़ी/कपट	**धोखाधडी/कपट रोकने के उपाय/सुझाव**
(अ) बैंकिंग उद्योग आन्तरिक धोखाधडी कपट से वंचित नहीं है प्राय सबसे ज्यादा विश्वसनीय कर्मचारी ही धोखा या धोखाधडी / कपट करता है या उस धोखाधडी /कपट में मिल होता है।	(अ) कर्मचारी के कार्यभार में समय समय पर बदलाव करना चाहिए।
(ब) किसी एक शाखा में आवश्यकता से अधिक नकद जमा कोष अनावश्यक रूप से गलत विधियों से पैसा निकालने हेतु प्रेरित करते हैं।	(ब) एक सौदे में दो कर्मचारी या दो से अधिक कर्मचारी शामिल होने चाहिए।
(स)समाशोधन हेतु बैंक शाखा में आने वालेचैक सम्बन्धित खाते में डेबिट न करना व उन्हें नष्ट कर देना धोखाधडी कपट में शामिलकिया जाता है।	(स)आन्तरिक तथा बाह्य अंकेक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये।
(द)सावधि जमा का भुगतान होने के बाद बैंक द्वारा सावधि जमा रसीदों को नष्ट न करके बैंक कर्मचारियों द्वारा ऋण लेकर धोखाधडी / कपट किया जाता है।	(द) सावधि जमा रसीदों को व्यक्ति सुरक्षा में रखा जाना उस पर चाहिए और यदि ग्राहक उस पर ऋण लेता है तो उस ऋण का इन्द्रराज सम्बन्धित पुस्तकों में अवश्य किया जाना चाहिए।
(य)लम्बी अवधि से बन्द पड़े खातों से धोखाधड़ी / कपट द्वारा पैसा निकाल लिया जाता है।	(य)1. ऐसे खातों की एक अलग लेजर में प्रविष्टी कर प्रबन्धन के पास सुरक्षित रख जाना चाहिए।

	(2) यदि ऐसे खातों में कोई लेनदेन होता है तो उसे अधिकृत व्यक्ति या प्रबन्धक द्वारा ही किया जाना चाहिए। (3) खाते में व्यवहार करते समय संचालनकर्ता की प्रमाणिकता सत्यापित की जानी चाहिए। (4) समय-समय पर ऐसे खातों की जाँच कर धोखाधडी / कपट को रोका जा सकता है।
(र)पास बुक में इन्द्राज करते समय बैंक कर्मचारियों द्वारा धोखाधडी / कपटपूर्ण तरीकों से धन निकालना भी धोखाधडी / कपट है।	(र) पास बुकों में प्रविष्टी कराते समय ग्राहक को पूरा ध्यान रखना चाहिए तथा पास बुक को बैंक से तुरन्त प्राप्त कर लेना चाहिए।
(ल)प्रमाणित हस्ताक्षरों के साथ छेड़छाड़ कर पैसा निकालना भी धोखाधडी कपट है।	(ल)प्रमाणित हस्ताक्षर कार्ड अधिकृत व्यक्ति की सुरक्षा में रखे जाने चाहिए ताकि उन में होने वाली छेड़छाड़ को रोका जा सके।
(ब)बैंक रसीदों के साथ छेड़छाड़ कर, धोखाधडी / कपट द्वारा धन निकालना भी धोखा	(ब)1. अधिकृत व्यक्ति द्वारा रसीदों एवं रजिस्टर की नित्य जाँच करना; (2) रसीदों इत्यादि को ढंग से सिल कर, तारीखों के आधार पर पूर्ण सुरक्षा में रखा जाना चाहिए।
(श)बेनामी साख स्वीकृत कर खातों पैसा निकालना तथा खातों का धोखाधडी / कपट पूर्ण मिलान कर देना।	(श) बैंक अधिकारियों को चाहिए कि से वे खातों का समय-समय पर मिलान करते रहे तथा गनती पाए जाने पर तुरन्त निस्तारण करने की व्यवस्था करे।
(3) बाहरी व्यक्तियों व बैंक कर्मचारियों की मिली धोखाधडी / कपट	(3) धोखाधड़ी / कपट रोकने के उपाय / भगत से सुझाव
(i) बैंक कर्मचारी व संदिग्ध व्यक्ति मिलकर झूठे दस्तावेजों की सहायता से बेनामी खाते खोल लेते हैं तत्पश्चात् इन खातों में झूठी साख स्वीकृत कर पैसा निकाल लिया जाता है।	(i) (अ) खाता खोलने वाले व्यक्ति के परिचय की सत्यता की जाँच की जानी चाहिए।
	(ब)बड़ी राशि के सौदे, ऐसे खातों को खोलने के तुरन्त बाद यदि किये जाते हैं तो उनकी पूर्ण जाँच होनी चाहिए। (स)इन खातों में संग्रह हेतु जमा डिविडेन्ड एवं ब्याज वारन्ट की कड़ाई से जाँच होनी चाहिए।
(ii) बैंक कर्मचारियों द्वारा बाहय व्यक्तियों को	(ii) ऐसे मामलों में अधिकृत व्यक्ति को ही

गलत तरीकों से पहचान कर विभिन्न खातों से भुगतान कर दिया जाता है। जबकि वह व्यक्ति वास्तव में खाता धारक नहीं होता है।	भुगतान किया जाना चाहिए।
(iii) बैंक कर्मचारी प्राय: बाहरीव्यक्तियों से मिलकर झूठे बैंकड्राफ्ट बनाकर धोखाधड़ी / कपट करते हैं।	(iii) प्राय: ऐसे तरीकों का उचन्ती खातों में से धन निकालने के लिए उपयोग में लाया जाता है। अत: उच्चाधिकारियों को इन खातों निरन्तर जाँच करते हुए धोखाधडी /कपट को रोका जाना चाहिए।
(iv) बैंक अधिकारियों द्वारा जान बूझकर जाली या झूठे विनिमय बिलों का बट्टा कर दिया जाता है।	(iv) विनियम बिलों की सत्यता एवं प्रमाणिकता की पूर्ण जाँच होनी चाहिए।
(v) एक पार्टी के द्वारा एक ही प्रतिभूति के आधार पर विभिन्न योजनाओं में ऋण स्वीकृत कर दिये जाते हैं।	(v) इस प्रकार के व्यवहार का पता चलने के बाद विभिन्न वित्तीय व्यवहारों की जाँच कर नियन्त्रण किया जा सकता है।
(vi) जमानत में रखे जाने वाले सोना, जेवरात, जमीन आदि का सही मूल्यांकन नहीं किया जाता है।	(vi) अधिकारी का दायित्व है कि वह ऋण खातों की सही देखरेख करे तथा सोना, जेवरात,जमीन आदि जमानत का सही मूल्यांकन करे।
(vii) गलत दस्तावेजों के आधार ऋण स्वीकृत किये जाते हैं।	(vii) दस्तावेजों का ठीक प्रकार परीक्षण किया जाना चाहिये।
(viii) अनिवासी भारतीयों के पर्याप्त प्रमाणपत्रों के अभाव में खाते खोलना तथा कृत्रिम नाम से खाते खोल लिये जाते हैं तथा विभिन्न विधियों से उनका धन जमा कर	(viii) रिजर्व बैंक द्वारा इस सम्बन्ध में समय-समय पर जारी किये गये दिशा-निर्देशों का पालन किया जाना चाहिए।

16.6 साईबर अपराध या साइबर धोखाधड़ी / कपट

आधुनिक विश्व, तकनीकी के क्षेत्र में निरंतर विकास एवं प्रगति के पाठ पथ अग्रसर है। तकनीकी का प्रयोग बैंकिंग कार्य में निरन्तर बढ़ता जा रहा है। कम्प्यूटर ने बैंकिंग कार्य प्रणाली की काया पलट दी है। कम्प्यूटर की सहायता से बैंक में खातों का शेष, किये गये भुगतान, जमा राशि का स्थानान्तरण विदेशों में धन का स्थानान्तरण, विदेशी भुगतान एवं अन्य भुगतानों को घर बैठे ही किया जा सकता है। बैंकों ने अपने ग्राहकों को यह सुविधा जिसे नैट बैंकिंग कहा जाता है। जिससे घर से वे अपने खाते में सभी प्रकार के लेन देन कर लेते हैं प्रदान की है। उन्हें बैंक जाने की आवश्यकता नहीं रहती है। वे ग्राहक जिनके कार्य के घण्टे सुबह 8 बजे से रात के 8 या 9 बजे तक रहते हैं, नैट बैंकिंग उनके लिए वरदान है। यह तो सर्वविदित है कि कम्प्यूटर का

इतिहास भारत में अधिक पुराना नहीं है लेकिन साइबर धोखाधड़ी / कपट का विकास कम्प्यूटर के विकास के साथ-साथ हुआ है। किसी भी नयी तकनीक का प्रयोग अच्छे तथा बुरे दोनों कार्यों के लिए किया जाता है। कम्प्यूटर तथा सूचना प्रौधोगिकी दोनों ही क्षेत्र धोखाधडी? कपट का शिकार बन चुके हैं। यदि कम्प्यूटर के प्रयोग में कहीं अच्छाई है तो कहीं उस के द्वारा धोखे से अनेक अपराध किये जा रहे हैं। अधिकांश व्यक्तियों का उद्देश्य कम्प्यूटर की सहायता से काम को सरल बनाना है जबकि कुछ लोग इसका उपयोग गलत व अवैधानिक कार्यों तथा नैतिकता के विरूद्ध कर रहे हैं। कम्प्यूटर की सहायता से किये जाने वाले अपराध साइबर धोखाधड़ी / कपट कहलाते हैं। साइबर धोखाधडी / कपट कई प्रकार के होते हैं। कम्प्यूटर तकनीक से जुडा हुआ धोखाधड़ी / कपट जो पीड़ित को नुकसान पहुँचा सकता हैं। इस प्रक्रिया में धोखाधड़ी / कपट करने वाला व्यक्ति निम्न कार्य करता

(i) कम्प्यूटर को काम करने से रोकना
(ii) इसके कार्य संचालन को धीमा करना
(iii) विभिन्न आँकडों या तथ्यों को खराब कर देना
(iv) बिना अनुमति के कम्प्यूटर तथ्यों को कॉपी करना
(v) झूठे डेबिट तथा क्रेडिट कार्ड बनाकर खाते में से धन निकालना.
(vi) कम्प्यूटर में वायरस डाल कर सभी फाइलों को खराब करना

(i) **कम्प्यूटर को काम करने से रोकना :** जब भी ग्राहक बैंक में अपने खाते में व्यवहार हेतु पास बुक में प्रविष्टी हेतु बैंक में आता है तो बैंक कर्मचारी हमेशा यह कह कर ग्राहक को वापिस कर देते हैं कि बैंक का कम्प्यूटर खराब है आज कोई व्यवहार सम्भव नहीं है। यदि वह पास बुक में प्रविष्टियाँ कराने हेतु बैंक आता है ता उसे यह कहकर लौटा दिया जाता है कि प्रिन्टर खराब है आज प्रविष्टी सम्भव नहीं है। इस प्रकार खाते में होने वाली बेइमानी को वह नहीं समझ पाता है तथा बैंक कर्मचारी तथा अधिकारी उस राशि का उपयोग व्यक्तिगत कार्यों के लिए करते रहते है।

(ii) **कम्प्यूटर के कार्य संचालन को धीमा करना :** बैंक कर्मचारी ग्राहक के लेन देनों की गतिविधि को धीमा कर देते हैं और तकनीकी खराबी प्रदर्शित कर समय पर भुगतान नहीं करने है या झूठे भुगतान दिखाये जाते हैं जो वास्तव में किये ही नहीं जाते हैं।

(iii) **ग्राहक से सम्बन्धित विभिन्न आँकड़ों तथा तथ्यों को खराब कर देना :** कई बार बैंक कर्मचारियों या अन्य बाहरी व्यक्तियों द्वारा ग्राहक के खाते से छेड़छाड़ कर उसके खाते के आँकड़ों को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया जाता है ताकि भूतकाल में हुए लेन देनों की कोई सूचना प्राप्त न की जा सके।

(iv) **बिना अनुमति के कम्प्यूटर तथ्यों की कॉपी करना :** बैंक कर्मचारियों के पास कम्प्यूटर में ग्राहकों व संस्थाओं के खातों की जानकारी रहती है वे इस सारी जानकारी को बिना अनुमति प्राप्त किये कापी कर लेते हैं तथा प्रतिद्वन्दियों को सारी जानकारी उपलब्ध करवा दी जाती है। यह सभी सूचनाएँ ग्राहकों तथा संस्थाओं को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से दूसरों को दे दी जाती है।

(v) **झूठे डेबिट तथा क्रेडिट कार्ड तैयार करना :** अनेक बार बैंक कर्मचारी ग्राहकों के डेबिट तथा क्रेडिट कार्डों की दूसरी प्रति तैयार कर लेते हैं तथा बाद में उनका प्रयोग ग्राहकों के खातों में से धन निकालने में किया जाता है। अनेक बार एटीएम में छूट गये डेबिट कार्ड व क्रेडिट कार्ड को

बाहर निकालते समय बैंक कर्मचारियों द्वारा उक्त खाते से उस राशि का धोखाधड़ी / कपट पूर्ण तरीके से आहरण कर लिया जाता है।

(vi) **कम्प्यूटर में वायरस डालकर सभी फाइलों को खराब कर देना :** प्राय: यह देखने में आता है कि बैंक कर्मचारी या अन्य बाहरी व्यक्ति धोखाधड़ी / कपटपूर्ण विधि से बैंक के कम्प्यूटर में रखी गयी सभी फाइलों को वायरस डालकर खराब कर देते हैं। जिससे पूर्व में रखी गयी सभी सूचनाएँ नष्ट हो जाती हैं ओर ग्राहक को यह कहकर टाल दिया जाता है कि पूर्व सूचना उपलब्ध नहीं है।

(vii) **पासवर्ड का पता लगा कर ग्राहक के खाते से छेड़छाड़ करना :** कई बार बैंक कर्मचारी ग्राहक से नेट बैंकिंग हेतु जारी किये गये पासवर्ड जान लेते हैं तथा इसके पश्चात् उक्त खाते में धोखाधडी / कपटपूर्ण तरीके से धन का आहरण कर लेते हैं।

16.7 बैंक धोखाधडी / कपट का वर्गीकरण तथा सुरक्षा के उपाय

बैंकों के कार्यों का निरन्तर विस्तार हो रहा है उनका व्यवसाय बहुत तेजी से बढ़ रहा है इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि उनकी साख तथा व्यवस्था पर धब्बा न लगे ओर निरीक्षण तथा नियन्त्रण नियमित रूप से हो। सभी के लिए बैंक की विचारधारा विकसित हो चुकी है। बैंकों के समक्ष सामाजिक दायित्व को पूरा करने की अनेक चुनौतियाँ है तथा साथ ही अपने अस्तित्व को बनाये रखने की चुनौती भी विद्यमान है। दोनों चुनौतियों का सामना करते हुए बैंकिंग व्यवस्था को सफल बनाना बैंकों का उद्देश्य है।

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के द्वारा भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों के आधार पर बैंक धोखाधड़ी / कपटों का वर्गीकरण किया गया है तथा उनसे सम्बन्धित धाराओं तथा उन धोखाधडी / कपटों को रोकने के सुझाव भी दिये गये हैं। भारतीय दण्ड संहिता के अनुसार बैंक धोखाधडी / कपटों का वर्गीकरण इस प्रकार है

(i) ठगना या बेइमानी
(ii) गलत तरीके से सम्पत्ति को हथियाना व उसका दुरूपयोग करना।
(iii) विश्वास भंग करना
(iv) जालसाजी करना
(v) झूठे खाते तैयार करना या खातों में गोलमाल करना।
(vi) चोरी
(vii) धमका कर धन निकालना
(viii) सेंधमारी करना
(ix) लूट पाट एवं डकैती
(x) अपराधिक मिलीभगत
(xi) रिश्वत एवं भ्रष्टाचार
(xii) करेन्सी नोट तथा बैंक नोट से सम्बन्धित अपराध

(i) **ठगना :** यदि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को बेइमानी या धोखाधड़ी / कपटपूर्ण तरीके से किसी सम्पत्ति को सौंपता है या जानबूझकर कर धोखा या धोखाधड़ी / कपट करता है या भूल से

धोखाधड़ी / कपट हो जाता है जबकि वह नहीं करना चाहता था इससे सामने वाले व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक, प्रतिष्ठा या सम्पत्ति की हानि होती है इसे ठगी कहा जाता है। तथ्यों को बेइमानी से सक्रिय रूप से छुपाना या ठगी करना भारतीय दंड संहिता की धारा 415 के दायरे में आता है। धारा 416 से 424 में ठगी के विभिन्न तरीकों को समझाया गया हैं तथा भारतीय दंड संहिता में धारा 417 से 420 में संज्ञान अपराध को स्पष्ट किया गया है।

जो व्यक्ति ठगी करता है कानून के अनुसार उसे 1 साल तक की सजा दी जा सकती है तथा जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

जब एक चैक अनादरित हो जाता है और प्राप्तकर्ता निराश हो जाता है और वह बिना किसी लागत के भुगतान प्राप्त करना चाहता है, कानूनी विवाद में ज्यादा समय लगता है और यह एक महंगी प्रक्रिया है। इस प्रकार इस विवाद का उपचार भारतीय दण्ड संहिता की धारा 415 के अन्तर्गत आता है। तथा इस विवाद में धारा 417 और 420 में कार्यवाही की जा सकती है। प्रत्येक चैक का अनादरण ठगी नहीं होता है।

सुझाव : चैक का भुगतान करते समय चैक प्रस्तुतकर्ता के परिचय के सम्बन्ध में बैंक कर्मचारी तथा अधिकारी को अच्छी तरह से जाँच कर लेनी चाहिए। उसके द्वारा दिये गये विवरण को जाँच कर लेनी चाहिए।

(ii) **गलत तरीके से सम्पत्ति को हथियाना तथा उसका दुरूपयोग करना :** भारतीय दंड संहिता की धारा 403, के अनुसार यदि कोई व्यक्ति गलत तरीके से चल सम्पत्ति को हथिया लेता है वह दंड का भागीदार होता है। यह सजा या दंड दो वर्ष की जेल या जुर्माना या दोनों हो सकते हैं। उदाहरण के लिए अ को एक खोया हुआ वाहक चैक प्राप्त होता है। उसका उस व्यक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है जिसका वह चैक है और अ उस चैक को बिना प्रतिफल के गलत तरीके से हथिया लेता है। न ही अ के द्वारा उस व्यक्ति को ढूँढने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार अ इस अपराध के लिए धारा 403 के अन्तर्गत अपराध का दोषी है।

सुझाव : गलत तरीके से सम्पत्ति को हथियाना बिना पूर्वाधिकार के कोषों तथा सम्पत्ति का मालिक बन जाना अपराध में शामिल होता है। बैंक द्वारा ऐसे अपराध को रोकने का प्रयास करना चाहिए तथा ऐसे प्रयास करने चाहिए कि गलत व्यक्ति को भुगतान न हो सके।

(iii) **विश्वास भंग करना :** यदि कोई व्यक्ति गलत तरीके से या बेईमानी से सम्पत्ति पर अपना अधिकार स्थापित कर लेता है, उस सम्पत्ति को स्वयं के उपयोग में लेता है या सम्पत्ति के किसी भाग को बेईमानी से बेच देता है। इसे कानून के विरूद्ध माना जाता है। कानून के अनुसार इसे विश्वास भंग करना कहा जाता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 407,408,409 में इस अपराध को सजा योग्य माना गया है।

सुझाव - किसी व्यक्ति द्वारा गलत तरीके या विधि से सम्पत्ति को हथियाना या किसी चल सम्पत्ति या कोष पर अधिकार स्थापित करना अपराध है। बैंक का दायित्व है कि उस व्यक्ति को जो किसी चल सम्पत्ति के कोष का मालिक है उसे ही भुगतान करे। भुगतान करते समय यह देख ले कि वह चल सम्पत्ति, चैक इत्यादि सही तरीके से प्राप्त किया गया हो।

(iv) **जालसाजी :** जब कोई व्यक्ति, किसी अन्य व्यक्ति को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से झूटे कागजात या कागजातों का कोई अंश तैयार करा लेता है। जो दूसरे व्यक्ति को हानि पहुँचाने के

उद्देश्य से किया जाता है या ऐसा कोई समझौता करता है जिसमें किसी सम्पत्ति या उसके किसी अंश पर झूठा दावा प्रस्तुत किया जाता है। यह समझौता जालसाजी करने के उद्देश्य से किया जाता है। इस प्रकार के समझौते जालसाजी में शामिल किये जाते हैं। जालसाजी के आवश्यक तत्व निम्नलिखित हैं

(अ) किसी प्रमाण पत्र या उसके भाग के झूठे कागजात तैयार कराना

(ब) ऐसा जानबूझकर कर किया जाना

(i) व्यक्तियों या एक व्यक्ति को हानि पहुँचाना

(ii) किसी सम्पत्ति पर स्वामित्व स्थापित करने के उद्देश्य से ऐसा करना।

(iii) किसी व्यक्ति या सम्पत्ति के साथ ऐसा करना।

(iv) किसी व्यक्ति द्वारा जालसाजी करने के उद्देश्य से समझौता करना।

(v) धोखाधडी / कपट को स्वीकार करना।

जालसाजी को भारतीय दंड संहिता की धारा 466 में स्पष्ट किया गया है कि यदि कोई व्यक्ति कोर्ट के रिकार्ड या सार्वजनिक रजिस्टर के साथ छेड़छाड़ करता है तो उसे जालसाजी माना जाता है। धारा 467 में मूल्यवान सम्पत्तियों की जालसाजी को स्पष्ट किया गया है। धारा 468 में धोखा देने के उद्देश्य से की जाने वाली जालसाजी का विवरण दिया गया है। धारा 471 में जाली दस्तावेजों को सही दस्तावेजों के स्थान पर प्रयोग करना बताया गया है।

सुझाव : इस प्रकार की जालसाजी का पता लगाना तथा उसे रोकना बैंक के लिए आवश्यक है। हस्ताक्षरों में जालसाजी करना बैंकों में सामान्य घटना है। जाली हस्ताक्षर पाये जाने पर ग्राहक के नमूना हस्ताक्षरों से उसका मिलान किया जाता है। बैंक द्वारा नमूना हस्ताक्षरों की पुस्तिका को सुरक्षित स्थान पर रखा जाना चाहिए। बैंक के समक्ष भुगतान हेतु प्रस्तुत विलेखों की विशेष जाँच करनी चाहिए कि विलेख मांग पर या आदेश पर भुगतान हेतु देय है। यदि बैंक जाली विलेखों का भुगतान करता है तो असली ग्राहक को होने वाली हानि के लिए बैंक जिम्मेदार होगा।

(v) **झूठे खाते तैयार करना या खातों में गोलमाल करना** : यदि कोई कर्मचारी, अधिकारी, नौकर जानबूझकर कर किसी व्यक्ति के साथ धोखाधडी / कपट करने के उद्देश्य से प्रतिभूति या खाते से छेड़छाड़ करते हैं, काँट-छाँट करते हैं, किसी पुस्तक, कागज, लिखी हुई कीमती प्रतिभूति के झूठे कागज तैयार कर लेते हैं या अधिकारी की ओर से उक्त कार्यवाही धोखाधड़ी / कपट करने के उद्देश्य से करते है, खातों की झूठी प्रविष्टी करते हैं या किसी पुस्तक, कागज, लिखित प्रतिभूति या खाते में काँट-छाँट करते हैं, ऐसे कर्मचारियों के लिए सात सरल की सजा का प्रावधान है और उन पर जुर्माना भी लगाया जा सकता है या दोनो प्रकार की सजा हो सकती है। यह धोखाधड़ी / कपट किताबों में प्रविष्टी तथा लिखित खातों से सम्बन्धित होता है।

सुझाव : वह व्यक्ति जो खाते बनाने का कार्य करता है वही उन खातों की व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होता है। चल सम्पत्तियों का निरन्तर अंकेक्षण, दोहरी जाँच (परिचय विवरण का प्रमाणन) की जानी चाहिए तथा सारी सूचना का प्रमाणन किया जाना चाहिए।

(vi) **चोरी :** किसी अन्य व्यक्ति से बेईमानी से चल सम्पत्ति को हथिया लेना या अपने अधिकार में लेना, घर से चोरी कहलाता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 360 में चोरी का अपराध सजा योग्य माना गया हैं किसी व्यक्ति की सम्पत्ति को उसके मालिक के अधिकार से

चोरी करना भारतीय दंड संहिता की धारा 387 में राजा योग्य माना गया है। यह चोरी कलर्क या नौकर द्वारा की गयी हो। यदि चोरी से किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो इस चोरी को स्वीकार करना भारतीय दंड संहिता के भाग 382 में सजा योग्य माना गया है। चोरी बैंक में कई प्रकार से की जाती है। नकद राशि की चोरी, यात्री चैकों की चोरी, ड्राफ्ट चोरी, टेस्ट रूम से नकद राशि की चोरी, स्ट्रांग रूम से सुरक्षित जमाओं तथा लाकर्स से चोरी आदि भारतीय दंड संहिता में सजा योग्य माना है।

चोरी के अपराध के आवश्यक तत्व इस प्रकार है :-

1. सम्पत्ति को बेईमानी से प्राप्त किया गया हो।
2. सम्पत्ति केवल चल सम्पत्ति होनी चाहिए।
3. इसे एक व्यक्ति के अधिकार से दूसरे व्यक्ति के अधिकार में ले लिया जाना चाहिए।
4. यह कार्य बिना दूसरे व्यक्ति की सहमति से होना चाहिए।
5. सम्पत्ति को एक स्थान से हटा दिया जाना चाहिए।

निष्कर्ष रूप में एक व्यक्ति यदि जो लेनदार है, देनदार की बिना सहमति से चल सम्पत्ति अपने भुगतान हेतु अधिकार में ले लेता है इसे चोरी कहा जाता है।

सुझाव : यात्री चैक जारी करते समय, चैक के पीछे यात्री की आयु, लिंग उसके दो पहचान चिन्ह लिखे- जाने चाहिए, जिससे यात्री चैक की चोरी को रोका जा सके। इससे बैंक को यात्री चैक के वास्तविक मालिक की पहचान करने में सुविधा रहेगी। बैंक के लाकर तथा सेफ रो चोरी करना कठिन कार्य है क्योंकि मास्टर चाबी तो बैंक अधिकारियों के पास रहती है। ग्राहक के पास केवल अपने लाकर की चाबी रहती है। बैंक अधिकारी तथा ग्राहक दोनों में एक कोई भी व्यक्ति लाकर को नहीं खोल सकता है क्योंकि उसे खोलने के लिए दोनों व्यक्तियों तथा चाबियों की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त नकद काउन्टर को छोड़ते समय रोकडिये को पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिए और नकद राशि को कभी भी खुला नहीं छोड़ना चाहिए।

(vii) डरा धमका कर पैसा निकालना : अनेक बार किसी व्यक्ति को डरा धमकाकर के उससे जबरन पैसा वसूल किया जाता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 383 के तहत ऐसे मामलों को कोर्ट को संज्ञान लेने का अधिकार दिया गया है।

(viii) सेंधमारी करना : भारतीय दंड संहिता की धारा 445 के अन्तर्गत सेंधमारी का तात्पर्य बुरी नीयत से घर में घुसने से लिया जाता है। सेंधमारी से तात्पर्य

(1) दीवार से छेद कर के घुसना।
(2) छत के रास्ते घर में घुसना।
(3) मुख्य द्वार तथा खिड़की के नजदीक छेद कर घर में घुसना।
(4) खिड़की तथा रोशनदान की जाली को हटाकर घर में घुसना।
(5) विभिन्न तरीकों से ताले तोड़ना से होता है।

अनेक बार बैंकों में व्यक्ति सुरक्षा के अभाव में स्ट्रांग रूम लॉकर, नोटों की अलमारी इत्यादि को सेंधमारी के माध्यम से तोड़कर चोरी की जाती है। कानूनन यह अपराध है।

(ix) लूटपाट एवं डकैती : भारतीय दंड संहिता की धारा 390 से लेकर धारा 400 तक डकैती एवं लूटपाट को स्पष्ट किया गया है। विभिन्न धाराओं के तहत यदि पाँच या उससे अधिक व्यक्ति मिलकर लूटपाट एवं डकैती को अंजाम देते हैं तो उन्हें कानून के द्वारा अपराधी माना जाता है। बैंक में काउन्टर से पैसा उड़ाना या बैंक से लूटपाट एवं डकैती करना कानून अपराध माना जाता है। प्राय: ऐसे जुर्म बैंक के बन्द होने के समय, बैंक खुलते समय तथा सामान्य जनता के लिए बैंकिंग कार्य प्रारम्भ होने से पूर्व अंजाम दिये जाते हैं।

(x) आपराधिक मिलीभगत : आपराधिक मिली भगत को कानून द्वारा अपराध माना गया है। यह एक ऐसा गैर कानूनी विधि से किया गया समझौता होता है जिसमें कुछ लोगों की मिली भगत से अपराध किया जाता है। इस प्रकार के अपराध में बैंक कर्मचारी झूठे ड्राफ्ट तथा प्राप्य रसीदें छपवाकर बैंक के साथ धोखाधड़ी करते है। इरा मिलीभगत से किये गये अपराध के मुख्य तत्व निम्नलिखित होते हैं

1. मिलीभगत से अपराध करने वाले लोगों के बीच समझौता होना चाहिए।
2. यह समझौता गैर कानूनी कार्य करने के लिए किया गया हो
3. ऐसा कार्य जो गैर कानूनी हो।

ऐसा एक अपराध आन्ध्रप्रदेश बनाम आई दी एस प्रसाद राव एवं अन्य के द्वारा किया गया, जिसमें अपराधी केन्द्रीय सहकारी बैंक में कर्मचारी थे जिन्हें भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420 तथा 120 ए के तहत सजा सुनायी गयी थी। इन चारों कर्मचारियों ने मिलीभगत से झूठे ड्राफ्ट तथा प्राप्य वाउचर बैंक को धोखा देने के उद्देश्य से तैयार करवाये थे।

(xi) रिश्वत एवं भ्रष्टाचार : यदि कोई सार्वजनिक क्षेत्र का अधिकारी काम करने के लिए कानूनी प्रतिफल के अतिरिक्त किसी राशि की माँग करता है उसे रिश्वत कहा जाता है। उसके लिए कानूनी द्वारा सजा या जुर्माना अथवा दोनों सजाओं का प्रावधान किया गया है। बैंकिंग क्षेत्र में भ्रष्टाचार निरन्तर बढ़ता जा रहा है। बैंकिंग क्षेत्र में ऋण स्वीकृत करने के समय बैंक अधिकारियों द्वारा रिश्वत माँगने की अनेक शिकायतें आती रही हैं। स्टेशनरी तथा छपाई विभाग में भी धोखाधडी / कपट के मामले सामने आये हैं। मेडिकल बिलों के पुनर्भुगतान में भी धोखाधडी 7 कपट के मामले भी सामने आये हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 161 में रिश्वत तथा धारा 102 में भ्रष्टाचार को स्पष्ट किया गया है। ये दोनों अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 161, 162, 165 में सजा योग्य माने गये हैं।

(xii) करेन्सी नोट तथा बैंक नोट से सम्बन्धित अपराध : भारतीय दंड संहिता धारा 489ए-489इ उपरोक्त दोनों धाराएँ करेन्सी नोट तथा बैंक नोट की धोखाधडी / कपट से बचाने में संरक्षण प्रदान करती हैं। ये अपराध इस प्रकार होते हैं

1. करेन्सी नोट तथा बैंक नोट को जाली विधि से तैयार करना।
2. जाली नोटों को खरीदना, बेचना और प्रयोग करना, साथ ही जानबूझकर यह धोखाधडी / कपट करना।
3. जाली करेन्सी नोट या बैंक नोट रखना तथा सही करेन्सी के समान उसका प्रयोग करना।
4. जाली करेन्सी नोट तथा बैंक नोट से सम्बन्धित सामग्री बनाना अथवा रखना।

5. करेन्सी नोट एवं जाली नोट जैसे कागज तैयार करना व उनका प्रयोग करना।
6. इस गलत कार्य में लिप्त व्यक्ति या व्यक्तियों के नाम पुलिस के सामने न बताना।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि यदि कोई व्यक्ति सरकार के द्वारा सार्वभौमिक रूप से निकाले गये कागजों का प्रतिस्थापन्न कागजों द्वारा पैसा बनाने के लिए करता है, यह अपराध की श्रेणी में आता है।

उदाहरण -1, भारत के चर्चित बैंक एवं शेयर घोटाला (Share scan in India)

देश के सर्वांगीण आर्थिक विकास के लिए पहले 1969 में 14 बड़े वाणिज्यिक बैंकों तथा बाद में 1980 में 6 अन्य बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिए जाने के बाद से यह आशा की गई थी कि अब ये बैंक सरकार के सीधे नियन्त्रण में कार्य करते हुए समाज के कमजोर वर्ग की आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं को पूरा करते हुए देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देंगे तथा किसी भी स्तर पर इनके पास जमा सार्वजनिक धन का दुरुपयोग नहीं हो पाएगा। लेकिन अप्रैल 1992 में प्रकाश में आए देश के सबसे बड़े शेयर घोटाले ने न केवल निवेशकों के शेयर बाजार के प्रति विश्वास को ध्वस्त कर दिया, बल्कि देश की समूची बैंकिंग प्रणाली को संदेह के घेरे में लाकर खड़ा कर दिया है। बैंक जनता की जमाओं के कस्टोडियन के रूप में सर्वाधिक विश्वसनीय संस्था के रूप में माने जाते हैं, किन्तु अरबों रुपए के इस घोटाले ने यह सिद्ध कर दिया है कि मौजूदा तौर-तरीकों के चलते बैंकों में भी लोगों की बचतें पूर्णतः सुरक्षित नहीं हैं। मुम्बई के शेयर दलालों ने बैंकों के अति उच्च अधिकारियों एवं डायरेक्टरों से साँठ--गाँठ करके जनता का अरबों रुपया अवैध तरीके से बैंकों से निकाल कर उसका दुरुपयोग अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु किया है। 30 अप्रैल, 1992 को रिजर्व बैंक के तत्कालीन डिप्टी गवर्नर आर. जानकीरमन की अध्यक्षता में गठित समिति की जाँच में 4024.45 करोड़ रुपए के घोटाले का पर्दाफाश हुआ, जबकि केन्द्रीय जाँच ब्यूरो के अधिकारियों के अनुसार यह राशि लगभग 8,383 करोड़ रुपए की थी।

यह सर्वविदित है कि रिजर्व बैंक के नियमानुसार अनुसूचित व्यापारिक बैंकों को अपनी माँग व सावधि जमाओं (Demand and Time Deposite) का एक निश्चित प्रतिशत भाग मान्यता प्राप्त प्रतिभूतियों में रखना होता है, बैंक अपने मुनाफे में वृद्धि के लिए अनुकूल मूल्यों पर इनका क्रय-विक्रय करते हैं। जमा राशि में वृद्धि या कमी होने पर तदनुरूप प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय बैंकों द्वारा किया जाता है। बैंकों द्वारा यह समस्त सौदे पूँजी बाजार के मान्यता प्राप्त दलालों के माध्यम से किए जाते हैं।

बैंकों द्वारा आपस में खरीदी या बेची जाने वाली प्रतिभूतियों का मूल्य करोड़ों-अरबों रुपए में होने के कारण खरीदने वाले बैंक को खरीदी गई प्रतिभूतियों की डिलीवरी तुरन्त नहीं मिल पाती, क्योंकि इन प्रतिभूतियों की संख्या लाखों-करोड़ों में हो सकती है। इसलिए बेचने वाला बैंक प्रतिभूतियाँ तुरन्त न दे पा सकने की स्थिति में, उसके बदले में खरीदने वाले बैंक को एक लिखित प्रपत्र दे देता है, जिसमें सौदा की गई प्रतिभूतियों की वास्तविक डिलीवरी देने का वायदा होता है। इस प्रपत्र को ही बैंक की भाषा में बैंकर्स रसीद (Banker’s Receipt) या बैंक रसीद कहते हैं। बैंकों द्वारा प्रतिभूतियों के आपसी क्रय-विक्रय में यह बैंकर्स रसीदें ही वास्तविक प्रतिभूतियों के स्थान पर प्रचलित रहती हैं और इन्हीं के आधार पर खरीददार बैंक द्वारा अपनी

प्रतिभूति-खरीद का भुगतान कर दिया जाता है। खरीददार बैंक यदि खरीदी हुई इन प्रतिभूतियों को आगे किसी अन्य बैंक को बेचना चाहे तो इसी बैंकर्स रसीद को प्रतिभूतियों के स्थानापन्न के रूप में दे देता है। बैंकर्स रसीद का होल्डर बैंक यदि प्रतिभूतियों की वास्तविक डिलीवरी लेना चाहे तो वह इसे जारी करने वाले बैंक को प्रस्तुत करके प्रतिभूतियाँ माँग सकता है और वह बैंक बैंकर्स रसीद में लिखे वायदे के मुता-बिक डिलीवरी देने को बाध्य होता है। नियमानुसार किसी भी बैंकर्स रसीद के लिखे जाने के तीन महीने के भीतर प्रतिभूतियों का वास्तविक हस्तान्तरण हो जाना चाहिए, किन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता रहा है।

मुम्बई के कुछेक शेयर दलालों ने स्टेट बैंक, राष्ट्रीय आवास बैंक, ए. एन. जैड ग्रिण्डलेज बैंक, यूको बैंक, बैंक ऑफ करोड़ आदि बैंकों के अति उच्च अधिकारियों से साँठ-गाँठ करके फर्जी बैंकर्स रसीदें बनवाकर अपने नाम चैक जारी करवाए। उल्लेखनीय है कि बैंकों के लिए करोड़ों-अरबों रुपए की प्रतिभूतियाँ खरीदने व बेचने की प्रक्रिया में तथा बैंकों के लिए टेलीफोन पर ही करोड़ों रुपए की माँग-मुद्रा उपलब्ध कराने के कारण इन दलालों के बैंकों के अति उच्च अधिकारियों से निकट के सम्बन्ध बन जाते हैं। घोटाले में लिप्त दलालों ने जो प्रक्रिया अपनाई, उसके अन्तर्गत इस धनराशि का उपयोग वह शेयर बाजार में शेयर खरीदने में करने लगे और करोड़ों रुपए मुनाफा कमाकर कुछेक मामलों में बैंकों का धन वापस कर दिया करते थे। बैंकों के अति वरिष्ठ अधिकारी इरा साँठ -गाँठ में लिप्त पाए गए। बैंकों ने ऐसी बैंकर्स रसीदें तक जारी कर दी जिनके प्रति डिलीवरी देने के लिए प्रतिभूतियाँ उनके पास थी ही नहीं। जाँच के दौरान, मेट्रोपोलिटन को-ऑपरेटिव बैंक तथा बैंक ऑफ करोड़ के सम्बन्ध में ऐसा ही मामला प्रकाश में आया है। घोटाले में लिप्त दलालों के कहने पर बैंक ऑफ करोड ने स्टैण्डर्ड चार्टर्ड बैंक के नाम ऐसी ही फर्जी बैंकर्स रसीदें जारी कीं। दलालों ने इन बैंक रसीदों के बदले में चार्टर्ड बैंक रमे धनराशि वसूल करके शेयर बाजार में लगा दी। घाटे के कारण यह रकम वापस न हो सकी। उधर करोड बैंक के पास अपनी बैंक रसीदों के बदले में देने के लिए प्रतिभूतियाँ थी ही नहीं। अन्ततः बैंक ऑफ करोड की स्थिति डांवांडोल होने लगी और रिजर्व बैंक को इस बैंक को समाप्त घोषित करना पड़ा। इसी प्रकार की स्थिति मेट्रोपोलिटन को-ऑपरेटिव बैंक की भी रही है। बड़े बैंक और विदेशी बैंक तो अभी अपने घाटों को झेल रहे हैं।

मार्च 2001 में प्रकाश में आए 5000 करोड़ रुपए के शेयर घोटाले एवं भारतीय यूनिट ट्रस्ट (UTI) की बाद में हुई दुर्दशा कि जाँच के लिए अप्रैल 2001 में गठित संयुक्त संसदीय समिति (JPC) की रिपोर्ट में शेयर दलाल केतन पारिख, बैंकों, वित्तीय घरानों एवं कॉर्पोरेट घरानों की साँठ-गाँठ को इस घोटाले के लिए जिम्मेदार बताया है। संसद में 19 दिसम्बर, 2002 को दो खण्डों में प्रस्तुत इस रिपोर्ट के पहले खण्ड में शेयर घोटाले के बारे में बताया गया है कि बाजार संचालकों (Market Operators) शेयर दलालों, निगमित निकायों व उनके प्रवर्तकों एवं प्रबन्धकों के लाभ के लिए इस घोटाले को अंजाम दिया गया। कुछेक बैंकों, विशेषतः निजी एवं सहकारी बैंकों, शेयर बाजारों, समुद्रपारीय निगमित निकायों व वित्तीय संस्थानों का इस कार्य में सहयोग उन्हें प्राप्त होता रहा। कोलकाता शेयर बाजार में उत्पन्न हुए भुगतान संकट व माधवपुरा मर्केन्टाइल कोऑपरेटिव बैंक के संकट के लिए मुख्य सूत्रधार इसमें केतन पारिख को बताया गया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि यह घोटाला शेयर मूल्यों के उतार-चढ़ाव से नहीं बल्कि यह बड़े

पैमाने पर धन की हेराफेरी, बैंक धन का दुरुपयोग, यूटीआई जैसे संस्थानों द्वारा जनता के धन का इस्तेमाल करने, बैंकों और शेयर बाजारों के जोखिम मानकों का खुल्लमखुल्ला उल्लंघन करने तथा विदेशी कम्पनी निकायों रो प्राप्त धन का इस्तेमाल, शेयरों और मुनाफे को देश से बाहर भेजने से हुआ। के अनुसार ये सभी गतिविधियाँ बिना किसी निगरानी और टीका टिप्पणी के जारी रहीं। इस दौरान जब कभी शेयर बाजार में तेजी अथवा सुधार आया तब यह मान लिया गया कि इसके पीछे कोई गड़बड़ी नहीं हो सकती है। रिपोर्ट में इरा बात पर चिंता जतायी गयी है कि वित्तीय तंत्र में गैर-जिम्मेदाराना सोच उभरती जा रही है। रिपोर्ट में सहकारी समिति के पंजीयकों तथा कम्पनियों के प्रवर्तकों और प्रबन्धकों पर शेयर घोटाले का आरोप मढा गया है, रिपोर्ट में इस बात पर खेद व्यक्त किया गया है कि हर्षद मेहता शेयर घोटाले की जाँच समिति की सिफारिशों पर भी ठीक से अमल नहीं किया गया। वित्त मंत्रालय ने जून 1994 में इसके लिए एक अलग प्रकोष्ठ गठित किया था। इस प्रकोष्ठ को दलालों और औद्योगिक घरानों के बीच सांठगांठ की जाँच-पड़ताल करने को कहा गया था, लेकिन इस प्रकोष्ठ ने भी 22 मई, 1995 से काम करना बन्द कर दिया। प्रकोष्ठ ने एक वर्ष के कामकाज की कोई सिफारिशें भी नहीं सौंपी। समिति ने कहा कि इस प्रकार के कई घोटाले वित्त क्षेत्र में मिल जाएंगे।

रिपोर्ट के दूसरे खण्ड यूटीआई की दुर्दशा सम्बन्धी जाँच का ब्यौरा प्रस्तुत करते हुए वित्त मंत्रालय को इसके लिए जवाबदेह बताया है। तत्कालीन वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा पर कोई टिप्पणी इस रिपोर्ट में यद्यपि नहीं की गई है तथापि तत्कालीन वित्त सचिव अजित कुमार को प्रत्यक्षत: दोषी बताते हुए इसमें कहा गया है कि उन्होंने यूटीआई की भुगतान समस्या पर उसके तत्कालीन अध्यक्ष के पत्र को सामान्य ढंग से लिया और उस पर तुरन्त कार्यवाही नहीं की। उनके स्तर के शीर्ष अधिकारी से ऐसी उम्मीद नहीं की जाती है। रिपोर्ट में बताया गया है कि पूर्व वित्त सचिव को इस सम्बन्ध में 30 जून, 2001 की शाम यूटीआई के तत्कालीन अध्यक्ष पी एस सुब्रमणियम का एक पत्र प्राप्त हुआ था जिसमें इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया था कि यूटीआई निदेशक मंडल की 2 जुलाई, 2001 को बैठक होगी जिसमें आस-तय की खरीद 'व बिक्री पर छह महीने के लिए रोक लगाने और इस योजना को शुद्ध परिसम्पत्ति मूल्य (NAV) आधारित करने पर विचार किया जाना था। रिपोर्ट के अनुसार यह काफी महत्वपूर्ण मुद्दा था और इस पर वित्त सचिव को तत्काल कार्यवाही करनी चाहिए थी, लेकिन सचिव ने तत्कालीन वित्त मंत्री यशवन्त सिन्हा को इसकी जानकारी 2 जुलाइ, 2001 की सुबह दी, जिस दिन दोपहर को यूटीआई निदेशक मण्डल की बैठक थी।

रिपोर्ट में कहा गया है कि वित्त सचिव को उसी समय तुरन्त हरकत में आ जाना चाहिए था जब उनकी इस बारे में 29 जून, 2001 को पूँजी बाजार विभाग के संयुक्त सचिव के साथ बातचीत हुई थी। संयुक्त सचिव ने यूटीआई अध्यक्ष के साथ यूस-64 योजना की समस्या के बारे में हुई अपनी बातचीत का ब्यौरा वित्त सचिव को पहले दिन ही दे दिया था। रिपोर्ट में कहा गया कि संयुक्त सचिव और यूटीआई अध्यक्ष की वह मुलाकात पहले से तय नहीं थी, अचानक हुई उस मुलाकात में यूटीआई समस्या के बार मे विचार- विमर्श हुआ। उसके बाद संयुक्त सचिव ने इस बारे में वित्त सचिव के साथ बातचीत की लेकिन ऐसा लगता है कि वित्त मंत्रालय के अधिकारियों ने इस बारे में आगे तुरन्त कोई कदम नहीं उठाया । रिपोर्ट मे यूटीआई के तत्कालीन अध्यक्ष को

भी कठघरे में खड़ा करते हुए कहा गया है कि उन्होंने अन्तिम समय तक वित्त मंत्रालय को किसी समस्या से अवगत नहीं कराया और सबको अन्धेरे में रखा। रिपोर्ट में कहा गया है कि यूटीआई अध्यक्ष ने बोर्ड की बैठक होने से दो दिन पहले तक वित्त मंत्रालय को किसी समस्या से अवगत नही कराया। रिपोर्ट में यूटीआई मुद्दे पर यशवंत सिन्हा को लगभग निर्दोष बाते हुए कहा गया है कि उन्होंने मंत्रालय के अधिकारियों को अप्रैल-2001 के बाद लगातार यूटीआई की स्थिति का पता लगाने के लिए निर्देश दिए, लेकिन उाधिकारियों ने इस बारे में अपनी बातचीत केवल यूटीआई अध्यक्ष तक ही सीमित रखी। रिपोर्ट में यद्यपि वित्त मंत्रालय की जवाबदेही बताते हुए यह कहा गया है कि यूटीआई को उसके दैनिक कामकाज में आजादी देने के नाम पर वह संसद के प्रति अपनी जवाबदेही से नहीं बच सकता है।

ज्ञातव्य है कि भाजपा सांसद प्रकाशमणि त्रिपाठी की अध्यक्षता वाली 30 सदस्यीय संयुक्त संसदीय समिति का गठन अप्रैल 2001 में मूलतः शेयर घोटाले की जाँच के लिए किया गया था। यूटीआई की दुर्दशा की जाँच का कार्य भी बाद में इसी समिति को सौंपा गया था, शेयर घोटाले के सम्बन्ध में जिन लोगों को संयुक्त संसदीय समिति की रिपोर्ट में दोषी ठहराया गया है उनके विरूद्ध कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए संयुक्त सचिव राजीव महर्षि की अध्यक्षता में एक कार्यदल का गठन केन्द्र सरकार ने जनवरी 2003 में किया।

16.9 सारांश

अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों की भाँति बैंक भी धोखाधडी / कपट / धोखाधड़ी से अछूते नहीं है। जेसे-जैसे तकनीक का विकास हो रहा है वैसे-वैसे बैंकों में आपराधिक गतिविधियाँ भी बढ़ती जा रही है। बैंक कर्मचारी तथा अधिकारी भी इन अपराधों में लिप्त पाए गए हैं। कम्प्यूटर के बढ़ते प्रयोग से बैंकों में सामान्य धोखा भी बढ़ रहा है जो बैंकों को प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये की हानि पहुंच रहा है। -बैंक अधिकारियों / कर्मचारियों व बाहरी व्यक्तियों की मिली भगत भारतीय अर्थव्यवस्था को हर वर्ष करोड़ों रुपये की चपत लगती है। यद्यपि भारतीय दण्ड संहिता (IPC) की विभिन्न धाराओं के माध्यम से इन अपराधों को रोकने का प्रावधान किया गया है किन्तु अभी भी यह प्रयास अधूरे हैं

16.10 शब्दावली

(i) **बैंक धोखाधडी / कपट** - बैंकों को धोखाधडी / कपट के माध्यम से हानि पहुँचाने को बैंक धोखाधडी / कपट कहा जाता है।

(ii) **सायबर अपराध** -कम्प्यूटर एवं नेट वर्किंग की सहायता से किया गया धोखाधडी / कपट, सायबर अपराध है।

(iii) **भारतीय दण्ड संहिता** - भारतीय संविधान में विभिन्न अपराधों का रोकने के लिए बनाई गई दण्ड़ संहिता भारतीय दंड संहिता है।

(iv) **शेयर घोटाला -** बैंक अधिकारियों व बड़े शेयर दलालों की मिली भगत से देश को करोड़ों रुपए की हानि पहुँचाने वाला घोटाला है।

1611 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. बैंक धोखाधडी / कपट से आपका क्या आशय है? इन धोखाधडी /कपट के वर्गीकरण को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2. बैंक कर्मचारियों तथा अधिकारियों के द्वारा किये जाने धोखाधड़ी / कपट को समझाइये तथा इन्हें रोकने के उपाय सुझाइये।

प्रश्न 3. बैंकों में होने वाले किसी एक घोटाले का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 4. बैंकों में बाहरी व्यक्तियों द्वारा किस प्रकार धोखाधडी / कपट किया जाता है? इसे रोकने के उपाय सुझाइये।

16.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Banking System, Frands and Legal Control. R.P.NAINA
2. भारतीय अर्थव्यवस्था वार्षिकांक, प्रतियोगिता दर्पण
3. बैंकों में धोखाधड़ी : जे. पी. जैनद्ध बैराठी पब्लिकेशन जयपुर।

इकाई 17

बैंकिंग विकास के सम्बन्ध में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा गठित विभिन्न समितियों के सुझाव

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 रिजर्व बैंक द्वारा गठित विभिन्न समितियाँ एवं उनके सुझाव

- गोइपोरिया समिति 1990
- नरसिंहम समिति I 1991
- नरसिंहम समिति II 1998
- वर्मा समिति 1999
- मूर्ति समिति 1999
- गुप्ता समिति 2006
- अमिताभ कुन्डू समिति 2007
- श्री निवासन समिति 2007-08
- दीपक मोहन्ती कार्यदल 2009-10

17.3 सारांश

17.4 शब्दावली

17.5 अभ्यास प्रश्न

17.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

17.0 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप समझ पायेंगे -

- भारत में रिजर्व बैंक द्वारा बैंकिंग सुधार हेतु गठित समितियाँ
- विभिन्न समितियों की स्थापना के उद्देश्य
- विभिन्न समितियों द्वारा बैंकिंग क्षेत्र में सुधार हेतु दिये सुझाव

17.1 प्रस्तावना

बैंक देश के आर्थिक विकास के इंजन के रूप में कार्य करते हैं। देश में प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्रों के विकास में बैंकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् से सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने आश्चर्यजनक सफलता हासिल की है। ग्रामीण तथा शहर क्षेत्रों में भारी संख्या में शाखा विस्तार किया है। बैंक परिवार क्षेत्र की बचतों को गतिमान करने में सफल रहे हैं। प्राथमिकता क्षेत्र में कृषि, लघु उद्योग, परिवहन आदि को ऋण देकर बैंकों ने विकास का महत्वपूर्ण कार्य किया है। सन् 1991 से भारत में उदारीकरण की नीति

को अपनाया गया। तभी से बैंकों की कार्य प्रणाली में सुधार की आवश्यकता महसूस की गई। राष्ट्रीय बैंकों की कार्य प्रणाली में बहुत सी कमियाँ प्रतीत हो रही थी किन्तु उदारीकरण के बाद इन बैंकों को निजी बैंकों तथा विदेशी बैंकों के साथ प्रतीस्पर्धा का सामना करना पड़ा जिससे इन बैंकों में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गयी। बैंकों में रिजर्व बैंक तथा सरकार का अत्याधिक हस्तक्षेप, रिजर्व बैंक का अत्याधिक नियन्त्रण, निर्देशित उधार कार्यक्रम, प्रशासनिक नियन्त्रण तथा बैंकों की बढ़ती हुई लागत आदि अनेक ऐसी समस्याएँ हैं जिन में सुधार की आवश्यकता है। इस कार्यप्रणाली में सुधार हेतु समयऱसमय पर रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा अनेक समितियों का गठन किया गया।

17.2 रिजर्व बैंक द्वारा गठित विभिन्न समितियाँ एवं उनके सुझाव

गोईपोरिया समिति 1990

बैंकों में ग्राहक सेवा के गिरते स्तर को सुधारने के उपाय सुझाने हेतु सितम्बर 1990 में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा भारतीय स्टेट बैंक के तत्कालीन अध्यक्ष श्री एम.एन. गोइपोरिया की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया, समिति ने अपनी रिपोर्ट 5 दिसम्बर 1991 को प्रस्तुत कर दी थी। समिति की प्रमुख सिफारिशें निम्न लिखित हैं :-

(i) नकद भुगतान को छोड़कर सभी प्रकार के कार्यों के लिए बैंकिंग कार्य-घण्टों का विस्तार किया जाना चाहिए।

(ii) बैंक स्टाफ के लिए कार्य-घण्टों के प्रारम्भ होने के समय में परिवर्तन किया जाना चाहिए ताकि बैंक काउण्टर समय पर खोला जा सके।

(iii) 2500 रूपये की बजाय 5000 रूपये तक के बाह्य केन्द्रों के चैकों को तत्काल खाते में जमा किया जाना चाहिए।

(iv) बचत खातों पर ब्याज दर में वृद्धि की जानी चाहिए।

(v) बैंक में जमा राशियों पर कर लाभ की सुविधा दी जानी चाहिए।

(vi) बैंक स्टॉफ को सभी स्तरों पर दी गई विवेकाधीन शक्तियों का पूर्ण उपयोग करना चाहिए।

बैंकिंग प्रणाली में सुधार हेतु नरसिंहम समिति (1991)

भारतीय बैंकिंग प्रणाली में सुधार की आवश्यकता बैंकों के राष्ट्रीयकरण के साथ ही महसूस की जा रही थी। बैंकिंग प्रणाली में सुधार हेतु समय समय पर भिन्न-भिन्न समितियों का गठन किया गया किन्तु राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण समितियों द्वारा की गयी सिफारिशों को लागू नहीं किया जा सका। वर्ष 1991 में वैश्वीकरण को अपनाने के साथ से ही भारतीय बैंकिंग प्रणाली में आमूल चूल परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गई। बैंकों में ऊँचे तरलता अनुपात, अधिक नकद कोषानुपात, निर्देशित उधार कार्यक्रम, आदि समस्यायें विद्यमान थीं। प्राथमिक क्षेत्र, कृषि तथा सम्बन्धित क्रियाएँ आदि को ऋण देने में निरन्तर उपेक्षा की जा रही थी। निर्देशित उधार कार्यक्रम के कारण बैंकों की कार्यकुशलता निरन्तर गिरती चली जा रही थी। बैंकों की उत्पादकता घटती जा रही थी और उधार बकाया अत ऋणों में बदल रही थी। दूसरे अत्याधिक राजनैतिक हस्तक्षेप से भी बैंकिंग प्रणाली को नुकसान हुआ। राजनैतिक पार्टियां अपने समर्थकों को ऋण देने की सिफारिश करते थे जो कि सुदृढ़ बैंकिंग व्यवस्था के नियमों के विरूद्ध था। बैंकों को

समय-समय पर यह भी निर्देश दिये गये कि बीमार औद्योगिक इकाइयों को ऋण उपलब्ध करायें। इस कदम से सार्वजनिक बैंकों को भारी घाटा उठाना पड़ा। बैंकों में अनियन्त्रित शाखा विस्तार, स्टॉफ में तेजी से वृद्धि, पदोन्नति, गुणवत्ता में गिरावट तथा अति स्टॉफिंग समस्याएँ निरन्तर बढ़ती चली गयीं। 1991 में बैंकिंग प्रणाली में आमूल-चूल परिवर्तन करने के उद्देश्य से रिजर्व बैंक के पूर्व गर्वनर एम. नरसिहम की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया उनका मत था कि बैंक जनता के धन के ट्रस्टी मात्र हैं और उन्हें इस धन का प्रयोग इस ढंग से करना चाहिए कि ग्राहकों को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। समिति के गठनकर्ताओं के अनुसार सरकार को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह आर्थिक संसाधनों के आयोजन की आड़ में राष्ट्रीयकृत बैंकों की शोधन क्षमता, स्वास्थ्य एवं कुशलता को किसी भी प्रकार से हानि पहुंचाये। सरकार को बैंक जमाओं का उपयोग कर्मचारियों के वेतन तथा भत्ते चुकाने में नहीं करना चाहिए। समिति का गठन निम्न बिन्दुओं पर विचार करने हेतु किया गया -

(अ) संचालन लोचशीलता को बनाये रखना।

(ब) सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को अपने निर्णयों में आन्तरिक स्वायत्ता प्रदान करना।

(स) बैंक क्रियाओं में व्यवसायिकता को प्राथमिकता प्रदान करना।

नरसिंहम समिति की प्रमुख सिफारिशें

नरसिंहम समिति की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित हैं -

(i) सरकार को सार्वजनिक क्षेत्र के वित्तीय संस्थानों के लिए वित्त की व्यवस्था के रूप में कानूनी तरलता अनुपात की राशि के उपयोग को तुरन्त रोक देना चाहिए।

(ii) रिजर्व बैंक को वित्त की आवश्यकता के लिए नकद कोषानुपात पर अपनी निर्भरता को कम करना चाहिए। नकद कोषानुपात के स्तर को घटाया जाना चाहिए।

(iii) साख नियन्त्रण हेतु खुले बाजार की क्रियाओं का अधिक प्रयोग में लाया जाना चाहिए।

(iv) निर्देशित उधार कार्यक्रम को समाप्त कर देना चाहिए।

(v) रियायती ब्याज दरों का परित्याग करना चाहिए।

(vi) ब्याज दर ढाँचे का निर्धारण बाजार शक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए।

(vii) सार्वजनिक बैंकों के विलयन एवं पुनर्गठन द्वारा संख्या को कम करने का भी सुझाव दिया गया।

(viii) समिति के अनुसार देश में सार्वजनिक क्षेत्र के 3 या 4 बड़े बैंक होने चाहिए जो अन्तर्राष्ट्रीय बैंक बन सकें।

(ix) से 10 राष्ट्रीय बैंक होने चाहिए जिनकी शाखाएँ देश भर में फैली हुई हों जो सामान्य बैंकिंग कार्य करते हों।

(x) ग्रामीण बैंकों की क्रियाएँ ग्रामीण क्षेत्रों तक ही सीमित होनी चाहिए।

(xi) सरकार को भविष्य में बैंकों का राष्ट्रीयकरण नहीं करना चाहिए।

(xii) परिसम्पत्ति पुनर्निर्माण कोष की स्थापना की जानी चाहिए।

(xiii) प्रत्येक बैंक को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने का अधिकार होना चाहिए।

नरसिंहम समिति II 1998

बैंकिंग सुधारों हेतु नरसिंहम समिति की सिफारिशें

बैंकिंग सुधार के लिए गठित दूसरी नरसिंहम समिति ने अपनी रिपोर्ट 23 अप्रैल, 1998 को केन्द्रीय वित्त मंत्री यशवन्त सिन्हा को सौंप दी। इससे पूर्व अगस्त 1991 में तत्कालीन वित्त मंत्री डी. मनमोहन सिंह ने वित्तीय क्षेत्र के सभी पहलुओं में सुधार के लिए एम. नरसिंहम की अध्यक्षता में समिति गठित की थी, पुन: इन्हीं की अध्यक्षता में बैंकिंग क्षेत्र सुधार के लिए तत्कालीन वित्त मंत्री पी. चिदम्बरम् ने इस समिति का गठन किया था।

अपनी नई रिपोर्ट में नरसिंहम समिति ने पूँजी खाते में रुपए की पूर्ण परिवर्तनीयता से पूर्व देश में मजबूत व प्रभावी व्यवस्था विकसित करने, बैंकों की परिसम्पत्तियों की गुणवत्ता में सुधार लाने, गैर-निष्पादन परिसम्पतियों (NAPs) में कमी करने, पूंजी पर्याप्तता अनुपात (CAR) में वृद्धि करने, बैंकों की खराब परिसम्पत्तियों के अधिग्रहण के लिए एक ऐसेट रिकंस्ट्रक्शन फंड (ARF) की स्थापना करने, रिजर्व बैंक की नियामक व देखरेख सम्बन्धी क्रियाओं को पृथक् करने के लिए बोर्ड फॉर फाइनेंशियल सुपरविजन (BFS) को स्वायत्ता प्रदान करने बैंकों को राजनीति से मुक्त करने, निर्देशक बोर्ड में पेशेवर व्यक्तियों को शामिल करने तथा बैंक कर्मियों के विरूद्ध किसी भी कार्यवाही से पूर्व समुचित जाँच-पड़ताल करने आदि की संस्तुतियाँ की हैं।

समिति की प्रमुख सिफारिशें बिन्दुवार निम्नलिखित हैं :-

संरचनात्मक मुद्दे

1. सुदृढ़ वाणिज्यिक बैंकों का पारस्परिक विलय वृहत्तर आर्थिक और वाणिज्यिक माहौल पैदा करेगा और इसका. उद्योग पर गुणक प्रभाव होगा।
2. सुदृढ़ बैंकों का विलय कमजोर बैंकों के साथ नही किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे सुदृढ़ बैंक की आस्तियों की गुणवत्ता पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ता है।
3. देश के कतिपय बड़े बैंकों को अंतराष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया जाना चाहिए।
4. कमजोर बैंकों की पुनर्स्थापना हेतु नैरो बैंकिंग की अवधारणा को अपनाया जाना चाहिए, यदि यह अवधारणा ऐसे बैंकों की पुनर्स्थापना में सहायक न हो, तो उन्हें बन्द कर दिया जाना चाहिए।
5. बैंकों में सरकार का स्वामित्व प्रबन्ध का एक यन्त्र बन गया है, इस प्रकार का सूक्ष्म-प्रबन्धन कभी भी स्वायत्तता एवं लोचशीलता नहीं ला सकता इसलिए इस स्थिति में परिवर्तन लाकर बैंकों के बोर्डो को शेयर-धारकों के प्रति उत्तरदायी बनाया जाना चाहिए।
6. राष्ट्रीयकृत बैंकों तथा भारतीय स्टेट बैंक की इक्विटी धारिता में सरकार / रिजर्व बैंक का हिस्सा 33 प्रतिशत तक नीचे लाया जाना चाहिए।
7. प्रबंधकीय बोर्डों में नियुक्तियाँ राजनीतिक हस्तक्षेप के बिना व्यावसायिक कुशलता के आधार पर की जानी चाहिए।
8. बैंकों में तेजी के साथ कम्प्यूटरीकरण किया जाना चाहिए तथा 'सहसम्बन्धी बैंकिंग (Relationship Banking) पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए।

बैंकिंग प्रणाली को सुदृढ़ करना

1. पूँजी पर्याप्तता अपेक्षाओं में ऋण जोखिमों के अतिरिक्त बाजारीय जोखिमों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।
2. जोखिम भारित आस्तियों से पूँजी के अनुपात अर्थात् पूँजी पर्याप्तता को सन् 2000 तक 9 प्रतिशत तथा सन् 2002 तक 10 प्रतिशत के स्तर पर लाया जाना चाहिए तथा इसमें आगे वृद्धि करने एवं इसे न अपनाने वाले बैंकों को दण्डित करने की शक्ति रिजर्व बैंक को दी जानी चाहिए।
3. सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की पूँजीनिधियों में बजटीय सहायता न देकर उन्हें देशीय एवं बाह्य पूँजी बाजारों से पूँजी प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

परिसम्पत्ति गुणवत्ता

1. परिसम्पत्तियों का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया जाए-
(i) पहली बार 18 माह तक किश्त एवं ब्याज का भुगतान न करने पर सन्देहास्पद की संज्ञा प्रदान करना।
(ii) अगली बार 12 माह तक किश्त एवं ब्याज का भुगतान न किए जाने पर घटिया परिसम्पत्ति की संज्ञा प्रदान करना।
(iii) पहचान कर ली गई, परन्तु बट्टे खाते में न डाली गई परिसम्पत्ति को क्षतिवान परिसम्पत्ति की संज्ञा प्रदान करना।
2. सरकारी प्रतिभूतियों द्वारा कवर किए गए असुविधाजनक हो चुके ऋणों को गैर-निष्पादनीय आस्ति माना जाए।
3. दो लाख रुपये से कम के ऋणों पर ब्याज निर्धारण का अधिकार बैंकों को दिया जाए।
4. प्राथमिकता क्षेत्र के लिए ऋणों में ब्याज सम्बन्धी आर्थिक सहायता अवयव को पूर्णतया समाप्त किया जाए।

कमजोर बैंकों की पुर्नसंरचना हेतु बर्मा समिति (1999)

सार्वजनिक क्षेत्र के कमजोर बैंकों के पुर्नजीवन हेतु सुझाव देने को रिजर्व बैंक द्वारा वर्मा समिति का गठन किया गया। इस समिति के द्वारा अक्टूबर 1999 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। समिति द्वारा दिये गये सुझाव निम्नलिखित हैं -

(i) कमजोर बैंकों (यूको बैंक, इंडियन बैंक एवं यूनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया) के संचालनात्मक पुनर्गठन के लिए ऐसी व्यूहरचना अपनायी जानी चाहिए जिससे एक ओर तो उनकी लाभप्रदता में वृद्धि हो तथा दूसरी ओर लागतों में कमी की जा सके। आय में वृद्धि हेतु इन बैंकों के काम काज के तरीके में सुधार किया जाना चाहिए।
(ii) मौजूदा तथा भावी गैर निष्पादनीय परिसम्पत्तियों के प्रभाव में कमी लानी चाहिए।
(iii) लागतों मे कमी लाने हेतु अलाभकारी व्यवसायों को छोड़ने के साथ-साथ कर्मचारियों की लागतों में कमी लानी होगी।
(iv) लागतों में कमी लाने हेतु समिति ने यूको बैंक तथा इंडियन बैंक की विदेशों में स्थित शाखाओं को बेचने का सुझाव भी दिया है।
(v) समिति के द्वारा यह सुझाव भी दिया गया कि निजी बैंकों द्वारा आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी (IT) अपनाए जाने के कारण सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक विशेषत कमजोर बैंकों

के व्यवसाय में निरन्तर कमी आ रही है। कमजोर बैंकों के पास दक्षता एवं संसाधन दोनों का अभाव है। इन बैंकों को इसे अपनाने के लिए बाहरी एजेन्सी से सेवाएं लेने का सुझाव दिया गया। समिति के अनुसार, इसे बाहरी स्रोत द्वारा (BOOT (Build, Own, Operate Transfer) आधार पर विकसित किया जा सकता है।

(vi) गैर-निष्पादन परिसम्पत्तियों (NPA,s) के मामले में समिति ने सुझाव दिया है कि इण्डियन बैंक, यूको बैंक व यूनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया की 50 लाख रुपये से अधिक की ऐसी परिसम्पत्तियाँ एक नए गठित किए जाने वाले एसेट रिकन्सट्रक्शन फण्ड (ARF) द्वारा हस्तगत की जाए।

(vii) समिति के प्रस्तावनुसार (ARF) का संचालन निजी क्षेत्र की किसी एसेट मैनेजमेन्ट कम्पनी द्वारा किया जाए तथा इसके बदले में इन बैंकों को सरकार द्वारा गारन्टीशुदा विशेष बॉण्ड प्रदान किए जाएं जिन पर ब्याज भी देय हो।

(viii) वर्मा समिति ने बैंक कर्मचारियों की संख्या में 30 से 35 प्रतिशत की कमी करने का सुझाव दिया। प्रारम्भ में यह कमी 25 प्रतिशत तक की जानी थी जो आगे आने वाले वर्षो में 35 प्रतिशत तक किया जाना प्रस्तावित था। समिति ने कर्मचारियों के वेतन भत्तों में 5 वर्ष तक कोई वृद्धि न करने का भी सुझाव दिया।

(ix) बैंकों के कार्य निष्पादन में सुधार करके सार्वजनिक क्षेत्र के यूनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया व यूनाइटेड कार्मशियल बैंक ऑफ इण्डिया कमजोर बैंकों की सुधी से बाहर आ गए हैं। अब देना बैंक कमजोर बैंकों की सूची में प्रथम स्थान पर है।

(x) कमजोर बैंक के रूप में पहचान करने के लिए वित्त मंत्रालय ने निम्नलिखित दो मानकों का उपयोग किया है

(i) शुद्ध लाभ अर्जन व

(ii) पूँजी पर्याप्तता अनुपात

इस सम्बन्ध में देना बैंक का पूँजी पर्याप्तता अनुपात 7 प्रतिशत तथा इण्डियन बैंक का 8 प्रतिशत रहा है, जो 9 प्रतिशत के मानक से कम है।

मूर्ति समिति - 1999

भारत में गैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों (NBFC) की भूमिका में परिवर्तन करने हेतु मूर्ति समिति की सन् 1999 में स्थापना की गयी।

वर्तमान में गैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों के व्यापारिक लेनदेनों की संख्या तथा मात्रा दोनों में ही पर्याप्त वृद्धि हुई है। (NBFC) प्राय: उन क्षेत्रों के लिए क्या की व्यवस्था करती है जहाँ ऋण अन्तराल विद्यमान है। उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं और मोटरकारों के लिए वित्त पोषण करने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। (NBFC) के कारोबार में तीव्र वृद्धि ने निवेशकों के हितों की रक्षा करने के लिए प्रभावी नियामक कार्यवाही की आवश्यकता उत्पन्न कर दी है। इसके लिए RBI ने (NBFC) की गतिविधियों को नियमित करना प्रारम्भ कर दिया है।

NBFC के बीमा कारोबार में प्रवेश के लिए जून 2000 में परिचालित मार्ग निर्देशों के अनुसार दो करोड़ रुपये की अपनी निधि वाली कोई भी पंजीकृत (NBFC) शुल्क। आधार पर

बिना जोखिम भागीदारी के एजेन्ट के रूप में बीमा-कारोबार कर सकती है। ऐसी (NBFC) जो कुछ पात्रता मानदण्डों जैसे कम से कम 500 करोड़ रुपये की अपनी निधि, निवल मुनाफों के संदर्भ में ट्रैक-रिकॉर्ड, सहायक कम्पनियों का ट्रेक रिकॉर्ड, (पिछला कार्य निष्पादन रिकॉर्ड) अधिकतम 5 प्रतिशत तक का निवल (NPA) रिकॉर्ड आदि को पूरा करती है, जोखिम भागीदारी के साथ संयुक्ता उद्‌यम कम्पनी या बीमा कारोबार स्थापित कर सकती है।

भारतीय रिजर्व बैंक द्‌वारा 3 जनवरी, 2001 को जारी निजी क्षेत्र में नए बैंक के प्रवेश सम्बन्धी दिशा-निर्देशों में अच्छे विगत रिकॉर्ड वाली NBFC को निम्नलिखित मानदण्डों के आधार पर निजी क्षेत्र के बैंक बनने की अनुमति दे दी गई है-

- NBFC की अद्‌यतन तुलन-पत्र के अनुसार कम-से-कम 200 करोड़ रुपए की निवल सम्पत्ति होनी चाहिए, जिसे रूपान्तरण की तारीख से तीन वर्षा के भीतर 300 करोड़ रुपये तक बढ़ाया जाना होगा।
- NBFC को किसी बड़े औद्‌योगिक घराने द्‌वारा प्रमोट किया हु आ नहीं होना चाहिए अथवा स्थानीय, राज्य अथवा केन्द्रीय सरकार सहित, सरकारी प्राधिकरणों के स्वामित्वाधीन / नियत्रणाधीन नहीं होनी चाहिए।
- NBFC को पूर्व वर्ष रेटिंग (अथवा इसके समकक्ष) से कमतर क्रेडिट रेटिंग प्राप्त नहीं होनी चाहिए।
- NBFC का भारतीय रिजर्व बैंक के विनियमों / निर्देशों के अनुपालन और सार्वजनिक जमाओं की वापसी अदायगी में विगत रिकॉर्ड त्रुटिहीन होना चाहिए।
- NBFCs के पास कम-सें-कम 12 प्रतिशत की पूँजी पर्याप्तता होनी चाहिए और इनकी निवल। NPA 5% से अधिक नहीं होनी चाहिए।
- NBFC s के पास कम-से-कम 25 लाख रुपये का शुद्ध निजी कोष (Net Owned Fund) होना रिजर्व बैंक ने अनिवार्य किया है। इस मानक को पूरा न करने वाली गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों को कारोबार करने से प्रतिबन्धित करने की घोषणा रिजर्व बैंक ने फरवरी 2003 में की है।
- NBFCs द्‌वारा सार्वजनिक जमाओं (Deposits) पर अब अधिकतम 11 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ही ब्याज दिया जा सकेगा। अभी तक इसके लिए 125 प्रतिशत की उच्चतम सीमा निर्धारित थी ब्याज की नई उच्चतम सीमा 4 मार्च 2003 से प्रभावी की गई है। ब्याज दर की नई उच्चतम सीमा रूई घोषणा करते हुए रिवर्ज बैंक ने कहा है कि कम्पनियाँ (गैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियाँ) इससे कम ब्याज देने को स्वतंत्र है। ब्याज की यह नई उच्चतम सीमा 4 मार्च, 2003 व इसके पश्चात् स्वीकार की गई या नवीकृत की गई जमाओं पर लागू होगी।

बैंकों में ग्राहक सेवा सुधारने हेतु गोइपोरिया समिति की सिफारिशें

बैंकों में ग्राहक सेवा के गिरते स्तर को सुधारने के तरीके सुझाने के लिए सितम्बर 1990 में भारतीय रिजर्व बैंक द्‌वारा भारतीय स्टेट बैंक के तत्कालीन अध्यक्ष श्री एम.एन. गोइपोरिया की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया था। समिति ने अपनी रिपोर्ट 5 दिसम्बर, 1991 को प्रस्तुत कर दी थी। समिति की मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित हैं-

1. नकद भुगतान को छोड़कर सभी प्रकार के कार्यों के लिए बैंकिंग घण्टों में विस्तार।

2. बैंक स्टाफ के लिए कार्य-घण्टों के प्रारम्भ होने में परिवर्तन, जिससे कि बैंक काउण्टर समय पर खोला जा सके।

3. 2500 रुपए की बजाय 5000 रुपए तक के बाह्य केन्द्र चैकों को तत्काल खाते में जमा करना।

4. बचत खातों पर आज दरों में वृद्धि करना।

5. बैंक जमा राशियों पर कर लाभ देना प्रारम्भ करना।

6. बैंक स्टाफ को सभी स्तरों पर दी गई विवेकाधीन शक्तियों का पूर्ण उपयोग करना।

श्री एस-सी. गुप्ता समिति (2006)

ऑल इण्डिया डेट एण्ड इन्वेस्टमेन्ट सर्वेक्षण 2002 के अनुसार साहूकारों का ग्रामीण साख में भाग 1991 में 17.5 प्रतिशत था वह बढ़कर 2002 में 296 प्रतिशत हो गया। साहूकारों से लिए गये ऋण किसानों में निराशा उत्पन्न करते हैं इस स्थिति का अध्ययन करने के लिए श्री एस. सी. गुप्ता की अध्यक्षता में एक समिति सन् 2006 में बनायी गयी जिसे इस बात का दायित्व सौंपा गया कि वह वर्तमान उधार सम्बन्धी कानूनों का अध्ययन करें व विभिन्न राज्यों में उपलब्ध ऋण सम्बन्धी प्रक्रिया का अध्ययन कर उसमें सुधार के सुझाव दे। समिति की स्थापना के निम्नलिखित उद्देश्य थे -

उद्देश्य

(i) वित्तीय क्षेत्र में वर्तमान में हुए विकास के सन्दर्भ में साहूकारों की कार्यप्रणाली का अध्ययन करना।

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मुद्रा उधार देने के व्यवहारों पर विचार करना तथा भारत के लिए उत्तम व्यवहारों का सुझाव देना।

(iii) भारत के विभिन्न राज्यों में मुद्रा उधार देने तथा कानूनी ढाँचे का अध्ययन करना।

(iv) मुद्रा उधार देने का औपचारिक साख चैनलों के मध्य सम्बन्धों की जाँच करना।

(v) उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये राज्य सरकारों को सुझाव देने हेतु।

सुझाव

(i) ग्रामीण ऋण प्रदान करने में साहूकारों के महत्व पर विचार करते हुए ऋण प्राप्तकर्ता के हित में प्रभावी कानून बनाने की आवश्यकता है। गैर रजिस्टर्ड साहूकारों के लिये कठोर नियम बनाये जाने चाहिए।

(ii) तकनीकी समूह द्वारा यह सुझाव दिया गया है कि उन राज्यों में जहाँ उचित वसूली कानून नहीं हैं वहाँ एक आदर्श वसूली कानून को अपनाया जाना चाहिए ताकि बिना किसी विवाद के समस्याओं का निपटारा किया जा सके।

(iii) 'लाइसेन्स' शब्द से राज्य के नियन्त्रण का आभास होता है, को बदल कर पंजीयन शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(iv) यदि साहूकार अपना पंजीयन नहीं करवाते हैं तो उन्हें दण्डित किया जाना चाहिए।

(v) पंजीयन प्रक्रिया को सरल बनाया जाना चाहिए ताकि असंगठित साहूकार वर्ग पंजीयन के लिए प्रोत्साहित हो सके। साथ ही पंजीयन को तीन वर्षो के एक बार पुन: कराया जाना चाहिए।

(vi) समिति द्वारा राज्य सरकारों को यह सुझाव दिया गया है कि वह सरकारी अधिकारियों के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को पंजीयन अधिकारी नियुक्त कर सकती है। इसके पीछे समिति की मंशा है कि यदि गैर सरकारी व्यक्ति पंजीयन अधिकारी रूप में काम करेगा तो वह ऋणदाता को उचित तरीके से समझाइए का कार्य कर सकेगा।

(vii) ऋण सम्बन्धी प्रक्रिया को ज्यादा पारदर्शी बनाने हेतु ऋणदाता के पंजीयन पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।

(viii) तकनीकी समूह का सुझाव है कि सभी राज्य सरकारों को इस' बात का अधिकार दिया जाना चाहिए कि वह साहू कारों को सभी अथवा कुछ कानूनी धाराओं से मुक्त कर सके।

(ix) साहू कारों को चाहिए कि वे अपने समस्त खातों का उचित तरीके से रख-रखाव करें जैसा कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर किया जाता है। प्रारम्भिक खातों को शुल्क मुक्त या ऋणी से बहु त कम शुल्क लेकर उसे लेनदेन सम्बन्धी प्रपत्र उपलब्ध कराये जाने चाहिए।

(x) समिति का सुझाव है कि किसी नियामक संस्था द्वारा पंजीयक साहू कारों के खातों की समय-समय पर जाँच की जानी चाहिए। इसके लिए कानून में आवश्यक संशोधन किया जाना चाहिए।

(xi) समिति का सुझाव है कि विवादों का जल्दी निपटारा करने के लिये सिविल कोर्ट के अतिरिक्त लोक अदालत तथा न्याय पंचायत जैसी संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए।

(xii) समिति का सुझाव है कि राज्य सरकारों को वस्तु स्थिति की जानकारी हेतु स्वयं सेवी संस्थाओं तथा समुदाय आधारित संगठनों की सहायता लेनी चाहिए।

अमिताभ कुन्डु समिति (2007)

भारत देश में आवास निर्माण सबसे महत्वपूर्ण सम्पत्ति के रूप में जाना जाता है और यह सम्पदा का एक महत्वपूर्ण भाग होता है। आवास निर्माण क्षेत्र में होने वाला कोई परिवर्तन या हलचल अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण बदलाव लाता है। आवास क्षेत्र में होने वाले प्रत्येक गतिविधि वित्तीय क्षेत्र के साथ-साथ समूची आर्थिक गतिविधियों पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। देश में सम्पूर्ण उत्पादन व्यवस्था में आवास निर्माण एक गुणक के रूप में प्रभाव डालता है। आवास निर्माण की तीव्र गति किसी अर्थव्यवस्था के विकास का प्रमुख संकेतक होता है। आवास निर्माण के प्रारंभ के साथ अर्थव्यवस्था में उत्पादन सामग्री से सम्बन्धित उद्योगों का तीव्र गति से विकास होने लगता है। इस सम्बन्ध में भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले आवास निर्माण प्रभाव को जाँचने एवं निर्माण हेतु रिजर्व बैंक के डिप्टी गर्वनर डा. राकेश मोहन द्वारा 30 जुलाई 2007 को एक तकनीकी सलाहकार समूह की स्थापना आवास निर्माण सूचकांक के विकास हेतु प्रो. अमिताभ कुन्डु की अध्यक्षता में की गयी इस समूह को निम्न क्षेत्र के सम्बन्ध में सलाह देने का कार्य सौंपा गया-

– आवास निर्माण सूचकांक के विकास हेतु उचित प्रविधि का चयन करना, आँकडों के एकत्रीकरण की उपयुक्त विधि का चयन करना, आकड़ों का विश्लेष करना ताकि मौद्रिक नीति के निर्माण में सहायता प्रदान की जा सके तथा मौद्रिक नीति के लागू करने हेतु उचित निर्देश प्रदान किये जा सकें।

– दोहरी एजेन्सी या संस्था आवास निर्माण सूचकांक के विकास हेतु किये जाने वाले कार्य के लिए उपयुक्त आदर्श प्रस्तुत करना।
– बाहरी एजेन्सी या संस्था द्वारा किये गये कार्यों का मूल्यांकन करना।
– आवास निर्माण सूचकांक से सम्बन्धित कोई आवश्यक बिन्दु पर विचार करना।

सुझाव -

1. आवास प्रारम्भ सूचकांक के बनाने का उद्देश्य आवास क्षेत्र में होने वाली गतिविधियों में होने वाले परिवर्तन को मापना तथा इससे सम्बन्धित अन्य क्षेत्रों में होने वाली वृद्धि तथा मन्दी की प्रवृत्ति की पहचान करना है।

2. भारत में आवास निर्माण हेतु बनाने की अनुमति अर्थात् अनापत्ति प्रमाण पत्र लेना पड़ता है। यह भी आवास बाजार की मांग तथा पूर्ति को प्रभावित कर्ता है। इस कार्य में कई महीने का समय लग जाता है।

3. भूतकाल के आँकडों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि ऋण प्राप्त करने की औपचारिकता, आवास सामग्री जुटाना तथा समाज के रीतिरिवाज के लिए समय की आवश्यकता होती है।

4. आवास सम्बन्धित संस्थाओं को आवास प्रारम्भ सूचकांक को मुख्य अनुमान के रूप में प्रयोग करना चाहिए। इन संस्थाओं को सूचकांक के साथ अन्य नीति तत्वों के साथ मिलाकर आवास गतिविधि के निश्चित अनुमान लगाने चाहिए।

5. शहरी केन्द्रों में क्षेत्रवार सर्वेक्षण करवा कर नियमित रूप से आवास प्रारम्भ सूचकांक की गणना की जानी चाहिए। यह गणना तीन वर्ष में एक बार की जानी चाहिए।

6. क्षेत्रवार सर्वेक्षण दो भागों, में किया जाना चाहिए। पहले सर्वेक्षण में चयनित केन्द्रों पर भवन अनुमति के सम्बन्ध में आँकड़े एकत्र किये जाने चाहिए। दूसरे सर्वेक्षण में मकान प्रारम्भ का सर्वेक्षण किया जाना चाहिए। दूसरा सर्वेक्षण पहले सर्वेक्षण से तीन या चार वर्ष पूर्व होना चाहिए।

7. समूह के द्वारा यह सुझाव भी दिया गया कि छः मैट्रो केन्द्रों में प्रथम श्रेणी के कस्बों को प्रथम व द्वितीय सर्वेक्षण के लिए चुना जाना चाहिए। बाद में इसमें छोटे कस्बों को भी शामिल किया जा सकता है।

8. समूह के द्वारा यह भी सुझाव दिया गया कि रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के द्वारा इस सूचकांक बनाने के कार्य की प्रगति की देखरेख हेतु एक समिति की स्थापना की जा सकती है। साथ ही इस समिति में CSO के अधिकारी, रजिस्ट्रार जनरल, आवास तथा शहरी निर्धनता निवारण मंत्रालय तथा अन्य सम्बन्धित सरकारी विभागों के विशेषज्ञों को शामिल किया जाना चाहिए।

9. आवास प्रारंभ सर्वेक्षण का कार्य प्रत्येक तीन वर्ष के अन्तराल से किया जाना चाहिए।

10. राष्ट्रीय भवन संगठन में एक सलाहकार समिति की स्थापना की जानी चाहिए जो कि आवास से सम्बन्धित सभी आकड़ों को मिलाकर आवास अनुमति आकड़े प्रस्तुत कर सकें। इस सलाहकार समिति में रिजर्व बैंक, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन, कुछ प्रमुख राज्यों के आर्थिक एवं सांख्यिकी निर्देशालय के सदस्य शामिल किये जाने चाहिए।

श्री जी श्रीनिवासन जनरल मैनेजर ग्रामीण योजना एवं साज विभाग की अध्यक्षता में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में उचित तकनीक तथा ग्राहक सेवा सुधारने हेतु कोर बैंकिंग सोल्यूशनस

(CBS) अपनाने के लिए एक कार्यदल का गठन किया गया। इस कार्यदल का गठन नाबार्ड, स्पॉन्सर बैंक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के सदस्यों को शामिल करते हुए मुख्य बैंकिंग समाधान के लिए योजना तैयार करने के लिए किया गया।

श्री जी श्रीनिवासन की अध्यक्षता में गठित कार्यदल के निम्नलिखित उद्देश्य थे-

(i) व्यवसाय तथा ग्राहक सेवा के सम्बन्ध में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में मुख्य बैंकिंग समाधान की आवश्यकता सुनिश्चित करना।

(ii) स्पॉन्सर बैंक के साथ आवश्यक सुधार के साथ क्षेत्रीय बैंकों में मुख्य बैंकिंग समाधान की सुविधा बढ़ाना।

(iii) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में मुख्य बैंकिंग समाधान की सुविधा को लागू करने की लागत का अनुमान लगाना तथा जहाँ आवश्यक हो प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

(iv) मुख्य बैंकिंग समाधान लागू करने हेतु समय बद्ध कार्यक्रम तैयार करना।

कार्यदल के सदस्यों के द्वारा समय-समय पर अधिकारियों तथा कर्मचारियों के साथ सभाएँ की गई। उसके पश्चात् कार्यदल द्वारा निम्नलिखित सुझाव दिये गये-

1. विभिन्न क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में कम्प्यूटरीकरण के स्तर में महत्वपूर्ण अन्तर हैं अतः तकनीकी योजना बनाते समय इसे ध्यान में रखा जाना चाहिए।

2. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को सेवाओं की विस्तृत श्रृंखला के बेहतर प्रबन्ध नियन्त्रण एवं मॉनीटरिंग हेतु मुख्य बैंकिंग समाधान को अपनाना चाहिए। मुख्य बैंकिंग समाधान को अपनाने से कार्य के वातावरण में एकरूपता, निर्णयों की सूचना, कार्यों का केन्द्रीयकृत प्रोसेसिंग की सूचना, कार्यों का केन्द्रीयकृत प्रोसेसिंग समय पर रिपोर्ट भेजना आदि नियमों की अनुपालना समय पर की जा सकती है।

3. स्पॉन्सर बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के साथ मिलकर मुख्य बैंकिंग समाधान की लागत वहन कर सकते हैं।

4. स्पॉन्सर बैंक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एक ही सेवा प्रदाता से सेवा व्यय बाँटने के आधार पर सेवा प्राप्त कर सकते हैं।

5. स्पॉन्सर बैंक भी क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के लिए सेवा प्रदाता का चयन कर सकते हैं। स्पॉन्सर बैंक अपने लिए अलग सॉफ्टवेयर का विकास कर सकते हैं तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक को वही सॉफ्टवेयर उपलब्ध करवा सकते हैं।

6. सेवा प्रदाता विश्वास योग्य, आसानी से उपलब्ध होने चाहिए।

7. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक में मुख्य बैंकिंग समाधान लाग कराने का दायित्व स्पॉन्सर बैंक का होता है। यह सेवा उनकी आवश्यकतानुसार उपलब्ध करायी जानी चाहिए।

8. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक शाखा की स्थिति के आधार पर आर्थिक सम्बन्धता का विकल्प का चयन भी कर सकते हैं।

9. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को 10 प्रतिशत शाखाएँ ऑन-लाइन बैंकिंग का कार्य कर रही हैं। बाकी शाखाएँ दिन में आवश्यक घण्टों में स्थानीय सुविधाओं के आधार पर ऑन-लाइन कार्य कर सकती हैं।

10. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शाखाएँ दूर दराज क्षेत्रों में स्थित है, जहाँ बिजली की समस्या है, वहाँ मुख्य बैंकिंग समाधान में सौर ऊर्जा का उपयोग किया जा सकता है।

11. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में मुख्य बैंकिंग समाधान को लागू करने की लागत 730.78 करोड़ रूपये अनुमानित की गई है।

12. मुख्य बैंकिंग समाधान अपनाने वाले बैंकों को इस कार्य हेतु आवश्यक कोष उपलब्ध करवाये जायेंगे।

13. स्पॉन्सर बैंक द्वारा मुख्य बैंकिंग समाधान की लागत का 25 प्रतिशत तथा शेष लागत रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के द्वारा वहन की जायेगी।

14. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को मुख्य बैंकिंग समाधान हेतु सौर ऊर्जा प्लाण्ट लगाने के लिए वित्तीय सुविधा भी प्रदान की जायेगी।

15. स्पॉन्सर बैंक द्वारा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के कर्मचारियों तथा अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध करायी जायेगी।

16. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में सूचना प्रौद्योगिकी की आवश्यकता को पूरा करने के लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति की जानी चाहिए।

17. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में जहाँ 100 प्रतिशत शाखाएँ कम्प्यूटरीकृत है वहाँ मुख्य बैंकिंग समाधान को सितम्बर 2009 तक लाग कर दिया जाना चाहिए।

18. जिन बैंकों में कम्प्यूटरीकरण अभी नहीं किया गया है वहाँ इसके लिए योजना तैयार की जानी चाहिए।

19. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को अपनी 25 प्रतिशत शाखाओं में मुख्य बैंकिंग समाधान व्यवस्था को सितम्बर 2009 तक लाग करना चाहिए, 50 प्रतिशत शाखाओं में' इसे सितम्बर 2010 तक लागू करना चाहिए। शेष 25 प्रतिशत शाखाओं में इसे 2011 तक लागू करना चाहिए।

20. सितम्बर 2001 के बाद स्थापित सभी नयी शाखाओं में मुख्य बैंकिंग समाधान व्यवस्था को कार्य के पहले दिन से ही लागू किया जा सकता है।

दीपक मोहन्ती कार्यदल

बैंक वित्तीय साधनों को उधार देकर आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं। उचित दरों पर उधार देकर वित्तीय साधनों का उत्पादक प्रयोग किया जाता है। ब्याज दरों का स्तर एवं ढाँचा आर्थिक कुशलता का प्रमुख मापक होता है। ब्याज दरों का गलत निर्धारण साधनों के गलत आवंटन को बढ़ावा दे सकता है। उधार देने वाली संस्था तथा ऋण लेने वाले ग्राहक दोनों के विचार में बैंकों की उधार दरें सही एवं उचित होनी चाहिए। अधिक ऊँची ब्याज दरें या अधिक नीची ब्याज दरें दोनों ही आर्थिक स्थिरता पर दुष्प्रभाव डालती हैं। ब्याज दरें मौद्रिक नीति के उद्देश्यों के अनुसार तय की जानी चाहिए। ब्याज दरों को तर्कसम्मत बनाने के उद्देश्य से सन् 1994 में प्रमुख उधार दर (PLR) व्यवस्था को अपनाया गया। उधार दरों को रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के नियमन से मुक्त कर दिया गया। बैंचमार्क प्रमुख उधार दर (BPLR) की व्यवस्था को 2003 से अपनाया गया। इस व्यवस्था में बैंक अपने ऋणों की ब्याज दरें स्वयं निर्धारित कर सकते हैं। BPLR को सन्दर्भित दरों के अनुसार प्रयोग में लाया जायेगा तथा ऋणों की ब्याज दरों के अनुसार प्रयोग में लाया जायेगा तथा ऋणों की ब्याज दरों को निर्धारित करने में बैंकों को

स्वतन्त्रता दी जायेगी। लेकिन लोगों का मत है कि बैंक निगमों को ऋण देते समय कम ब्याज दरें तथा कृषि एवं लघु व मध्यम आकार के उद्योगों को ऋणों पर अधिक ब्याज दरें- वसूल रहे हैं। वर्ष 2009-10 में यह भी देखा गया कि बैंक ऋणों का बड़ा भाग बैंचमार्क उधार दरों से नीची दरों पर स्वीकृत किया गया है। बैंचमार्क उधार दरों में पारदर्शिता का अभाव मौद्रिक नीति की क्रियान्विति में बाधक सिद्ध हो रहा है। बैंचमार्क प्रमुख उधार दरों की कमियों को दूर करने के लिए रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा श्री दीपक मोहन्ती की अध्यक्षता में एक कार्यदल नियुक्त किया गया। इसमें 11 सदस्यों तथा 1 सदस्य सचिव की नियुक्ति की गयी। इस कार्य की स्थापना निम्न बिन्दुओं पर विचार हेतु की गयी :-

(i) बैंचमार्क प्रमुख उधार दर के अर्थ पर पुन: विचार करना।

(ii) बैंचमार्क प्रमुख उधार दर की गणना पर पुन: विचार करना।

(iii) प्रमुख बैंकों में प्रमुख उधार दर की भिन्नता।

(iv) अन्तर्राष्ट्रीय सर्वोत्तम व्यवहार के आधार पर उचित ऋण मूल्य व्यवस्था का सुझाव देना।

(v) 2 लाख रूपये के लघु ऋणों तथा निर्यातकों के लिए लागू की गयी ब्याज दरों पर पुन: विचार करना।

(vi) रिटेल ऋणों के लिये तैरती ब्याज दरों के लिए उचित बैंचमार्क दर का सुझाव देना।

कार्यदल द्वारा दिये गये सुझाव

(i) कार्यदल के द्वारा अध्ययन के पश्चात यह पाया गया है कि बैंचमार्क प्रमुख उधार दर के आधार पर ऋण देते समय पारदर्शिता नहीं रखी गयी।

(ii) कार्यदल के अनुसार बैंचमार्क उधार दर व्यवस्था अपने उद्देश्यों से भटक गयी। इसमें परिवर्तन करते समय मौद्रिक नीति में हुए परिवर्तनों को ध्यान में नहीं रखा गया। कार्यदल के अनुसार वर्तमान व्यवस्था में सुधार अथवा नयी व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की गयी। कार्यदल के अनुसार बैंक प्रतियोगिता के दबाव में आकर ऐसी दरों पर ऋण मुहैया करवा रहे हैं जिनका व्यवसायिक दृष्टि से कोई मतलब नहीं था।

(iii) कार्यदल ने व्यापार एवं उद्योग संघ और अन्तर्राष्ट्रीय उत्तम व्यवहार के ध्यानपूर्वक निरीक्षण के बाद बताया कि इस आधार पर व्यवस्था को लागू करने में लाभ है। प्रस्तावित उधार दर व्यवस्था में सभी लागत तत्वों को शामिल किया जायेगा जो उधार लेने में आसानी से समझ सके।

(iv) अगले सुझाव में कार्यदल ने स्पष्ट किया कि आधार दर न्यूनतम दर को दर्शाती है। कोई भी ऋण न्यूनतम दर से नीची दर पर नहीं दिया जाना चाहिए। आधार दर व्यवस्था एक वर्ष या एक वर्ष से अधिक के ऋणों पर लागू होगी।

(v) तैरती दरें ऋण उत्पाद के लिए आधार दर सन्दर्भित दर का कार्य करेगी।

(vi) बैंक कुछ ग्राहकों से अत्यधिक ऊँची ब्याज दर वसूल करते हैं। इस गलत व्यवहार से बचने के लिए बैंकों के लिए आवश्यक है कि वे उधार दरों की सूचना समय-समय पर रिजर्व बैंक को उपलब्ध करवायें। इसके अतिरिक्त बैंकों को अधिकतम तथा न्यूनतम ब्याज दरों की सूचना भी रिजर्व बैंक को देनी चाहिए। इसी के साथ उधार शती में पारदर्शिता भी बरतनी चाहिए।

(vii) कार्यदल ने यह सुझाव भी दिया कि बैंकों के लिए दो कोड बनाये गये हैं। एक बैंक के ग्राहकों के लिए दूसरा सूक्ष्म और लघु उद्योगों के लिए। बैंकों को दोनों के अनुसार सर्तकता से कार्य करना चाहिए। इसी के साथ रिजर्व बैंक चाहता है कि बैंक शिकायतों एवं उनके निवारण का प्रकाशन अपनी वार्षिक प्रतिवेदन में करें।

(viii) बैंकों को वर्तमान बैंचमार्क प्रमुख उधार दरों से आधार दरों को कम रखना चाहिए ताकि साख के प्रवाह को बढ़ाया जा सके। 2 लाख रूपये के ऋणों पर उधार दरों का निर्धारण बैंकों द्वारा किया जा सकता है।

(ix) निर्यात साख का भी विनियमन किया जाना चाहिए। कार्य दल का सुझाव है कि बैंकों द्वारा निर्यातकों से ली जाने वाली ब्याज दरें आधार दरों से अधिक नहीं होनी चाहिए।

(x) शिक्षा ऋणों पर वर्तमान ब्याज दरों में कमी की जानी चाहिए।

17.3 सारांश

राष्ट्रीयकरण के पश्चात् से भारतीय बैंक एक सुदृढ़ वित्तीय संस्थान के रूप में अपनी छाप छोड़ते आ रहे हैं। इन्होंने भारत के आर्थिक विकास में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यद्यपि सरकार के निर्देशित उधार कार्यक्रमों को लागू करने की वजह से इन बैंकों को अनेक बार मुसीबतों का सामना करना पड़ा है किन्तु रिजर्व बैंक के कड़े अनुशासन ने इन बैंकों को भारतीय विकास की जीवन रेखा के रूप में प्रतिस्थापित किया है। भारतीय बैंकों की कार्यप्रणाली में आवश्यक सुधार लाने हेतु रिजर्व बैंक द्वारा समय-समय पर विभिन्न समितियों का गठन किया गया जिनका संक्षिप्त परिचय ऊपर के विवरण से इग्गत हो जाता है।

17.4 शब्दावली

सूचकांक - दो अविधियों के मध्य संख्याओं में होने वाले उतार चढ़ावों की जानकारी प्राप्त करने के लिए श्रृंखलाबद्ध तरीके से प्रयुक्त किए जाने वाले अंकों को सूचकांक कहते हैं।

बैंचमार्क दरें :- बैंच मार्क दरें वे दरें होती हैं जो रिजर्व बैंक द्वारा ऋण प्रदान करने के उद्देश्य से निर्धारित की जाती है।

सूचना प्रौद्योगिकी :- सूचना प्रौद्योगिकी से तात्पर्य कम्प्यूटर व अन्य सहायक उपकरणों की सहायता प्राप्त जानकारी से है।

गैर निष्पादन सम्पत्तियों :- बैंकों की ऐसी परिसम्पत्तियाँ जो अनुत्पादक बन चुकी है तथा उनसे किसी भी प्रकार की वसूली होना असम्भव है।

पूँजी पर्याप्तता मानक - पूँजी पर्याप्तता से तात्पर्य ऐसी पूँजी मानक से है जिसे उस संस्था द्वारा किसी व्यावसायिक सम्पत्ति के सृजन के एक निश्चित स्तर तक अपने पास रखना आवश्यक है।

निर्देशित उधार :- किसी के निर्देश पेर दिए जाने वाले उधार को निर्देशित उधार कहा जाता है।

साहूकार : असंगठित वित्तीय क्षेत्र में उधार देने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों को साहूकार कहा जाता है।

केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन : केन्द्र स्तर पर आँकड़ों व सूचनाओं को एकत्रित करने वाला संगठन केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन है।

आन लाइन बैंकिंग :- नेट बैंकिंग का दूसरा नाम आन लाइन बैंकिंग कहा जाता है

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक :- ग्रामीण ऋणों की व्यवस्था हेतु एक क्षेत्र विशेष में स्थापित बैंक हैं।

सौर ऊर्जा :- सूरज के माध्यम से उत्पादित ऊर्जा को सौर ऊर्जा कहा जाता है।

उधार दर :- वह ब्याज दर जिस पर बैंक अल्पकालीन व दीर्घकालीन ऋण स्वीकृत करते हैं।

रिटेल ऋण :- फुटकर कार्यों हेतु स्वीकृत ऋण रिटेल ऋण कहलाते हैं। बचत खाता - वह खाता जिसमें जनता अपनी बचत जमा करवाती है बचत खाता कहलाता है।

प्राथमिक क्षेत्र - अर्थव्यवस्था में कृषि तथा उसकी सहायक क्रियाओं यथा मछली पालन, पशुपालन, मुर्गीपालन कुटीर उद्योग आदि को प्राथमिक क्षेत्र में शामिल किया जाता है।

तरलता :- हस्तगत रोकड़ को तरलता कहा जाता है.।

बीमार औद्योगिक इकाइयाँ वे इकाइयाँ : वे इकाइयाँ जो लम्बे समय से हानि या घाटे में चल रही हैं, बीमार औद्योगिक इकाइयाँ कही जाती हैं।

बैंकों का विलयन :- कमजोर आर्थिक स्थिति वाले बैंक को लाभप्रद व मजबूत आर्थिक स्थिति वाले बैंक में मिलाने को बैंकों का विलयन कहा जाता है।

राष्ट्रीयकरण :- सरकार द्वारा किसी बैंक के संचालन एवं स्वामित्व को अपने हाथ में लेने को राष्ट्रीय कुछ कहते हैं।

समता पूँजी :- किसी भी संस्था द्वारा पूँजी एकत्र करने हेतु जारी समता अंशों को समता पूँजी कहा जाता है।

बजटीय सहायता :- बैंकों को सरकार द्वारा बजट प्रावधान के माध्यम से दी जाने वाली सहायता बजटीय सहायता कहलाती है।

BOOT: - वर्तमान में नवीन शब्दावली के अनुसार छ००ा से तात्पर्य निर्माण, स्वामित्व, संचालन व हस्तान्तरण से है।

ARF: - बैंकों के गैर निष्पादनीय सम्पत्तियों की वसूली हेतु ऐसेट रिकन्स्ट्रक्शन फण्ड अपनाया गया है।

17.5 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. भारत में रिजर्व बैंक द्वारा बैंकिंग सुधार हेतु गठित श्री जी श्रीनिवासन समिति की स्थापना एवं प्रमुख सुझावों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2. भारत में 1998 में गठित नरसिंहम समिति II के प्रमुख सुझावों का वर्णन कीजिए।

17.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय अर्थव्यवस्था दत्ता एवं सुन्दरम
2. रिजर्व बैंक द्वारा गठित समितियों की रिपोर्ट

इकाई 18

विकास बैंकिंग : अवधारणा, विभिन्न बैंकिंग संस्थाऐं, कार्यरत विकास बैंकों की समस्याऐ इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 विकास बैंकिंग से अभिप्राय
18.3 विकास बैंकिंग के कार्य, आवश्यकता एवं महत्व
18.4 भारत में बैंकिंग संस्थाएँ
18.5 भारत में विकास बैंक
18.6 भारतीय औद्योगिक वित्त निगम
18.7 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक
18.8 औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम
18.9 राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक
18.10 भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक
18.11 भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक
18.12 राज्य वित्त निगम एवं राज्य औद्योगिक विकास निगम
18.13 विकास बैंकों की समस्याएँ एवं समाधान
18.14 सारांश
18.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
18.16 अभ्यास प्रश्न
18.17 संदर्भ ग्रंथ

18.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप

- विकास बैंकिंग का अर्थ एवं उसकी विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- विकास बैंकों द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्य तथा उनकी आवश्यकता एवं महत्व को जान सकेंगे।
- भारत में कार्यरत विकास बैंकों के बारे में सामान्य जानकारी ले पायेंगे तथा
- विकास बैंकों को कार्य संचालन में आने वाली समस्याओं तथा उनके निराकरण के उपायों को समझने में समर्थ हो सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

किसी देश के सन्तुलित एवं समन्वित आर्थिक विकास के लिए कुशल उद्यमिता एवं पर्याप्त दीर्घकालीन पूंजी की उपलब्धता आवश्यक होती है। देश में कार्य कर रही सामान्य बैंकिंग

संस्थाएँ उद्योग तथा व्यवसाय की अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता पूरी करती हैं। अत: देश में समुचित औद्योगिक विकास हेतु दीर्घकालीन वित्त की व्यवस्था करने तथा उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष वित्तीय संस्थाएँ बनाई जाती हैं, जिन्हें विकास बैंक के नाम से जाना जाता है। भारत में भी स्वाधीनता के पश्चात विकास हेतु दीर्घकालीन वित्त की पूर्ति के लिए अनेक विशिष्ठ वित्तीय संस्थाएँ स्थापित की गई, जिन्हें भारत के विकास बैंक कहा जाता है।

विकास केन्द्रित परियोजनाओं के वित्त पोषण हेतु स्थापित वित्तीय संस्थाओं के वित्तीय लेन देन का कार्य विकास बैंकिंग कहलाता है। विकास बैंकिंग राष्ट्र के विकास को गति प्रदान करने तथा सन्तुलित क्षेत्रीय विकास के लिए स्थापित परियोजनाओं के लिए वित्त, तकनीकी व आवश्यक सुविधाओं के जुटाने की प्रकिया है। विकास बैंकिंग में वित्तीय सहायता अल्पकाल के लिए न होकर मध्यम या दीर्घकाल लगभग 10-15 वर्ष की अवधि के लिए होती है।

18.2 विकास बैंक से अभिप्राय

ऐसी वित्तीय संस्थाएँ जो वृहद आर्थिक परियोजनाओं के लिए दीर्घकालीन ऋण, आवश्यक तकनीकी सलाह एवं परामर्श देने तथा उद्यमिता विकास का कार्य करती हैं, विकास बैंक कहलाती हैं। विकास बैक औद्योगिक उपक्रमों को ऋण प्रदान करने वाली अन्य वित्तीय संस्थाओं को भी ऋण देने का कार्य करती हैं। विकास बैंक उन परियोजनाओं के लिए तथा उस अवधि तक के लिए वित्तीय सुविधा उपलब्ध कराते हैं जिनके लिए व्यापारिक बैंकों के द्वारा वित्त कि की आपूर्ति करना संभव नही होता है। **बोस्की के अनुसार "बैंक योग्य आर्थिक विकास परियोजनाओं के लिए मध्यमकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण एवं संबंधित सेवाएँ प्रदान करने वाली वित्तीय मध्यवर्ती संस्थाएँ विकास बैंक कहलाती हैं।**

विकास बैंक की विशेषताएँ -

(1) विकास बैंक विकास परियोजनाओं के लिए मध्यमकालीन एवं दीर्घकालीन वित्त की पूर्ति करते हैं।

(2) विकास बैंक किसी परियोजना के तकनीकी एवं वित्तीय संभाव्यता का मूल्यांकन करने में भी सहयोग एवं परामर्श देते हैं।

(3) विकास बैंक देश में उद्यमिता विकास को प्रोत्साहन देने का कार्य भी करते हैं।

(4) विकास बैंक पिछड़े हुए क्षेत्रों में औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित कर सन्तुलित विकास का मार्ग प्रशस्त करते है।

(5) इन बैंकों का मुख्य उद्देश्य लाभ अर्जित करना न होकर समाज एवं राष्ट्रहित की पूर्ति करना है।

विकास बैंकों के कार्य -

विकास बैंकों की स्थापना मूल रूप में अधिकतम आर्थिक विकास की अवधारणा के आधार पर की गई है। अत: वे सभी कार्य जो औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक है, विकास बैंकों के द्वारा किये जाते हैं। विकास बैंकों द्वारा किये जाने वाले प्रमुख कार्य निम्न प्रकार हैं :-

1. उद्योगों को मक्का एवं दीर्घकालीन ऋण प्रदान करना।
2. औद्योगिक एवं व्यापारिक कम्पनियों में अंशों का अभिगोपन करना।

3. अंशपत्रों, ऋणपत्रों एवं बन्धपत्रों का निर्गमन करना।
4. औद्योगिक तथा व्यापारिक संस्थाओं के लिए ऋणों की गारण्टी देना।
5. देश में पूंजी बाजार के विकास का कार्य करना।
6. देश में नवीन औद्योगिक इकाइयों की स्थापना के लिए आवश्यक तकनीकी एवं वित्तीय परामर्श देने का कार्य करना।
7. पहले से स्थापित औद्योगिक इकाइयों को आधुनिकीकरण के कार्य हेतु वित्तीय एवं तकनीकी सहायता तथा परामर्श देना।
8. स्थापित औद्योगिक इकाइयों के तकनीकी उन्नयन के लिए वित्तीय सहायता करना।
9. देश में उद्यमिता विकास के लिए प्रशिक्षण एवं परामर्श देने हेतु कार्य शालाएँ आयोजित करना।
10. औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए क्षेत्रों में उद्योग स्थापना के लिए विशेष ऋण सुविधाएँ प्रदान कर औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करना।
11. देश में आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रण करने के लिए लघु उद्यमियों को प्रोत्साहित करना।
12. देश में उपलब्ध संसाधनों को कुशलतम उपयोग संभव बनाना।

इस प्रकार विकास बैंक देश के समन्वित आर्थिक विकास के लिए विभिन्न कार्य सम्पादित करते हैं।

18.3 विकास बैंकों की आवश्यकता एवं महत्व

भारत सरीखी विकासशील अर्थव्यवस्था के विकास में विकास बैंकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विकास बैंक आर्थिक विकास में बाधक कारणों का निराकरण करके विकास की गति तीव्र करने में सहयोग करते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में विकास बैंकों की भूमिका को निम्न बिन्दुओं से समझा जा सकता है -

1. **विकास हेतु आवश्यक वित्त की व्यवस्था करना** - विकास बैंक वृहद् औद्योगिक परियोजनाओं के लिए आवश्यक वित्त का प्रबन्ध करते हैं। बड़े उद्योगों की स्थापना के लिए बड़ी मात्रा मे पूंजी की आवश्यकता होती है, साथ ही इन उद्योगों को स्थापित कर चालू करने में लम्बा समय लगने के कारण इन से प्राप्त होने वाला लाभ भी दीर्घावधि बाद प्राप्त होता है। अत: निजी उद्यमी को वृहत औद्यौगिक इकाई स्थापित करने में प्रोत्साहित करने के लिए विकास बैंक पर्याप्त पूंजी की व्यवस्था करने में सहयोग करते हैं।

2. **उद्यमिता विकास में सहयोग** - विकास बैंक देश के युवा लोगों में उद्यमिता कौशल का विकास करने में सहयोग करते हैं। इस हेतु विकास बैंक समय-समय पर नये उद्यमियों के लिए प्रशिक्षण कार्यशालाएँ आयोजित करते हैं। इन कार्यशालाओं में युवा उद्यमियों को नये उद्योग स्थापित करने की प्रकिया, संभाव्यता रिपोर्ट बनाने, संभावित जोखिम व लाभ का अनुमान लगाने को प्रक्रिया सिखलाई जाती है। इन सबसे युवा उद्यमियों में उद्यमिता कौशल का विकास होता है और उनमें नये उद्योग स्थापित करने की प्रेरणा जाग्रत होती है।

3. **संतुलित क्षेत्रीय विकास** - विकास बैंक देश के पिछड़े हुए क्षेत्रों का सर्वेक्षण कर वही उपलब्ध कच्चे माल व अन्य आवश्यक सुविधाओं की जानकारी जुटाने में सहयोग करते हैं। पिछड़े

हुए क्षेत्रों में उपलब्ध संसाधनों पर आधारित उद्योगों के विकास की संभाव्यता का परीक्षण कर उन क्षेत्रों के विकास में विकास बैंक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक ने 1970 से संतुलित क्षेत्रीय विकास के लिए इस प्रकार के सर्वेक्षण का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। इस सर्वेक्षणों के आधार पर ही भारत सरकार ने 1983 में 83 ऐसे जिले चिन्हित किये जिनमें कोई हे, हम या बड़ा उद्योग नहीं था।

4. **उद्योगों के आधुनिकीकरण व विवेकीकरण में सहयोग** - भारत में अनेक औद्योगिक एक इकाइयों में पुरानी मशीनों द्वारा उत्पादन किये जाने के कारण उत्पादन की लागत अधिक आती है तथा उत्पाद की गुणवत्ता घटिया होती है। इन औद्योगिक इकाइयों में आधुनिकीकरण व नवीनतम मशीनों की स्थापना के लिए विकास बैंक दीर्धवधि ऋण प्रदान करते हैं। इस प्रकार उद्योगों के आधुनिकीकरण करा कम लागत पर अच्छी किस्म का उत्पादन संभव बनाने में विकास बैंकों का योगदान महत्वपूर्ण है।

5. **पूंजी बाजार का विकास** - विकास बैंक देश में अंशों एवं ऋणपत्रों के अभिगोपन एवं व्यवस्थित पूंजी बाजार के विकास में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

6. **विदेशी पूंजी एवं तकनीक प्राप्त करने में सहयोग -** विकास बैंक उद्योग एवं व्यवसाय के विकास हेतु विदेशी एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से पूंजी एवं तकनीक उपलब्ध कराने मैं भी सहायता प्रदान करते हैं। इस दृष्टि से ये बैंक विदेशों एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से प्राप्त ऋणों के लिए गारण्टी देने का कार्य करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विकास बैंक देश में आर्थिक विकास की गति तीव्र करने पूंजी निर्माण की दर बढ़ाने, सन्तुलित क्षेत्रीय विकास को संभव बनाने तथा व्यवस्थित पूंजी बाजार के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं।

बोध प्रश्न क

(1) उद्योग तथा व्यवसाय की अल्पकालीन वित्त की पूर्ति किन संस्थाओं द्वारा की जाती है?

(2) विकास बैंक किसे कहते हैं?

(3) विकास बैंकिंग क्या है?

(4) किन वित्तीय संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना न होकर राष्ट्रहित की पूर्ति करना है?

(5) सन्तुलित क्षेत्रीय विकास का अर्थ बताइये।

(6) बताइये कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं या असत्य -

(i) सामान्य बैंकिंग संस्थाएँ उद्योग एवं व्यवसाय के लिए दीर्धकालीन ऋण की सुविधा देते हैं।

(ii) विकास बैंकिंग में वित्तीय सहायता दीर्घकाल के लिए प्रदान की जाती है।

(iii) विकास बैंक उदयमी को केवल ऋण देने का कार्य करते हैं, उसे तकनीकी परामर्श देने का कार्य नहीं करते हैं।

(iv) विकास बैंकों का मुख्य उद्देश्य लाभ अर्जित करना होता है।

(v) विकास बैंक अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं से लिए गये ऋणों की गारण्टी भी देते हैं।

18.4 भारत में बैंकिंग संस्थाएँ

बैंकिंग संस्थाओं का देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान होता है। भारत में अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की बैंकिंग आवश्यकता की पूर्ति के लिए शीर्ष स्तर पर अलग अलग बैंकिंग संस्था कार्य कर रही है। देश की सम्पूर्ण बैंकिंग गतिविधियों के नियमन एवं नियंत्रण के लिए केन्द्रीय बैंक के रूप में भारतीय रिजर्व बैंक कार्य करता है। औद्योगिक क्षेत्र में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड), अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में भारतीय आयात निर्यात बैंक, लघु उद्योगों के विकास के लिए भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिडबी) तथा गृह निर्माण के क्षेत्र में राष्ट्रीय आवास बैंक शीर्ष बैंकिंग संगठन के रूप में अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। ये सभी शीर्ष बैंक व्यापारिक बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं को उनके द्वारा स्वीकृत ऋणों के लिए पुनर्वित्त की सुविधा तथा अन्य आवश्यक वित्तीय सेवाएँ प्रदान करते हैं।

भारत में कार्य करने वाली बैंकिंग संस्थाओं को हम निम्न रूप में आसानी से समझ सकते हैं :-

1. **केन्द्रीय बैंक** - भारतीय रिजर्व बेक केन्द्रीय बैंक के रूप में देश की सम्पूर्ण बैंकिंग प्रकिया का नियंत्रण व निर्देशन करता है।
2. **व्यापारिक बैंक** - सामान्य बैंकिंग कार्य करने ताली ये संस्थाएँ कुछ सार्वजनिक क्षेत्र में तथा कुछ निजी क्षेत्र में कार्य करती हैं। ये व्यापार तथा व्यवसाय के लिए आल्पकालीन तथा मध्यकालीन ऋण सुविधा प्रदान करते हैं।
3. **सहकारी बैंक** - सहकारी क्षेत्र में स्थापित बैंक मुख्य रूप से कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए अल्पकालीन वित्तीय सुविधा उपलब्ध करवाते हैं।
4. **भूमि विकास बैंक** - कृषि क्षेत्र में भूमि विकास के लिए दीर्घकालीन ऋण देने का महत्वपूर्ण कार्य इन बैंकों द्वारा किया जाता है।
5. **निवेश बैंक** - देश में निवेश के लिए दीर्घकालीन वित्त की पूर्ति करने वाली संस्थाएँ जैसे भारतीय जीवन बीमा निगम तथा भारतीय युनिट ट्रस्ट इस श्रेणी में आती है।
6. **विकास बैंक** - आर्थिक विकास के लिए दीर्घकालीन वित्त की आपूर्ति करने वाली संस्थाएँ विकास बैंकों में सम्मिलित की गई हैं।

18.5 भारत में विकास बैंक

भारत में दीर्घकालीन औद्योगिक वित्त की पूर्ति करने तथा नवीन उद्योगों की स्थापना हेतु आवश्यक तकनीकी एवं प्रबन्धकीय मार्गदर्शन देने के लिए अनेक विशेष वित्त।,य संस्थान जिन्हें विकास बैंकिंग में शामिल किया जाता है स्थापित किये गये हैं। वर्तमान में देश में इस प्रकार की लगभग 70 वित्तीय संस्थाऐं कार्य कर रही हैं, जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण निम्नलिखित हैं :-

1. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम;

2. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक;
3. भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम.
4. भारतीय आयात - निर्यात बैंक
5. राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक;
6. भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक,
7. राज्य के वित्त निगम;
8. भारतीय औद्योगिक विनियोग बैंक,
9. जोखिम पूंजी एवं तकनीकी निगम लिमिटेड आदि;

इन विभिन्न वित्तीय संस्थाओं का अध्ययन हम 2 भागों - राष्ट्रीय -स्तर एवं राज्य स्तर पर विभाजित करके कर सकते है -

(अ) **राष्ट्रीय स्तर के विकास बैंक** - राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित विशिष्ट वित्तीय संस्थाऐं जो विकास बैंकों के रूप में जानी जाती है, उनमें कुछ का विवरण निम्न प्रकार है:-

18.6 भारतीय औद्योगिक वित्त निगम

देश में उद्योगों को मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने के लिए औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना जुलाई 1948 में की गई थी। यह भारत में अपनी तरफ का पहला बैंक था। भारतीय औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना भारत सरकार द्वारा 1948 में एक विशेष अधिनियम बनाकर की गई थी। इस निगम के क्रियाकलापों को और अधिक व्यापक बनाने के लिए इसे 1 जूलाई 1993 से सार्वजनिक कम्पनी के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। इस निगम की प्रदत्त पूंजी प्रारम्भ में 5 करोड़ रूपये थी जिसे बढ़ाकर 31 मार्च 1999 में 790 करोड़ रूपये कर दिया गया। वर्तमान में इसकी अधिकृत पूंजी 3000 करोड़ रू है। निगम औद्योगिक उपक्रमों को ऋण, वित्तीय सेवाएँ तथा औद्योगिक विकास के लिए प्रोत्साहन मूलक कार्य करता है। निगम द्वारा किये जाने वाले मुख्य कार्य निम्न लिखित हैं :-

(i) निगम द्वारा औद्योगिक उपक्रमों की दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति हेतु ऋण देने तथा उन के द्वार जारी किये जाने वाले ऋणपत्रों को स्वीकार किया जाता हे।

(ii) यह निगम औद्योगिक उपक्रमों द्वारा व्यापारिक बैंकों से लिये गये ऋणों तथा विदेशी मुद्रा में लिये गये ऋणों की गारण्टी देने का कार्य भी करता है।

(iii) निगम औद्योगिक उपक्रमों द्वारा जारी किये जाने वाले अंश एवं ऋणपत्र निर्गमनों का अभिगोपन कार्य भी करता है।

(iv) निगम औद्योगिक संस्थाओं द्वारा जारी अंशों एवं ऋणपत्रों में प्रत्यक्ष विनियोग भी करता है।

(v) निगम द्वारा नई औद्योगिक कम्पनियों के प्रवर्तन में आवश्यक सहयोग एवं परामर्श देने का कार्य भी किया जाता है।

निगम के वित्तीय स्त्रोत - निगम के वित्तीय स्त्रोतों में मुख्य रूप से अंश पूंजी, ऋणपत्र, भारतीय रिजर्व बैंक से ऋण तथा अन्य विदेशी संस्थाओं से प्राप्त ऋण प्रमुख हैं। निगम की

प्रदत्त पूंजी स्थापना के समय 5 करोड़ रूपये थी जिसे विभिन्न चरणों में बढ़ाकर 31 मार्च 2004 में 1064 करोड रूपये कर दिया गया। निगम की अंश पूंजी में मुख्य रूप से भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, व्यापारिक बैंक, भारतीय जीवन बीमा निगम तथा सहकारी बैंकों का योगदान है। वर्तमान में निजी क्षेत्र की भी निगम की अंश पूंजी में हिस्सेदारी है।

निगम का प्रबन्ध संचालन - इस निगम का संचालन संचालक मण्डल द्वारा किया जाता है जिसमे 13 सदस्य होते हैं। अध्यक्ष का मनोनयन भारत सरकार द्वारा किया जाता है जो कि पूर्णकालिक एवं सवेतनिक होता हे। निगम में चार संचालक भारतीय औद्योगिक विकास बैंक द्वारा, दो संचालक भारत सरकार द्वारा तथा शेष का मनोनयन व्यापारिक बैंकों तथा बीमा निगमों द्वारा किया जाता है। निगम का मुख्य कार्यालय दिल्ली में है।

निगम ने अपने कार्य संचालन को सुविधाजनक बनाने के लिए प्रधान कार्यालय के साथ ही क्षेत्रीय केन्द्र भी स्थापित किये हुए हैं। क्षेत्रीय केन्द्रों में कार्य का संचालन कार्यकारी अधिकारियों की देखरेख में सम्पन्न होता है। निगम द्वारा ऋण देने के कार्य में आवश्यक तकनीकी तथा वित्तीय पहलुओं के अध्ययन में सहायता के लिए विभिन्न समितियाँ बनाई जाती हैं जो मुख्यतः रसायन, इंजीनियरिंग, वस्त्र उद्योग, चीनो उद्योग, होटल उद्योग आदि से संबंधित होती है। निगम द्वारा मुख्य रूप से निर्माण कार्य, खनन, जहाजरानी, ऊर्जा उत्पादन एवं वितरण होटल उद्योग आदि में संलग्न कम्पनियों को दीर्घकालीन एवं मध्यमकालीन ऋण स्वीकृत किया जाता है। निगम द्वारा किसी उपक्रम के ऋण आवेदन पर विचार करते समय मुख्य रूप में निम्न बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाता है:-

(i) राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए उस उद्योग विशेष का महत्व;
(ii) संबंधित परियोजना की कुल लागत तथा उसकी चल पाने तथा सफल होने की संभाव्यता का अध्ययन
(iii) परियोजना के प्रबन्धन की कार्य कुशलता व सामर्थ्य;
(iv) परियोजना संचालन के लिए आवश्यक कच्चे माल तथा तकनीकी कार्य बल की उपलब्धता तथा
(v) परियोजना के उत्पाद की देश में आवश्यकता तथा गुणवत्ता।

निगम की कार्य प्रगति का मूल्यांकन - 1948 में स्थापित यह निगम अपना लगभग 60 वर्ष का कार्यकाल पूर्ण कर चुका है। प्रारम्भ में जहाँ बाजार में उद्योग एवं व्यापार की मांग की तुलना में वित्त की पूर्ति सीमित थी, निगम ने अपने ऋण वितरण द्वारा उद्योग एवं व्यापार की दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकता को पूरा करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं। निगम द्वारा 1960-81 में जहाँ 210 करोड़ रूपये के ऋण स्वीकृत किये गये जो आगे चलकर बढ़कर 2000 करोड़ रूपये से अधिक हो गये। स्थापना के बाद में ही यह निगम औद्योगिक उपक्रमों की दीर्घकालीन ऋण की आवश्यकता की पूर्ति में अधिकाधिक सहयोग कर रहा है। वित्त निगम ने पिछड़े क्षेत्रों तथा उद्योगों में विविधीकरण को प्रोत्साहन देने हेतु आर्थिक सहायता प्रदान की है। निगम द्वारा हाल के वर्षो में अनेक प्रोत्साहन मूलक योजनाएँ भी प्रारम्भ की गई हैं, जिनमें मुख्य रूप से निम्न योजनाऐं महत्वपूर्ण हैं :-

1. महिला उद्यमियों को प्रोत्साहन देने के लिए ऋण पर काज में छूट;

2. लघु उद्योगों के प्रोत्साहन के-- लिए कन्सल्टेन्सी शुल्क में छूट की योजना;
3. छोटे उद्योगों को आधुनिकीकरण के लिए प्रोत्साहन एवं
4. उद्योगों में प्रदूषण नियंत्रण की योजना हेतु विशेष ऋण की सुविधा आदि।

निगम द्वारा विभिन्न औद्योगिक समस्याओं के निराकरण के लिए समय समय पर अनेक कार्यशालाओं तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किये जाते हैं। प्रबन्धकीय कौशल में अभिवृद्धि हेतु निगम द्वारा प्रबन्ध विकास संस्थान की भी स्थापना की गई है। निगम द्वारा राज्य स्तरीय वित्तीय संस्थाओं को तकनीकी परामर्श, औद्योगिक विकास संबंधी योजनाओं के लिए मार्गदर्शन का कार्य भी किया गया है।

निगम द्वारा एक सूचना कोष भी बनाया गया है जिसमें उद्योगों से संबंधित विभिन्न जानकारियाँ दी गई हैं. जिनका उपयोग उद्यमियों द्वारा उद्योग स्थापना में किया जा सकता है।

18.7 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना जुलाई 1964 में भारतीय रिजर्व बैंक को एक सहायक संस्था के रूप में की गई थी, जिसे 16 फरवरी 1976 में एक स्वायत्त संस्था के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। यह बैंक मुख्य रूप से औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से स्थापित किया गया।

औद्योगिक विकास बैंक की अधिकृत पूँजी प्रारम्भ मे 50 करोड़ रूपये थी, जिसमें समय समय पर वृद्धि की जाती रही है। वर्तमान में इसकी पूँजी बढ़ाकर 200 करोड़ रूपये कर दी गई। यह बैंक केन्द्र सरकार एवं भारतीय रिजर्व बैंक से भी क्या प्राप्त करने तथा जनता से न्यूनतम व 2 माह की अवधि के लिए जमाएँ प्राप्त करने के लिए अधिकृत है। अक्टूबर 1994 में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक अधिनियम ,मई संशोधन कर इसे पूंजी बाजार में अपने अंश निर्गमन के लिए भी अधिकृत कर दिया गया। जुलाई 1995 में इस बैंक के द्वारा प्रथम बार सार्वजनिक निर्गमन जारी किया गया।

उद्देश्य - 1. औद्योगिक विकास के वातावरण को प्रोत्साहित करना।
2. औद्योगिक वित्त प्रदान करने वाली विभिन्न संस्थाओं के कार्य में समन्वय करना।
3. देश में उद्यमशीलता का विकास व उन्नयन करना।
4. औद्योगिक उपक्रमों के लिए मर्चेन्ट बैंकिंग, ऋणपत्र ट्रस्टीशिप तथा विदेशी विनिमय में सहयोग करना।
5. औद्योगिक वित्त की पूर्ति के साथ ही अन्य वित्तीय सेवाएँ प्रदान करना।

औद्योगिक विकास बैंक उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए निम्नलिखित कार्य सम्पादित करता है -

(A) उद्योगों को मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन वित्त प्रदान करना - यह कार्य प्रत्यक्ष ऋण प्रदान करने, औद्योगिक उपक्रमों की अंशपूंजी तथा ऋण पूँजी में प्रत्यक्ष विनियोग द्वारा तथा अंशों एवं ऋणपत्रों के अभिगोपन के माध्यम से किया जाता है।

(B) औद्योगिक ऋणों को पुनर्वित्त करना - वित्तीय संस्थाओं तथा व्यापारिक एवं सहकारी बैंकों द्वारा औद्योगिक उपक्रमों दिये गये मध्यम एवं दीर्घकालीन ऋणों के लिए यह बैंक पुनर्वित्त की सुविधा प्रदान करता है।

(C) ऐसे उद्यमी जिनके पास नया उद्योग स्थापित करने के लिए प्रारम्भिक पूंजी की व्यवस्था नहीं है, यह बैंक मूल पूँजी योजना के अन्तर्गत पूँजी जुटाने में सहयोग करता है।

(D) औद्योगिक परियोजनाओं की जाँच, सर्वेक्षण तथा तकनीकी एवं आर्थिक संभाव्यता का परीक्षण करने में भी इस बैंक द्वारा सहयोग एवं परामर्श दिया जाता है।

(E) बैंक द्वारा पिछड़े हुए क्षेत्रों में औद्योगिक विकास के लिए रियायती दर पर ऋण स्वीकृत किया जाता है।

पूंजी बाजार के आधुनिकीकरण गई लिए राष्ट्रीय शेयर बाजार का निर्माण भी औद्योगिक विकास बैंक ने ही किया है।

लघु उद्योगों के लिए वित्त की पूर्ति हेतु इस बैंक द्वारा अपनी सहयोगी संस्था के रूप में भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की भी स्थापना की गई है।

प्रबन्ध संचालन - भारतीय औद्योगिक विकास बैंक का प्रबन्ध संचालन 22 सदस्यीय संचालक मण्डल द्वारा किया जाता है। संचालक मण्डल का नेतृत्व एक पूर्णकालिक अध्यक्ष करता है। जिसकी नियुक्ति भारत सरकार द्वारा की जाती है। संचालक मण्डल में केन्द्र सरकार, वित्तीय संस्थाओं, भारतीय रिजर्व बैंक, सहकारी बैंकों तथा राज्य वित्त निगमों से प्रतिनिधि मनोनीत किये जाते हैं । इनके अतिरिक्त औद्योगिक क्षेत्र से अनुभवी 5 सदस्यों का मनोनयन भी संचालक मण्डल में किया -जाता है। औद्योगिक विकास बैंक में दिन प्रतिदिन के कार्य संचालन के लिए अध्यक्ष सहित 10 संचालकों की पत्र कार्यकारी समिति बनाई जाती है।

प्रगति - औद्योगिक विकास बैंक ने देश में पैट्रो केमीकल रासायनिक खाद, मशीनरी. कपड़ा, इस्पात, सीमेण्ट और कागज के उत्पादन से संबंधित उद्योगों 'ले विशेष रूप से आर्थिक सहायता प्रदान की है। 1981 में बैंक द्वारा 1698 करोड़ रूपये के ऋण स्वीकृत किये गये थे, जो 2000-01 में बढकर 22418 करोड़ रूपये हो गये। वर्ष 2003-04 में स्वीकृत ऋणों की राशि 5631 करोड रूपये रही जो 2005-06 में बढ़कर 27442 करोड़ रू हो गई।

बोध प्रश्न ख

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये -

(a) भारत में बैंकिंग नियमन व नियंत्रण का कार्य................................द्वारा किया जाता है।

(b) अन्तराष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में भारत का शीर्ष बैंक..है।

(c) भारत में सबसे पहले स्थापित विकास बैंक................................‖...............................है।

(d) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम का मुख्य कार्यालय..में है।

(e) प्रारम्भ में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना ....बैंक की एक सहायक संस्था के रूप में की गई थी।

2. बताइये कि निम्न लिखित कथन सत्य हैं या असत्य

(a) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक वर्तमान में भारतीय रिजर्व बैंक की एक सहायक संस्था है।

(b) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक पूंजी बाजार से अंश निर्गमन द्वारा धन जुटाने के लिए अधिकृत है।

(c) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम देश का पहला विकास बैंक है।

(d) गृह निर्माण के क्षेत्र में ऋण प्रदान करने वाली शीर्ष संस्था राष्ट्रीय आवास बैंक है।

18.8 भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम (आई सी आई सी आई)

भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम की स्थापना जनवरी 1955 में भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत की गई थी। यह देश का निजी क्षेत्र का सबसे बढ़ा विकास बैंक है। इस निगम की स्थापना विश्व बैंक के सहयोग से की गई थी। उस समय विश्व बैंक औद्योगिक विकास के लिए वित्तीय सहायता किसी निजी क्षेत्र की संस्था द्वारा सहायता हेतु आवेदन करने पर ही स्वीकृत करता था। इसी कारण इस निगम की स्थापना निजी क्षेत्र में की गई। यद्यपि यह निगम निजी क्षेत्र में स्थापित किया गया है परन्तु इसकी स्थापना में भारत सरकार की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसकी प्रदत्त पूँजी में 40 प्रतिशत हिस्सेदारी भारतीय बैंकों के पास है, जबकि विश्व बैंक एवं अन्य विदेशी वित्तीय संस्थाओं की हिस्सेदारी केवल 11 प्रतिशत है। निगम की अंश पूजी में बीमा कम्पनियों तथा सामान्य जनता की भी पर्याप्त हिस्सेदारी है।

आई सी आई सी आई के उद्देश्य - यह निगम निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्थापित किया गया है -

1. नवीन उद्योग स्थापित करने को प्रोत्साहित करना।
2. पहले से स्थापित उद्योगों में विस्तार व आधुनिकीकरण को प्रोत्साहित करना।
3. विनियोगों को प्रेरित कर वित्तीय बाजार का विस्तार करना।
4. उद्योगों में तकनीकी एवं प्रबन्धकीय कौशल को बढ़ाना।
5. देश में रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना।

निगम के कार्य - उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निगम द्वारा निम्न कार्य सम्पादित किये जाते हैं :-

1. निगम नये तथा पहले से स्थापित उद्योगों को मध्यम तथा दीर्घकालीन ऋण - भारतीय मुद्रा तथा विदेशी मुद्रा दोनों में प्रदान करता है।
2. निगम कम्पनियों के अंश तथा ऋण निर्गमन का अभिगोपन कार्य भी करता है।
3. निगम कम्पनियों की वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए ऋण स्वीकृत करने के अतिरिक्त उनकी अंश तथा ऋण पूंजी में भी आवश्यकतानुसार प्रत्यक्ष विनियोग करता है।
4. निगम औद्योगिक उपक्रमों द्वारा स्वदेशी व विदेशी वित्तीय संस्थानों से लिये गये ऋणों की गारण्टी देने का कार्य भी करता है।
5. निगम आवश्यकतानुसार औद्योगिक जगत को अनेक प्रकार की वित्तीय सेवाएँ भी प्रदान करता है।
6. निगम द्वारा औद्योगिक उपक्रमों के कर्मचारियों के प्रबन्धकीय एवं तकनीकी कौशल में वृद्धि के लिए प्रशिक्षण कार्यशालाएँ आयोजित करना।

7. नवीन उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहित करने के लिए प्रवर्तन में सहयोग एवं मार्गदर्शन करना।

वर्तमान में यह निगम 12 सहयोगी संस्थाओं को अपने में समाहित कर विपणन कार्य, निवेश कार्य, अभिगोपन बैंकिंग, बीमा आदि कार्य सम्पादित करता है। निगम की ही संस्था आई सी आई सी आई बैंक निजी क्षेत्र का सबसे बड़ा नवोन्मेशी बैंक है जो कि 1994 से जनता को उच्च स्तर की बैंकिंग सेवाएँ प्रदान कर रहा है।

भारतीय कॉरपोरेट जगत को उच्च स्तर की रेटिंग सुविधा प्रदान करने के लिए निगम ने भारतीय यूनिट ट्रस्ट के सहयोग से क्रिसिल (CRISIL) नाम की एजेंसी भी बनाई है। देश में वाणिज्यक ऊर्जा के क्षेत्र में शोध एवं तकनीक के विकास के लिए 20 मिलियन डालर की अमेरिकी मदद से एक विशेष कार्य भी निगम द्वारा चलाया गया है।

निगम की प्रगति की समीक्षा - निगम औद्योगिक उपक्रमों को वित्तीय सहायता देने में अपनी स्थापना के समय से ही उल्लेखनीय कार्य कर रहा है। जहाँ 1980-81 में निगम द्वारा 310 करोड़ रूपये के ऋण स्वीकृत किये गये थे, वे बढकर 2000-01 में 56092 करोड़ रूपये हो गये। निगम ने यह वित्तीय सहायता सभी क्षेत्रों सार्वजनिक, निजी एवं सहकारी क्षेत्र में स्थापित उद्योगों को प्रदान की है। इस प्रकार स्पष्ट है कि निगम द्वारा स्वीकृत ऋणों की मात्रा 20 वर्ष में लगभग 180 गुना हो गई। निगम का ही बैंक - आई सी आई सी आई बैंक इस समय भारत में निजी क्षेत्र का सबसे बड़ा नवोन्मेशी बैंक है। देश में जहाजरानी क्षेत्र में ऋण सुविधा प्रदान करने के लिए स्थापित वित्तीय संस्था भारतीय जहाजरानी साख एवं विनियोग निगम लिमिटेड को भी अप्रेल 1996 में इस निगम में मिला दिया गया। इस प्रकार यह निगम उत्तरोत्तर प्रगति की ओर अग्रसर है।

आई सी आई सी आई लिमिटेड का 30 मार्च 2002 को इसकी सहायक संस्था आई सी आई सी आई बैंक में इसकी दो अन्य सहायक संस्थाओं के साथ विलय कर दिया गया। इस विलय के परिणामस्वरूप आई सी आई सी आई बैंक भारत का निजी क्षेत्र का सबसे बड़ा बैंक बन गया। इस प्रकार 30 मार्च 2002 से भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया।

18.9 राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक

नाबार्ड की स्थापना जुलाई 1982 में संसद के एक विशेष अधिनियम द्वारा की गई थी। इसकी स्थापना के साथ ही कृषि पुनर्वित्त विकास निगम तथा रिजर्व बैंक के ग्रामीण बैंकों एवं सहकारी बैंकों के पुनर्वित्त का कार्य इस बैंक को हस्तान्तरित हो गया।

प्रारम्भ में नाबार्ड की अधिकृत पूंजी 500 करोड़ रूपये तथा प्रदत्त पूंजी 100 करोड़ रूपये थी। वर्ष 1999 से इसकी प्रदत्त पूंजी बढ़ाकर 2,000 करोड रूपये कर दी गई। यह बैंक अपने वित्तीय साधन भारत सरकार, विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं से एकत्रित करता है।

यह बैंक मुख्य रूप से कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिए स्वीकृत एवं आबंटित ऋणों के पुनर्वित्त का कार्य करता है। यह बैंक देश के सहकारी बैंकों, भूमि विकास बैंकों आदि को

अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण भी प्रदान करता है। यह बैंक कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्रों के विकास से संबंधित शोध एवं अनुसंधान के लिए आवश्यक धन की व्यवस्था भी करता है। नाबार्ड द्वारा वर्ष 2000-01 में कुल 6158 करोड़ रूपये के ऋण वितरित किये गये है।

ग्रामीण क्षेत्रों में मूलभूत सुविधाओं के कार्य को शीध्र पूरा करने के लिए नाबार्ड के तहत 1995 से ग्रामीण मूलभूत सुविधा कोष बनाया गया है। इस कोष में प्रतिवर्ष राशि स्वीकृत की जाती है किन्तु उसका पूरा उपयोग नहीं हो पा रहा है। वर्ष 1999-2000 में इस मद में स्वीकृत राशि 3570 करोड रूपये में से केवल 1970 करोड़ का ही उपयोग हुआ।

इस प्रकार यद्यपि यह बैंक कृषि एवं ग्रामीण विकास के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर सकता है किन्तु राज्य सरकारों की उदासीनता एवं योजनाओं की समय पर स्वीकृति नहीं ले पाने के कारण कार्य में वास्तविक उपलब्धि अपेक्षा से कम रह रही है।

18.10 भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक

इसकी स्थापना मूल रूप. में 1971 में भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम के रूप में की गई थी जिसे 1985 में पुनर्गठित करके भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक में बदला गया। इसकी अंश पूंजी का 50 प्रतिशत भाग भारतीय औद्योगिक विकास बैंक द्वारा प्रदान किया गया था तथा शेष भाग अन्य वित्तीय संस्थाओं तथा सरकारी बैंकों द्वारा लगाया गया था। जनवरी 1997 में इसका नाम बदलकर भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक कर दिया गया।

इस बैंक का मुख्य उद्देश्य बीमार औद्योगिक इकाइयों की कमजोरी के कारणों का निराकरण करना है। यह बैंक बीमार औद्योगिक इकाइयों के सुधार के लिए उन्हें ऋण देने के साथ ही आवश्यकता होने पर उनका प्रबन्ध भी अपने हाथ में ले सकता है। इस बैंक द्वारा 2003-04 में कुल 2412 करोड रूपये की ऋण राशि स्वीकृत की गई।

18.11 भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक

लघु उद्योग विकास बैंक ने 2 अप्रेल 1990 से भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की सहयोगी संस्था के रूप में कार्य प्रारम्भ किया है। यह बैंक मुख्य रूप में लघु उद्योगों के लिए वित्त की व्यवस्था का कार्य करता है। लघु उद्योगों द्वारा तैयार उत्पाद के राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में विपणन में सहायता व आवश्यक परामर्श देने का कार्य भी इस बैक द्वारा जा रहा है। यह बैंक लघु ओद्योगिक उपक्रमों के तकनीकी उन्नयन तथा आधुनिकीकरण कार्य में भी मदद देता है। देश में लघु उद्योगों के विकास में इस बैंक की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। देश में लघु उद्योगों के माध्यम से रोजगार सृजन का भी उल्लेखनीय कार्य हुआ है। महिला उद्यमिता का विकास करने के लिए बैंक द्वारा "महिला उद्यम निधि" की स्थापना की गई है।

इस बैंक द्वारा 2002-03 में 10903 करोड़ रूपये के ऋण स्वीकृत किये गये थे जिसमें से 8789 करोड़ रूपये का वितरण हुआ। निर्यात आधारित लघु औद्योगिक इकाइयों को आई० एस० ओ० 9000 प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए भी वित्तीय सहायता प्रदान की गई।

राज्य स्तरीय विकास बैंक - देश के विभिन्न राज्यों ने भी पिछड़े हुए क्षेत्रों में आर्थिक विकास के लिए विशेष वित्तीय संस्थाएँ - विकास बैंक स्थापित किये हैं।

ये संस्थाएँ अपने राज्य की सीमा में स्थापित लघु व मध्यम उद्योगों को ऋण प्रदान करते हैं तथा अन्य संस्थाओं से लिये गये ऋणों की गारण्टी देने का कार्य करते हैं।

18.12 राज्य वित्त निगम एवं राज्य औद्योगिकी विकास निगम

राज्य वित्त निगम - (Finance Corporation) विभिन्न राज्यों में लघु तथा मध्यम श्रेणी के उद्योगों के विकास हेतु 1951 के राज्य वित्त निगम अधिनियम के अन्तर्गत राज्य वित्त निगम स्थापित किये गये हैं। वर्तमान में 18 राज्यों में राज्य वित्त निगम अपने अपने क्षेत्र में औद्योगिक विकास के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

राज्य वित्त निगम अपने वित्तीय स्त्रोत के लिए मुख्य रूप रमे अंश पूंजी पर निर्भर हैं जिसमें राज्य सरकार रिजर्व बैंक, बैंकों, वित्तीय संस्थाओं तथा बीमा कम्पनियों का हिस्सा रहता है। अंश पूंजी के अतिरिक्त राज्य वित्त निगम अपनी चुकता पूंजी व सुरक्षित कोष के 5 गुना तक बॉण्ड व ऋणपत्र बेचकर धन जुटा सकते हैं। औद्योगिक विकास बैंक तथा राज्य सरकार द्वारा भी इन्हे ऋण दिया जा सकता है।

राज्य वित्त निगम लघु व मध्यम आकार के उपक्रमों के लिए 20 वर्ष की अवधि तक के लिए ऋण दे सकते हैं। ये निगम अंशों, बाण्डों एवं ऋणपत्रों का अभिगोपन कार्य भी कर सकते हैं। इन्हें 10 वर्ष तक की अवधि के लिए अन्य संस्थाओं द्वारा स्वीकृत ऋणों की गारण्टी देने का अधिकार है। राज्य वित्त निगमों द्वारा अधिकांश सहायता लघु उद्योगों को प्रदान की जाती है। ये निगम पिछड़े हुए क्षेत्रों मे स्थापित उद्योगों के लिए रियायती ब्याज दर पर ऋण स्वीकृत करते हैं। राजस्थान में राजस्थान वित्त निगम राज्य वित्त निगम के रूप में कार्य कर रहा है।

राज्य औद्योगिक विकास निगम - (State Industrial Development Corporation) - राज्य स्तर पर पूर्ण स्वामित्व वाले उपक्रमों के रूप में इनकी स्थापना 1960 के दशक में की गई। इनका उद्देश्य अपने राज्य में औद्योगिक विकास का वातावरण बनाना तथा स्वयं अपने स्वामित्व में या निजी क्षेत्र के साथ मिलकर उद्योगों की स्थापना करना है। ये निगम अपने राज्य में उद्योगों के प्रवर्तन के लिए तकनीकी एवं आर्थिक सर्वेक्षण, परियोजना की लाभदायकता का मूल्यांकन आदि कार्य भी करते हैं। देश में इस समय 22 राज्यों में राज्य औद्योगिक विकास निगम कार्य कर रहे हैं। ये निगम राज्य के औद्योगिक क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं का विकास करते हैं। इनको निजी एवं सार्वजनिक उद्योगों की अंश पूंजी में सम्मिलित होने, अभिगोपन करने तथा ऋणों की गारण्टी देने का भी अधिकार है।

18.13 विकास बैंकों की समस्याएँ एवं समाधान

भारत में विकास बैंक औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहें हैं परन्तु इन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जिनमें प्रमुख निम्न हैं -

1. **पूंजी आधार का कमजोर होना** - देश के अधिकांश विकास बैंक सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। इन बैंकों के पूँजी स्त्रोत औद्योगिक ऋण की मांग की तुलना में कम हैं। यद्यपि वित्तीय सुधारों के बाद अधिकांश विकास बैंकों को बाजार से पूंजी प्राप्त करने के लिए अधिकृत किया गया है, परन्तु इसके लिए सरकार की स्वीकृति आवश्यक होने से

विलम्ब होता है। इस समस्या के समाधान के लिए विकास बैंकों का पूंजी आधार बढाना चाहिये।

2. **प्रबन्ध संचालन में सरकारी हस्तक्षेप** - विकास बैंकों के संचालक मण्डल में सामान्यत: सरकार द्वारा मनोनीत संचालकों का दबदबा रहता है। इससे इनके संचालन में पेशेवर कुशलता का अभाव रहता है। इस समस्या के निराकरण के लिए विकास बैंकों का प्रबन्ध संचालन पेशेवर प्रबन्धकों को सौंपा जाना चाहिये।
3. राज्य सरकारों द्वारा आर्थिक विकास परियोजनाओं की स्वीकृति मे देरी के कारण भी विकास बैंक अपने कार्य में पिछड़ जाते हैं। अत: राज्य सरकारों को रूचि लेकर विकास परियोजनाओं की स्वीकृति शीध्र जारी करनी चाहिये।
4. **आबंटित ऋणों के पुन: भुगतान में देरी** - जिन औद्योगिक उपक्रमों को ऋण दिया गया है वे समय पर ब्याज एवं मूलधन का भुगतान नहीं करते हैं। इससे विकास बैंकों की धनराशि अवरूद्ध हो जाती है तथा नये उपक्रमों को समय पर ऋणों का वितरण संभव नहीं हो पाता। अत: ऐसे उपक्रमों के संचालन पर विकास बैंकों का सतत नियंत्रण रहना चाहिये।

बोध प्रश्न ग

1. भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम की स्थापना कब की गई थी?
2. रेटिंग एजेंसी क्रिसिल की स्थापना किस के द्वारा की गई?
3. क्या वर्तमान में औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम नाम की वित्तीय संस्था कार्य कर रही है।
4. नाबार्ड की स्थापना कब हुई थी?
5. लघु उद्योग विकास बैंक किस वित्तीय संस्था की सहायक कम्पनी है?
6. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये -
   a. भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम की स्थापना...................................... के अन्तर्गत की गई थी।
   b. आई सी आई सी आई का विलय... में किया गया है।
   c. बीमार औद्योगिक उपक्रमों के आधुनिकीकरण के लिए वित्तीय सहायता देने का कार्य................द्वारा किया जाता है।
   d. महिला उद्यम निधि का गठन...द्वारा किया गया है।

18.14 सारांश

किसी देश के समन्वित आर्थिक विकास हेतु दीर्घकालीन वित्त की पूर्ति तथा उद्यमशीलता का वातावरण आवश्यक होता है। देश में उद्यमशीलता का विकास एवं दीर्घकालीन वित्त की पर्याप्त आपूर्ति के लिए जो विशेष वित्तीय संस्थान बनाये जाते हैं, उन्हे विकास बैंक कहा जाता है।

आर्थिक विकास परियोजनाओं के लिए आवश्यक वित्त, तकनीकी तथा मूलभूत सुविधाऐं जुटाने की प्रकिया विकास बैंकिंग में सम्मिलित की जाती है। बोस्की के अनुसार “बैंक योग्य

आर्थिक विकास परियोजनाओं के मध्यमकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण एवं संबंधित सेवाएँ प्रदान करने वाली वित्तीय मध्यवर्ती संस्थाएँ विकास बैंक कहलाती हैं।" विकास बैंक सामान्य बैंकों की तरह लाभ अर्जन के लिए कार्य न करके समाज एवं राष्ट्रहित की आर्थिक परियोजनाओं के लिए दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध करवाते हैं। वित्त की पूर्ति के साथ उद्यमियों को परियोजना की तकनीकी व आर्थिक लाभदायकता के मूल्यांकन में भी विकास बैंक आवश्यक, सलाह देते हैं।

विकास बैंकों की विभिन्न कार्ययोजनाओं के कियान्वयन के कारण देश का सन्तुलित' एवं समन्वित विकास तथा राष्ट्र के संसाधनों का कुशलतम उपयोग सम्भव होता है।

भारत में सम्पूर्ण बैंकिंग व्यवस्था का नियमन व नियंत्रण भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है। अर्थव्यवस्था के अलग अलग क्षेत्रों के लिए बैंकिंग आवश्यकता की पूर्ति विशिष्ट शीर्ष बैंक के नेतृत्व व निर्देशन में की जाती है जैसे कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए नाबार्ड एवं औद्योगिक विकास के लिए भारतीय औद्योगिक विकास बैंक।

भारत में इस समय लगभग 70 विशेष वित्तीय संस्थाएँ विकास बैंकों के रूप में कार्य कर रही हैं। देश के पहले विकास बैंक के रूप में भारतीय औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना 1948 में की गई थी जिसे 1993 में एक सार्वजनिक कम्पनी के रूप में बदल दिया गया है। इसके अतिरिक्त देश के प्रमुख विकास बैंकों में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम, भारतीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक निदेश बैंक, भारतीय यूनिट ट्रस्ट, भारतीय आयात निर्यात बैंक, राज्य स्तर पर स्थापित राज्य वित्त निगम तथा राज्यों में ही स्थापित राज्य औद्योगिक विकास निगम सम्मिलित हैं।

इन सब विकास बैंकों ने जहाँ देश में दीर्घकालीन वित्त की उपलब्धता बढ़ाकर औद्योगिक विकास को संभव बनाया है, वहीं युवा उद्यमियों में विभिन्न प्रशिक्षण कार्यशालाओं के माध्यम से उद्यम कौशल का विकास भी किया है।

18.15 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न क -

प्रश्न क्रमांक 6

(i). असत्य (ii). सत्य (iii). असत्य

(iv). असत्य (v). सत्य

बोध प्रश्न ख -

प्रश्न क्रमांक 1 -

(i) भारतीय रिजर्व बैंक

(ii) भारतीय आयात निर्यात बैंक

(iii) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम

(iv) भारतीय रिजर्व बैंक

प्रश्न क्रमांक 2 -

(i). असत्य (ii). सत्य

(iii). सत्य (iv). सत्य

बोध प्रश्न ग -

प्रश्न क्रमांक 6 -

(i) भारतीय कम्पनी अधिनियम

(ii) आई सी आई सी आई बैंक

(iii) भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक

(iv) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक

18.16 अभ्यास प्रश्न

अति लघुउत्तरात्मक प्रश्न -

1. विकास बैंक की परिभाषा दीजिये।
2. विकास बैंकों द्वारा किये जाने वाले कोई दो कार्य बताइये।
3. देश की बैंकिंग गतिविधियों का नियमन व नियंत्रण किस संस्था द्वारा किया जाता है।
4. लघु उद्योगों के लिए दीर्घकालीन वित्त की पूर्ति किस वित्तीय संस्था द्वारा की जाती है।
5. आई. सी. आई. सी. आई. का आई. सी. आई. सी. आई. बैंक में विलय कब किया गया?
6. बीमार औद्योगिक इकाइयों को आधुनिकीकरण के लिए ऋण किस संस्था द्वारा स्वीकृत किया जाता है।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न -

1. विकास बैंक की विशेषताएँ बताइये।
2. विकास बैंक किन उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होते हैं?
3. राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर के विकास बैंकों में क्या अन्तर होता है?
4. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम किसी उपक्रम को ऋण स्वीकृत करते समय किन बिन्दुओं पर विचार करता है?
5. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के वित्तीय स्त्रोत पर एक टिप्पणी लिखिये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अर्थव्यवस्था के विकास में विकास बैंकों की आवश्यकता व भूमिका को समझाइये।
2. भारत में औद्योगिक विकास में भारतीय औद्योगिक वित्त निगम की भूमिका का परीक्षण कीजिये।
3. भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम की कार्यप्रणाली एवं औद्योगिक विकास में इसकी भूमिका पर एक लेख लिखिये।

18.17 संदर्भ ग्रंथ

टी. टी. सेठी – मुद्रा, बैंकिंग एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

बी. पी. गुप्ता, वशिष्ठ एवं स्वामी – बैंकिंग एवं वित्त

त्रिवेदी, सिंह नागर एवं भण्डारी – भारतीय बैंकिंग प्रणाली

एच. आर. मचीराजु – भारतीय वित्तीय प्रणाली

ISBN-13/978-81-8496-176-8